PSY 01

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

Psychological Processes
मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाएँ

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

पाठ्यक्रम अभिकल्प समिति

संरक्षक	अध्यक्ष
प्रो. अशोक शर्मा	**प्रो. एल.आर. गुर्जर**
कुलपति	निदेशक (अकादमिक)
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा	वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

संयोजक एवं सदस्य

** संयोजक	* संयोजक
डॉ. अनिल कुमार जैन	**डॉ. रजनी रंजन सिंह**
सह आचार्य एवं निदेशक, शिक्षा विद्यापीठ	सह आचार्य एवं निदेशक, शिक्षा विद्यापीठ
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा	वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

सदस्य

प्रो. (डॉ) एल.आर. गुर्जर	**प्रो. एच. बी. नंदवाना**
निदेशक (अकादमिक)	निदेशक, सतत शिक्षा विद्यापीठ
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा	वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा
प्रो. विजयलक्ष्मी चौहान (सेवानिवृत्त)	**प्रो.आशा हिंगर (सेवानिवृत्त)**
मनोविज्ञान विभाग	मनोविज्ञान विभाग
मोहनलाल सुखाडिया विश्वविद्यालय, उदयपुर	राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर
प्रो. दामीना चौधरी (सेवानिवृत्त)	**डॉ. रजनी रंजन सिंह**
शिक्षा विद्यापीठ	सह आचार्य, शिक्षा विद्यापीठ
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा	वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा
डॉ. अनिल कुमार जैन	**डॉ. कीर्ति सिंह**
सह आचार्य, शिक्षा विद्यापीठ	सहायक आचार्य, शिक्षा विद्यापीठ
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा	वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय,कोटा
डॉ. पतंजलि मिश्र	**डॉ. अखिलेश कुमार**
सहायक आचार्य, शिक्षा विद्यापीठ	सहायक आचार्य, शिक्षा विद्यापीठ
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा	वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

*डॉ. रजनी रंजन सिंह ,सह आचार्य एवं निदेशक, शिक्षा विद्यापीठ 13.06.2015 तक
** डॉ. अनिल कुमार जैन, सह आचार्य एवं निदेशक, शिक्षा विद्यापीठ 14.06.2015 से निरन्तर

समन्वयक एवं सम्पादक

समन्वयक
डॉ. अनिल कुमार जैन
सह आचार्य, शिक्षा विद्यापीठ
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

विषय वस्तु एवं भाषा संबंधी सम्पादन
डॉ. पतंजलि मिश्र
सहायक आचार्य, शिक्षा विद्यापीठ
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

इकाई लेखन

1 **डॉ. निशा अग्रवाल** (इकाई 1,2,3)
मनोविज्ञान विभाग
गुरू नानक राजकीय कन्या पीजी महाविद्यालय, उदयपुर

2 **डॉ. कीर्ति परमार** (इकाई 4,5,6)
मनोविज्ञान विभाग
एम.एल.एस. विश्वविद्यालय, उदयपुर

3 **डॉ. पतंजलि मिश्र (इकाई** 7,8)
सहायक आचार्य, शिक्षा विद्यापीठ
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

4 **डॉ. अखिलेश कुमार (इकाई** 9)
सहायक आचार्य, शिक्षा विद्यापीठ
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

5 **डॉ. सुषमा सिंह (इकाई** 10,11,12)
रीडर, जे.एल.एन.टी.टी. कॉलेज,
कोटा

6 **डॉ. सीमा जैन (इकाई** 13,14)
मनोविज्ञान विभाग
एम.एल.एस. विश्वविद्यालय, उदयपुर

7 **श्री संजय कुमार** (इकाई 15)
व्याख्याता
प्रारंभ शिक्षक शिक्षा विद्यापीठ
झझर, हरियाणा

8 **डॉ. कीर्ति सिंह** (इकाई 16,17)
सहायक आचार्य, शिक्षा विद्यापीठ
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय,कोटा

9 **डॉ. अनिल कुमार जैन** (इकाई 18)
सह आचार्य, शिक्षा विद्यापीठ
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

आभार

प्रो. विनय कुमार पाठक
पूर्व कुलपति
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

अकादमिक एवं प्रशासनिक व्यवस्था

प्रो. अशोक शर्मा
कुलपति
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय,कोटा

प्रो .एल.आर .गुर्जर
निदेशक (अकादमिक)
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय,कोटा

प्रो. करण सिंह
निदेशक
पाठ्य सामग्री उत्पादन एवं वितरण प्रभाग
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय,कोटा

डॉ. सुबोध कुमार
अतिरिक्त निदेशक
पाठ्य सामग्री उत्पादन एवं वितरण प्रभाग
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय,कोटा

उत्पादन 2015, ISBN : 978-81-8496-515-5

इस सामग्री के किसी भी अंश को व.म.खु.वि.वि., कोटा, की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप में अन्यत्र पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है। व.म.खु.वि.वि., कोटा के लिए कुलसचिव, व.म.खु.वि.वि., कोटा (राजस्थान) द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित।

PSY 01

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

अनुक्रमणिका

इकाई सं .	इकाई का नाम	पेज नं .
1	मनोविज्ञान की परिभाषाएँ क्षेत्र एवं शाखाएं , लक्ष्य ,	1
2	मनोविज्ञान की विधियाँ	15
3	तंत्रिका तंत्र	30
4	प्रत्यक्षीकरण प्रक्रम: स्वरूप एवं उपागम या सिद्धांत	53
5	प्रत्यक्षणात्मक संगठन तथा निर्धारक	68
6	मानव आँख व कान की संरचना तथा कार्य	84
7	अधिगम, प्रकृति , अधिगम के सिद्धांत	98
8	अनुकूलित अनुक्रिया एवं क्रिया प्रसूत अनुबंध, अधिगम स्थानांतरण	111
9	स्मरण एवं विस्मरण	126
10	चिंतन: स्वरूप एवं प्रक्रिया	140
11	सृजनात्मक चिंतन, समानांतर चिंतन	155
12	समस्या समाधान उपागम	172
13	अभिप्रेरणा	187
14	संवेग	200
15	संवेग में स्वयं-संचालित स्नायु-संस्थान की भूमिका	213
16	बुद्धि की परिभाषा, स्वरुप और सिद्धांत	232
17	बुद्धि का मापनबुद्धि परिक्षण की उपयोगिता ,	253
18	व्यक्तित्व	276

इकाई -1

मनोविज्ञान की परिभाषाएँ , लक्ष्य , क्षेत्र एवं शाखाएं
Definitions , Goals , Branches and Scope of Psychology

इकाई की रूपरेखा

1.1 प्रस्तावना

1.2 उद्देश्य

1.3 परिचय

1.4 मनोविज्ञान का संक्षिप्त इतिहास

1.4.1 पूर्व वैज्ञानिक काल

1.4.2 वैज्ञानिक काल

1.5 मनोविज्ञान की परिभाषा एवं स्वरूप

1.6 मनोविज्ञान का लक्ष्य

1.6.1 मापन एवं वर्णन

1.6.2 पूर्वानुमान एवं नियंत्रण

1.6.3 व्याख्या

1.7 मनोविज्ञान की शाखाएं एवं क्षेत्र

1.7.1 शेक्षिक क्षेत्र

1.7.2 प्रयुक्त मनोविज्ञान के क्षेत्र

1.7.3 मनोविज्ञान के नये उभरते क्षेत्र

1.8 सारांश

1.9 शब्दावली

1.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.11 निबंधात्मक प्रश्न

1.12 संदर्भ ग्रंथ सूची

1.1 प्रस्तावना

मनोविज्ञान व्यक्ति के व्यवहार का वैज्ञानिक अध्ययन है। मनोविज्ञान में व्यक्ति के व्यवहार का सम्पूर्ण अध्ययन कर उनकी व्यवहारिक या सामाजिक , मानसिक समस्याओं का अध्ययन कर समस्या का समाधान किया जाता है।

प्रस्तुत इकाई में आप मनोविज्ञान के अर्थ, परिभाषा, इसके लक्ष्य , इतिहास एवं मनोविज्ञान के क्षेत्रों का विस्तारपूर्वक अध्ययन करेगें।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढने के बाद आप

- मनोविज्ञान का अर्थ बता सकेंगे एवं परिभाषित कर सकेंगे।
- मनोविज्ञान का इतिहास बता सकेंगे।
- मनोविज्ञान के लक्ष्यों को बता सकेंगे।

1.3 परिचय (Introduction)

प्रत्येक मनुष्य की यह प्रकृति होती है कि जब वह किसी प्रकार की संभ्रान्ति अथवा गडबडी देखता है तो वह उस गडबडी को दूर करने का अथवा चीजों को क्रमबद्ध करने का प्रयास करता है। इसी प्रकार से यह देखा गया है कि जब व्यक्ति घर में होता है अथवा जब कुछ लोगों के बीच में होता है तो वह इन लोगो के सम्बन्ध में अक्सर कुछ धारणाऐ बना लेता है और अक्सर कुछ पूर्व कथन भी करता है। हम सब को यह अच्छा लगता है कि हमारे मित्र दिल में मुस्करा कर हमारा स्वागत करें और हमारे साथ मित्रता के सम्बन्ध निभायें। प्रत्येक व्यक्ति अपने चारों ओर की वस्तुओं और व्यक्तियों के प्रति निर्मित धारणाओं के आधार पर व्यवहार करता है परन्तु इस प्रकार व्यवहार करने में कभी कभी उसे कठिनाई भी होती है। मनोविज्ञान में प्राणी के इसी प्रकार के विभिन्न व्यवहार पहलुओं का अध्ययन किया जाता है।

1.4 मनोविज्ञान का संक्षिप्त इतिहास (Brief History of Psychology):

मनोविज्ञान के इतिहास की जड़े हजारों साल गहरी ही नहीं है बल्कि ज्ञान के अनेक क्षेत्रों से सम्बन्धित हे। धर्म जादु , दर्शन शास्त्र और विज्ञान सभी का मनोविज्ञान की उत्पत्ति में योगदान है। ईसा पूर्व छठी शताब्दी के दार्शनिको के विचारों में अनेक मनोवैज्ञानिक समस्याओं की विवेचना मिलती है।

आत्मा के अध्ययन से लेकर व्यवहार तथा अनुभूति या मानसिक प्रक्रियाओं के अध्ययन के बीच मनोविज्ञान का एक लम्बा इतिहास छिपा है। इस इतिहास का विस्तृत वर्णन तो यहा सम्भव नहीं है , फिर भी इसके एक संक्षिप्त रूप पर हम अवश्य विचार करेगे। मनोविज्ञान के इतिहास को मूलतः दो भागों में बाटा जा सकता है –

मनोविज्ञान का इतिहास

	पूर्ववैज्ञानिक काल	वैज्ञानिक काल
1.	शारीरिक गठन कारक	प्रारम्भिक काल में मनोविज्ञान
2.	मन - शरीर समस्या	1. संरचनावाद
3.	जन्मजात विचार	2. प्रकार्यवाद या कार्यवाद
4.	मानव स्वभाव	3. व्यवहारवाद
5.	चेतना तथा संवेदी प्रक्रियाएं	4. गेस्टाल्ट मनोविज्ञान
		5. मनोविश्लेषण

1.4.1 पूर्ववैज्ञानिक काल (Prescientific Period):

पूर्ववैज्ञानिक काल की शुरूआत ग्रीक दार्शनिको (Greek Philosophers) जैसे प्लेटो (Plato), अरस्तु (Aristotic), हिपाक्रेट्स (Hippocrates) आदि पूर्व वैज्ञानिक काल की घटनाएं (Phenomenon) जिनका आधुनिक मनोविज्ञान (Modern Psychology) पर सीधा प्रभाव पडता है।

- **शारीरिक गठन कारक (Constitution Factors) :-** इस सिद्धान्त का प्रतिपादन ग्रीक दार्शनिक हिपोक्रेट्स ने 400 B.C. में किया था।
- **मन शरीर समस्या (Mind Body Problem) :-** शरीर से सम्बन्धित घटनाओं का प्रभाव मन पर नहीं पडता है तथा मन से सम्बन्धित घटनाओं का प्रभाव शरीर पर नहीं पडता है। आधुनिक मनोविज्ञान पर मन तथा शरीर से सम्बन्धित इस वाद विवाद का काफी प्रभाव पडा और मनोदैहिक क्षेत्र (Psychosomatic Field) अध्ययन इस प्रभाव का सीधा नतीजा है।
- **जन्मजात विचार (Innate Ideas) :-** कुछ ग्रीक दार्शनिकों जैसे देकात्रे (Descirtes) का मत था कि प्रत्येक व्यक्ति में जन्म से ही कुछ विचार होते हैं। परन्तु अन्य दार्शनिक जैसे लाक (Locke) का मत था कि व्यक्ति जन्म के समय " टेबूला रसा " (Tabiles rasa) होता है अर्थात उसका मस्तिष्क एक कोरे कागज के समान होता है।
- **मानव स्वभाव (Human Nature) :-** दार्शनिको के बीच इस बात का भी वाद विवाद काफी तीव्र रहा है कि मनुष्य का स्वभाव कैसा होता है ? मानव स्वभाव (Human Nature) जैसे पद (Term) का उपयोग कम किया जाता है , फिर भी इसका स्पष्ट प्रभाव आधुनिक मनोविज्ञान पर हमें देखने को मिलता है। मानव व्यवहार किस तरह से संस्कृति (Culture) तथा सामाजिक मानक (Social Norms) द्वारा प्रभावित होता है , बहुत कुछ मानव स्वभाव से सम्बन्धित इसी वाद विवाद का परिणाम है।
- **चेतना तथा संवेदी प्रक्रियाएं (Consciousness and sensory process) :-** 19 वीं शताब्दी के प्रारम्भ में दो प्रमुख क्षेत्रों में जो अध्ययन किया गया उसका आधुनिक मनोविज्ञान पर

सबसे गहरा असर पडा। पहला क्षेत्र दर्शनशास्त्र का था जिसमें लोग चेतना Consciousness) तथा उसमें उत्पन्न विचारों का अध्ययन करते थे तथा दूसरा क्षेत्र भौतिक तथा जेविक विज्ञान का था जिसमें ज्ञानेन्द्रिय (Sense Organs) के कार्य के अध्ययन पर अधिक बल डाला गया।

1.4.2 वैज्ञानिक काल (Scientific Period):

प्रारम्भिक काल में मनोविज्ञान (Psychology inearly period)

वुन्ट के प्रयोगशाला का कार्यक्रम (Activities in Wandt's liabroary) मनोविज्ञान के इतिहास में एक काफी महत्वपूर्ण विषय है। वून्ट ने मनोविज्ञान का पहला प्रयोगशाला जर्मनी के लिपजिंग विश्वविद्यालय में 1879 में खोला।

- **संरचनावाद (Structuralism) :-** संरचनावाद की बुनियाद तो विलियम वून्ट (Willhelm Wundt) द्वारा की गयी थी परन्तु उसे औपचारिक स्कुल के रूप में वून्ट द्वारा नहीं बल्कि उनके ही शिष्य टिचेनर (Titchener) द्वारा अमेरिका के कोर्नेल विश्वविद्यालय (Comell University) में 1892 में प्रारम्भ किया गया। संरचनावाद के अनुसार मनोविज्ञान का विषयवस्तु चेतन अनुभूति (Consicious experience) थी।

- **प्रकार्यवाद या कार्यवाद (Functionalism) :-** कार्यवाद का जन्म संरचनावाद के विरोध में हुआ। विलियम जेम्स (Williom James) ने 1890 में एक पुस्तक लिखी जिसमें संरचनावाद का विरोध करते हुए कहा कि मनोविज्ञान का विषयवस्तु चेतना के तत्वों का अध्ययन करना नहीं बल्कि चेतना की उपयोगिताओं का अध्ययन करना है।

- **व्यवहारवाद (Behaviourism) :-** व्यवहारवाद के संस्थापक (Foundation) वाटसन (Watson) द्वारा 1913 में की गयी। व्यवहारवाद की स्थापना इन्होने अचानक नहीं किया बल्कि उन्होने अनेक बातों से काफी प्रभावित होकर ही किया था। उन्होने इस बात का खण्डन किया कि मनोविज्ञान का विषयवस्तु (Subject matter) जैसा कि कार्यवादियों में कहा था, चेतना हे।

- **गेस्टाल्ट मनोविज्ञान (Gestalt Psychology) :-** जर्मनी में गेस्टाल्ट मनोविज्ञान (Gestalt Psycology) की स्थापना की गयी। गेस्टाल्ट स्कुल की स्थापना मैक्स वरदाईमर (Max Wertheimer) ने 1912 में किया। इनके अनुसार मनोविज्ञान का सम्बन्ध मानसिक प्रक्रियाओं के संगठन के अध्ययन से था। इन्होने स्पष्ट किया कि मनोविज्ञान मानसिक क्रियाओं से संगठन (Organization) का विज्ञान है। क्रियाओं का अध्ययन पूर्णरूपेण (as a whole) से कर सकते हैं।

- **मनोविश्लेषण (Psychoanalysis) :-** गत्यात्मक मनोविज्ञान के अनेक पहले मनोविश्लेषण (Psychoanalysis) का है। जिसे सिगमंड फ्रायड (Signund Freud) ने स्थापित किया। उन्होने सभी तरह के असामान्य व्यवहारों का कारण इसी अचेतन में होना दिखलाया।

1.5 मनोविज्ञान की परिभाषा एवं स्वरूप

मनोविज्ञान के वर्तमान स्वरूप को यदि देखा जाये तो यह स्वरूप मनोविज्ञान शब्द के शाब्दिक अर्थ से स्पष्ट नहीं होता। Psychology शब्द की उत्पत्ति ग्रीक शब्दों Psyche एवं Logos से हुई है (Psychology = Psyche + Logos)। Psyche का अर्थ आत्मा से है। Psyche का एक दूसरा अर्थ भी है -एक कुंआरी कन्या जिसके तितली के समान पंख हों। Logos का अर्थ है -ज्ञान अथवा बातचीत करना। यदि Psychology शब्द का शाब्दिक अर्थ लिया जाये तो इसका अर्थ है , आत्मा का ज्ञान ही मनोविज्ञान है। मनोविज्ञान का अर्थ है -आत्मा का अध्ययन। पहले बताया जा चुका है, ग्रीक दार्शनिकों द्वारा आत्मा का अध्ययन प्रारम्भ किया गया। यह आत्मा का अध्ययन सोलहवीं शताब्दी तक चलता रहा परन्तु आत्मा की अस्पष्टत से उपयुक्त परिभाषा की गम्भीर आवश्यकता को उत्पन्न किया।

शब्द Psychology एक आत्मविरूद्ध कथन (Self Conradictory Statement) है। शब्द Psychology का उपयोग सर्वप्रथम लान्जे (F.A.Lange 1866) ने अपनी पुस्तक History of Materialism में किया था। उसने अपनी पुस्तक में लिखा था कि विज्ञान के रूप में मनोविज्ञान में आत्मा का वर्णन उपेक्षित हो रहा है और अब इस विज्ञान में मानसिक तथ्यों (Mental Facts) का वर्णन होने लगा है। आधुनिक युग में मनोविज्ञान को आत्मा के विज्ञान के रूप में नहीं माना जाता है और यह भी नहीं माना जाता है कि इस विज्ञान में मानसिक तथ्यों का वर्णन है। मनोविज्ञान के सम्बन्ध में इन मान्यताओं का अब केवल ऐतिहासिक महत्व को माना गया है।

कुछ विद्वानों ने आत्मा के स्थान पर मन (Mind) शब्द के उपयोग को अधिक उपयुक्त बताया। यदि आत्मा के स्थान पर ' मन ' शब्द काउपयोग करें तो कहा जा सकता है कि मन का ज्ञान ही मनोविज्ञान है। परन्तु मन शब्द के अनेक अर्थ हैं। मन का अर्थ आत्मा , चेतना (Consciousness) तथा मानसिक प्रतिक्रियाये (Mental Processes) हैं। अतः मन का स्वरूप क्या है इस सम्बन्ध में मनोवैज्ञानिकों का मत एक न हो पाया। जेम्स (William James 1890) ने अपनी पुस्तक ''Principles of Psychology" में लिखा है कि चेतना की दशाओं के वर्णन और व्याख्या के रूप में मनोविज्ञान की सर्वोत्तम परिभाषा दी जा सकती है।

"The Defination of Psychology may be best given ------- as the description and explanation of states of consciousness as such."

परिभाषा :-

मेक्डूगल 1908 ने अपनी समाज मनोविज्ञान की पुस्तक में मनोविज्ञान को परिभाषित करते हुए लिखा है कि मनोविज्ञान व्यवहार का धनात्मक विज्ञान है।

''Psychology is the positive science of the conduct of behavior."

वूडवर्थ 1954 के अनुसार '' व्यक्ति के पर्यावरण के सम्बन्ध में व्यक्ति की क्रियाओं का विज्ञान मनोविज्ञान है। ''

"Psychology is science of the activities of the individual in reations to his environment." -R.S. Woodworth, Psychology 1954.

मन 1955 के अनुसार , ‘‘ मनोविज्ञान आज व्यवहार की वैज्ञानिक जाच पडताल से सम्बन्धित है। जिसमें व्यवहार के दृष्टिकोण से वह सब सम्मिलित है जिसे पहले के मनोवैज्ञानिक अनुभव के रूप में लेते हैं।

“Psychology, today concerns itself with the scientific investigation of behavior including, from the standpoint of behavior , much of what earlier psychologists dealt with as experience . - N.L.Munn, Psychology, 1955

स्किनर 1956 के अनुसार ‘‘ जीवन की विभिन्न परिस्थितियों के प्रति प्राणी की प्रतिक्रियाअें या व्यवहार का अध्ययन ही मनोविज्ञान है। प्रतिक्रियाओं या व्यवहार के अर्थ प्राणी की सभी प्रकार की प्रतिक्रियाओं , समायोजन , कार्य व्यापारों और अभिव्यक्तियों से है। ’’

“Psychology deals with responses , to any and every kind of situation that life presents . By responses or behavior is meant all form of processes, adjustment, activities and exprssions of the organism . – C . E . Skinner , Educational Psychology , 1956

बेरिंग 1962 के अनुसार ‘‘ मनोविज्ञान व्यक्ति के प्रत्युत्तरों के फलस्वरूप उत्पन्न व्यवहार का अध्ययन करता है और साथ ही साथ इस अवस्था में उत्पन्न अनुभवों की चेतना का भी अध्ययन करता है। ’’

“Psychology deals with both the behavior of man as it appear in his responses and with consciousness as he finds it in his immediate experience . “

कून 2003 के अनुसार ‘‘ अब मनोविज्ञान को इस प्रकार से परिभाषित किया जाता है कि मनोविज्ञान व्यवहार एवं मानसिक प्रक्रियाओं का वैज्ञानिक अध्ययन है। ’’

“Psychology is now defined as the scientific study of behaviour and mental process.”

उपर्युक्त परिभाषाओं के निरीक्षण से यह स्पष्ट है और निष्कर्ष स्वरूप यह कहा जा सकता है कि निरीक्षण योग्य व्यवहार एवं उससे सम्बन्धित मानसिक प्रक्रियाओं का अध्ययन ही मनोविज्ञान है। इसमें वह व्यवहार भी सम्मिलित है जिसका प्रत्यक्ष रूप से निरीक्षण किया जा सकता है और इसमें वे प्रक्रियाएं भी सम्मिलित हैं जिनका प्रत्यक्ष निरीक्षण सम्भव नहीं है बल्कि उनका केवल अनुमान ही लगाया जा सकता है।

अभ्यास प्रश्न - 1

- विश्व में मनोविज्ञान की प्रथम प्रयोगशाला की स्थापना की ..... ।
- मनोविश्लेषणवाद की ..... ने स्थापना की।

1.6 मनोविज्ञान के लक्ष्य (Goals of Psychology)

जैसा कि हम जानते है , मनोविज्ञान मानव पशु के व्यवहार एवं संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं का वेज्ञानिक अध्ययन करता है। ऐसे अध्ययन के पीछे उसके लक्ष्य (Goals) होते हैं।

1.6.1 मापन एवं वर्णन (Measurment and description)

मनोविज्ञान का सबसे प्रथम लक्ष्य प्राणी के व्यवहार एवं संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं का वर्णन करना तथा फिर उसे मापन करना होता है। प्रमुख मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाओं जैसे - चिंता, सीखना, मनोवृति, क्षमता, वृद्धि आदि का वर्णन करने के लिए पहले उसे मापना आवश्यक होता है। इसे मापने के लिए कई तरह के परीक्षण की आवश्यकता होती है। इसलिए मनोविज्ञान का एक मुख्य लक्ष्य मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाओं को मापने के लिए परीक्षण या विशेष प्रविधि का विकास करना है। किसी भी मनोवैज्ञानिक परीक्षण या प्रविधि में कम-से-कम दो गुणों का होना अनिवार्य है - विश्वनीयता (Reliability) तथा वैधता (Validity)।

1.6.2 पूर्वानुमान एवं नियंत्रण (Prediction and control):-

मनोविज्ञान का दूसरा लक्ष्य व्यवहार के बारे में पूर्वकथन करने से होता है ताकि इसे ठीक ढंग से नियंत्रित किया जा सके। जहा तक पुर्वकथन का सवाल है, इसमें सफलता, मापन की सफलता पर निर्भर करता है। सामान्यतः मनोवैज्ञानिक गत व्यवहार के मापन के आधार पर ही यह पूर्वकथन करते हैं कि व्यक्ति अमुक परिस्थिति में क्या कर सकता है तथा कैसे कर सकता है ? जैसे -अगर हम किसी छात्र के सामान्य बौद्धिक स्तर का मापन करके उसके बारे में सही सही जान लें तो हम स्कूल में उसके निष्पादन (Performance) के बारे में पूर्वकथन आसानी से कर सकते हैं। उसी तरह के किसी व्यक्ति की अभिक्षमता को मापकर मनोवैज्ञानिक यह पुर्वकथन करते हैं कि व्यक्ति को किस काम में लगाया जा सकता है ताकि उसे अधिक-से-अधिक सफलता मिल सके। कुछ मनोवैज्ञानिक मानव व्यवहार के बारे में पूर्वकथन करने के लिए क्षमता (Ability), अभिक्षमता (Aptitude) के अलावा अभिरूचि (Interest) का भी मापन किये है। व्यक्ति की अभिरूचि को मापकर मनोवैज्ञानिक यह पूर्वानुमान लगाते हैं कि व्यक्ति को किस तरह के कार्य में लगाना उत्तम होगा ताकि उसे अधिक से अधिक सफलता प्राप्त हो सके।

1.6.3 व्याख्या (Explanation):-

मनोविज्ञान का अंतिम लक्ष्य मानव व्यवहार का अध्ययन करना होता है। व्यवहार की व्याख्या करने के लिए मनोवैज्ञानिक कुछ सिद्धांत (Theories) का निर्माण करते हैं ताकि उनकी व्याख्या वैज्ञानिक ढंग से की जा सके। ऐसे सिद्धांत ज्ञात स्त्रोतों से तथ्यों को संगठित करते हैं और मनोवैज्ञानिक को उस परिस्थिति में तर्कसंगत अनुमान लगाने में मदद करते हैं जहा वे सही उत्तर नहीं जान पाते हैं। कुछ लोगों का मत है कि मानव व्यवहार की व्याख्या करना मनोविज्ञान का सबसे अव्वल लक्ष्य है क्योंकि जबतक मनोवैज्ञानिक यह नहीं बतला पाते है कि व्यक्ति अमुक व्यवहार क्यों कर रहा है , अमुक मापन प्रविधि क्यों काम कर रहा है तो वे सही सही न तो उस व्यवहार के बारे में पूर्वकथन ही कर सकते हैं और न ही उसका ठीक ढंग से नियंत्रणही सम्भव है।

स्पष्ट हुआ कि मनोविज्ञान के तीन लक्ष्य है और ये तीनों लक्ष्य एक दूसरे से सम्बन्धित है। जबतक किसी व्यवहार का ठीक ढंग से मापन तथा वर्णन नहीं होता है , हम उसके बारे में कोई उत्तम पूर्वकथन (Prediction) नहीं कर सकते हैं और न ही उसका नियंत्रण ही सम्भव है। अगर हम किसी तरह ऐसे व्यवहार के बारे में पूर्वकथन कर भी दें , तो उसकी वैज्ञानिक व्याख्या अर्थात किसी सिद्धान्त के तहत उसकी व्याख्या हम नहीं कर पायेगें।

अभ्यास प्रश्न - 2

- मनोवैज्ञानिक परिक्षण एवं प्रविधि के लिये ..... गुण आवश्यक है।
- मनोविज्ञान का अंतिम लक्ष्य ..... की व्याख्या करता है।

1.7 मनोविज्ञान की शाखाएं एवं क्षेत्र (Branches and scope of Psychology)

लिण्डजे, हाल तथा थाम्पसन (Lindzey, Hall & Thompson, 1989) ने मनोविज्ञान के कार्यक्षेत्र (Scope) की समीक्षा किया है और कहा है कि मनोवैज्ञानिकों को तो कई दृष्टिकोण से श्रेणीकृत किया जाता है। उदाहरणस्वरूप, उन्हें प्राप्त प्रशिक्षण (Training) (जैसे डाक्टरीय उपाधि या एम . ए . की उपाधि आदि) के अनुसार जहा वे कार्य करते हैं, विश्वविद्यालय, अस्पताल, स्कूल, निजी सेवा के उपाधि आदि के अनुसार तथा अपनी पेशा से प्राप्त आय के अनुसार उन्हें कई भागों में बाटा जाता है।

1.7.1 शैक्षिक क्षेत्र

शिक्षण तथा शोध, मनोविज्ञान का एक प्रमुख कार्य क्षेत्र है। इस दृष्टिकोण से इस क्षेत्र के तहत मनोविज्ञानी ने अपनी रूचि दिखाई है।

1. **जीवन अवधि विकासात्मक मनोविज्ञान (Life span developmental Psychology) :-** बाल मनोविज्ञान का प्रारम्भिक सम्बन्ध मात्र बाल विकास (Child Development) के अध्ययन से था परंतु हाल के वर्षो में विकासात्मक मनोविज्ञान में किशोरात्मक , वयस्कात्मक तथा वृद्धात्मक के अध्ययन पर भी बल डाला गया है। यही कारण है कि इसे जीवन अवधि विकासात्मक मनोविज्ञान कहा जाता है।
2. **मानव प्रयोगात्मक मनोविज्ञान (Human Experimental Psychology):**

   मानव प्रयोगात्मक मनोविज्ञान मनोविज्ञान का एक ऐसा क्षेत्र है जहा मानव के उन सभी व्यवहारों का अध्ययन किया जाता है जिस पर प्रयोग करना सम्भव है। सैद्धान्तिक रूप से ऐसे तो मानव व्यवहार के किसी भी पहलू पर प्रयोग किया जा सकता है। मानव प्रयोगात्मक मनोविज्ञान में उन मनोवैज्ञानिकों ने भी काफी अभिरूचि दिखलाता है जिन्हें प्रयोगात्मक मनोविज्ञान का संस्थापक कहा जाता है। इनमें विलियम वुण्ट , टिचेनर तथा वाटसन आदि के नाम अधिक मशहूर है
3. **पशु प्रयोगात्मक मनोविज्ञान (Animal Experimental Psychology) :-**

   मनोविज्ञान का यह क्षेत्र मानव प्रयोगात्मक मनोविज्ञान (Human Experimental Psychology) के समान है। सिर्फ अन्तर इतना ही है कि यहा प्रयोग पशुओं जैसे - चूहों, बिल्लियों, कुत्तों, बन्दरों, वनमानुषों आदि पर किया जाता है। पशु प्रयोगात्मक मनोविज्ञान में अधिकतर शोध सीखने की प्रक्रिया तथा व्यवहार के जैविक पहलुओं के अध्ययन में किया गया है।

4. **दैहिक मनोविज्ञान (Physiological Psychology) :-**

दैहिक मनोविज्ञान में मनोविज्ञानियों का कार्यक्षेत्र प्राणी के व्यवहारों के दैहिक निर्धारकों (Physiological Determinants) तथा उनके प्रभावों का अध्ययन करना है। इस तरह के दैहिक मनोविज्ञान मनोविज्ञान की एक ऐसी शाखा है जो जैविक विज्ञान (Biological Science) से काफी जुडा हुआ है। इसे मनोजीवविज्ञान (Psychobiology) भी कहा जाता है।

5. **परिमाणात्मक मनोविज्ञान (Quantitative Psychology) :-**

इस मनोविज्ञान का मुख्य उद्देश्य मानव व्यवहार को समझने तथा उसका अध्ययन करने के लिए गणितीय (Mathematical), सांख्यकीय (Statistical) तथा परिमाणात्मक विधियों को विकसित करना है। मनोविज्ञान के इस भाग को गणितीय मनोविज्ञान (Mathematical Psychology) कहा जाता है जिसका सबसे अधिक गहरा सम्बन्ध संवेदी मनोविज्ञान (Sensory Psychology), सीखना तथा निर्णय करने की प्रक्रिया आदि से होता है।

6. **व्यक्तित्व मनोविज्ञान (Psychology of Personality) :-**

व्यक्तित्व मनोविज्ञान का सम्बन्ध व्यक्ति तथा व्यक्तियों के बीच विभिन्नता के अध्ययन से है। व्यक्तित्व मनोविज्ञानी व्यवहार के अभिप्रेरणात्मक पहलू (Motivational Aspects) के बारे में अध्ययन करने में अधिक रूचि दिखलाते है। इस तरह से व्यक्तित्व मनोविज्ञानियों की मुख्य अभिरूचि एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति की विभिन्नताओं का अध्ययन में है। इस क्षेत्र में कुछ मनोविज्ञानी तो ऐसे हैं जो व्यक्ति के अपूर्व गुणों (Unique Qualities) के अध्ययन को ही अपना मुख्य कार्य समझते हैं।

7. **समाज मनोविज्ञान (Social Psychology) :-**

समाज मनोविज्ञान मनुष्यों को एक सामाजिक पशु (Social Animal) के रूप में अध्ययन करता है। सामाजिक पशु आपस में अन्तःक्रिया करते हैं और एक परिवार या समाज बनाकर रहते हैं। समाज मनोविज्ञान का क्षेत्र समाजशास्त्र के क्षेत्र से काफी सम्बन्धित है। यही कारण है कि बहुत सारे समाजशास्त्री भी अपने आप को समाज मनोविज्ञानी कहने में अंतर का अनुभव करते हैं।

8. **संज्ञानात्मक मनोविज्ञान (Congnitive Psychology) :-**

संज्ञानात्मक मनोविज्ञान में मानसिक प्रक्रियाओं जैसे - प्रत्यक्षण , चिंतन , सीखना , बुद्धि , स्मृति आदि के अध्ययन के महत्व पर बल डाला जाता है। इन मनोविज्ञानियों का मत है कि मानव व्यवहार की सम्पूर्ण एवं वैज्ञानिक उद्दीपक -अनुक्रिया सम्बन्ध (Stimulus response connection) के रूप में संतोषजनक ढंग से नहीं की जा सकती है। इन मनोविज्ञानियों का मत है कि प्रत्येक उद्दीपक (Stimulus) के प्रति व्यक्ति कुछ निर्णय करने के बाद ही अनुक्रिया करता है।

9. **असामान्य मनोविज्ञान (Abnormal Psychology) :-**

असामान्य मनोविज्ञान मनोविज्ञानियों का ऐसा कार्यक्षेत्र है जिसमें वे कुसमायोजित व्यवहार (Maladaptive Behaviour) या असामान्य व्यवहार के कारणों , लक्षणों , प्रकारों आदि

का अध्ययन करते हैं। व्यक्ति के कुछ व्यवहार ऐसे होते हैं जिन्हें असामान्य कहा जाता है। इन व्यवहारों के समझने के लिए मनोविज्ञानी उनके लक्षणों का क्रमबद्ध अध्ययन करते हैं।

10. शिक्षा मनोविज्ञान (Educational Psychology) :-

शिक्षा मनोविज्ञान का क्षेत्र एक महत्वपूर्ण क्षेत्र है जिसमें मनोविज्ञानियों की सक्रियता अधिक पायी गयी है। शिक्षा मनोविज्ञानी शैक्षिक प्रक्रिया के मनोवैज्ञानिक पहलुओं का विशेष अध्ययन करते हैं। सीखने के नियमों के अध्ययन के अलावा शिक्षा मनोविज्ञानी और भी कई पहलुओं पर अपना ध्यान देते हैं।

2 प्रयुक्त मनोविज्ञान के क्षेत्र (Area of Applied Psychology):-

मनोविज्ञान का कुछ क्षेत्र ऐसा है जिसमें मनोवैज्ञानिक व्यक्तियों तथा समूह के मनोवैज्ञानिक समस्याओं के समाधान में अपने कौशल एवं शोध का उपयोग करते हैं ताकि उन समस्याओं का समाधान किया जा सके तथा व्यक्यिों का सही मार्गदर्शन किया जा सके। इस तरह के क्षेत्र को प्रयुक्त मनोविज्ञान कहा जाता है।

1. **नैदानिक मनोविज्ञान (Clinical Psychology) :-** नैदानिक मनोविज्ञान, मनोविज्ञान का सबसे प्रचलित एवं बडा प्रयुक्त शाखा है। मनोवैज्ञानिको की कुल संख्या का 43 प्रतिशत मनोवैज्ञानिक केवल नैदानिक मनोवैज्ञानिक हैं। नैदानिक मनोविज्ञानी कई तरह के कार्य करते हैं। जिनमें सबसे प्रमुख कार्य मनोवैज्ञानिक समस्या से ग्रसित लोगों को चंगा करना है ताकि वे अपने दिन प्रतिदिन की दुनिया में ठीक ढंग से समायोजन कर सके। नैदानिक मनोविज्ञानी तो ऐसे कई क्षेत्र में सक्रिय हैं परन्तु उनके द्वारा मुख्य रूप से तीन कार्य अधिक किये जाते हैं- शोध (Reasearch), निदान (Diagnosis) तथा उपचार (Treatment).
2. **सामुदायिक मनोविज्ञान (Community Psychology) :-** सामुदायिक मनोविज्ञान मनोविज्ञान का एक ऐसा क्षेत्र है जो मनोवैज्ञानिक नियमों, विचारो एवं तथ्यों का उपयोग सामाजिक समस्याओं के समाधान में करते हैं तथा व्यक्ति को अपने कार्य एवं समूह में समायोजन करने में मदद करते हैं।
3. **परामर्श मनोविज्ञान (Counselling Psychology):-** परामर्श मनोविज्ञान का कार्यक्षेत्र नैदानिक मनोविज्ञानी के कार्यक्षेत्र से काफी मिलता झुलता है। मात्र अन्तर इतना है कि परामर्श मनोविज्ञान व्यक्ति के साधारण सांवेगिक एवं व्यक्तिगत समस्याओं को दूर करने का प्रयास करते हैं जबकि नैदानिक मनोविज्ञान में इससे थोडा जटिल एवं कठिन समस्याओं को दूर करने का प्रयास किया जाता है।
4. **स्कूल मनोविज्ञान (School Psychology):-** स्कूल मनोवैज्ञानिक का कार्य सामुदायिक मानसिक स्वास्थ्य कार्यकर्ताओं एवं परामर्श मनोविज्ञानी से अंशतः काफी मिलता जुलता है। स्कूल मनोवैज्ञानी मुख्यतः प्राथमिक तथा माध्यमिक स्कूलों में कार्य करते हैं तथा वे छात्रो को अन्य विशेषज्ञों के पास विशेष उपचार के लिए भी भेजते हैं। स्कूल में वे मुख्यतः व्यावसायिक एवं शैक्षिक परीक्षण कार्य करते हैं तथा परामर्श एवं प्रशिक्षण कार्यक्रम को संगठित करके जो शिक्षक को छात्रों एवं अन्य शिक्षकों के साथ संगठित करने में तथा स्कूल के प्रशासन की समस्याओं से सम्बन्धित प्रश्नों का हल ढूढने में लाभदायक होता है।

5. **औद्योगिक एवं संगठनात्मक मनोविज्ञान (Industrial Psychology and Organisational Psychology):-** उद्योग एक अन्य क्षेत्र है जिसमें मनोवैज्ञानिक नियमों एवं सिद्धान्तों का उपयोग किया जाता है औद्योगिक मनोविज्ञान में उद्योग में कार्यरत कर्मचारियों के मनोवैज्ञानिक समस्याओं का अध्ययन किया जाता है तथा उनका पर्याप्त समाधान ढूंढने का प्रयास किया जाता है। औद्योगिक मनोविज्ञान का सम्बन्ध कर्मचारियों एवं कार्यों के विभाजन , कार्मिक चयन (Personnel Selection), कार्य मूल्यांकन (Job Appraisal), कार्य मनोवृति (Job Attitude), कार्य के भौतिक वातावरण (Physical Environment of Work) आदि के अध्ययन से होता है ।
6. **सैन्य मनोविज्ञान (Military Psychology) :-** इस मनोविज्ञान में मनोवैज्ञानिक नियमो एवं सिद्धान्तों का उपयोग सैन्य क्षेत्रों में किया जाता है । अमेरिकन सैन्य बलों (American Military Force) में मनोविज्ञान के सिद्धान्तों एवं तथ्यों का पहली बार उपयोग किया गया था। भारत में द्वितीय विश्व युद्ध के बाद से भारतीय सेन्य बलों में मनोविज्ञान का उपयोग किया जा रहा है । अध्ययन से यह स्पष्ट है कि कुल मनोवैज्ञानियों का 43 प्रतिशत नैदानिक मनोविज्ञान में, 4 प्रतिशत औद्योगिक मनोविज्ञान में, 5 प्रतिशत विकासात्मक मनोविज्ञान में, 5 प्रतिशत स्कूल मनोविज्ञान में, 6 प्रतिशत समाज एवं व्यक्तित्व मनोविज्ञान में, 6 प्रतिशत शिक्षा मनोविज्ञान में, 10 प्रतिशत परामर्श मनोविज्ञान में, 14 प्रतिशत प्रयोगात्मक मनोविज्ञान में तथा 7 प्रतिशत अन्य मनोविज्ञान में कार्यरत हैं।

3 मनोविज्ञान के नये उभरते क्षेत्र (New Emerging field of Psychology):-

मनोविज्ञान लगातार विकसित हो रहा है तथा मनोवैज्ञानिको के कार्यक्षेत्र में नयी-नयी विशिष्टताएं प्रवेश करते जा रही है।

1. **पर्यावरणी मनोविज्ञान (Environmental Psychology):-** मनोविज्ञान के इस शाखा में पर्यावरण (environment) तथा उसके व्यवहार पर पडने वाले प्रभावों का अध्ययन किया जाता है। पर्यावरण के विभिन्न पहलुओं जैसे- स्कूल, घर, आवाज, प्रदुषण, मौसम, भीड भाड आदि का व्यवहार पर स्पष्ट प्रभाव पडता है। इन प्रभावों का अध्ययन पर्यावरणी मनोविज्ञान में किया जाता है । पर्यावरण मनोविज्ञानी अपने विशेष अध्ययन तथा शोध में यह जानने की कोशिश करते हैं कि पर्यावरण के कीमती खजानों को कैसे बचाया जा सकता है तथा पर्यावरण के दोषपूर्ण पहलू से मानव को किस तरह बचाकर उनके जीवन के गुणों या विशेषताओं को उन्नत बनाया जा सकता है।
2. **स्वास्थ्य मनोविज्ञान (Health Psychology) :-** मनोविज्ञान के इस क्षेत्र में स्वास्थ्य विशेषकर शारीरिक स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाले कारको का अध्ययन किया जाता है। दुसरे शब्दों में, स्वास्थ्य मनोविज्ञान में स्वास्थ्य तथा उन्हें प्रभावित करने वाले चरों (Variables) के बीच के सम्बन्धों पर प्रकाश डाला जाता है। इस क्षेत्र में विशेषकर तनाव, चिन्ता आदि का हदय रोग, कैंसर आदि की उत्पत्ति में क्या भूमिका होती है या हो सकती है, इसका अध्ययन किया जाता है। इसमें डाक्टर-रोगी सम्बन्ध, अस्पताल के पर्यावरण में उपलब्ध सुविधाओं तथा उनके प्रति रोगियों की प्रतिक्रियाओं का अध्ययन किया जाता है।

3. **सुधारात्मक मनोविज्ञान (Correctional Psychology) :-** मनोविज्ञान के इस शाखा में मनोविज्ञानी उन मानव व्यवहारों का अध्ययन करते हैं जो सामाजिक नियम तथा कानून का उल्लंघन से सम्बद्ध होता है। मनुष्यों के ऐसे व्यवहारों को सुधारने का पर्याप्त प्रयास किया जाता है। अतः इस मनोविज्ञान का सम्बन्ध जेल के पर्यावरण तथा न्यायिक कोर्ट आदि के वातावरण से भी काफी होता है।

4. **वायुदिक् मनोविज्ञान (Aerospace Psychology) :-** मनोविज्ञान की इस शाखा में व्यक्ति के व्यवहार में होने वाले उन परिवर्तनों का अध्ययन किया जाता है जब वे दिक् (Space) में काफी उॅचाई पर वायुयान में कार्यरत होते हैं। जब मनुष्य पृथ्वी से काफी अधिक उॅचाई पर चला जाता है तो वहा उसे पूर्णतः भिन्न प्रकार के मौसम और पर्यावरण का सामना करना पडता है। ऐसी परिस्थिति में उसके व्यवहार में पूर्णतः परिवर्तन आ जाता है तथा उनके यथोचित्त समाधान पर इस मनोविज्ञान में अध्ययन किया जाता है।

5. **न्यायिक मनोविज्ञान (Forensic Psychology) :-** मनोविज्ञान तथा कानून का सम्बन्ध पुराना है। न्यायिक मनोविज्ञान मं इन दोनों के सम्बन्धां का मनोवैज्ञानिक अध्ययन किया जाता है किसी व्यक्ति पर मुकदमा चलाया जा सकता है कि नहीं , इसका निर्धारण करने में मनोविज्ञान निदान (Psychology Diagnosis) की अहम भूमिका होती है। जेल के भीतर मनोवैज्ञानिक एक चिकित्सक, पुनर्वास विशेषज्ञ (Rehabilitation Expert) आदि के रूप में कार्य करते हैं। पुलिस विभाग द्वारा मनोवैज्ञानिको की सेवा इस उम्मीद से ली जाती है कि वे उन्हें जटिल मानव इच्छाओं एवं अभिप्रेरणों को ठीक ढंग से समझने में मदद करेगें। कानूनी तंत्र के दूसरे छोर पर यह भी देखा गया है कि मनोवैज्ञानिक शोधो का उपयोग कभी कभी जटील न्यायिक निर्णय लेने में सफलतापूर्वक किया जाता है।

6. **क्रीडा मनोविज्ञान (Sports Psychology) :-** क्रीडा मनोविज्ञान मनोविज्ञान की एक ऐसी शाखा है जिसमें न केवल पुरूष खिलाडी (Sportsman) तथा महिला खिलाडी (Sportswomen) के व्यवहारों एवं अनुभूतियों का बल्कि कोच (Coach), रेफरी (Refree), क्लब तथा खेल-कुद संघ के प्रबन्धकों (Manager) तथा श्रोताओं (Audiences) के प्रतिक्रियाओं का भी अध्ययन होता है। क्रीडा मनोविज्ञान में व्यक्तियों के गत एवं वर्तमान निष्पादनों का ही सिर्फ अध्ययन नहीं करते हैं बल्कि खेल कूद की घटनाओ एवं परिस्थितियों के बारे में पणधारियों (Stakeholders) के बीच होनेवाले गत एवं वर्तमान अंतक्रियाओं का भी अध्ययन करते हैं।

7. **राजनीतिक मनोविज्ञान (Political Psychology):-** राजनीतिक मनोविज्ञान, मनोविज्ञान की ऐसी उभरती हुई शाखा है जिसमें मूलतः इस बात का अध्ययन मनोवैज्ञानिक करते हैं कि लोगों पर शासन कैसे किया जाये। इस तथ्य का समर्थन फ्रांस में जी.ली. वोन (G. Lee Bon) द्वारा पुस्तक ''पोलिटिकल साईकालोजी एण्ड सोशल डीफेन्स "(Political Psychology and social defense) जिसका प्रकाशन 1910 में हुआ था, में किया गया है। अमेरिका में एच.डी.लास्सवेल को उनकी पुस्तक साइकोपैथोलाजी एण्ड पोलिटिक्स (Psychopathology and politics) के प्रकाशन होने के बाद राजनीतिक मनोविज्ञान का उन्हें जनक माना जाता है।

8. **जेरोमनोविज्ञान (Geropsychology) :-** मनोविज्ञान के इस क्षेत्र का प्रादुर्भाव आज से लगभग 30 वर्ष पूर्व हुआ है जिसमें वृद्ध लोगों (Old Man) के मानसिक स्वास्थ्य का अध्ययन किया जाता है इसमें विशेष रूप से यह अध्ययन किया जाता है कि वृद्ध लोगों के मानसिक स्वास्थ्य के मूल्यांकन एवं उपचार की विधियाँ क्या व्यस्त लोगों के मानसिक स्वास्थ्य के मूल्यांकन एवं उपचार की विधियों से भिन्न होती है या एक समान ही होती है। साथ ही साथ इसमें इस बात का भी अध्ययन किया जाता है कि जैसे जैसे व्यक्ति की आयु बढती है वैसे वैसे उनके मनोवैज्ञानिक कार्यों पर सामाजिक-आर्थिक स्तर, समूह सम्बन्ध, व्यक्तिगत एवं प्रजननी (Generational) इतिहास का क्या प्रभाव पडता है।

9. **आर्थिक मनोविज्ञान (Echonomic Psychology) :-** आर्थिक मनोविज्ञान जैसे पद का उपयोग सबसे पहले 1901 में हुआ क्योंकि यह उस पाठ्यक्रम का नाम था जिसे टार्ड (Trade) ने पेरिस विश्वविद्यालय में पढाया करते थे। आर्थिक मनोविज्ञान , मनोविज्ञान की ऐसी शाखा है जिसमें यह अध्ययन किया जाता है कि व्यक्ति किस तरह से अर्थव्यवस्था द्वारा प्रभावित होता है।

10. **यातायात एवं परिवहन मनोविज्ञान (Traffic and Transport Psychology) :-** यातायात एवं परिवहन मनोविज्ञान , मनोविज्ञान की ऐसी नई उभरती शाखा है जिसमें यातायात नियमों एवं औटोमोबाईल चालकों के मनोवैज्ञानिक आशय (Pshchology implication) का अध्ययन किया जाता है। सबसे पहले 1900 में पैट्जी (Patrizi) ने औटोमोबाईल एवं ट्रम (Tra) चालाके के मनोवैज्ञानिक मापन में अभिरूचि दिखलाया तथा ध्यान के स्थायित्व (Persistence) के महत्व को बतलाया अध्ययन से यह स्पष्ट है कि 57 प्रतिशत मनोवैज्ञानिक कालेज एवं विश्वविद्यालय में, 15 प्रतिशत अस्पताल, उपचारगृह तथा सामुदायिक केन्द्रो में, 7 प्रतिशत निजी या सामूहिक पेशा, 5 प्रतिशत उद्योग तथा व्यवसाय में, 5 प्रतिशत सेन्य संगठनों तथा नियम पालक संस्थानों में, 5 प्रतिशत सरकार दफतरों में तथा 6 प्रतिशत स्कूल में कार्यरत है।

अभ्यास प्रशन - 3

1. मनोविज्ञान के क्षेत्रो में सबसे बडा ..... क्षेत्र है।
2. मनोविज्ञान के नये उभरते क्षेत्रों की ..... संख्या है।

1.8 सारांश

मनोविज्ञान व्यवहार तथा मानसिक प्रक्रियाओं का विज्ञान है। मनोविज्ञान का कार्यक्षेत्र काफी विस्तृत है जिसे तीन मुख्य भागों में बाटकर उपस्थित किया गया है - शैक्षिक क्षेत्र , प्रयुक्त मनौविज्ञान का क्षेत्र तथा मनोविज्ञान के कुछ नये उभरते क्षेत्र। मनोविज्ञान के इतिहास को शैक्षिक कर प्रस्तुत किया गया है ताकि यह स्पष्ट समझ में आ जाए। मनोविज्ञान के तीन प्रमुख लक्ष्य है -मापन एवं वर्णन, पूर्वानुमान एवं नियंत्रण तथा व्याख्या।

1.9 शब्दावली

- **टैबुला रसा** :- जन्म के पश्चात बालक का मस्तिष्क कोरा कागज के समान होता है
- **पूर्वकथन** :- भविष्य में होनेवाले व्यवहार के बारे में पहले से बताना
- **मनोजीवविज्ञान** :- दैहिक मनोविज्ञान
- **कुसमायोजित व्यवहार**:- ऐसा व्यवहार जो वातावरण में समायोजित ना कर सके।

1.10 अभ्यास प्रश्न के उत्तर

अभ्यास प्रश्न -1

1. वृण्ट 2. फ्रायड

अभ्यास प्रश्न - 2

1.विश्वसनीयता व वैधता 2. मानव व्यवहार

अभ्यास प्रश्न - 3

1.नैदानिक मनोविज्ञान 2. 10

1.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. मनोविज्ञान से आप क्या समझते है ? मनोविज्ञान क लक्ष्यों का सविस्तार वर्णन कीजिए।
2. मनोविज्ञान को परिभाषित कीजिए ? मनोविज्ञान के क्षेत्रों का विस्तृत उल्लेख कीजिये।
3. मनोविज्ञान के इतिहास का वर्णन कीजिए।
4. मनोविज्ञान के उभरते क्षेत्रों का वर्णन कीजिए।

1.12 संदर्भ ग्रंथ सूची

- श्रीवास्तव, डी.एन.(2009) ''आधुनिक सामान्य मनोविज्ञान''आगरा श्री विनोद पुस्तक मंदिर।
- सिंह, अरूण कुमार (2011) ''आधुनिक सामान्य मनोविज्ञान'' नई दिल्ली मोतीलाल बनारसीदास।

इकाई -2

मनोविज्ञान की विधियाँ

Method of Psychology

निरीक्षण एवं प्रयोगात्मक विधियाँ , लाभ एवं दोष

Observation and Experimental methods, Merits and Demerits

इकाई की रूपरेखा

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3 परिचय

2.4 निरीक्षण विधि

- 2.4.1 परिभाषा
- 2.4.2 निरीक्षण विधि के कुछ प्रमुख तत्व
- 2.4.3 निरीक्षण विधि के पद
- 2.4.4 निरीक्षण विधि के प्रकार
- 2.4.5 निरीक्षण विधि के गुण
- 2.4.6 निरीक्षण विधि के दोष

2.5 प्रयोगात्मक विधि

- 2.5.1 परिभाषा
- 2.5.2 प्रयोगात्मक विधि के चरण
- 2.5.3 प्रयोगात्मक विधि के दोष
- 2.5.4 प्रयोगात्मक विधि के दोष

2.6 सारांश

2.7 शब्दावली

2.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

2.9 निबंधात्मक प्रश्न

2.10 संदर्भ ग्रंथ सूची

2.1 प्रस्तावना

मनोविज्ञान में व्यक्ति के व्यवहार एवं मानसिक प्रक्रियाओं का अध्ययन करने के लिए कई तरह की विधियों को अपनाया जाता है ताकि व्यक्ति के व्यवहार का अध्ययन कर सकें एवं समझ सके।

प्रस्तुत इकाई में आप मनोविज्ञान की दो प्रमुख विधियों का अर्थ, परिभाषा, प्रकार, सोपान, लाभ, हानि आदि का विस्तारपूर्वक अध्ययन करेगें।

2.2 उद्देश्य

- मनोविज्ञान के विधियों का अर्थ बता सकेगे एवं परिभाषित कर सकेंगे।
- निरीक्षण विधि के प्रमुख तत्व बता सकेंगे।
- निरीक्षण विधि के पद बता सकेंगे।
- निरीक्षण विधि के प्रकार बता सकेंगे।
- निरीक्षण विधि के गुण और दोष बता सकेंगे।
- निरीक्षण विधि के चरण बता सकेंगे।
- निरीक्षण विधि के चरण बता सकेंगे।
- निरीक्षण विधि के लाभ व दोष बता सकेंगे।

2.3 परिचय

प्रारम्भ में मनोविज्ञान में सम्बन्धित समस्याओं का अध्ययन मनन (Reflection) तथा अवैधानिक परीक्षण (Crude Oversevation) जैसी विधियों द्वारा किया जाता था। यह विधियाँ ग्रीक काल से अठारहवीं शताब्दी तक प्रचलित रही। इस प्रकार की विधियाँ कल्पना और अनुमान पर आधारित है , परन्तु विज्ञान के लिए निश्चितता की आवश्यकता होती है, अतः विज्ञानों के विकास के साथ साथ नई नई विधियों का आविष्कार हुआ। मनोविज्ञान ने भी कुछ विधियों को खोज निकाला तथा वैज्ञानिक विधियों को अन्य विज्ञानों से लेकर इन वैज्ञानिक विधियों की सहायता से अध्ययन प्रारम्भ हुए। मनोविज्ञान में मुख्यतः तीन प्रकार की विधियों की सहायता से अध्ययन किये जाते हैं। पहले प्रकार की अध्ययन विधियाँ प्रयोगात्मक अध्ययन विधियाँ है, दूसरे प्रकार की अध्ययन विधियाँ निरीक्षणात्मक अध्ययन विधियाँ है और तीसरे प्रकार की अध्ययन विधियाँ सह-सम्बंधात्मक अध्ययन विधियाँ है। प्रयोगात्मक अध्ययन प्रयोगात्मक अध्ययन विधि द्वारा होते हैं। निरीक्षणात्मक अध्ययन निरीक्षण विधि, साक्षात्कार विधि , समाजमिति विधि, निर्धारण मापनी विधि आदि विधियों द्वारा किये जाते हैं। सह संबंधात्मक अध्ययन मुख्यतः मनोवैज्ञानिक परीक्षण विधियों द्वारा , समाजमिति विधि और स्केलिंग विधि आदि विधियों द्वारा किये जाते हैं। आधुनिक मनोविज्ञान में मुख्यतः जिन विधियों का उपयोग किया जाता है, उनमें से कुछ विधियाँ निम्न प्रकार से है।

2.4 निरीक्षणविधि (Observation Method)

2.4.1 परिभाषा:

गुडे तथा हार (1964) के अनुसार, विज्ञान निरीक्षण से प्रारम्भ होता है और अपने तथ्यों की पुष्टि के लिए अन्त में निरीक्षण का ही सहारा लेता है।

"Science begins with observation and must ultimately return fo observation for final validation " – W . I . Goode and P. K . Hatt :"

गुडे और हार के इस कथन के आधार पर यह अनुमान लगाया जा सकता है कि निरीक्षण विधि एक महत्वपूर्ण विधि है। यंग (1954) के अनुसार निरीक्षण नेत्रो द्वारा सावधानी से किये गये अध्ययन को सामूहिक व्यवहार, जटिल सामाजिक संस्थाओं और किसी पूर्ण वस्तु को बनाने वाली पृथक इकाइयों का निरीक्षण करने के लिए एक विधि के रूप में उपयोग किया जा सकता है।

"Observation a deliberate study through the eye may beused as one of the methods for scrutinizing collective behavior and complex initiations as well as the separate units composing a totally ."

उपर्युक्त विवरण और परिभाषाओं के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि निरीक्षण विधि में अध्ययन सावधानी से किया जाता है, नेत्रों का पूरी तरह उपयोग होता है , अध्ययन करने वाला प्रत्यक्ष रूप से भाग लेता है। इस विधि की सहायता से सामूहिक व्यवहार (Collective Behavior) का भी अध्ययन किया जा सकता है। इस विधि का उपयोग प्रायः मनोविज्ञान की सभी शाखाओं में किया जाता है। इस विधि का उपयोग एक अकेली ओर स्वतन्त्र विधि के रूप में भी मनोविज्ञान के अध्ययनों में किया जाता है और साथ ही साथ इस विधि का उपयोग एक सहायक विधि के रूप में किया जाता है। जहाँ सामूहिक व्यवहार के अध्ययन की आवश्यकता होती है वहा इस विधि का उपयोग बहुधा प्राथमिक आकडों के संकलन के लिए किया जाता है: जैसे- अधिगम से सम्बन्धित अध्ययन, प्रत्यक्षीकरण, अभिप्रेरणा, संयोग, व्यक्तित्व, नेतृत्व बालको का सामाजिक विकास और सामूहिक व्यवहार आदि। निरीक्षण विधि एक महत्वपूर्ण विधि इसलिए भी है कि इसकी सहायता से मनोविज्ञान की विभिन्न समस्याओं को प्राथमिक निरीक्षणों के आधार पर चुनते हैं।

निरीक्षण विधि मनोविज्ञान की दूसरी प्रमुख विधि है। सन् 1913 में जब वाटसन (Watson) ने व्यवहारवाद (Behaviorism) की स्थापना किया तो मनोविज्ञान को नये ढंग से परिभाषित करते हुए यह कहा गया कि मनोविज्ञान व्यवहार का विज्ञान है जिसका अध्ययन विधि अन्तनिरीक्षण (Introspection) न होकर प्रेक्षण विधि (Observation Method) है। तभी से प्रेक्षण विधि का जन्म हुआ और आज भी यह विधि मनोवैज्ञानिक अध्ययनों का एक प्रमुख विधि बना हुआ है।

इस विधि में अध्ययनकर्ता प्राणी व जीव के व्यवहारों को निष्पक्ष भाव से प्रेक्षण या अवलोकन करता है। अपने अवलोकन के आधार पर वह एक विशेष रिपोर्ट तैयार करता है। जिसका विश्लेषण कर वह उस प्राणी के व्यवहार के बारे में एक निश्चित निष्कर्ष पर पहुचता है। निरीक्षण को वस्तुनिष्ठ बनाने के लिए प्राणी के व्यवहारों का अवलोकन वह भिन्न भिन्न परिस्थितियों में करता है। कई प्रेक्षक मिलकर प्राणी या जीव के व्यवहारों का अवलोकन एक साथ करते हैं। शायद यही कारण है कि इस विधि को वस्तुनिष्ठ प्रेक्षण विधि भी कहा जाता है। अध्ययनकर्ता प्राणी के दोनों तरह के व्यवहारों

यानी ब्राहय व्यवहार (External behavior) जैसे- दौड़ना , रोना , खेलना तथा आंतरिक व्यवहार (External Behavior) जैसे- रक्तचात में परिवर्तन , हदय की धड़कन में परिवर्तन आदि का प्रेक्षण करते हैं।

अभ्यास प्रश्न 1:-

1. इस विधि की सहायता से ..... का भी अध्ययन किया जाता है।
2. सन् 1913 में वाटसन ने ..... की स्थापना की।
3. इस विधि में अध्ययन करने वाला ..... रूप में भाग लेता है।

2.4.2 निरीक्षण विधि के कुछ प्रमुख तत्व:

प्रत्येक प्रकार के निरीक्षण को हम वैज्ञानिक निरीक्षण नहीं कह सकते हैं। जब निरीक्षण वैज्ञानिक पद्धती पर आधारित होता है, तभी हम निरीक्षण को वैज्ञानिक निरीक्षण कह सकते हैं। वैज्ञानिक निरीक्षणों में निम्नलिखित तत्वों या विशेषताओं का होना आवश्यक है।

- वस्तुनिष्ठता (Objectivity)
- निश्चयात्मकता (Precision)
- क्रमबद्धता (Systematic)
- प्रमाणिकता (Verfiability)
- विश्वसनीयता (Reliability)

2.4.3 निरीक्षण विधि के पद (Steps of Observation Method)

- **उपयुक्त योजना:** निरीक्षण विधि से अध्ययन करने से पहले आवश्यक है कि अध्ययन व्यवहार और समस्या के सम्बन्ध में उपयुक्त योजना बना ली जाये। निरीक्षणकर्ता को निरीक्षण करने से पहले ही यह निश्चय कर लेना चाहिए कि किन लोगों का निरीक्षण करना है और किस प्रकार के व्यवहार का निरीक्षण करना है। निरीक्षण के लिए क्षेत्र, समय, उपकरण, आदि के सम्बन्ध में पहले से ही योजना बना लेनी चाहिए। पहले से योजना बना लेने से अध्ययन अधिक उद्देश्यपूर्ण हो जाता है।
- **व्यवहार का निरीक्षण:** अध्ययन समस्या, व्यवहार और उपकरण आदि के सम्बन्ध में पहले से योजना बना लेने के बाद योजना के अनुसार, पूर्व निश्चित उपकरणों और आखों की सहायता से व्यवहार का निरीक्षण प्रारम्भ होता है। निरीक्षण करते समय निरीक्षणकर्ता व्यवहार के उन पक्षों का निरीक्षण अधिक ध्यान से करता है जो उसकी अध्ययन समस्या से सम्बंधित है एवं पूर्व योजनानुसार है।
- **व्यवहार को नोट करना:** निरीक्षणकर्ता व्यवहार को नोट करने का कार्य निरीक्षणों को करने के साथ साथ करता है। व्यवहार को नोट करने के लिए भी वह उपकरणों का उपयोग करता है जैसे- सीसीटीवी कैमरे के उपयोग में किसी भी प्रकार के व्यवहार के निरीक्षण को सरलता से नोट

किया जा सकता है, इसी प्रकार के व्यवहार से सम्बन्धित संवादों को टेपरिकार्डर की सहायता से नोट किया जा सकता है। अध्ययनकर्ता व्यवहार के उन पलों को अधिक सावधानी और ध्यान से नोट करता है जो उसकी अध्ययन समस्या से सम्बंधित है।

- **निरीक्षण (Inspection):** समस्या से सम्बंधित व्यवहारों के निरीक्षणों को नोट करने के बाद अध्ययनकर्ता प्राप्त निरीक्षणों को यदि सम्भव होता है, तो अंकों में बदलता है और प्राप्त अंको का सारणीयन करता है और फिर विभिन्न सांख्यिकीय विधियों के आधार पर आकडों का विश्लेषण करता है। यदि निरीक्षित व्यवहार को अंकों में परिवर्तित करना संभव नहीं होता है तो किसी अन्य कसोटी के आधार पर निरीक्षित व्यवहार का विश्लेषण किया जात है।

- **व्याख्या और सामान्यीकरण (Explanation of generalization):** निरीक्षित व्यवहार का विश्लेषण करने के पश्चात व्यवहार की व्याख्या की जाती है। यदि सम्भव होता है तो व्यवहार की व्याख्या विभिन्न सिद्धान्तों के आधार पर की जाती है अथवा व्यवहार के कारणें पर प्रकाश डालने का प्रयास किया जात है। मनोविज्ञान के अध्ययन बहुधा प्रतिदर्श Sample की सहायता से किये जाते हैं अथवा मनुष्यों के अतिरिक्त विभिन्न प्रकार के पशुओं पर भी किये जाते हैं। जब अध्ययन किया जात है , सब इस अवस्था में प्राप्त परिणामों के सामान्यीकरण की आवश्यकता होती है। सामान्यीकरण में यह देखा जाता है कि प्रतिदर्श से प्राप्त परिणाम कहा तक सामान्य जनसंख्या पर लागू होते हैं।

अभ्यास प्रश्न 2:-

1. निरीक्षण ..... पर आधारित होता है।
2. निरीक्षण विधि का प्रथम पद ..... होता है।
3. मनोविज्ञान के अध्ययन बहुधा ..... की सहायता से किये जाते हैं।

2.4.4 निरीक्षण विधि के प्रकार (Types of Observation Method)

- **सरल अथवा अनियन्त्रित निरीक्षण विधि (Simple or Uncontrolled observation method)-** यंग (1954) के अनुसार ''अनियन्त्रित निरीक्षण में हमें वास्तविक जीवन परिस्थितियों की सूक्ष्म परीक्षा करनी होती है जिससे विशुद्धता के यन्त्रों के उपयोग का या निरीक्षित घटना की सत्यता की जाच का कोई प्रयास नहीं किया जाता है।''

  "In non- controlled observation we resort to carefed seruinizing of real life situations, making no attempt to use instruments of precision or to check the accuracy of the phenomenon observed." जब किसी घटना का निरीक्षण प्राकृतिक परिस्थितियों में किया जाये तथा प्राकृतिक परिस्थितियों पर कोई बाहय दबाव न डाला जाये तो इस प्रकार निरीक्षण को अनियंत्रित निरीक्षण कहते हैं।

  अनियन्त्रित निरीक्षण विधि दोषपूर्ण है। इसके कुछ प्रमुख दोष और लाभ निम्न हैं-

  1. बहुधा इस विधि द्वारा विश्वसनीय परिणाम प्राप्त नहीं होते हैं , क्योंकि बहुधा हम घटना की सुक्ष्मता से जाँच किये बिना ही परिणाम स्वीकार कर लेते हैं।

2. निरीक्षणकर्ता की भावनाओं और विचारों के प्रभाव के कारण भी दोषपूर्ण परिणाम प्राप्त हो सकते हैं, क्योंकि अध्ययनकर्ता पर इस विधि में कोई नियन्त्रण नहीं होता है।

3. बहुधा एक ही घटना का निरीक्षण करके भिन्न भिन्न निरीक्षणकर्ता भिन्न भिन्न निष्कर्ष निकालते हैं बहुधा इस विधि द्वारा प्राप्त निष्कर्ष भी अप्रामाणिक तथा वस्तुनिष्ठता (Objectivity) रहित होते हैं।

अनियन्त्रित निरीक्षण विधि उपर्युक्त दोषो के होते हुए भी एक महत्वपूर्ण विधि है क्योंकि जब अध्ययनकर्ता का कोई नियन्त्रण नहीं होता है तब यही विधि उपयोगी है। मनोविज्ञान की शाखायें- समान मनोविज्ञान, असामान्य मनोविज्ञान आदि में अनेक समस्याओं का अध्ययन प्रयोगशाला की परिस्थिति में नहीं किया जा सकता है, इस अवस्था में अनेक समस्याओं का अध्ययन प्रयोगशाला की परिस्थिति में नहीं किया जा सकता है, इस अवस्था में अनियन्त्रित निरीक्षण विधि की सहायता से बहुत से अध्ययन किये जा सकते हैं। अतः यह एक उपयोगी विधि है।

- **व्यवस्थित अथवा नियन्त्रित निरीक्षण विधि (Systematic or Controlled Observation Mathod) :** जब निरीक्षणकर्ता और घटना (Phenomena) दोनों पर नियन्त्रण करके अध्ययन किया जाये तो इस प्रकार की निरीक्षण विधि को व्यवस्थित निरीक्षण विधि कहेंगे। आज भी मनोविज्ञान के भिन्न भिन्न क्षेत्रों से सम्बंधित कुछ ऐसी समस्याएं है। जिनका अध्ययन प्रयोगशाला में नियन्त्रित विधि द्वारा करना कठिन अवश्य है, फिर भी मनोवैज्ञानिक इस दिशा में प्रयत्नशील है। कई बार टीम (Team) निरीक्षण और नियन्त्रित समूह (Control Group) का उपयोग करके भी नियन्त्रित निरीक्षण विधि में निरीक्षण कर लेते हैं। कभी कभी निरीक्षणें पर जब अध्ययनकर्ता की उपस्थिति का प्रभाव पडता है तो अध्ययनकर्ता व्यवहार का निरीक्षण करने के लिए ऐसे कक्ष का उपयोग करता है कि प्रयोगशाला में निरीक्षणकर्ता प्रयोज्यों के व्यवहार का निरीक्षण कर सके परन्तु प्रयोज्य निरीक्षणकर्ता की उपस्थिति का आभास न कर सके। इसके लिए निरीक्षणकर्ता कांच के ऐसे पर्दो का उपयोग करता है जो पारदर्शी नहीं होते हैं और जिनमें एक ओर से ही दूसरी ओर की चीजों को तो देखा जा सकता है परन्तु दूसरी ओर देखने पर बाहर की ओर की वस्तु दिखाई नहीं पड़ती है।

- **सहभागी निरीक्षण विधि (Participant observation method) :** इस विधि में निरीक्षणकर्ता जिस समूह के व्यक्तियों के व्यवहार का निरीक्षण करना चाहता है, वह इस समूह में जाकर एक सदस्य के रूप में बस जाता है। वह उनमें घुलमिल जाता है और फिर उनके व्यवहारों का अध्ययन करता है। इस विधि द्वारा छोटे समूहों का अध्ययन सरलता से किया जा सकता है तथा साथ ही सूक्ष्म अध्ययन करना भी सरल होता है। निरीक्षणकर्ता जितना ही अधिक घुल मिल जाता है उतना ही अधिक पारस्परिक सम्बन्धों का अध्ययन तथा व्यवहार के सूक्ष्मतम पहलुओं का अध्ययन करना सरल हो जाता है। चूंकि निरीक्षणकर्ता अध्ययन समूह का एक सदस्य बन कर अध्ययन करता है अतः निरीक्षण शुद्ध और स्वाभाविक परिस्थितियों में होता है। इस निरीक्षण विधि के कुछ दोष भी है। जैसे- जब निरीक्षणकर्ता अध्ययन इकाइयों के साथ घुल मिल जाता है तो वह अध्ययन इकाइयों

के दुख दर्द को अपना दुख दर्द समझने लगता है। इस अवस्था में उसकी मनोवृति निरीक्षणों को प्रभावित करती है। इस सीमा को दुर करने के लिए यह आवश्यक है कि निरीक्षणकर्ता कुशल ही और पर्याप्त रूप से प्रशिक्षित हो। इस विधि की दूसरी सीमा यह है कि इस विधि के द्वारा केवल छोटे समूह का ही अध्ययन किया जा सकता है

- **असहभागी निरीक्षण विधि (Non-participant observation method) :** इस विधि में निरीक्षणकर्ता जिस समूह के व्यक्तियों का अध्ययन करना चाहता है, वह उस समूह के सदस्यों में न घुलते- मिलते हुए तटस्थ रूप से निरीक्षण करता है। इस विधि द्वारा बडे समूहों का सरलता से अध्ययन किया जा सकता है। चुकि इस विधि में अध्ययनकर्ता अधिक घुलता-मिलता नहीं है, अतः पारस्परिक सम्बंधो का अध्ययन अधिक सुक्ष्मता से सम्भव नहीं होता है। इस विधि द्वारा अध्ययन में सहभागी निरीक्षण विधि के दोष नहीं पाये जाते हैं। समय , धन और शक्ति की बचत देखते हुए यह विधि सहभागी निरीक्षण विधि की अपेक्षा श्रेष्ठ है।

  प्रेक्षण का एक उदाहरण: मान लिजिए कि एक अध्ययनकर्ता यह निश्चित करता है कि 6-7 साल का बच्चा खेल के समय किन किन तरह के व्यवहारों को करता है। इसका अध्ययन वह वस्तुनिष्ठ प्रेक्षण विधि से करना चाहता है। इसके लिए वह 6-7 साल के बच्चों का एक समूह लेगा और उन लोगो के सामने कुछ खिलौने भी दे देगा। अध्ययनकर्ता चाहे तो बच्चों के साथ स्वयं भी खेल सकता है और साथ साथ उसके व्यवहारों के प्रेक्षण भी कर सकता है। परन्तु ऐसा करने में इस बात की अधिक उम्मीद बढ जायेगी कि बच्चे अपना स्वाभाविक व्यवहार में थोडा परिवर्तन कर दे। अतः छिपकर ही प्रेक्षण करना अच्छा होगा। स्वयं कही ऐसी जगह छिप जायेगा जहा से वह सभी बच्चों के व्यवहार को देख सके लेकिन कोई भी बच्चा उसे नहीं देख पाये। खिलौनो से खेलते समय बच्चे भिन्न भिन्न प्रकार का व्यवहार दिखला सकते हैं। कुछ बच्चे हँसेंगे , कुछ रोयेगें , कुछ चुपचाप बैठे रहेगें , कुछ अपने खिलौनों को दूसरों को देगें और फिर दूसरों से अपना खिलौना लेने की कोशिश करेगा आदी। अध्ययनकर्ता बच्चे के इन सभी व्यवहारों को क्रमबद्ध रूप से प्रेक्षण करता जायेगा और उसके विश्लेषण के आधार पर वह एक खास निष्कर्ष पर पहुचेगा। संभव है कि वह इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि अमुक बच्चा अधिक दब्बु (Submissive) है तथा अमुक बच्चा काफी प्रबल (Dominant) है आदि – आदि। ध्यान रहे कि अध्ययनकर्ता किसी निष्कर्ष पर पहुँचने के पहले बच्चों के समूह को कई दिनों तक उसी परिस्थिति में रखकर प्रेक्षण करेगा। यदि कोई अध्ययनकर्ता बार बार एक ही तरह के कार्य को दोहराना नहीं चाहता है तो वैसी परिस्थिति में कई अध्ययनकर्ता एक साथ मिलकर बच्चों के समूह के व्यवहार का प्रेक्षण करेंगे और जो तथ्य सभी अध्ययनकर्ता के निरीक्षण में सामान्य (Common) होगा, उसे वास्तविक निष्कर्ष समझा जायेगा। जैसे - उपर के ही उदाहरण में यदि मान लिया जाये कि पांच निरीक्षक है और पांचों निरीक्षक अपने निरीक्षण के रिपोर्ट में यह बतलाते हैं कि अमुक लड़का खेल में दब्बुपन दिखलाया है तभी इस निष्कर्ष पर पहूचा जायेगा कि वह बच्चा दब्बु है |

अभ्यास प्रश्न 3

1. जब निरीक्षणकर्ता और घटना दोनों पर नियन्त्रण करके अध्ययन किया जाये तो ..... इस प्रकार के निरीक्षण को कहेगें।
2. किस निरीक्षण विधि में अध्ययनकर्ता उसी समूह का सदस्य बन जाता है। जिसका वह निरीक्षण कर रहा हो .....।

2.4.5 गुण (Merits): निरीक्षण विधि के प्रमुख गुण निम्नांकित है -

1. इस विधि में प्रेक्षण वस्तुनिष्ठ (Objective) तथा अवैयक्तिक (Impresonal) होता है। फलस्वरूप, इससे प्राप्त निष्कर्ष काफी विश्वसनीय तथा वेद्य (Valid) होते हैं। एक उदाहरण लिजिए- अगर कोई व्यक्ति किसी परिस्थिति में जीर जोर से बोल रहा है एवं उसकी आखें तथा चेहरा लाल है तो इसका पे्रक्षण करके कोई व्यक्ति इस निष्कर्ष पर पहुंचेगा कि व्यक्ति क्रोधित है। इस तरह से स्पष्ट है कि इस विधि में जो प्रेक्षण होता है , वह वस्तुनिष्ठ एवं अवैयक्तिक होता है जिससे व्यक्ति को सही निष्कर्ष पर पहुँचने में मदद मिलती है।

2. इस विधि में मनोविज्ञान का अध्ययन क्षेत्र काफी विस्तृत कर दिया है। अन्तनिरीक्षण विधि का प्रयोग सिर्फ वयस्क व्यक्तियों पर ही किया जाता था फलस्वरूप मनोविज्ञान में सिर्फ इन्ही व्यक्तियों की मानसिक प्रक्रियाओं का अध्ययन किया जाता था। फलस्वरूप, इस विधि के उपयोग से मनोविज्ञान का कार्यक्षेत्र काफी विस्तृत हो गया है।

3. इस विधि द्वारा इस समय में एक से अधिक प्राणीयों के व्यवहारो का निरीक्षण आसानी से किया जा सकता है। जैसे- यदि अध्ययनकर्ता भीड़ व्यवहार (Crowd behavior) का अध्ययन करना चाहता है तो इस विधि का प्रयोग काफी आसानी से करके इस तरह के व्यवहार के बारे में जाना जा सकता है।

4. इस विधि से प्राप्त आकडों का सांख्यिकीय विश्लेषण (Statistical Analysis) काफी आसानी से किया जा सकता है क्योंकि प्रायः आंकड़ों आवृति (Frequency) प्रतिशत आदि में प्राप्त होते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि प्रेक्षण विधि से प्राप्त निष्कर्ष की वैधता (Validity) काफी बढ जाती है।

5. चूँकि प्रेक्षण विधि में सांख्यिकीय विश्लेषण संभव है तथा साथ ही साथ इसके द्वारा कई व्यक्तियों का एक साथ अध्ययन किया जा सकता है, अतः इससे प्राप्त परिणाम का सामान्यीकरण (Generalisation)अन्य दुसरे व्यक्तियों के लिये भी काफी दृढता से की जा सकती है।

2.4.6 दोष (Demerits): इस विधि के प्रमुख दोष निम्नलिखित है -

1. प्रायः यह देखा गया है कि प्रेक्षण करते समय प्रेक्षक की अपनी पूर्वाग्रह (Prejudice), आवश्यकताएं (Needs), मनोवृतिया आदि का भी प्रभाव उनके प्रेक्षण पर पड़ता है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि प्रेक्षक द्वारा किया गया प्रेक्षण वस्तुनिष्ठ (Objective) न

होकर आत्मनिष्ठ (Subjective) हो जाता है। ऐसी परिस्थिति में प्राप्त निष्कर्ष बहुत अधिक विश्वसनीय तथा वैध (Valid) नहीं रह जाता।

2. इस विधि में प्राणी के व्यवहारों का प्रेक्षण कर उसके मानसिक क्रियाओं के बारे में जानने की कोशिश की जाती है। उदाहरण- गाँव में अभी भी जब दो स्त्रिया एक दूसरे से काफी दिन पर मिलती है तो अपनी खुशी प्रकट करने के लिए रोती है। अब कोई भी प्रेक्षक रोने के इस व्यवहार का प्रेक्षण करने पर इसी निष्कर्ष पर पहुँचेगा कि दोनों स्त्रिया किसी कारण से दुःखी है जबकी सच्चाई यह है कि ये दोनों स्त्रिया रोकर अपनी खूशी प्रकट कर रही है। इस उदाहरण से स्पष्ट हो जाता है कि वस्तुनिष्ठ प्रेक्षण के आधार पर हमेशा मानसिक प्रक्रियाओं का सही सही अर्थ निकालना संभव नहीं है।

3. इस विधि में प्रेक्षण स्वाभाविक एवं अनियंत्रित परिस्थिति में किया जाताहै। इसका परिणाम यह होता है कि प्राप्त निष्कर्ष की व्याख्या उचित कारण- परिणाम संबध (Cause – Effect Relationship) के रूप में नहीं की जा सकती है। जैसे- उपर में जोन्स तथा जोन्स के ही अध्ययन को ले। कालेज के छात्र साप देखकर ड़र जाते हैं। यहा डरने के सांवेगिक प्रक्रिया किस कारण हुई कहना मुश्किल है। साप के आकार से भी छात्रों में डर हो सकता है। इस विधि में कारण-परिणाम संबंध का पता लगाना कठिन है क्योंकि प्रेक्षण अनियंत्रित एवं स्वाभाविक परिस्थिति में की गयी थी।

4. परिणामों पर निरीक्षणकर्ता के विचारों और भावनाओं का प्रभाव पड़ता है

5. भिन्न भिन्न निरीक्षणकर्ताओं को भिन्न भिन्न निष्कर्ष प्राप्त होते हैं।

6. इस विधि द्वारा प्राप्त परिणाम अप्रामाणिक होते हैं। विशेष रूप से उस मय जब निरीक्षण बिना किसी पूर्व योजना के किया जाता है।

7. मनोविज्ञान में कुछ ऐसी घटनाएं जिनके घटीत होने का स्थान और समय निश्चित नहीं होता है , अतः यह आवश्यक नहीं है कि घटना घटित होते समय अध्ययनकर्ता वहा उपस्थित ही हो।

8. मनोविज्ञान की कुछ ऐसी समस्याएं है जिनकी पद्धति अमूर्त है , उनका इस विधि द्वारा अध्ययन संभव नहीं है: उदाहरण के लिये - प्रतिमा , कल्पना , और भाव आदि।

2.5 प्रयोगात्मक विधि (Experimental Method)

मनोविज्ञान को सबसे प्रमुख एवं वैज्ञानिक विधि प्रयोगात्मक विधि है। प्रयोगात्मक विधि को सामाजिक विज्ञानों ने प्राकृतिक विज्ञानों से लिया है। यह विधि पूर्ण रूप से वैज्ञानिक ढंग से किया जाता है। अन्य समाज विज्ञानां की अपेक्षा मनोविज्ञान में प्रयोगत्मक विधि का उपयोग अपेक्षाकृत अधिक किया जा रहा है। अधिक उपयोग का एकमात्र कारण यह है कि यह विधि प्रयोगशालीय परम्परा के अधिक समीप है। प्रयोग की पुनरावृति (Replication) भी की जा सकती है। पुनरावृति से प्रयोग की यथार्थता का प्रमाण मिल जाता है। प्रश्न उठता है कि प्रयोगात्मक विधि क्या है ? प्रयोगात्मक विधि उस विधि को कहा जाता है जिसका आधार प्रयोग होता है। अब प्रश्न यह उठता है कि प्रयोग (Experiment) किसे कहते हैं ? साधारणतः किसी व्यवहार एवं मानसिक प्रक्रिया

(Mental Process) को किसी नियंत्रित अवस्था में क्रमबद्ध अध्ययन या प्रेक्षण करना ही प्रयोग कहलाता है।

परिभाषा:

जहोदा (1959) के अनुसार , '' प्रयोग का मूल आधार स्वतंत्र चर में परिवर्तन करने से परतन्त्र पर पडने वाले प्रभाव का अध्ययन करना है।

"Experiment is a method of testing hypothesis "

फेस्टिंगर (1953) के अनुसार , '' प्रयोग का मूल आधार स्वतंत्र चर में परिवर्तन करने से परतन्त्र पर पडने वाले प्रभाव का अध्ययन करना है। ''

उपयुक्त परिभाषाओं के आधार पर हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि प्रयोगात्मक विधि वह विधि है जिसमें चरों को योजनानुसार घटा-बढाकर, नियन्त्रित दशाओं में निरीक्षण लेकर परिकल्पना को सत्य या असत्य सिद्ध करते हैं । इस विधि के दो प्रकार के चर मुख्य है-1) स्वतन्त्र चर (Independent Variable), 2) आश्रित चर (Dependent Variable)। प्रयोगात्मक विधि में आश्रित चर पर स्वतन्त्र चर के प्रभाव का अध्ययन किया जाता है। प्रत्येक घटना के दो अंग होते हैं। कार्य (Effect) और कारण (Cause) । प्रयोगात्मक विधि में कार्य आश्रित चर तथा कारण को स्वतन्त्र चर कहते हैं। व्यक्ति या समूह के एक व्यवहार को प्रभावित करने वाले कारक हो सकते हैं। प्रयोगात्मक विधि में एक व्यवहार को प्रभावित करने वाले अनेक कारकों में से एक या कुछ कारको को अध्ययन के लिए चुन लिया जाता है तथा शेष कारकों को इस प्रकार नियन्त्रित किया जाता है कि उनका कार्य या आश्रित चर पर प्रभाव न पडे। फिर कार्य पर कारण के प्रभाव का अध्ययन करते हैं जिसमें कारण या स्वतन्त्र चर को प्रहस्तन (Manipulation) कर कार्य पर पडने वाले विभिन्न प्रभावों को नोट किया जाता है और अन्त में प्राप्त आकडों का विश्लेषण कर परिणाम ज्ञात कर लिये जाते हैं । इस विधि द्वारा अध्ययन में एक अध्ययन समूह भी हो सकता है और एक से अधिक अध्ययन समूह भी हो सकते हैं। बहुधा प्रयोगात्मक विधि में कम से कम दो अध्ययन समूह होते हैं। इनमें से एक अध्ययन समूह नियन्त्रित समूह (Control Group) तथा दूसरा अध्ययन समूह प्रयोगात्मक समूह (Experimental Group) कहलाता है। प्रयोगात्मक विधि के उदाहरण के लिए कक्षा में कराये गये किसी भी प्रयोग का उदाहरण देखें।

प्रयोगात्मक विधि के चरण (Steps of Experimental Method) :

1. **समस्या (Problem) -** किसी भी प्रयोग को करने से पहले आवश्यक है कि कोई समस्या हो। समस्या को परिभाषित करते हुए टाउनसेन्ड (J.C. Townsend, 1953) ने लिखा है कि समस्या तो समाधान के लिए प्रस्तावित प्रश्न है। करलिंगर (F.N. Kerlinger, 1964) के अनुसार एक प्रश्नवाचक वाक्य या विवरण ही समस्या है जिसमें दो चलराशियों का सम्बन्ध ज्ञात किया जाता है। प्रयोग के लिए समस्या कई स्त्रोतों से प्राप्त की जा सकती है, जैसे - पहले किये गये कार्यों की पुनरावृति करके , वर्तमान कार्यों का गहन अध्ययन करके, विशेषज्ञों से विचार-विमर्श करके, सम्बन्धित साहित्य का अध्ययन करके तथा प्रयोगकर्ता स्वयं अपने अनुभव के आधार पर समस्या चुन सकता है। समस्या चुनने के बाद समस्या को परिभाषित करना आवश्यक होता है

2. **सम्बन्धित साहित्य का अध्ययन और उपकल्पना का निर्माण (Literature Study and Formulation of Hypothesis) : -** समस्या को चुनने एवं उसके कथन के बाद प्रयोगकर्ता जिस समस्या को चुनता है, उस समस्या से सम्बन्धित साहित्य का गहन अध्ययन करता है अर्थात वह पुस्तकों, शोध पत्रिकाओं और साइकालाजीकल एब्ट्रक्ट्स आदि में अपनी समस्या से सम्बन्धित अध्ययनों को देखता है , इस प्रकार साहित्य अध्ययन करके यह जानने का प्रयास करता है कि अब तक समस्या पर किन-किन व्यक्तियों ने क्या-क्या प्रयोगात्मक अध्ययन किये और उन्हें क्या और कितने विश्वसनीय परिणाम प्राप्त हुए हैं। अपने इस साहित्य अध्ययन के आधार पर और विशेषज्ञों की राय के आधार पर अपने प्रयोग की समस्या के सम्बन्ध में उपकल्पना का निर्माण करता है । उपकल्पना को परिभाषित करते हुए टाउनसेन्ड (1953) ने लिखा है कि उपकल्पना अनुसंधान समस्या के लिए एक प्रस्तावित उत्तर है । मैक्गुइगन (F.J. McGuigan, 1961) के अनुसार उपकल्पना दो या अधिक चरों के कार्यक्रम सम्बन्धों का परीक्षण करने योग्य कथन है । उपकल्पना बना लेने से प्रयोगकर्ता की प्रयोग की समस्या ही सुनिश्चित (Pinpointing) नहीं होती है बल्कि उपकल्पना प्रयोगकर्ता को आगे प्रयोग करने के लिए मार्गदर्शन भी मिलता है। प्रयोगकर्ता उपकल्पना की सहायता से प्रमुख तथ्यों का सरलता से चुनाव कर सकता है और समस्या के सम्बन्ध में निष्कर्ष निकलने में सहायक होती है। उपकल्पनायें यद्यपि कई प्रकार की होती है परन्तु प्रयोगात्मक अध्ययन विधि में शून्य उपकल्पना (Null Hypothesis) का प्रयोग करते हैं। किसी समस्या के सम्बन्ध में उपकल्पना एक भी बन सकती है और अधिक भी बन सकती है। आधुनिक अध्ययनों में बहुधा एक से अधिक उपकल्पनायें ही होती है।

3. **प्रयोज्य (Subject) -** उपकल्पना निर्धारण के बाद प्रयोज्यों का चयन किया जाता है। प्रयोज्य से अभिप्राय उन लोगों से है जिन पर प्रयोग किया जाना है एक प्रयोग में इनकी संख्या एक भी हो सकती है और अधिक भी, बहुधा इनकी संख्या एक से बहुत अधिक होती है। प्रयोग में जितने प्रयोज्य होते हैं, वे विभिन्न मानसिक और शारीरिक योग्यताओं की दृष्टि से समान होते हैं।

4. **चर और प्रयोगात्मक अभिकल्प (Variable and Design of the Experiment) -** करलिंगर 1964 के अनुसार , चर वह गुण है जिसके विभिन्न मूल्य हो सकते हे । उदाहरण के लिए-प्रकाश, ध्वनि, तापक्रम, शोरगुल, आदि सभी किसी न किसी प्रकार के चर हैं। किसी प्रयोग में मुख्यतः दो प्रकार के चरों को जानने और परिभाषित करने की आवश्यकता होती है। प्रथम प्रकार के चर स्वतन्त्र चर हैं। टाउनसेन्ड 1953 के अनुसार, स्वतन्त्र चर वह कारक है जिसे प्रयोगकर्ता किसी निरीक्षित घटना से सम्बन्धित करने के लिए घटाता-बढाता है। दूसरे प्रकार के चर आश्रित चर है। टाउनसेन्ड के अनुसार आश्रित च रवह कारक है जो प्रयोगकर्ता द्वारा स्वतन्त्र चर के प्रदर्शन पर प्रदर्शित हो , हटाने पर अदृश्य हो तथा मात्रा परिवर्तन होने पर परिवर्तित हो जाये। इन दोनों प्रकार के चरों के सम्बन्ध को स्पष्ट करते हुए करलिंगर 1964 ने लिखा है कि स्वतन्त्र चर किसी आश्रित चर का अनुमानित कारक है तथ आश्रित चर स्वतन्त्र चर का अनुमानित प्रभाव है। प्रयोग में तीसरे प्रकार के चर वह हैं जो इन दोनों चरों को प्रभावित करते हैं अथवा इन चरों के लिए

बाधक होते हैं। प्रयोगकर्ता समस्या से सम्बन्धित स्वतन्त्र और परतन्त्र चरों को परिभाषित करता है। साथ ही साथ इन चरों को प्रभावित करने वाले कारकों को नियन्त्रित करने के उपाय खोजता है। चरों को परिभाषित करने के बाद प्रयोगकर्ता प्रयोग के लिए योजना तैयार करता है। प्रयोग करने के लिए कई प्रकार के अभिकल्पों अथवा योजनाओं का उपयोग किया जा सकता है, जैसे - Two Randomized Group Design , Two Matched Group Design , More than two Randomized Group Design , Within-Subject Design , Factorial Design आदि।

5. **उपकरण तथा सामग्री (Apparatus and Material) -** अध्ययनकर्ता प्रयोग में जिन उपकरणों का उपयोग करता है, उनका संक्षेप में विवरण देता है। यदि प्रयोग के लिए वह किसी नये उपकरण को विकसित करता है तो उसका वर्णन देता है।

6. **नियन्त्रण (Control)-** समस्या से सम्बन्धित साहित्य का अध्ययन करके तथा विशेषज्ञों की राय और अपने अनुभव के आधार पर वह यह निश्चित करता है कि समस्या को कौन-कौन से कारक अथवा चर प्रभावित कर रहे हैं। समस्या को प्रभावित करने वाले कारक कई क्षेत्रों से सम्बन्धित हो सकते हैं- प्रयोज्यों से सम्बन्धित कारक , वातावरण से सम्बन्धित कारक, उपकरण से सम्बन्धित कारक, प्रयोगकर्ता से सम्बन्धित कारक आदि। इन सभी प्रकार के कारकों को नियन्त्रित करके जब अध्ययनकर्ता समस्या से सम्बन्धित आकडों का संकलन करता है तब उसे शुद्ध वैज्ञानिक आकडें प्राप्त होते हैं। नियन्त्रण के लिए कई प्रकार की विधियाँ उपलब्ध हैं, इन विषयों की सहायता से नियन्त्रण सरलता से किया जा सकता है।

7. **निर्देश तथा विधि (Instructions and Procedure)** – नियन्त्रण आदि को निश्चित कर लेने के बाद प्रयोगकर्ता प्रयोज्यों अथवा प्रयोज्य के लिए निर्देश निश्चित करता है कि प्रयोज्य से प्रयोग से सम्बन्धित कार्य लेने के लिए क्या-क्या निर्देश देने हैं। जब उपरोक्त सभी बातों का प्रयोगकर्ता निश्चय कर लेता है तब वह सभी सावधानियों को ध्यान में रख कर अपनी पूर्व निश्चित योजना और अभिकल्प के अनुसार आकडों का संकलन करता है। आकडों को संकलित कर लेने के बाद उनका सारणीयन आदि करता है। प्रयोगकर्ता प्रयोग को केवल पूर्व निश्चित विधि, योजना और अभिकल्प के अनुसार ही करता है, उसमें वह किसी भी प्रकार का परिवर्तन नहीं करता है।

8. **परिणाम (Results) -** पूर्व निश्चित प्रयोग योजना के अनुसार आकडों के संकलन करने के बाद आकडों का वर्गीकरण करके सारणीयन करते हैं। फिर प्रयोग अभिकल्प के अनुसार उच्च सांख्यिकी विधियों द्वारा आकडों का विश्लेषण करते हैं और सांख्यिकीय विश्लेषण के आधार पर परिणाम ज्ञात कर लेते हैं।

9. **व्याख्या तथा सामान्यीकरण (Discussion and Generalization)** – आंकडों के आधार पर प्राप्त परिणामों की व्याख्या करने से पूर्व सर्वप्रथम प्राप्त परिणामों के आधार पर उपकल्पना की जाच करते हैं और निष्कर्ष निकाल लेते हैं। फिर अपने निष्कर्षो की व्याख्या विभिन्न सिद्धान्तों के आधार पर करते हैं। समस्या से सम्बन्धित कारकों पर भी प्रकाश

डालते हैं। अन्त में सामान्यीकरण में यह देखते हे कि प्रतिदर्श पर प्राप्त परिणाम कहा तक सामान्य जनसंख्या पर लागू होते हैं।

प्रयोगात्मक विधि के लाभ (Importance of Experimental Method) :

प्रयोगात्मक विधि के कुछ प्रमुख लाभ निम्नलिखित हैं -

1. कार्य और कारण सम्बन्धों (Cause and Effect relation) का अध्ययन इस विधि द्वारा जितनी शुद्धता से किया जाता है उतना दूसरी विधि से नहीं। इस विधि द्वारा कार्य और कारण सम्बन्धों की मात्रा का भी अध्ययन किया जा सकता है।
2. यह विधि अन्य विधियों की अपेक्षा अधिक शुद्ध और संक्षिप्त (Accurate and Precise) है क्योंकि इसमें एक व्यवहार को प्रभावित करने वाले अनेक कारकों को नियन्त्रित कर कार्य और कारण सम्बन्ध का अध्ययन किया जाता है।
3. यह विधि उपकल्पना के परीक्षण की श्रेष्ठ विधि (Best Method of Testing Hypothesis) है क्योंकि इसमें कार्य और कारण सम्बन्धों का अध्ययन एक या अधिक नियन्त्रित समूह (Control Group) तथा प्रयोगात्मक समूह (Experimental Group) की सहायता से किया जाता है।
4. अन्य विधियों की अपेक्षा यह विधि सर्वाधिक मनोवैज्ञानिक विधि (Most Scientific Method) है।
5. इस विधि द्वारा अध्ययन के आधार पर प्राप्त परिणाम विश्वसनीय वैद्य तथा सार्वभौमिक होते हैं। इस विधि के प्रयोग के कारण ही मनोविज्ञान अन्य प्राकृतिक विज्ञानों की श्रेणी में गिना जाने लगा है।
6. वुडवर्थ (R.S. Woodworth) के अनुसार, (क) चूँकि प्रयोगकर्ता घटना को एक विशेष स्थान और समय पर घटित करवाता है, इसलिए वह निरीक्षण अधिक कुशलता से कर सकता है। (ख) परिस्थितिया प्रयोगकर्ता के नियन्त्रण में होती है। आवश्यकता पडने पर इन्हें दोहराया जा सकता है। (ग) प्रयोग परिणामों की तुलना शुद्धता से की जा सकती है।

प्रयोगात्मक विधि के दोष (Disadvantage of Experimental Method)

प्रयोगात्मक विधि के कुछ प्रमुख दोष निम्न प्रकार हैं -

1) मनोविज्ञान की समस्याओं का इस विधि से अध्ययन करते समय सबसे बडी कठिनाई यह है कि एक व्यवहार विशेष को प्रभावित करने वाले अनेक कारकों को नियन्त्रित करना पडता है परन्तु व्यवहार की जटिलता और गतिशीलता के कारण कारकों को नियन्त्रित करना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य हो जाता है।

2) मनोविज्ञान के विभिन्न चरों का प्रहस्तन (Manipulation) भी कुछ अवस्थाओं में एक कठिन कार्य है।

3) कुछ जटिल मानसिक प्रक्रियाओं और सामाजिक परिस्थितियों का प्रयोगशाला में अध्ययन इस विधि द्वारा कठिन है।

4) इस विधि द्वारा अध्ययन करते समय विभिन्न समस्याओं से सम्बन्धित प्रयोगशाला में कुछ कृत्रिम परिस्थितिया उत्पन्न करनी पडती है। अध्ययन में यह देखा गया है कि कृत्रिम परिस्थितियों द्वारा प्राप्त परिणाम उतने विश्वसनीय और वैध नहीं होते जितने वास्तविक परिस्थितियों पर आधारित परिणाम होते हैं।

5) जब प्रयोज्यों को यह पता चल जाता है कि उन पर प्रयोग किया जा रहा है। तब उनका व्यवहार उतना स्वाभाविक नहीं रहता है जितना कि सामान्य अवस्था में। अतः शुद्ध आकडे एकत्र करने के कठिनाई होती है।

6) कई बार यह भी कठिनाइ होती है कि प्रयोज्य प्रयोगकर्ता के साथ सहयोग नहीं करते हैं अर्थात प्रयोगशाला की परिस्थितियों के अनुसार उन्हें जिस प्रकार व्यवहार करना चाहिए , उस प्रकार व्यवहार नहीं करते हैं।

अभ्यास प्रश्न 4

1. प्रयोगात्मक विधि का प्रथम चरण है .....।
2. इस विधि के दो प्रकार के चर होते हैं ..... एवं .....।

2.6 सारांश

मनोविज्ञान की कई विधियाँ है जिनके सहारे मनोविज्ञान प्राणी के व्यवहार तथा मानसिक प्रक्रियाओं का अध्ययन करते हैं। इन विधियों में प्रमुख है- निरीक्षण / प्रेक्षण विधि एवं प्रयोगात्मक विधि प्रत्येक विधि के संपूर्ण वर्णन एवं गुण एवं दोष का सविस्तार वर्णन किया गया है।

2.7 शब्दावली

अवैधानिक परीक्षण	:-	तर्क रहित किया गया निरीक्षण/ परिक्षण।
पुनरावृति	:-	एक ही प्रयोग या काम को बार बार करना।
प्रहस्तन	:-	चरो को जोड तोड करना।
कार्य कारण सम्बन्ध	:-	किसी भी कार्य के पीछे कोई ना कोई कारण होता है।
भीड़ व्यवहार	:-	भीड में खडे व्यक्ति के व्यवहार का अध्ययन।

2.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न - 1

1. समूहिक व्यवहार 2. व्यवहारवाद 3. प्रत्यक्ष

अभ्यास प्रश्न - 2

1. वैज्ञानिक पद्धति 2. उपयुक्त योजना 3. प्रतिदर्श

अभ्यास प्रश्न - 3

1. व्यवस्थित निरीक्षण 2. सहभागी निरीक्षण विधि

अभ्यास प्रश्न -4

1. समस्या 2. स्वतंत्र चर एवं अप्रिय चर

2.9 निबंधात्मक प्रश्न

1. निरीक्षण विधि से आप क्या समझते है ? इस विधि का वर्णन इसके गुण व दोषों के साथ कीजिए।
2. प्रयोगात्मक विधि को परिभाषित कीजिए तथा इसके सोपान व चरणों का वर्णन कीजिए।
3. प्रयोगात्मक विधि का वर्णन करते हुए इसके गुण व दोषों के बारे में सविस्तार लिखे।

2.10 संदर्भ ग्रन्थ

- श्रीवास्तव , डी.एन (2009) ‘‘ आधुनिक सामान्य मनोविज्ञान ’’ आगरा श्री विनोद पुस्तक मंदिर।
- सिंह , अरूण कुमार (2012) ‘‘ आधुनिक सामान्य मनोविज्ञान ’’ नई दिल्ली मोतीलाल बनारसीदास।

इकाई - 3

तंत्रिका तंत्र(Nervous system)

केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र, स्वायत्त तंत्रिका तंत्र, मस्तिष्क की संरचना एवं कार्य, मस्तिष्क का सिद्धान्त, लोकलाईजेशन बनाम मास लोकलाईजेशन

Central Nervous System, Autonomic Nervous System, Structure and Function of Brain, Localization Vs Mass Localization theory of Brain

इकाई की रूपरेखा

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 तंत्रिका तंत्र
  3.3.1 तंत्रिका
  3.3.2 तंत्रिका आवेग
  3.3.3 संधिस्थल तथा उसका कार्य
  3.3.4 न्यूरोट्रांसमीटर
3.4 तंत्रिका तंत्र की संरचना एवं कार्य
3.5 केन्द्रिय तंत्रिका तंत्र की संरचना एवं कार्य
  3.5.1 मस्तिष्क
  3.5.2 अग्रमस्तिष्क
  3.5.3 मध्यमस्तिष्क
  3.5.4 पश्चमस्तिष्क
3.6 मेरूरज्जु की स्थिति एवं संरचना
3.7 स्वायत्त तंत्रिका तंत्र
  3.7.1 अनुकम्पी तंत्रिका तंत्र
  3.7.2 उपअनुकम्पीतंत्रिका तंत्र
3.8 मस्तिष्क का सिद्धान्त
3.9 सारांश
3.10 शब्दावली
3.11 अभ्यास प्रश्न के उत्तर
3.12 निबंधात्मक प्रश्न
3.13 संदर्भ ग्रंथ सूची

3.1 प्रस्तावना

मानव शरीर एक विशेष परन्तु जटिल संरचना है।

- मानव शरीर संरचनात्मक एवं अपनी क्रियाप्रणाली के लिए आज भी वैज्ञानिकों के लिए एक चमत्कार बना हुआ है।
- मानव शरीर मं भिन्न भिन्न प्रकार के अंग होते हैं। जो कि संरचना एवं क्रिया प्रणाली में पूरी तरह अलग होते हैं।
- तंत्रिका तन्त्र मानव शरीर का सबसे महत्वपूर्ण अंग या तन्त्र है।
- प्रस्तुत इकाई में आप तंत्रिका तंत्र कि संरचना तथा क्रियाप्रणाली, सिद्धान्त एवं इसके कार्यों का विस्तारपूर्वक अध्ययन करेगें।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढने के बाद आप -

- तंत्रिकातंत्र का अर्थ एवं उसकी संरचना तथा क्रियाप्रणाली को परिभाषित कस्सकेंगे।
- तंत्रिका तंत्र की आन्तरिक संरचना को बता पाएंगे।
- तंत्रिका तंत्र की क्रिया प्रणाली को समझ पाएंगे।

3.3 तंत्रिका तन्त्र (Nervous System)

- तंत्रिका तन्त्र (Nervous System) की सबसे छोटी इकाई न्यूरोन (Neuron) है।
- सामान्य एवं आधुनिक मनोविज्ञान की समझने के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि तन्त्रिका तन्त्र उसकी संरचना एवं क्रियाप्रणाली के बारे में विस्तृत रूप से अध्ययन किया जाए।
- अतः तन्त्रिय तन्त्र का अध्ययन करने के लिये या तन्त्रिका तन्त्र के बारे में विस्तृत रूप से जानकारी पाने के लिये तंत्रिका तन्त्र को कुछ महत्वपूर्ण खण्डों में विभाजित किया गया है।
- मुख्य रूप से तन्त्रिका तन्त्र निम्नलिखित भागों में बांटा गया है जो कि
    - न्यूरोन (Neuron) - प्रकार, संरचना तथा कार्य (Types , structure and function)
    - तंत्रिका आवेग (Nerve Impulse)
    - संधिस्थल तथा उसका कार्य (Synapse and its function)
    - न्यूरो ट्संमीटर (Neurotrorsmiter)

न्यूरोन- प्रकार, संरचना एवं कार्य[Neuron – Types , structure and function]-

- तंत्रिका तन्त्र की सबसे छोटी इकाई न्यूरोन है जिसे तंत्रिका कोशिका (Nerve Cell) भी कहा जाता है।

Neurons के द्वारा विभिन्न प्रकार के Stimulation को Electrical Impulses में Convert किया जाता है।

- Neurons अलग - अलग Size और Shape के होते हैं। जो कि Body के हर Part में होते हैं।
- इनका Size of Shape 5um से लेकर 120um की Diameter में होता है।
- मानव शरीर में लगभग 10^{12} या 12.5 अरब Neurons पार जाती है।
- Neurons के अलाव Human Body में कुछ और Cells भी होती है , जो कि न्यूरोन्स को Stability and healthy environment provide करती है Cells को न्यूरोलिया (Neurolia) या ग्लिया कोश (Glial Cells) कहा जाता है।
- Neurons are classified into three types according to their work .
    - संवेदी न्यूरोन (Sensory neuron or afferent neuron)
    - गतिवाही न्यूरोन (Motor or efferent neuron)
    - साहचर्य न्यूरोन (Association neuron)

Sensory Neuron – Sensory Neuron का मतलब वह न्यूरोन है जो कि किसी Impulse या तंत्रिका आवेग को Sense Organ तक पहुचाना है। जैसे यदि कोई व्यक्ति किसी पदार्थ या तत्व को देखता है तो उसे देखने से उत्पन्न Nerve Impulse आखों द्वारा किसी खास न्यूरोन की सहायता से मस्तिष्क तक पहुँचता है।

- Motor or efferent neuron –

- Motor या गतिवाही न्यूरोन वह न्यूरोन है जो Nerve impulse को Brain तक पहूचाता है और Brain उसे वापस मांसपेशीयों या ग्रन्थियों तक। जिससे की मनुष्य कोई क्रिया करता है- जैसे किसी फूल या पुष्प को देख कर उसे तोड़ने के लिए Brain द्वारा हाथों को निर्देश दिया जाता है।
- इस प्रकार के Neuron को Motor Neuron कहा जाता है।

- Association Neuron –

- Association neuron से तात्पर्य है एक विशेष प्रकार का Neuron जो कि impulse को ग्रहण कर के उसे motor neuron तक पहूँचाता है। यह न्यूरोन Sensory एवं motor न्यूरोन के मध्य एक सेतु का निर्माण करता है जिसके द्वारा आवेगी को एक न्यूरोन से दूसरे न्यूरोन तक पहूचाया जाता है

Division of Nervous system

Central Nervous System Peripheral Nervous System

Neuron को उनकी संरचना एवं कार्य के आधार पर तीन भागों में विभक्त किया गया है।

1. कोशिका शरीर (Cell Body)
2. शखिका या पार्श्व तन्तु (Dendrite)
3. अक्ष तन्तु (Axon)

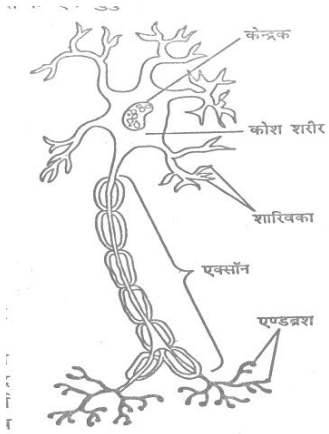

1. कोशिका काय (Cell Body) :-

- यह न्यूरोन का सबसे प्रथम भाग होता है। इसे सोमा (Soma) भी कहते हैं
- यह न्यूरोन का अनियमित आकार का बड़ा भाग होता है।
- अन्य कोशिकाओं की तरह न्यूरोन की कोशिका में भी एक विशेष प्रकार का तरल पदार्थ जिसे कोशिका द्रव्य या साइटोप्लाज्म (Cytoplasm) भी कहा जाता है पाया जाता है जिसमें एक केन्द्रक (Nucleus) होता है जो कि कोशिका का मुख्य भाग होता है।

कार्य (Function) :- कोशिका काय पार्श्वतन्तु तथा अक्ष तन्तु (Axon) के लिये प्रोटीन का निर्माण करना तथा Dendrite द्वारा ग्रहण किये गये आवेग या Impulse को आगे बढाना।

2. पार्श्व तन्तु या शाखिका Dendrites) :-

- यह न्यूरोन का द्वितीय भाग होता है।
- इसकी संरचना पेड़ से निकली शाखाओं की तरह होती है। इन शाखाओं को प्रवर्ध कहते हैं।

कार्य (Function) :- पार्श्व तन्तु एक एन्टिना की तरह कार्य करते हैं जिनका मुख्य कार्य आने वाले आवेगी को प्राप्त कर कोशिका काय में भेजना होता है।

3. अक्ष तन्तु (Axon) :-

- यह न्यूरोन का सबसे महत्वपूर्ण भाग होता है।

- यह कोशिका काय से निकलने वाली एक लम्बी संरचना हे।
- इसे तंत्रिकाक्ष भी कहते हैं, इसकी लम्बाई लगभग 0.1mm से 2 mm (Millimeter) होती है।
- अक्षतन्तु के चारों तरफ एक पतली सिल्ली पाई जाती है, जिसे एक्सोलेमा (Axolemma) कहते हैं।
- अक्षतन्तु में एक विशेष प्रकार की कोशिकाओं की श्रृखंला (Series of Cells) पायी जाती है। जिसे स्वान सैल (Schwann Cell) कहते हैं।
- स्वान सैल परिसरीय तंत्रिका तन्त्र (Peripheral nervous system) की Supporting cells होती है।
- अक्ष तन्तु एक माइलिन परत द्वारा ढका होता है , बीच-बीच में यह माइलिन परत विभक्त हो जाती है, जिसे नोड़ आफ रेनवियर (Mode of Ranveir) कहते हैं।
- अगर यह परत या आवरण सतत् लेता तो तंत्रिका आवेग का प्रवाह ठीक देख से नहीं हो पाता।
- प्रत्येक Axon के अन्तिम छोर पर अनेक छोटे छोटे तन्तु होते हैं जिन्हे एण्डब्रश (Endbrush) या एण्डप्लेट (Endplate) कहा जाता है।
- अनेक Axon एक साथ मिल कर एक तंत्रिका (Nerve) का निर्माण करते हैं।

Function - Axon का मुख्य कार्य सूचनाओं (Information) की एक तंत्रिका कोशिका से अन्य तन्त्रिका कोशिका तक पहुँचाना होता है।

3.3.2 तन्त्रिका आवेग (Nerve Impulse):-

- तन्त्रिका आवेग से तात्पर्य एक अतिलघु अवधि के लिये Axon में प्रवाहित होने वाली वैद्युतिक घटना (Electric Event) होती है। परन्तु इसमें संधिस्थलीय प्रवाह (synaptic transmission) की भूमिका भी होती है।
- तन्त्रिका आवेग लघु एव तीव्र होता है, अतः इसे स्पाईक (Spike) भी कहा जाता है।

तन्त्रिका आवेग की उत्पत्ति (Origin of Nerve impulse):-

- जब न्यूरोन आराम की अवस्था में होता है अर्थात वह किसी उद्दीपक द्वारा उत्तेजित नहीं होता है, तो न्यूरोन की कोशिका झिल्ली (Cell Membrane) के भीतर के तरल पदार्थ में ऋणात्मक वैद्युतीय आवेश (negative electrical charge) होता है तथा उसके बाहर के तरल पदार्थ में धनात्मक वैद्युतीय आवेश (Positive electrical charge) होते हैं

या

जब न्यूरोन आराम की अवस्था में होता है तो कोशिका झिल्ली में हल्का वैद्युतीय आवेश होता है।

- इस वैद्युतीय आवेश (Electric Charge) का कारण यह होता है कि कई तरह के आयन्स (Ions) अर्थात ऋणात्मक एवं धनात्मक आवेशित (charged particles) SO^{+} कण जैसे-

सोडियम so^+ पोटाशियम k^+, क्लोराइड cl^+ आदि कोशिका झिल्ली के बाहर एवं भीतर होते हैं।

- झिल्ली (Membrane) के बाहर से भीतर एवं भीतर से बाहर आयन्स (Ions) के विनिमय से तन्त्रिका आवेग की उत्पत्ति होती है । चूँकि झिल्ली के भीतर ऋणात्मक आवेशित कण तुलनात्मक रूप से अधिक होते हैं इसलिये कोशिका झिल्ली के भीतरी भाग में बाहरी भाग की तुलना में ऋणात्मक आवेश अधिक होता है।

- न्यूरोन (Neuron) की इस तरह की अवस्था को विश्राम विभव (resting potential) कहा जाता है तथा धनात्मक एवं ऋणात्मक आवेशों के उक्त वितरण को ध्रुवीकरण (Polarization) कहा जाता है । जब न्यूरोन किसी उद्दीपक (Stimulus) द्वारा या रासायनिक पदार्थो द्वारा उत्तेजित होता है तो पहले एक क्रमिक वैभव (Graded Potential) उत्पन्न होता है , जो सचमुच में न्यूरोन के शाखिका (Dendrites) के उत्तेजित होने से उत्पन्न होता है।

- क्रमिक वैभव उद्धीपक की मात्रा (Magnitude) के अनुपात में परिवर्तित होता है। अधिक तीव्र उद्धीपक से विभव अधिक उत्पन्न होता है तथा कम तीव्र उद्धीपक से कम मात्रा में विभव उत्पन्न होता है।

- इस तरह से क्रमिक विभव न्यूरोन के भीतर उत्तेजन का एक तरह का लघु एवं क्षणिक संकेत (Signal) के रूप में कार्य करता है। जिसकी मुख्य विशेषता यह है कि यह तुरन्त कमजोर पडने लगता है। सचमुच में यह शाखिका से कोश शरीर तक ही सूचनाओं को ले जा पाता है। जब कोश शरीर पहुँचने वाले क्रमिक वैभव की मात्रा पर्याप्त हो जाती है तथा न्यूरोन को उत्तेजित होने के दहेली से वह अधिक हो जाता है तो फिर कोश झिल्ली में रासायनिक परिवर्तन होने लगते है। ऐसी परिस्थिति में झिल्ली के बाहर वाले सोडियम आयन्स अर्थात आवेशित कण जो धनात्मक होते हैं झिल्ली के भीतर आने लगते हैं जिसके कारण बहुत लघु अवधि के लिए अर्थात एक मिलीसेकंड के लिए न्यूरोन के कोश झिल्ली का भीतरी भाग धनात्मक रूप से आवेशित हो जाता है। कोश झिल्ली के धनात्मकता में यह लघु परंतु तीव्र परिवर्तन को ही क्रिया विभव या तंत्रिका आवेग कहा जाता है। इसके परिणास्वरूप न्यूरोन का विश्राम विभव समाप्त हो जाता है और न्युरोन उत्तेजित हो जाते हैं । न्यूरोन के आवेशित कणों में इस तरह के परिवर्तन को अध्रुवीकरण कहा जाता है। यहा ध्यान देने वाली बात यह है कि जब कोई न्यूरोन उत्तेजित होता है तो वह अपनी पूर्ण शक्ति के साथ उत्तेजित होता है और उसके इस शक्ति का सम्बन्ध उद्दीपक की तीव्रता से नहीं होता है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि न्यूरोन में उत्पन्न उत्तेजन की शक्ति या तो पूर्ण होती है या फिर बिलकुल ही नहीं होती है। ऐसा नहीं होता है कि उद्दीपक की अधिक तीव्रता होने पर न्यूरोन अधिक शक्ति के साथ उत्तेजित होता है तथा उसकी तीव्रता कम होने पर न्यूरोन कम शक्ति के साथ उत्तेजित होता है। कहने का तात्पर्य यह है कि अगर किसी उद्दीपक द्वारा न्यूरोन उत्तेजित हो गया तो उस उत्तेजित अवस्था की शक्ति हमेशा पूर्ण होगी। इसे पुर्ण या बिलकुल नहीं का नियम कहा जाता हे। विभिन्न न्यूरोन में तंत्रिका आवेग की आवृति अलग- अलग होती है मनुष्यों में प्रति सेकंड 500 तंत्रिका आवेग तक की उत्पत्ति होती पायी जाती है।

करीब एक या दो मिलीसेकंड के बाद न्यूरोन की कोश झिल्ली अपनी मौलिक अवस्था में पुनः लौट जाती है । न्यूरोन काफी सक्रिय होकर धनात्मक आयन्स को भीतर से बाहर निकलता है तथा ऋणात्मक आयन्स को बाहर से भीतर लाता है । इसके परिणामस्वरूप न्यूरोन में पुनः विश्राम विभव की अवस्था कायम हो जाती है और कौश पुनः उत्तेजित होने के लिए लगभग तैयार हो जाता है । न्यूरोन के वैद्युतीय आवेश में परिवर्तन के इस क्रम धनात्मक से ऋणात्मक तथा ऋणात्मक से धनात्मक) को क्रिया विभव की सज्ञा दी जाती है। क्रिया विभव इस अर्थ में क्रमिक विभव से भिन्न कि क्रिया विभव एक पूर्ण या नहीं अनुक्रिया है जबकि क्रमिक उद्दीपक की तीव्रता की मात्रा के अनुसार परिवर्तित होता है ।

किसी न्यूरोन में तंत्रिका आवेग उत्पन्न होने के तुरन्त बाद एक विशेष अवधि होती है जिसमें पुनः न्यूरोन को उत्तेजित नहीं किया जा सकता है चाहे उद्दीपक की तीव्रता की मात्रा कितनी भी अधिक क्यों न हो? उस लघु अवधि को निरपेक्ष दुर्दम्य अवधि कहा जाता है । यह अवधि 0.5 से 2 मिलीसेकंड तक का होता है । इस अवधि के एक सतत प्रतिप्राप्ति की अवस्था होती है । जिसमें न्यूरोन केवल वेसे उद्दीपक द्वारा उत्तेजित हो सकता है जिसकी तीव्रता सामान्य से अधिक होती है । इस तरह की अवधि को सापेक्ष दुर्दम्य अवधि कहा जाता है । यह अवधि कुछ मिलीसेकंड का होता है । सापेक्ष दुर्दम्य अवधि की समाप्ति के बाद न्यूरोन की उत्तेजनशीलता शक्ति पूर्णतः कायम हो जाती है और वह सामान्य तीव्रता के उद्दीपक से उत्तेजित होने के लायक हो जाता है । शरीरक्रिया मनोवैज्ञानिकों द्वारा किये गय अध्ययनों के आधार पर यह स्पष्ट हुआ कि मनुष्यों की तंत्रिका आवेग की गति प्रति सेकंड 100 मीटर या 224 मील प्रति घंटा तक होता है ।

3.3.3 संधिस्थल तथा उसका कार्य (Synapse and its functions):-

जैसा कि पिछले अनुच्छेद में कहा गया था कि एक न्यूरोन से दूसरे न्यूरोन में सूचनाएं संधिस्थल प्रवाह (synaptic transmission) होकर आगे बढती है, अतः इस अनुच्छेद में संधिस्थल तथा इसके कार्य को भलीभांति समझाया जाएगा। संधिस्थल क्या है? इस प्रश्न का उत्तर देते हुए यह कहा जा सकता है कि दो न्यूरोन जहा पर आपस मं मिलते हैं , वहा पर इन दोनें के बीच में कुछ रिक्त स्थान होते हैं जिसके कारण वे दोनों एक दूसरे से सटे हुए नहीं होते हैं । दोनों न्यूरोन के इस मिलन स्थान को ही संधिस्थल (Synapse) की संज्ञा दी जाती है । इसे और भी विशिष्ट रूप से समझाते हुए यह कहा जा सकता है कि संधिस्थल वह स्थान होता है जहा एक न्यूरोन का एक्सान दूसरे न्यूरोन की शाखिका (Dendrites) या कोश शरीर के साथ प्रकायत्मिक सम्बन्ध (Functional relationship) कायम करता है हालांकि ये दोनों एक दूसरे से सटे हुए नहीं होते हैं । इन दोनों के बीच के लघुत्तम रिक्ति (Gap) को संधिस्थलिय दारा (synaptic cleft) कहा जाता है ।

अब प्रश्न यह उठता है कि जब दोनों न्यूरोन के बीच रिक्त स्थान होते हैं तो तंत्रिका आवेग (nerve impulse) का संचार किस तरह होता है ? इलेक्ट्न माइक्रोस्कोप से लिए गये तस्वीरों के विश्लेषण से यह पता चलता है कि एक्सान के छोर पर कई छोटे छोटे बल्ब होते हैं जिन्हें बुटोन्स (Buttons) कहा जाता है । इस बुटोन्स में छोटी-छोटी पुटिकाएं होती है जिनमें कुछ तरल पदार्थ भरे होते हैं । तरल पदार्थ को न्यूरोट्रांसमीटर कहा जाता है । जब तंत्रिका आवेग सूचना प्रदत्त करने वाले न्यूरोन (transmission neuron) के एक्सान के छोर पर पहुचता है तो पुटिकाओं से न्यूरोट्रांसमीटर (neurotransmitter) निकलना प्रारम्भ हो जाते हैं । इसका परिणाम यह होता है कि सूचना प्राप्त

करने वाले न्यूरोन के ग्राहक क्षेत्र (Receptor) के विशिष्ट अणु (Specialized molecules) के साथ न्यूरोट्रांसमीटर मिल जाते हैं और तब तंत्रिका आवेग को झट से सूचना प्राप्त करने वाले न्यूरोन की शाखिका (Dendrites) द्वारा ग्रहण कर लिया जाता है। इस तरह से तंत्रिका आवेग का संचरण आगे की ओर हो जाता है।

सूचना प्राप्त करने वाले न्यूरोन (receiving neuron) के कोश (Cells) पर न्यूरोट्ंसमिटर दो तरह का प्रभाव डालता है- उत्तेजनापूर्ण प्रभाव (excitatory effect) तथा निरोधक प्रभाव (inhibitory effect)। अगर उत्तेजनपूर्ण प्रभाव उत्पन्न होता है तो इससे सूचना प्राप्त करने वाले न्यूरोन के कोश में अध्रुवीकरण (Depolarization) की प्रक्रिया उत्पन्न होती है अर्थात इसके विश्राम विभव में कमी आने लगती है। अगर अध्रुवीकरण की मात्रा पर्याप्त होती है तो इससे क्रिया विभव (Action Potential) की उत्पति हो जाती है। दूसरे तरफ अगर न्यूरोट्रांसमीटर से निरोधात्मक प्रभाव उत्पन्न होते हैं, तो उसे सूचना प्राप्त करने वाले न्यूरोन के कोश में ध्रुवीकरण की प्रक्रिया उत्पन्न हो जाती है जिसका असर यह होता है कि इस न्युरोन के लिए क्रिया विभव को सम्पन्न कराना कठिन हो जाता है।

अब एक प्रश्न यहा उठता है कि संधिस्थल पर तंत्रिका आवेग का आगे बढ जाने के बाद बचे हुए न्यूरोट्रांसमीटर का क्या होता है ? मनोवैज्ञानिकों द्वारा किये गये अध्ययनों से यह स्पष्ट हुआ है कि ऐसे न्यूरोट्रांसमीटर को एक्सान की पुटिकाओं द्वारा पुनः सोख लिया जाता है या संधिस्थल पर उपस्थित विभिन्न तरह के एन्जाइम (Enzymes) द्वारा उसे निष्क्रिय कर दिया जाता है। न्यूरोट्रांसमीटर को एक्सान की पूटिकाओं द्वारा सोखने की प्रक्रिया के पुनर्वापसी (Reuptake) कहा जाता है।

स्पष्ट हुआ कि संधिस्थल का मुख्य कार्य तंत्रिका आवेग के संचरण में मदद करना है। यह कार्य न्यूरोट्रांसमीटर की मदद से हो जाता है।

अभ्यास प्रश्न - 1

- तन्त्रिका तन्त्र की सबसे छोटी इकाई ..... है जिसे ..... भी कहा जाता है।
- तंत्रिका कोशिका मं एक विशेष प्रकार का तरल पदार्थ पाया जाता है , जिसे ..... कहते हैं।
- एक न्यूरोन से दूसरे न्यूरोन में सूचनाएं .... द्वारा प्रवाहित होती है।

3.3.4 न्यूरोट्रांसमीटर(Neuro Transmitter):-

- न्यूरोट्रांसमीटर का महत्व संधिस्थलिय संचरण (synaptic transmission) में काफी अधिक है।
- न्यूरोट्रांसमीटर एक तरह का रसायनिक तत्व (Chemical Substance) होता है जो तंत्रिका तन्त्र (Nervous System) में संधिस्थल (Synapse) पर तथा तंत्रिका एवं मांसपेशियों (Muscles) के बीच जंक्शन (Junction) पर तंत्रिका आवेग के संचरण (Transmission) में मदद करता है। इस जंक्शन को न्यूरापेशीय जंक्शन (neuro muscular junction) कहा जाता है। जब सूचना प्रदान करने वाले न्यूरोन जिसे प्राकसंधि स्थलीय न्यूरोन (postsyanaptic neuron) भी कहा जाता है के एक्सान के छोर

की पुटिकाओं से न्युरोट्ंसमीटर निकल कर सूचना ग्रहण करने वाले न्यूरान या जिसे उत्तर संधि स्थलीय न्यूरोन भी कहा जाता है , के ग्राहक क्षेत्र के विशिष्ट ग्राहक अणु (specialized receptor molecules) से संयोजित होता है, तो दो तरह के प्रभाव उत्पन्न होते हें - उत्तेजनापूर्ण प्रभाव (excitatory effects) तथा निरोधक प्रभाव (inhibitory effect)।

इन दोनों तरह के प्रभावों का प्रभाव यह होता है कि तंत्रिका आवेग का संचरण हो पाता है।

- सन् 1950 से अब तक करीब 100 से अधिक न्यूरोट्रांसमीटर की खोज हो चूकी है ,जिनमें से कुछ निम्नलिखित हैं।

1. **ऐसिटीलकोलाइन (Acetylchokine) :-** यह लघु आणविक (Small Molecule) न्यूरोट्रांसमीटर है जो पूरे केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र (Central Nervous System), स्वायत्त तंत्रिका तंत्र(autonomic nervous system) तथा न्यूरोपेशीय जंक्शनों (neuromuscular junction) में पाया जाता है सबसे पहले खोज किया जाने वाला न्यूरोट्रांसमीटर यही है।
2. **नोरइपानफ्राइन (Norepinephrine) :-** यह एक तरह का केटकोलामाइन है जिसमें एमीनाएसीड टाइरोसीन (Amino acid tyrosine) मिला होता है । यह केन्द्रीय तंत्रिका तन्त्र (Central nervous system) तथा अनुकंपी तंत्रिका तन्त्र (sympathetic nervous system) में पाया जाता है।
3. **इपान फ्राइन (Epinephrine) :-** यह भी एक तरह का केटकोलामाइन (Catecolamine) है जो केन्द्रीय तंत्रिका तन्त्र में विशेषतः वैसे न्यूरोन में पाये जाते हैं जिनका कोष शरीर (cell body) मस्तिष्क स्तम्भ (Brain stem) में होता है।
4. **डोपामाइन (Dopamine) :-** यह भी एक तरह का कैटकोलामाइन है , जो केन्द्रिय तंत्रिका तन्त्र(central nervous system) में पाया जाता है
5. **सेरोटोमीन (Serotomin) :-** यह एक तरह का इन्डोलामाईन (Indosamine) है जो केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र(central nervous system) में पाया जाता है।
6. **गाबा या एमीनो बूहरिक अम्ल (Gamma amino butyric acid or GABA) :-** यह एक तरह का एमिनो अम्ल (Amino Acid) है तथा यह मस्तिष्क एवं सुषुम्ना के सभी हिस्से में खासकर अवरोधी साहचर्य न्यूरोन (Inhibitory association neuron) में पाये जाते हैं।
7. **ग्लूटेनिक एसिड (Glutamic Acid) :-** यह भी एक तरह का एमिनो अम्ल है जो तंत्रिका तन्त्र में पाया जाता है।
8. **एसपोर्टट (Aspartate) -** यह भी एक तरह का एमीनो अम्ल है।
9. **न्यूरोपेपटाइड्स (Neuropeptides) :-** इसमें कई तरह के एमीनो अम्ल होते हैं। इसे कुछ समय पहले ही neurotransmitter की श्रेणी में लिया गया है । इन्डोरफिन्स (Endorphins) इस समुह का एक प्रमुख neurotransmitter है।

10. हिस्टामाईन (Histamine) :- यह neurotransmitter brain के उन क्षेत्रों में होता है जो संवेग से सम्बन्धित होते हैं। इसकी भूमिका एलर्जी (Allergy) की प्रतिक्रिया में भी पायी जाती है।

- एक न्यूरोन से दूसरे न्यूरोन तक संधिस्थल पार करते हुए सूचनाओं का जो रसायनिक संचरण होता है, उसके कई चरण होते हैं, जो कि निम्नलिखित हैं -

1. व्यक्ति के भोजन तथा ऐसे ही अन्य स्त्रोतों के अणुओं से सूचना प्रदत्त करने वाला न्यूरोन (Transmitting neuron) या प्राक्-संधि स्थलीय न्यूरोन (Presynaptic Neuron) कुछ विशेष न्यूरोट्रांसमीटर अणु (Neurotransmitter Molecules) पैदा करते हैं।
2. उत्पादित न्यूरोट्रांसमीटर को प्राक्- संधि स्थली न्यूरोन के एक्सान के छोरों पर पाये जाने वाले पुटिकाओं में संचित किया जाता है।
3. एक्सान के छोर पर पहुचने वाले तंत्रका आवेग एक ऐसी प्रक्रिया प्रारम्भ कर देते हैं, जिससे कुछ पुटिकाए (Vesicles) संधिस्थलीय दरार (Synaptic Cleft) में पहुँच जाते हैं , जहा पर वे अपने में संचित न्यूरोट्रांसमीटर का त्याग करते हैं।
4. न्यूरोट्रांसमीटर तुरन्त ही उस पूरे संधिस्थलीय न्यूरोन (Postsgnaptic neuron) के झिल्ली (Membrane) पर विशिष्ट ग्राहक अणुओं से मिल जाते हैं।
5. ग्राहक तथा न्यूरोट्रांसमीटर (neurotransmitter) के संयोग (Combination) से सूचना प्राप्त करने वाले न्यूरोन में कुछ परिवर्तन होते हैं जिनसे उत्तेजन (Excitation) या अवरोध (inhibition) की प्रक्रिया उत्पन्न होती है। इन दोनों में से किस तरह का प्रभाव उत्पन्न होगा, यह न्यूरोट्रांसमीटर के प्रकार तथा ग्राहक के प्रकार जिसके साथ संयोजन होता है, पर निर्भर करता है
6. संयोजित न्यूरोट्रांसमीटर तेजी से निष्क्रीय होने लगता है , ताकि सूचना प्राप्त करने वाला न्यूरोन या उत्तर संधिस्थलीय न्यूरोन पुनः दूसरे प्रकार की सूचना को ग्रहण करने के लिए तत्पर हो जाए।

कुछ सहयोगी औषध न्यूरोट्रांसमीटर के प्रभाव को और अधिक तीव्र निम्न तरीकों से करते हैं।

- ऐसे औषध न्यूरोन द्वारा संचित न्यूरोट्रांसमीटर की मात्रा में वृद्धि कर देते है।
- ऐसे औषध विशिष्ट न्यूरोन (Specific neuron) को न्यूरोट्रांसमीटर उत्पन्न करने में अधिक मदद करते हैं।
- ऐसे औषध सूचना प्राप्त करने वाले न्यूरोन (Receiving neuron) के ग्राहक को उत्तेजित कर देते हैं जो न्यूरोट्ंसमिटर के प्रति अनुक्रिया करते हैं और इस तरह न्यूरोट्रांसमीटर का प्रभाव पहले से अधिक बढ जाता है।
- ऐसे औषध संधिस्थल में न्यूरोट्रांसमीटर को निष्क्रीय नहीं में मदद करते हैं ताकि इसका प्रभाव अधिक लम्बे समय तक बना रहे।

अभ्यास प्रश्न – 2

सूचना प्रदान करने वाले न्यूरोन को ..... कहते हैं।

3.4 तंत्रिका तन्त्र (Nervous System)

संरचना तथा कार्य (nervous system – structure and function)

- तंत्रिका तंत्र एक ऐसी जटील संरचना है जो शारीरिक प्रक्रिया को नियमित तथा नियन्त्रित करता है तथा शक्ति के चेतन अनुभूतियों के सभी पहलुओं के लिए जिम्मेवार होता है।
- तंत्रिका तंत्र को मुख्य दो भागें में बांटा गया है केन्द्रिय तंत्रिका तन्त्र (Central Nervous System) तथा परिधीय तंत्रिका तंत्र(Peripheral nervous system)
- तंत्रिका तंत्र एक संगठित सम्पूर्णता(Integrated Whole) के रूप में कार्य करता है। इसकी संरचना तथा कार्य पर समुचित ढंग से प्रकाश डालने के लिये इसे कुछ खंडों में विभक्त किया गया है।
- - इन दोनों के भी उपभाग हैं जैसे केन्द्रिय तंत्रिका तंत्र के दो भाग हैं मस्तिष्क तथा सुषूम्ना। परिधीय तंत्रिका तंत्र (Peripheral nervous system) के दो भाग हैं- कायिक तंत्रिका तन्त्र (Somatic nervous system) तथा स्वायत्त तंत्रिका तंत्र (Autonomic Nervous System)

फिर स्वायत्त तंत्रिका तंत्र के भी दो भाग हैं

1. अनुकंपी तंत्रिका तन्त्र (sympathetic nervous system)
2. उपअनुकंपी तंत्रिका तंत्र(Parasympathetic nervous system)

अभ्यास प्रश्न - 3

1. तंत्रिका तन्त्र के भागों के नाम लिखिए ..... ।
2. केन्द्रिय तंत्रिका तंत्र के दो भाग .....होते हैं।
3. स्वायत्त तन्त्रिका तन्त्र के दो भाग हैं ..... एवं ..... ।

3.5 केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र की संरचना एवं कार्य(Structure and Function of Central Nervous System)

केन्द्रिय तंत्रिका तंत्र मेंदो मुख्य संरचनाओं का अध्ययन किया जाता। जो निम्न प्रकार से है।

1. मस्तिष्क/दिमाग/ब्रेन (Brain)
2. मेरूरज्जू/सुषुम्ना/स्पाइनल कोड (Spine Cord)

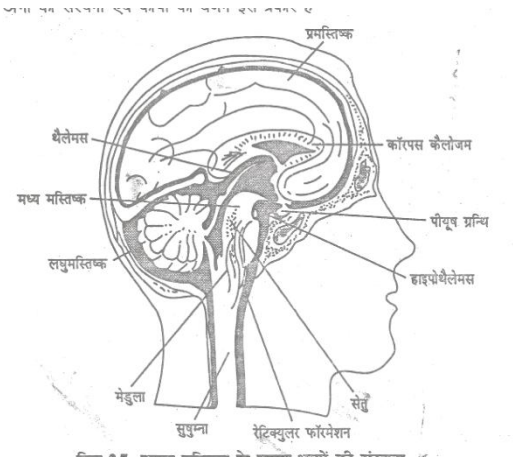

3.5.1 मस्तिष्क (Brain)

- केन्द्रिय तंत्रिका तंत्र का मुख्य भाग मस्तिष्क है।
- मस्तिष्क सिर की खोपडी या कपाल गुहा में स्थित होता है।
- इसका वजन एक सामान्य वयस्क में लगभग 1.3 कि.ग्रा. होता है।
- मस्तिष्क शरीर के भाग का लगभग 1/50 होता है।
- मस्तिष्क को तीन क्षेत्रों में विभक्त किया गया है। जो निम्न प्रकार है

3.5.2 अग्रमस्तिष्क (Fore Brain) :- यह सिर के अगले हिस्से में स्थित होता है। एक निम्न भागों से मिल कर बना होता है- सेरीब्रम (Cerebrum), थेलेमस (Thalamus) एवं हाइपोथेलेमस (Hypothalamus)

3.5.3 मध्य मस्तिष्क (Mid Brain) :- यह सिर के अगले एवं पीछले हिस्से में होता है। इसमें दो भाग होते हैं। पहला टेक्टम (Tectum) एवं दूसरा टेगमेन्टम (Tegmentum)

3.5.4 पश्च मस्तिष्क- यह सिर के पिछले हिस्से में होता है एवं तीन भाग होते हैं- सेरीबेलम (Cerebullum), पोन्स (Pons) और मेड्यूला आबलागेटा (Medulla Oblongata). ये तीनों क्षेत्र मिल कर मस्तिष्क को पूर्ण बनाते हें, तीनों क्षेत्र अपना अपना एक विशिष्ट कार्य करते हैं।

अ. अग्र मस्तिष्क (Fore Brain) -

- यह मस्तिष्क का प्रथम तथा आगे वाला भाग होता है।
- इसमें cerebrum, Thalamus and hypothalamus की संरचनाओं का अध्ययन किया जाता है।
- इसे प्रमस्तिष्क भी कहा जाता है।
- यह मस्तिष्क का सबसे बडा भाग होता है।

- Cerebrum, की बाहरी संरचन तंत्रिका कोशिकाओं की बनी होती है, जिसे cerebral cortex कहते हैं।
- सेरीब्रल कोर्टेक्स (cerebral cortex) तंत्रिका कोशिकाओं का बना होता है, जो भुरे रंग का होता है। इसे ग्रे मेटर (Gray matter) कहते हैं तथा cerebral cortex के नीचे का भाग तंत्रिका तन्तुओं का बना होता है और श्वेत रंग का होता है। इसे (While Matter) व्हाइट मेटर कहते हैं
- Cerebral cortex को ध्यान से देखने पर कुछ उभार पाए जाते हैं, जिसे की (Gyrus) गाइरस कहते हैं तथा दबा हुआ क्षेत्र सलकस (Sulcus) कहलाता है।
- Cerebrum एक तंत्रिका तन्तु द्वारा दो हिस्सों में बंटा होता है, इन दोनों हिस्सों को दाया तथा बाया हेनीस्फीयर (right and left hemisphere) कहते हैं।

कार्पस कोलोसम (Corpus Collosm) तंत्रिका तंतु को दो हिस्सों में बांटता है।

- प्रत्येक Hemsphere में खण्ड (Lobe) पाये जाते हैं ये निम्न प्रकार हैं –

Lobes of cerebrum –

- Ceebrum में मुख्य रूप से 4 खण्ड पाये जाते हैं -
- फ्रन्टल लोब (Front lobe)- यह खण्ड व्यक्ति की वाणी (speech), सोचने की शक्ति (thoughts) शब्द निर्माण (formulation of words) आदि क्रियाओं से सम्मिलित हैं।
- पेराइटल लोब (parietal lobe)- यह खण्ड वस्तुओं , वर्ण अक्षरों आदि को केवल स्पर्श कर पहचानने की (ability) देता है।
- टैम्पोरल लोब (Temporal lobe)- यह खण्ड सुनने की क्रिया से सम्बन्धित है।
- आक्सीपिटल लोब (occipital lobe)- यह खण्ड देखने (visual) की क्रिया से सम्बन्धित है।

- सेरीब्रम के कार्य (functions of cerebrum)-
- Cerebrum सोचने- समझने, याद्दाश्त आदि का ज्ञान-बोध कराने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।
- यह सुनने, देखने, स्पर्श, तापमान, दर्द, गंध आदि संबेदनाओं का ज्ञान कराता है।
- यह ऐच्छिक (voluntary) कार्य को पूर्ण करने में सहायता प्रदान करता है
- प्रमस्तिष्क में स्थित ब्रोकाज क्षेत्र (broca's area) बोलने से सम्बद्ध होता है
- प्रमस्तिष्क के occipital lobe में स्थित दृष्टि क्षेत्र देखने सम्बन्धी कार्य करता है।

थेलेमस (Thalamus):-

- यह अग्र मस्तिष्क का ही भाग होता है।
- यह cerebral hemisphere में कार्पस कैलोसम के नीचे third ventricles के दोनों तरफ स्थित होता है।
- यह तंन्त्रिका कोशिकाओं (nerve cells) तथा तन्त्रिका तन्तुओं (nerve fiber) से बनी गोल संरचना होती है।
- थेलेमस (thalamus) में मूलतः तीन तरह के केन्द्रक होते हैं।
- एक तरह के केन्द्रक को संवेदी केन्द्रक (sensory nuclear) कहा जाता है , जिसका प्रधान कार्य शरीर की भिन्न-2 संवेदी प्रक्रियाओं (sensory nuclear) जैसे दृष्टि (visual) , श्रवण (hearing), दर्द (pain), ताप (Temperature), स्पर्श (touch), स्वाद (taste), गन्ध (smell) आदि से संबन्धित आवेग (cerebrum) को ग्रहण करके प्रमस्तिष्क (cerebrum) के उपयुक्त क्षेत्रों में प्रसारण करना होता है।
- दूसरी तरह के केन्द्रक (nuclear) ऐसे होते हैं, जो लघु मस्तिष्क (cerebellum), मस्तिष्कस्तंभ (brainstem) तथा रेटिकुलर फारमेशन (reticular formation) के आवेग को ग्रहण करके उसे प्रमस्तिष्क के उचित क्षेत्रों मं भेजता है।
- तीसरे तरह के केन्द्रक वेसे होते हैं, जो थैलेमस के भीतर के ही आवेगों का इकट्ठा करके उसे प्रमस्तिष्क में भेजते हैं।
- इन अन्तिम केन्द्रकों (nuclei) को सहचर्य केन्द्रक (association nuclei) भी कहते हैं।

कार्य (function):-

- Thalamus पुनः प्रसारण केन्द्र (relay station) का कार्य करता है अर्थात सवेंदी सूचनाओं को cerebrum में जाने से पहले पुनः प्रसार का कार्य करता है।
- यह emotional reaction जैसे गुस्सा, दर्द आदि अवस्था में प्रतिवर्ति केन्द्र (reflex centre) के रूप में कार्य करता है।

हाइपोथेलेमस (Hypothalamus):-

- थेलेमस के नीचे एक छोटी परन्तु अत्यन्त ही महत्वपूर्ण संरचना है, जिसे हाइपोथैलेमस (hypothalamus) की संज्ञा दी जाती है।
- यह अग्रमस्तिष्क (fore brain) का भाग होता है।
- यह थेलेमस (fore brain) के नीचे पीयूष ग्रन्थि (pituitary gland) के उपर स्थित होता है।
- यह बहुत सारी तंत्रिका कोशिकाओं से मिलकर बना होता है।

- हाइपोथेलेमस (hypothalamus) को मनोवैज्ञानिकों ने काफी महत्वपूर्ण इसलिये बतलाया है, क्योंकि इसका सम्बन्ध प्राणी के संवेग (motion) तथा अभिप्रेरणा (motivation) से अधिक है।

हाइपोथैलेमस के कार्य (Function of hypothalamus):-

- हाइपोथेलेमस व्यक्ति के प्रमुख जैविक अभिप्रेरक जैसे भूख (hunger), प्यास (thrist) यौन (sex) आदि को नियन्त्रित करता है।
- शरीर के भीतर एक सामान्य संतुलन (normal balance) बनाये रखने में हाइपोथेलेमस प्रमुख भूमिका निभाता है।
- हाइपोथेलमस शरीर के तापमान को नियंत्रित तथा नियमित करता है।
- यह स्वायत्त तन्त्रिका तंत्र (autonomic nervous system) के कार्य को नियंत्रित करता है।
- यह अमाशयी अम्ल स्त्राव (gastric acid secretion) को कंट्रोल (control) करता है।
- यह पश्च पीयूष ग्रन्थि (posterior pituitary gland) द्वारा स्त्रावित हारमोन (hormone) को नियंत्रित करता है।
- हाईपोथेलेमस में sleep center भी स्थित रहता है।

Brain stem-

- मस्तिष्क सम्भ मे मध्य मस्तिष्क (middle brain) एवं पश्च मस्तिष्क (hind brain) दोनों ही शामिल होते हैं।
- मध्य मस्तिष्क एक लिंक (link) या सेतु की तरह अग्रमस्तिष्क तथा पश्च मस्तिष्क को जोडने का कार्य करता है।
- यह भाग बहुत सारी तंत्रिका कोशिकाओं तथा तन्तुओं से मिल कर बना होता है।
- मस्तिष्क के इसी भाग को तृतीय तथा चतुर्थ वेन्द्रिकल्स को जोडने वाली संरचना जिसे सेरीब्रल एक्वाडक्ट (cerebral aquaduct) कहते हैं , गुजरती है।
- यह भाग प्रतिवर्त केन्द्र (reflex center) के रूप में कार्य करता है।

मध्य मस्तिष्क **(mid brain)** के मूलतः दो भाग होते हैं।

- उपरी सतह (roof) / टेक्टम (tectum)
- निचली सतह (floor)/ टेगमेन्टम (tegmentum)
- निचली सतह मस्तिष्क के उपरी भाग (higher parts) तथा निचली भाग (lower parts) के बीच तंत्रिका आवेग (nerve impulse) के आने जाने के रास्ते का काम करता है।

इसमें संवेदी तंत्रिका कोश (sensory nerve cells) उपर की ओर जाता है तथा गति तंत्रिका कोश (motion nerve cells) नीचे की ओर रहता है।

- मस्तिष्क के इस भाग द्वारा इस तरह से संवेदी (sensor) तथा गति दोनों तरह की क्रियाओं का संचालन होता है।

- उपरी सतह (tectum)- मध्यमस्तिष्क का दूसरा महत्वपूर्ण भाग उपरी सतह (tectum or roof) है , जिसके द्वारा सिर्फ संवेदी क्रियाएं (sensory function) सम्पन्न की जाती है।

इसमें दो तरह के संवेदन केन्द्र होते हैं।

- एक केन्द्र को श्रेष्ठ कालिकूली (superior colliculi) कहा जाता है तथा दूसरे केन्द्र को निम्न कालिकुली (inferior colliculi) कहा जाता है - श्रेष्ठ कालिकुली एक प्रकार का दृष्टि केन्द्र है , जिसकी मदद से हमें किसी वस्तु का दृष्टि ज्ञान होता है।

- निम्न कालिकुली एक प्रकार का श्रवण केन्द्र (auditory center) है जिसकी मदद से हमें श्रवण का ज्ञान होता है।

पश्च मस्तिष्क (Hind brain):-

- यह मस्तिष्क का तीसरा तथा पिछले वाला भाग होता है।
- इसमें मुख्य रूप से निम्नलिखित तीन संरचनाएं स्थित होती है।
    - सेरीबेलम (cerebellum) या अनुमस्तिष्क
    - पोन्स (pons) या सेतु
    - मेडुला आब्लोंगेटा (medulla oblongala)

सेरीबेलम या अनुमस्तिष्क (Cerebellum):-

- सेरीबेलम पश्च मस्तिष्क (hind brain) का सबसे बडा भाग होता है।

- पश्चमस्तिष्क में पीछे की ओर एक बडी जटिल संरचना (complex structure) है जिसे अनुमस्तिष्क कहा जाता है।

- इसके उपरी सतह पर धुसर पदार्थ (gray matter) होता है तथा उजला पदार्थ (white matter) इसके भीतरी सतह पर होता है। अतः यह उपर से देखने में धुमर नजर आता है। धुसर पदार्थ तथा उजला पदार्थ ठीक इसी तरह से बृहत् मस्तिष्क (cerebrum) में भी पाया जाता है।

- यह एक अण्डाकार (oval) आकृति होती है, जो कि आक्सिपिटल लोब में थोडी उभरी हुई दिखाई देती है।

- अनुमस्तिष्क का भार मस्तिष्क के कुल भार का दसवां भाग होता है

- सेरिबेलम को छोटा मगज (little brain) मस्तिष्क के नाम से भी जाना जाता है।

कार्य (functions):-

- सेरेबेलम शरीर का संतुलन (balance) तथा मुद्रा (posture) को बनाये रखता है।
- यह शरीर की एच्छिक पेशीयों की गतियो में समायोजन (co-ordination)बनाता हे
- यह पेशीयों की तानता (tone) बनाये रखने में भी मदद करता है

सेतु (Pons):- मेडुला के उपर पश्चमस्तिष्क का दूसरा महत्वपूर्ण भाग है, जिसे सेतु कहा जाता है।

- इसमें भिन्न भिन्न प्रकार के संवेदी न्यूरोन (sensory neuron) (neuron) तथा गति न्यूरोन (motor neuron) पाये जाते हैं।
- सिर एवं चेहरे (face) से प्राप्त कुछ संवेदी तंत्रिका आवेग जो स्पर्श (touch), दर्द तथा ताप (temperature) से सम्बन्धित होता है,
- सेतु द्वारा ही ग्रहण किये जाते हैं।
- कुछ गति क्रियाएं (motor expression) जैसे- आनन अभिव्यक्ति (facial expression) में होने वाली पेशीय क्रियाएं (muscular activities) , नेत्र गोलक (eye ball) की गति तथा जबडे की गति (jaw movement) का संचालन भी सेतु द्वारा ही होता है।
- इसके अलावा सेतु में उपरी दिशा तथा निचली दिशा में जाने वाले अनेकों तंत्रिका तन्तु पाये जाते हैं, इन तन्तुओं के सहारे सेतु मस्तिष्क के उच्च भागों तथा निचली भागों के बीच संबंध स्थापित कर पाता है।

कार्य (functions):- पोन्स वेरोलाई (pons varolii) का मुख्य कार्य सामान्य श्वसन ताल (normal respiratory rhythm) को नियमित करना है

मेड्यूला आबलागेटा (Medulla oblongata):-

- मेड्यूला आबलागेटा पश्च मस्तिष्क का सबसे निचे का भाग होता है, जो सुषुम्ना (spinal cord) तथा मस्तिष्क के महत्वपूर्ण भागों (important parts) को जोडता है।
- यह लगभग 2.5 से.मीटर लम्बी संरचना होती है।

- -मेड्यूला द्वारा शरीर के कुछ महत्वपूर्ण कार्यों जैसे- श्वसन क्रिया (respiration), हदयगति (heart rate) रक्त चाप (blood pressure) आदि के संचालन एवं नियंत्रण में मदद मिलती है।
- जीभ (tongue) की गतिविधियों का संचालन एवं नियन्त्रण में भी मेड्यूला महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।
- मेड्यूला में बहुत से तंत्रिका तन्तु भी होते हैं, जिसमें से कुछ उपरी दिशा में अर्थात मस्तिष्क के अन्य महत्वपूर्ण भागों में तथा कुछ नीचे की दिशा में अर्थात सुषुम्ना की ओर जाते हैं।
- इस तरह मेड्यूला द्वारा सुषुम्ना तथा मस्तिष्क के उच्च भागों के बीच तंत्रिका आवेग का आवागमन होता है।

मेड्यूला आबलागेटा में पाये जाने वाले केन्द्र (centres found in medulla oblongala):-

- कार्डियो वास्कुलर केन्द्र (cardio vascular center)
- वासोमोयर केन्द्र (vasomotor center)
- प्रतिवर्त केन्द्र (reflesx center)
- श्वसन केन्द्र (respiratony cente)

कार्य (funcetion):-

- मेड्यूला आबलागेटा हदय (heart) की क्रियाओं का नियंत्रत करता है।
- यह श्वसन क्रियाओं को नियंत्रित करता है।
- यह रक्त वाहिनियों (Blood vessels) के आकार को नियंत्रित करता है।
- यह प्रतिवर्ति क्रियाओं (उल्टी, खांसी, छिंक) पर नियन्त्रण रखता है।

अभ्यास प्रश्न - 4

1. मस्तिष्क का वजन एक सामान्य वयस्क में लगभग ..... होता है।
2. मस्तिष्क को उसकी संरचना और क्रियाप्रणाली के आधार पर .....भागें में बाटा गया है।
3. अग्रमस्तिष्क के सेरीब्रल कोर्टेक्स के आधार को ..... तथा दबे हुए भाग को ..... कहते हैं।
4. सेरीब्रल में दो हिस्से होते हैं, जिन्हे ..... कहते हैं।
5. प्रमस्तिष्क में स्थित ..... बोलने से सम्बद्ध होता है।
6. .....तंन्त्रिका कोशिकाओं तथा तन्त्रिका तन्तुओं से बनी गोल संरचना होती है।
7. हाइपोथेलेमस ..... मस्तिष्क का भाग होता है।
8. शरीर के तापमान को ..... नियन्त्रित करता है।
9. मध्यमस्तिष्क के उपरी सतह को ..... एवं नीचली सतह को ..... कहते हें।
10. सेरीबेलम ..... का भाग होता है।
11. सेरीबेलम को ..... भी कहा जाता है।

3.6 मेरूरज्जु/सुषुम्ना(Spinal Cord)

स्थिति एवं संरचना(Position and structure):-

- मेरूरज्जु केन्द्रय तंत्रिका तन्त्र की दूसरी सबसे महत्वपूर्ण संरचना है।

- यह रीढ की हड्डी में स्थित बेलनाकार संरचना होती है।
- यह आक्सिपिटल अस्थि (occipital bone) के महारन्ध्र फारामेन मैग्नम (foraman magnum) से प्रारम्भ होती है । तथा प्रथम एवं द्धितीय लम्बार कोशिका (lumbar vertebrae) पर समाप्त होती है।
- इसकी लम्बाई सामान्य वयस्य में लगभग 45 सेमी. होती है।
- यह सर्वाइकल क्षेत्र (cervical region) तथा लम्बर क्षेत्र (lumber region) में थोडी मोटी आकार की होती है।
- इसका अन्तिम सिरा काडा इक्विनी (cauda equine) कहलाता है, जो घोडे की (horse tail) जैसे दिखाई देता है।
- यह चारों ओर से मस्तिष्क आवरण (meninges) तथा सेरिब्रोस्पाइनल द्रव (cerebrospinal fluid) (fluid) द्वारा ढका रहता है।
- इसके दोनों ओर से 31 जोडी तंत्रिकाएं निकलती हैं । इन तंत्रिकाओं को सुषुम्ना तंत्रिकाएं (sinal nerves) कहते हैं।

कार्य (functions):-

- मेरूरज्जु मस्तिष्क शरीर के अन्य हिस्सों के बीच लिंक स्थापित करने का
- काम करता है।
- यह प्रतिवर्ति क्रिया (Reflex action) के लिए जगह देता है।
- यह स्वायत्त तन्त्रिका तन्त्र (autonomic nervos system) के साथ इन्टरकनेक्टेड (interconnected) होती है।

3.7 स्वायत्त तंत्रिका तंत्र(Autonomic Nervous System)

- परिधिय तंत्रिका तंत्र (peripheral nervous system) का यह अधिक महत्वपूर्ण भाग है तथा इससे तात्पर्य उन तंत्रिका कोशिकाओं (neurons or nerve cells) से होता है जिनका सम्बन्ध वैसी मांसपेशियों एवं ग्रथियों (glands) से संचालन एवं नियंत्रण से होता है, जो हमारी इच्छा के अनुसार नहीं बल्कि अपनी इच्छानुसार कार्य करती हैं । जैसे वृक्क (kidney) तथा हदय (heart) की मांसपेशियों का कार्य, भिन्न भिन्न अन्तः स्त्रायी ग्रन्थिया (endocrine glands) जैसे यौन ग्रन्थि (sex gland), पीयूष ग्रन्थि (pituitary gland) आदि के कार्य का संचालन एवं नियन्त्रण स्वायत्त तंत्रिका तंत्रद्वारा ही होता है । अतः यह कहा जा सकता है कि स्वायत्त तंत्रिका तन्त्र अपने कार्य के मामले में स्वतन्त्र होता है।
- यद्यपि स्वायत्त तंत्रिका तन्त्र का सम्बन्ध मस्तिष्क तथा सुषुम्ना (spinal cord) से होता है, फिर भी इसके द्वारा संचालित क्रियाएं वैसी होती है जिन पर व्यक्त् की इच्छा का कोई नियंत्रण नहीं होता है। जैसे- हम अपनी इच्छा से अपने पेट की मांसपेशियों को भोजन पचाने या न पचाने की

आज्ञा नहीं दे सकते हैं। इसी प्रकार हदय की मांसपेशियों का अपनी इच्छा के अनुसार कार्य करने या न करने की अनुमति नहीं दे सकते हैं। ऐसी सारी क्रियाओं का नियंत्रण स्वावत्त तंत्रिका तंत्र से होता है।

कार्यवाही के आधार पर स्वायत्त तंत्रिका तंत्रको निम्नलिखित दो भागों में बाटा गया है।

1 अनुकंपी तंत्रिका तंत्र(Sympathetic nervous system)

2 उपअनुकंपी तंत्रिका तंत्र(parasympathetic nervous system)

3.7.1 अनुकंपी तंत्रिका तंत्र की बनावट तथा कार्य(Structure and function of sympathetic nervous system):- अनुकंपी तंत्रिका तंत्र का स्थान मेरूरज्जु (spiral cord) के थोरोकिक (thoracic) एवं लुम्बर (lumbor) क्षेत्रों में होता है। इसलिए अनुकंपी तंत्रिका तंत्र को थोरोकिकलुम्बर तंत्र (throaciclumbar system) भी कहते हैं। इस तंत्र में तंत्रिका कोशिकाओं के समूह तथा अनेक साधारण तथा जटिल संधिस्थल (synapses) आदि पाये जाते हैं। इन सभी तरह के तंत्रिका कोशिकाओं का एक्सान मुख्य गण्डिका का निर्माण करते हैं जहा इनका सम्बन्ध कुछ ऐसे दूसरे तंत्रिका कोशिका से होता है जो अनुकंपी तंत्र के तंत्रिका आवेग को चिकनी मांसपेशियों (smooth muscles) तथा ग्रन्थियों तक पहॅचा देते हैं। यही कारण है कि अनुकंपी तंत्रिका तंत्र(sympathetic nervous system) एक पूरे इकाई के रूप में कार्य कर सकने में समर्थ हो पाता है क्योंकि इस तंत्र द्वारा भेजे गये तंत्रिका आवेग एक ही साथ ग्रन्थियों एवं चिकनी मांसपेशियों दोनों में पहुचजाते हैं।

3.7.2 उपअनुकपी तंत्रिका तंत्र की बनावट एवं कार्य (Structure and function of parasympathetic nervous system):- इस तंत्र द्वारा तंत्रिका आवेग सुषुम्ना (spinal cord) के कै्रनियल cranial) तथा सैक्रल क्षेत्र से होते हुए बाहर निकलता है। अतः इस तंत्र को क्रेनियोसैक्रल तंत्र(carniosacral system) भी कहा जाता है। उपअनुकंपी तंत्र की गण्डिका (ganglia) अनुकंपी तंत्र (sympathetic nervous system) के समान एक जगह एकत्रित नहीं होते हैं बल्कि उन मांसपेशियों तथा ग्रन्थियों के नजदीक फैले होते हैं जिनमें वे अपनी सूचनाएं या तंत्रिका आवेग छोडते है। यही कारण है कि उपअनुकंपी तंत्र एक इकाई के रूप मं अनुकंपी तंत्रिका तंत्र(sympathetic nervous system) के समान कार्य न करके यह थोडा-थोडा करके (piecemeal) कार्य करता है अर्थात किसी खास समय में कुछ मांसपेशियों एवं ग्रन्थियों में तो वह तंत्रिका आवेग पहुंचाता है परन्तु कुछ में नहीं।

3.8 मस्तिष्क का सिद्धान्त (Theory of Brain)

- मानव मस्तिष्क के कार्य करने के सिद्धान्तों को कुछ वैज्ञानिकों जैसे Boring (1929 and 1950) and lashley (1929) द्वारा सर्वप्रथम प्रस्तुत किया गया था।
- इनके अनुसार मस्तिष्क दो तरह के सिद्धान्तों पर कार्य करता है। यह सिद्धान्त हैं -

मानव मस्तिष्क के कार्य करने के सिद्धांत

- लोकलाईजेशन सिद्धान्त(localization theory):-

इस सिद्धान्त के अनुसार मस्तिष्क ‘‘ किसी विशेष कार्य को करने एवं उसे नियन्त्रित करने के लिए अपने अंग के किसी विशेष भाग का उपयोग करता है। ’’

जैसे कि किसी ध्वनि को सुनना और उस पर प्रतिक्रिया देना मस्तिष्क के सेरीब्रम (cerebrum) में स्थित टेम्पोरल लोब (Temporal lobe) द्वारा किया जाता है।

- मास लोकलाईजेशन सिद्धान्त **(Field/mass localization):-**

इस सिद्धान्त के अनुसार ‘‘ मस्तिष्क समग्र रूप से एकक इकाई के रूप में कार्य करता है।’’

जैसे ‘‘किसी दुर्घटना का आभास होते ही मस्तिष्क अपने सभी भागों की सहायता से जिसमें कि देखना, सुनना, चलना इत्यादि सम्मिलित है , उस स्थान से अपने आप को विभक्त करने कि किया करता है।

3.9 सारांश (Summary)

ग्राहक, प्रभावक तथा समायोजक तीन प्रमुख प्रक्रम है जिनके मदद से व्यक्ति किसी उद्दीपक के प्रति अनुक्रिया कर पाता है। ग्राहक, उद्दीपक के उत्तेजन को प्राप्त करते हैं तथा प्रभावक ब्राह क्रियाओं के संचालन में मदद करते हैं। समायोजक ग्राहक तथा प्रभावक में सम्पर्क स्थापित कर उन दोनों के कार्य का सरल बनाते हैं। ग्राहक के कई प्रकार हैं जिनमें ब्राह ग्राहक, अन्तग्राहक तथा मध्यग्राहक प्रमुख हैं। प्रभावक के दो मुख्य प्रकार हैं- मांसपेशियां और ग्रन्थि।

1. न्यूरो तंत्रिका तंत्र की सबसे सुक्ष्मतम इकाई है। इसकी संरचना में शाखिका, कोश शरीर तथा एक्सान प्रमुख है। इनके तीन प्रकार होते हैं- संवेदी न्यूरोन, गतिवाही न्यूरोन तथा साहचर्य न्यूरोन।
2. तंत्रिका आवेग से तात्पर्य एक अतिलघु अवधि के लिए एक्सान में प्रभावित होने वाली वैद्युतिक घटना से होती है। चूंकि आवेग लघु एवं तीव्र होता है , अतः इसे स्पाइक भी कहा जाता है। तंत्रिका आवेग की आवृति मनुष्यों में प्रति सेकड 500 तंत्रिका आवेग तक होते हैं तथा तंत्रिका आवेग की गति प्रति सेकंड 100 मीटर तक होता है।
3. दो न्यूरोन के मिलन स्थान को संधिस्थल कहा जाता है। दो न्यूरान जहा आपस में मिलते है, वे एक दूसरे से सटे हुए नहीं होते हैं बल्कि इन दोनों के बीच में एक हल्का रिक्ति होता है। जिसे संधिस्थल दरार कहा जाता है। संधि स्थल को तंत्रिका आवेगन्यूरोट्रांसमीटर की मदद से पार करते हैं। न्यूरोट्रांसमीटर के कई प्रकार होते हैं।
4. तंत्रिका तंत्र के मुख्य दो प्रकार हैं- केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र तथा परिधीय तंत्रिका तंत्र।
5. केन्द्रिय तंत्रिका तंत्र में सुषुम्ना तथा मस्तिष्क की संरचना तथा कार्य पर अधिक बल डाला गया है।
6. परिधीय तंत्रिका तंत्र के दो मुख्य भाग है - कायिक तंत्रिका तंत्र तथा स्वायत्त तंत्रिका तंत्र। इसमें स्वायत्त तंत्रिका तंत्र की संरचना तथा कार्य पर अधिक बल डाला गया है।

3.10 शब्दावली

• ओटोनोमिक नर्वस सिस्टम	-	स्वायत्त तन्त्रिका तन्त्र
• एक्सान	-	कोशिका काय से निकलने वाला प्रवर्ध जो आवेगो को दूर ले जाता है
• ब्रेन	-	मस्तिष्क
• क्रेनियल नर्व	-	कपालीय तंत्रिकाएं जिनकी संख्या 12 जोडी होती है
• सेन्ट्ल नर्वस सिस्टम	-	केन्द्रिय तंत्रिका तंत्र
• ड्यूरा मेटर	-	मस्तिष्क एवं सुषुम्ना रज्जु को ढकने वाली बाहरी परत
• मेनिन्जीज	-	मस्तिष्क एवं सुषुम्ना रज्जु को ढकने वाली परत
• माइलिन शीथ	-	तंत्रिकाओं के अक्ष तंतुओं के चारों और की परत
• न्यूरोलेमा	-	तंत्रिका तंतुओं को चारों आरे बंद करने वाली एक पतली झिल्लीनुमा चादर
• न्युरोन	-	तंत्रिका कोशिका
• पेरीफ्रल नर्वस सिस्टम	-	परीधिय/परिसरीय तंत्रिका तंत्र
• पाया मेटर	-	मस्तिष्क एवं सुषुम्ना को चारों आरे से ढकने वाली भीतरी परत
• स्पाइनल कोड	-	सुषुम्ना रज्जु/ मेरूरज्जु
• स्पाइनल नर्वज	-	मेरूरज्जु से निकलने वाली 31 जोडी तंत्रिकाएं
• सिम्पैथेटिक नर्वस सिस्टम	-	अनुकम्पी तंत्रिका तंत्र

3.11 अभ्यास प्रश्न के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1

1. न्यूरान, तंत्रिका कोशिका 3. तंत्रिका आवेग
2. साइटोप्लाज्म

अभ्यास प्रश्न 2

1. प्राक सधि

अभ्यास प्रश्न 3

1. केन्द्रिय तंत्रिका तंत्र तथा परिधिय तंत्रिकातंत्र
2. मस्तिष्क एवं सुषुम्ना
3. अनुकंपी तंत्रिका तंत्र एवं उपअनुकंपी तंत्रिका

अभ्यास प्रश्न 4

1. 1.3 किलोग्राम 2 तीन 3. गाइरस , सलकस

4 दायां तथा बायां हेमीस्फीयर 5 ब्रोकाज क्षेत्र

6 थेलेमस 7 अग्र 8 हाइपोथेलेमस

9 टेक्टम , टेगमेन्टम 10 पश्च मस्तिष्क

11 छोटा मगज

अभ्यास प्रश्न 5

1 45 से.मीटर 2 मस्तिष्क आवरण, सेरीब्रोस्पाईनल द्रव

3 सुषुम्ना तंत्रिकाएं

3.12 निबंधात्मक प्रश्न

- तंत्रिका तंत्र से आप क्या समझते हैं? न्यूरान की संरचना एवं कार्यप्रणाली का सचित्र वर्णन कीजिए।
- तंत्रिका तंत्र का वर्गीकरण कीजिए।
- केन्द्रिय तंत्रिका तंत्र को विस्तारपूर्वक वर्णित कीजिए।
- स्वायत तंत्रिका तंत्र का वर्णन कीजिए।

3.13 संदर्भ ग्रंथ सूची

- जोशी राकेश 2015, ‘‘मानव शरीर रचना एवं क्रिया विज्ञान’’ अमित प्रकाशन, जयपुर
- श्रीवास्तव , डी.एन (2009), ‘‘आधुनिक सामान्य मनोविज्ञान ’’ आगरा श्री विनोद पुस्तक मंदिर।
- सिंह , अरूण कुमार (2012)‘‘ आधुनिक सामान्य मनोविज्ञान ’’ नई दिल्ली मोतीलाल बनारसीदास।

इकाई - 4

प्रत्यक्षीकरण प्रक्रम: स्वरूप एवं उपागम या सिद्धांत

Perception Process: Nature and Approaches or Theories

इकाई की रूपरेखा

4.1 प्रस्तावना

4.2 उद्देश्य

4.3 प्रत्यक्षीकरण: अर्थ

4.3.1 परिभाषा

4.3.2 प्रत्यक्षीकरण का स्वरूप

4.3.3 प्रत्यक्षीकरण में सम्मिलित प्रकियाएं

4.4 प्रत्यक्षीकरण तथा संवेदना में अन्तर

4.5 प्रत्यक्षीकरण के उपागम या सिद्धांत

4.6. गेस्टाल्ट उपागम या सिद्धांत

4.6.1 आकृति षृष्ठभूमि प्रत्यक्षीकरण

4.6.2 प्रत्यक्षज्ञानात्मक संगठन के नियम

4.6.3 समाकृतिकता का सिद्धांत

4.6.4 क्षेत्र बल

4.6.5 गेस्टाल्ट उपागम या सिद्धांत की आलोचनाएं

4.7 व्यवहारवादी उपागम या सिद्धांत

4.7.1 व्यवहारवादी उपागम या सिद्धांत की आलोचनाएं

4.8 सांराश

4.9 अभ्यास प्रश्नो के उत्तर

4.10 बोध प्रश्न

4.11 संदर्भ ग्रंथ सूची

4.1 प्रस्तावना

प्रत्यक्षीकरण एक मानसिक प्रकिया हैं। पूर्व अनुभव के आधार पर संवेदना की व्याख्या करना या उसमें अर्थ जोडना "प्रत्यक्षीकरण"हैं।

प्रस्तुत इकाई में आप प्रत्यक्षीकरण का अर्थ, परिभाषा, स्वरूप व प्रत्यक्षीकरण तथा संवेदना में अन्तर तथा गेस्टाल्ट उपागम या सिद्धांत व व्यवहारवादी उपागम या सिद्धांत का विस्तारपूर्वक अध्ययन कर सकेंगे।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढने के बाद आप

- प्रत्यक्षीकरण का अर्थ बता सकेगे तथा परिभाषित कर सकेंगे।
- प्रत्यक्षीकरण का स्वरूप बता सकेंगे।
- प्रत्यक्षीकरण तथा संवेदना में अन्तर जान पायेगें।
- प्रत्यक्षीकरण के गेस्टाल्ट उपागम या सिद्धांत को बता सकेंगे।
- प्रत्यक्षीकरण के व्यवहारवादी उपागम या सिद्धांत को बता सकेंगे।

4.3 प्रत्यक्षीकरण: अर्थ

ज्ञानेन्द्रियो द्वारा बाह्य जगत का आभास करना ही प्रत्यक्षीकरण कहलाता हैं। प्रत्यक्षीकरण की प्रक्रिया में पॉच ज्ञानेन्द्रियॉ ऑख, कान, नाक, जीभ व त्वचा का महत्वपूर्ण स्थान हैं। इन ज्ञानेन्द्रियों के अलावा व्यक्ति की मनोवैज्ञानिक स्थिति भी उसके प्रत्यक्षणात्मक प्रक्रियाओं पर निर्भर करता है।

प्रत्यक्षीकरण प्रक्रियाएं संवेदन (Sensation) की प्रकिया से प्रारम्भ होती है और किसी व्यवहार करने की क्रिया के पहले तक होती रहती हैं। अतः प्रत्यक्षीकरण की प्रक्रियाएं संवेदन तथा व्यवहार करने की क्रिया के बीच की प्रक्रिया होती है।

4.3.1 परिभाषा:

रैथस (Rathus,1984) के अनुसार:

''प्रत्यक्षीकरण वह मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया है जिसके द्वारा संवेदी सूचनाओं की व्याख्या की जाती हैं।'

एटकिन्सन, एटकिन्सन तथा हिलगार्ड्र (Atkinson, Atkinson and Hilgard, 1983) के अनुसार :

''प्रत्यक्षीकरण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा वातावरण में उपस्थित उद्दीपकों की व्याख्या करते हैं तथा उसे संगठित करते हैं।''

सेन्ट्रोक (Santrock,2000) के अनुसार :

''संवेदी सूचनाओ को अर्थ प्रदान करने के लिए मस्तिष्क द्वारा इसे संगठित एंवम व्याख्या करने की प्रकिया को ही प्रत्यक्षण कहा जाता है।''

उर्पयुक्त विवरण के आधार पर प्रत्यक्षण की विस्तृत एवं तुलनात्मक रूप से अधिक वस्तुनिष्ठ परिभाषा इस प्रकार दी जा सकती है -

'' प्रत्यक्षीकरण एक सक्रिय, चयनात्मक एवं संज्ञानात्मक, मानसिक प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्ति को अपने आन्तरिक अंगो (आन्तरिक वातावरण) तथा बाह्य वातावरण में उपस्थित वस्तुओं का तात्कालिक अनुभव होता है।''

4.3.2 प्रत्यक्षीकरण का स्वरूप :

प्रत्यक्षीकरण की निम्न विशेषताएं इसके स्वरूप को स्पष्ट करती है -

1 प्रत्यक्षीकरण के लिए उद्दीपकों का होना अत्यंत आवश्यक हैं।

2. प्रत्यक्षीकरण में उद्दीपकों का तात्कालिक (immediate) अनुभव होता है अर्थात जब कोई उद्दीपक हमारें सम्मुख आता है, तो उसका अनुभव उसकी उपस्थिति के साथ ही होता है ना कि कुछ समय के बाद।

3 प्रत्यक्षीकरण संज्ञानात्मक प्रक्रिया (CognitiveProcess) है, संज्ञानात्मक प्रक्रिया का अर्थ है उद्दीपकों के बारे में ज्ञान प्राप्त करना।

4. प्रत्यक्षीकरण एक चयनात्मक प्रक्रिया (Selective Process) है अर्थात जब हमारे सामने कई उद्दीपकों एक साथ उपस्थित होते हैं तो हम अपनी आदत, प्रेरणा तथा रूचि के अनुसार उस पर ध्यान देते हैं।

5. प्रत्यक्षीकरण एक सक्रिय मानसिक प्रक्रिया (Mental Process) है।

6. प्रत्यक्षीकरण के अन्तर्गत उद्दीपकों को संगठित किया जाता है, जैसे किसी गीत के बोल बिखरें हुए हो तो उनको संगठित करके ही व्यक्ति गीत की पहचान कर सकता है।

वुण्ट के अनुसार: ज्ञान की पहली अवस्था संवेदना है तथा दूसरी अवस्था प्रत्यक्षीकरण हैं।

वुण्ट प्रत्यक्षीकरण को संवेदना तथा उसके अर्थ का योगफल मानते हैं जबकि गेस्टाल्टवादी सभी मनोवैज्ञानिक क्रियाओं का आधार प्रत्यक्षीकरण को मानते है।

गेस्टाल्टवादी मानते है कि Perception is the immediate awareness of the world around us.

4.3.3 प्रत्यक्षीकरण में सम्मिलित प्रकियाएं :

प्रत्यक्षीकरण एक जटिल मानसिक प्रक्रिया होने के कारण इसमें अनेक क्रियाएं घटित होती हैं और अनेक संवेदनाओ का समावेश प्रत्यक्षीकरण के अन्तर्गत होता है, जैसे –

1 संग्राहक प्रकिया (Receptor process):

ज्ञानेन्द्रियों की सक्रियता पर ही उद्दीपक प्रत्यक्षीकरण निर्भर करता है। सर्वप्रथम उतेजना ज्ञानेन्द्रियों को प्रभावित करती हैं जिससे स्नायुप्रवाह उत्पन्न होता हैं। यही स्नायुप्रवाह स्नायुओं के माध्यम से सुषुम्ना (Spinal code) से होता हुआ मस्तिष्क तक पहुंचता है और हमें उतेजना की अनुभूति होती है। एक समय में एक ही उद्दीपक कई ज्ञानेन्द्रियों को उतेजित कर सकता हैं।

2 एकीकरण प्रकिया (Unification process):

जब एक उद्दीपक हमारी विभिन्न ज्ञानेन्द्रियों को उद्वीप्त करता है एवं उससे उत्पन्न आवेगो का अर्थ जब मस्तिष्क में पहुँचता है, तो वह एकीकृत हो जाता है और हमें उद्दीपक का प्रत्यक्षीकरण हो जाता हैं। जैसे - जब कोई फूल हमारे सामने आता है, तो हमारी ऑख, नाक व त्वचा तीनों ही ज्ञानेन्द्रिया उद्वीप्त होती है और हमें फूल का प्रत्यक्षीकरण होता हैं।

3 प्रतीकात्मक प्रकिया (Symbolic process):

स्नायुप्रवाह मस्तिष्क में पहुँचकर पूर्व अनुभवों को जागृत करता है। इसी प्रकार किसी वस्तु का प्रत्यक्षीकरण उससे सम्बन्धित पूर्व अनुभवों का प्रतीक बन जाता है, जैसे - किसी की माँ को देखकर अपनी माँ की याद आना।

4 भावात्मक प्रकिया (Affective process):

वस्तु का प्रत्यक्षीकरण होने पर प्राणी के मन में उस वस्तु को लेकर विभिन्न भाव सुखद, दु:खद एंवम तटस्थ उत्पन्न होते जैसे - किसी पुराने मित्र को मिलने पर सुखद अनुभूति होती हैं।

अभ्यास प्रश्न 1

1. प्रत्यक्षीकरण की प्रक्रियाएं …… …… तथा …… करने की क्रिया के बीच की प्रक्रिया होती है।
2. प्रत्यक्षीकरण प्रक्रिया का प्रारम्भ …… से होता हैं।
3. प्रत्यक्षीकरण के लिए …… …… का होना अत्यंत आवश्यक हैं।

4.4 प्रत्यक्षीकरण तथा संवेदना में अन्तर :

प्रत्यक्षीकरण तथा संवेदना में निम्न अन्तर पाये जाते हैं -

संवेदना(Sensation)	**प्रत्यक्षीकरण (Perception)**
यह एक सरल एवं मानसिक प्रकिया है।	यह एक जटिल मानसिक प्रकिया है।
संवेदना प्रत्यक्षीकरण का एक भाग है।	प्रत्यक्षीकरण में संवेदना के अतिरिक्त अन्य मानसिक प्रक्रियाएं भी सम्मिलित होती है।
संवेदना केवल मानसिक उपस्थितिकरण (Presentative) है।	प्रत्यक्षीकरण मानसिक उपस्थितिकरण (Presentative) तथा प्रतिनिधि (Representative)दोनों ही है।
संवेदना किसी अनुभूति है अर्थात हमें वस्तुओं का केवल प्राथमिक परिचय कराती हैं।	प्रत्यक्षीकरण वस्तु के संबंध का स्पष्ट ज्ञान है अर्थात हमें वस्तुओं का ज्ञान प्रदान करता हैं।
संवेदना एक उद्दीपक द्वारा उत्पन्न व्यक्ति का प्रथम प्रत्युत्तर है।	प्रत्यक्षीकरण एक उद्दीपक द्वारा उत्पन्न व्यक्ति का दूसरा प्रत्युत्तर है, जो संवेदना के बाद होता हैं।
संवेदना में व्यक्ति अपेक्षाकृत निष्क्रिय होता है।	प्रत्यक्षीकरण में व्यक्ति सक्रिय होकर पूर्व ज्ञान के आधार पर संवेदना को अर्थ प्रदान करता है।

अभ्यास प्रश्न 2

1. संवेदना एक .... एवं .... प्रकिया है।
2. प्रत्यक्षीकरण में व्यक्ति सक्रिय होकर .... के आधार पर संवेदना को अर्थ प्रदान करता है।

4.5 प्रत्यक्षीकरण के उपागम या सिद्धांत

प्रत्यक्षीकरण की प्रक्रिया को पूर्णरूपेण समझने के लिए मनोवैज्ञानिकों ने मुख्यत: सात तरह के उपागमों का प्रतिपादन किया है जो निम्नांकित है।

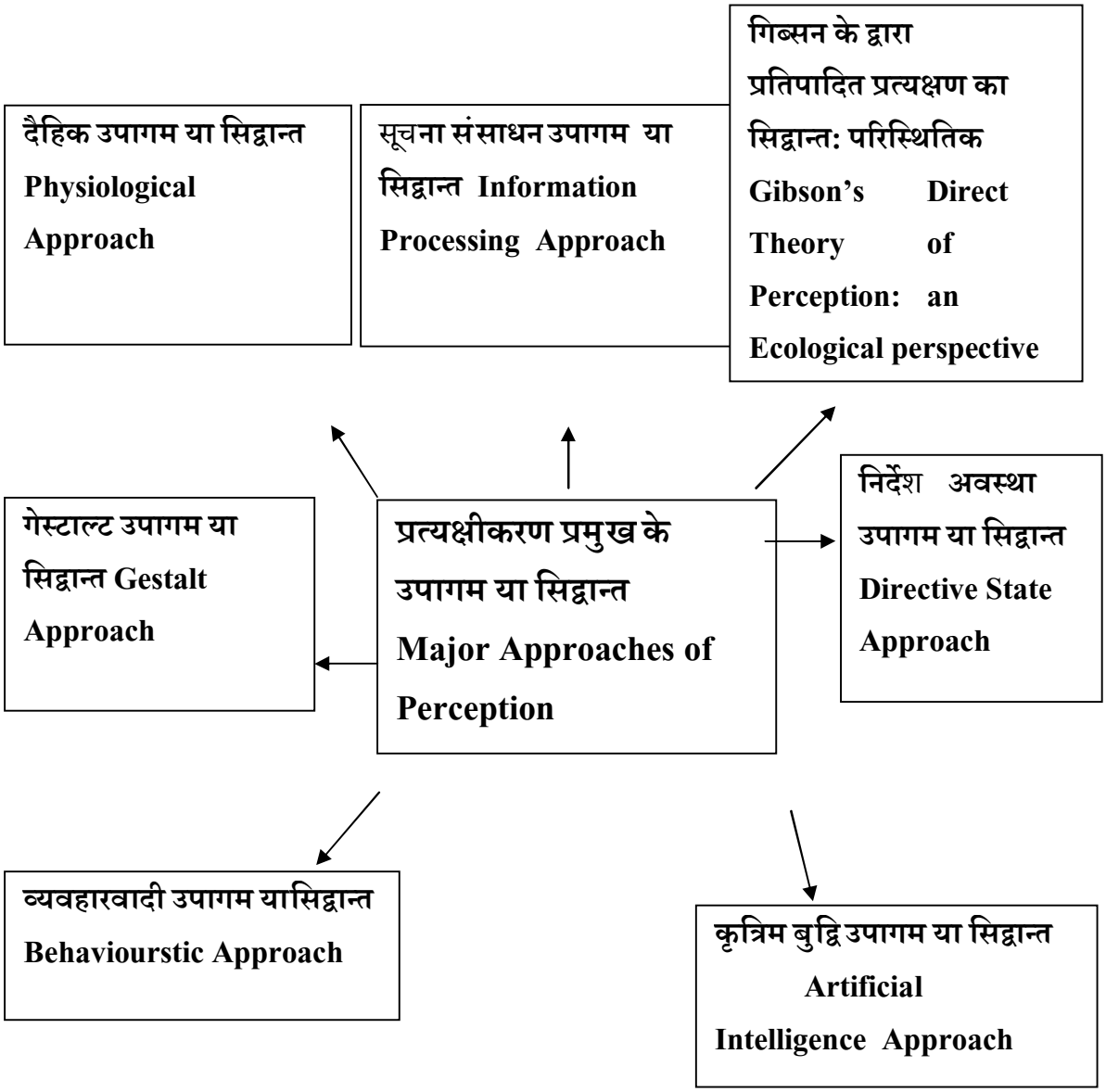

4.6 गेस्टाल्ट उपागम या सिद्धांत

जर्मनी में वदाईमर (Wertheimer) तथा उनके सहयोगी कोहलर(Kohler) एवं कोफ्का(Koffka) के सहयोग से संचालित गेस्टाल्ट मनोविज्ञान की विचारधारा गति के भ्रम के अध्ययन से प्रारम्भ हुई।

गेस्टाल्ट का अर्थ सम्रगता (wholeness) से है। गेस्टाल्ट सम्प्रदाय के मनोवैज्ञानिक का मत है कि व्यक्ति उद्दीपक का प्रत्यक्षीकरण उद्दीपक के खण्डों(part) में न करके पूर्ण रूप में करता है। प्रत्यक्षीकरण के गेस्टाल्ट उपागम या सिद्धांत की व्याख्या चार भागों में बा ॅटकर कर सकते हैं-

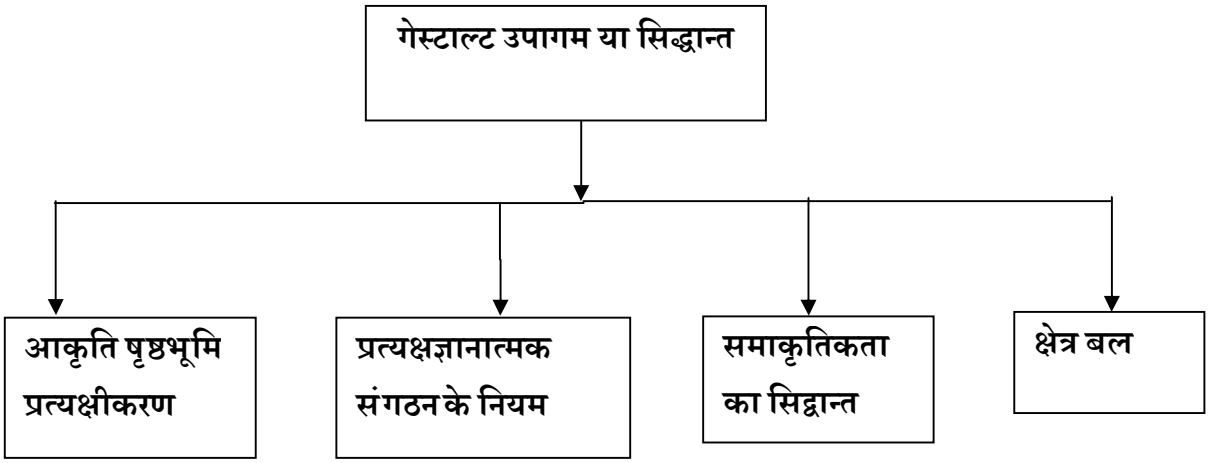

4.6.1 आकृति षृष्ठभूमि प्रत्यक्षीकरण (Figure Ground Perception):

जब व्यक्ति किसी उद्दीपक का प्रत्यक्षीकरण करता है तो उसके प्रत्यक्षीकरण की एक विशेषता यह होती है कि वस्तु या उद्दीपक का प्रत्यक्षीकरण दो अंशो में लेकिन एक साथ समन्वित रूप से होता है। व्यक्ति को इन अंशो का विभाजन नहीं करना पडता है परन्तु यह विभाजन स्वतः ही प्रत्यक्षीकरण प्रक्रिया के दौरान हो जाता है।

जब व्यक्ति किसी वस्तु विशेष का प्रत्यक्षीकरण करता है तो उसे वस्तु का कुछ भाग अत्यंत स्पष्ट दिखाई देता है तथा कुछ तुलनात्मक रूप से कम स्पष्ट दिखाई देता है। जो भाग अत्यंत स्पष्ट दिखाई देता है उसे आकृति तथा जो भाग कम स्पष्ट दिखाई देता है उसे पृष्ठभूमि कहा जाता है। इस तरह के प्रत्यक्षण को आकृति पृष्ठभूमि प्रत्यक्षीकरण कहा जाता है।

सर्वप्रथम रूबिन ने आकृति पृष्ठभूमि गोचर का अध्ययन किया और परिणाम निकाला कि हमारा प्रत्यक्षीकरण आकृति व पृष्ठभूमि दो भागों में बंट जाता है जिसके चारों ओर एक सीमा होती है जिसे पलटावी आकृति (Reversable figure) कहा जाता है।

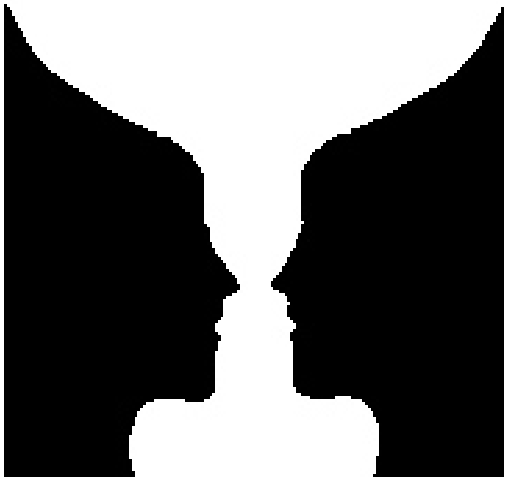

चित्र 4.1 पलटावी आकृति (Reversable figure)

चित्र 4.1 का यदि उजला भाग आकृति के रूप में उभरता है तो व्यक्ति को फूलदान दिखाई देता है तथा काला वाला भाग पृष्ठभूमि के रूप में दिखाई देता है परन्तु जब काला वाला भाग स्पष्ट रूप से यानि आकृति के रूप में दिखाई देता है तो व्यक्ति को आमनें सामनें हुए दो व्यक्तियों का चेहरा दिखलायी देता है तथा उजला भाग पृष्ठभूमि के रूप में दिखाई देता है। ऐसी आकृतियों को पलटावी आकृति (Reversable figure) कहा जाता हैं।

आकृति तथा पृष्ठभूमि में अन्तर

आकृति(Figure)	**पृष्ठभूमि(Background)**
आकृति का आकार निश्चित होता है।	पृष्ठभूमि आकारहीन होती है।
आकृति सदैव पृष्ठभूमि पर उभरी हुई होती है।	पृष्ठभूमि सदैव आकृति के पीछे होती है।
आकृति अधिक प्रभावपूर्ण तथा स्मरणीय होती है।	पृष्ठभूमि अनिश्चित होने के कारण प्रभावहीन होती है।
आकृति का स्थान निश्चित तथा सीमित होता है।	पृष्ठभूमि का विस्तार अंनत हो सकता है।
आकृति में वस्तु गुण(Objective character) अधिक मात्रा में पाये जाते हैं।	पृष्ठभूमि में वस्तु गुण(Objective character) अपेक्षाकृत्त कम मात्रा में पाये जाते हैं

हमारे दृष्टिक्षेत्र में अनेक उद्दीपक पाये जाते हैं जिनमें रंग, चमक,रूप तथा आकार सम्बन्धी विभिन्नताएं पायी जाती है अर्थात उनके ऊर्जा वितरण में अंतर पाया जाता है। उद्दीपकों का सरलता

से प्रत्यक्षीकरण ऊर्जा विभिन्नताओं के कारण होता है। यदि ऊर्जा का वितरण समान हो और उसमें विषमता न पायी जाए तो आकृति पृष्ठभूमि में अन्तर करना मुश्किल होगा।

जब दृष्टिक्षेत्र में विधमान उद्दीपको को भौतिक ऊर्जा समान रूप से वितरित हो तो ऐसा उद्दीपक क्षेत्र मनोवैज्ञानिक शब्दावली में गैन्जफेल्ड कहलाता है।

4.6.2 प्रत्यक्षज्ञानात्मक संगठन के नियम (Principles of Perceptual Organization):

यह दो प्रकार के नियम पर आधारित होता है:

(A) परिधीय नियम (Peripheral principle)

(B) केन्द्रीय नियम (Central principle)

A. परिधीय नियम:

इसमें उन नियमों को रखा जाता है, जो कि उद्दीपक से सम्बन्धित होते हैं, उद्दीपक के गुणों से सम्बन्धित सभी नियम जन्मजात (Inborn) होते हैं न कि अर्जित किये जाते हैं। ये नियम इस प्रकार है-

1. **समीपता का नियम (Principles of proximity or nearness)**
   इस नियम के अनुसार जो उद्दीपक दूसरे उद्दीपक से समय या स्थान मे नजदीक होते हैं, उन्हे व्यक्ति आपस मे संगठित कर प्रत्यक्षीकरण करता।
2. **समानता का नियम principles of similarity)**
   इस नियम के अनुसार जो उद्दीपक दूसरे उद्दीपक से समान होते हैं, उन्हे व्यक्ति आपस मे संगठित कर प्रत्यक्षीकरण करता हैं तथा उन्हें एक स्पष्ट आकृति के रूप में देखता है।
3. **सममिति का नियम (principles of symmetry)**

   इस नियम के अनुसार जो उद्दीपक अधिक सुडौल होता है। जिन उद्दीपकों में सममिति नहीं होती उसे व्यक्ति उसे स्पष्ट आकृति में संगठित देख पाता है। जबकि जिन उद्दीपकों में सममिति नहीं होती उसे व्यक्ति उसे स्पष्ट आकृति में संगठित नहीं देख पाता है।
4. **निरन्तरता का नियम (principles of continuation)**

   इस नियम के अनुसार जिन उद्दीपकों में या उद्दीपकों के अंशो में एक ही दिशा में आने या जाने की निरन्तरता पायी जाती है, उन्हे व्यक्ति मे एक समूह में संगठित कर प्रत्यक्षीकरण करता हैं।
5. **सामान्य गति का नियम (principles of symmetry)**
   जब दृष्टि क्षेत्र के उद्दीपक एक साथ एक दिशा में एक वेग से गतिशील होते हैं तो प्रत्यक्षीकरण संगठित रूप में होता है।
6. **पूर्ति का नियम (principles of closure)**

   इस नियम के अनुसार व्यक्ति उद्दीपक मे रिक्त स्थानो को अपनी ओर से भरकर उसे संगठित पैर्टन के रूप मे देखता है।

B. केन्द्रीय नियम:

यह नियम प्राणी की व्यक्तिगत विषेशताओं पर निर्भर करते हैं। इन नियमो को व्यक्ति अपने जीवन काल में अर्जित करता हैं। यह जन्मजात नहीं होते हैं। यह नियम निम्नलिखित है -

1. **अर्थ का नियम (principe of learning)**
   व्यक्ति जिन उद्दीपकों का अर्थ समझता है उसे एक निश्चित पैर्टन में संगठित करके देखता है।
2. **सेट का नियम (principle of set)**

   जब व्यक्ति किसी उद्दीपक को देखता है, तो उसके मन में एक विशेष प्रकार की मानसिक वृति उत्पन्न हो जाती हैं जिसके कारण वह उद्दीपकों को संगठित कर उसे एक निश्चित पैर्टन के रूप में देखता है।
3. **अर्थगर्भता का नियम (law of preganz)**

   प्रस्तुत किये गये उद्दीपक में कितनी अर्थगर्भता पायी जाती है अर्थात उसके कितने अधिक अर्थ का अनुभव हमें होता है, प्रत्यक्षीकरण को प्रभावित करता हैं।
4. **अभिप्रेरणात्मक नियम(motivational principle)**
   अनेक प्रयोगो से स्पष्ट हुआ है कि प्रत्यक्षणात्मक संगठन पर व्यक्ति के अभिप्रेरकों जैसे भूख, प्यास तथा व्यक्ति के मूल्यों आदि का तीव्र प्रभाव पडता है। इन कारको से व्यक्ति का प्रत्यक्षण संगठित हो जाता है।

4.6.3 समाकृतिकता का सिद्धांत (Principle of Isomorphism)

यह गेस्टाल्टवादियों द्वारा प्रतिपादित एक महत्वपूर्ण नियम हैं। इस नियम के अनुसार व्यक्ति जिस घटना या वस्तु का प्रत्यक्षण करता है, उससे मस्तिष्क के सम्बन्धित क्षेत्र में भी कुछ परिवर्तन होता है। इन दोनो के बीच अर्थात वस्तु तथा सम्बन्धित मस्तिष्क क्षेत्र में कुछ परिवर्तन होते हैं। इन दोनो के बीच अर्थात वस्तु तथा सम्बन्धित मस्तिष्क क्षेत्र में हुए परिवर्तन का आपस में सीधा सम्बन्ध होता है।

इस विश्लेषण से ज्ञात होता है कि प्रत्यक्षण के दो पहलू (Aspects)होते हैं। एक प्रत्यक्षज्ञानात्मक क्षेत्र (perceptual field)तथा दूसरा मस्तिष्क क्षेत्र (Brain field)। समाकृतिकता का नियम बताता है कि दोनों में सीधा सम्बन्ध होता है।

उदाहरण:- अंधेरे में यदि दो बल्ब को (जो एक दूसरे से नज़दीक में रखे गये हैं) एक खास अंतराल पर बारी-बारी से जलाया जाता हैं, तो देखने वाले व्यक्ति को ऐसा महसूस होता है कि एक निश्चित दिशा में बल्ब घूम रहा है। इसका स्पष्ट हमें उस समय हो जाता है जब किसी उत्सव के मौके पर घर या सिनेमाघरों को विशेष रूप से भिन्न-भिन्न प्रकार के बल्बों से सजाया जाता है और ऐसा लगता है कि बल्ब एक दिशा से दूसरी दिशा में घूम रहा है। वर्दाइमर(Wrethemer, 1948) ने इसे फाई-घटना (phi-phenomenon) कहा है।

अतः समाकृतिकता के सिद्धांत के अनुसार मस्तिष्क एक तरह का गतिशील क्षेत्र (dynamic field) होता है।

4.6.4. क्षेत्र बल (Field Force):

गेस्टाल्टवादियों ने दृष्टि क्षेत्र में दो प्रकार के बलों की कल्पना की है। जब ये दो बल कार्य करते हैं, तो दृष्टि क्षेत्र का कुछ भाग आकृति के रूप में तथा कुछ भाग पृष्ठभूमि के रूप में दिखायी देता है। ये दोनो बल हैं:- ससंजक बल (Cohesive Force) तथा अवरोधक बल (Restraining Force)। ससंजक बल का कार्य समान उद्दीपकों को आपस में मिलाना होता है ताकि उद्दीपक अधिक से अधिक स्पष्ट देखे जा सकें तथा अवरोधक बल का कार्य उद्दीपकों को अलग-अलग रखना होता है। जब हम किसी वस्तु का प्रत्यक्षण करते हैं तो ससंजक बल तथा अवरोधक बल दोनों ही कार्य करते हैं।

ब्राउन तथा वोथ (Brown &Voth,1973)ने ससंजक तथा अवरोधक बल द्वारा प्रत्यक्षण किये गये कार्यों का गणितीय विश्लेषण किया है। इन्होंने ससंजक बलों के योग को Ecतथा अवरोधक बलों के योग को Er का संकेत देकर वर्णित किया है।

उद्दीपक क्षेत्र के ससंजक बल तथा अवरोधक बल की सबलता को निर्धारित करने वाले नियम:

1. यदि उद्दीपकों के बीच गुणात्मक समानता अधिक होती है तो उससे ससंजक बल की सबलता अधिक तथाअवरोधक बल की सबलता कम होती है। जैसे किताब के किसी पेज पर मात्र एक शब्द लाल स्याही से यदि छपा है और वही शब्द दूसरी जगह अन्य सभी शब्दो के समान काली स्याही से छपा है,तो हम लाल स्याही वाले शब्द को पहले देखते हैं क्योंकि इस शब्द के सभी अक्षर लाल है अर्थात उनमें गुणात्मक समानता हैं।

2. यदि उद्दीपकों के बीच तीव्रता (intensity) की समानता होती है तो इससे ससंजक बल की सबलता काफी अधिक होती है। अगर लाल कागज पर एक ऐसे लाल स्याही से ही कुछ लिखा जाए कि स्याही सूखने के बाद अक्षरों की चमक का स्तर तथा कागज का स्तर समान हो जाता है, तो ऐसी परिस्थिति में लिखे गये वाक्य या शब्द को ठीक ढंग से नहीं पढा जा सकता है क्योंकि ससंजक बल की सबलता दोनो उद्दीपको की तीव्रता में समानता के कारण काफी अधिक है।

3. यदि दो उद्दीपकों के बीच में स्थान की समानता (nearness) होती है तो इससे ससंजक बल अधिक होता है।

4 यदि दो उद्दीपकों के बीच समय की समीपता होती है अर्थात एक उद्दीपक के तुरंत बाद दूसरा उद्दीपक आता है तो इससे भी ससंजक बल अधिक होता है।

उदाहरण:- जब कई बल्बों को एक-दूसरे के समीप रखकर एक ख़ास समय अंतराल पर जलाया तथा बुझाया जाता है तो हमें लगता है कि एक बल्ब एक जगह से दूसरी जगह पर एक ख़ास दिशा में घूम रहा है। इसमें ससंजक बल उद्दीपक में स्थान की समीपता तथा समय की समीपता दोनों के कारण उत्पन्न हो रहा है।

4.6.5 गेस्टाल्ट सिद्धांत की आलोचनाएं:

1. गेस्टाल्टवादियो द्वारा किये गये अधिकतर प्रयोगों में विधि से सम्बन्धित अनेक त्रुटियाँ (errors) पायी जाती हैं जिसके परिणामस्वरूप उनके प्रयोगों से प्राप्त निष्कर्ष काफी विश्वसनीय (reliable) तथा निर्भर योग्य (dependable) नहीं है।
2. गेस्टाल्टवादियो ने प्रत्यक्षण में सीखना के महत्त्व को स्वीकार नहीं किया है।
3. गेस्टाल्टवादियो के समाकृतिकता का सिद्धांत (Theory of isomorphism) मात्र एक दैहिक पूर्वकल्पना (Physiological assumption) है।
4. गेस्टाल्ट मनोवैज्ञानिकों द्वारा प्रतिपादित संगठनात्मक नियम द्वारा प्रत्यक्षण का वर्णन होता है परन्तु उसकी व्याख्या नहीं होती है।
5. गेस्टाल्ट सिद्धांत का तर्क है कि उद्दीपक के गुण या विशेषताओं के कारण प्रत्यक्षज्ञानात्मक संगठन उत्पन्न होते हैं परंतु आधुनिक मनोवैज्ञानिकों द्वारा किये गये अध्ययनों से स्पष्ट होता है कि प्रत्यक्षज्ञानात्मक संगठन सिर्फ उद्दीपक के विशेषताओं पर आधारित न होकर व्यक्ति द्वारा उन गुणों की प्रदत्त व्याख्या पर भी आधारित हों।

इन अलोचनाओं के बावजूद प्रत्यक्षण में गेस्टाल्ट सिद्धांत का योगदान काफी महत्त्वपूर्ण रहा है।

अभ्यास प्रश्न-3

1. गेस्टाल्ट मनोवैज्ञानिकों के अनुसार प्रत्यक्षज्ञानात्मक संगठन का स्वरूप.....होता है।
2. गेस्टाल्टवादियो ने दृष्टि क्षेत्र ..... तथा ..... की कल्पना की।
3. सर्वप्रथम आकृति पृष्ठभूमि का अध्ययन ..... ने किया।
4. गेस्टाल्ट मनोविज्ञान के अनुसार व्यक्ति को वस्तु का प्रत्यक्षण .....रूप में होता है।

4.7 व्यवहारवादी उपागम या सिद्धांत (Behaviourist Theory)

व्यवहारवादी सिद्धांत के अनुसार प्रत्यक्षण भी अन्य व्यवहारों के समान सीखा गया व्यवहार है। प्रत्यक्षण भी उन्हीं नियमों व सिद्धांतों द्वारा निर्धारित होता है जिस प्रकार सीखा गया व्यवहार आदत रचना (Habit Formation), सामान्यीकरण (Generalization) तथा अवरोध (Inhibition) आदि नियमों द्वारा निर्धारण होता है।

व्यवहारवादी उपागम में प्रत्यक्षण की व्याख्या करने का मुख्य श्रेय हल (Hull, 1943) को जाता है।

हल के अनुसार किसी विशेष समय में सभी संवेदी तंत्रिका आवेग (Sensory neural impulses) जो तंत्रिका तंत्र में सक्रिय होते हैं, एक-दूसरे के साथ अंतक्रिया करते हैं और एक दूसरे को इस प्रकार परिवर्तित कर देते हैं कि उनका रूप सभी वर्तमान संवेदी आवेग से अलग हो जाता है।

उदाहरण:- समकालिक विरोध की घटना को ले। यदि धूसर (gray) रंग के कागज के टुकडें के बीच में रखा जाता है तो दृष्टि तंत्र धूसर कागज से उत्पन्न संवेदी तंत्रिका आवेग बैगनी रंग के कागज

से उत्पन्न संवेदी तंत्रिका आवेग के साथ अंतक्रिया कर दोनो तरह के संवेदी आवेगों को एक परिवर्तित कर एक नया रूप देता है जिसके परिणामस्वरूप धूसर रंग के कागज का टुकडा कुछ पीलापन (yellowish)लिए दिख पडता हैं।

प्रत्यक्षण के व्यवहारवादी उपागम के अनुसार प्रत्यक्षण का आधार कालिक अन्तःक्रिया तथा स्थानिक अन्तःक्रिया है।

1. **कालिक अन्तःक्रिया (Temporal interaction)**

   जब कोई उद्दीपक व्यक्ति के सामने कुछ समय तक प्रस्तुत करने के बाद हटा दिया जाता है तो कुछ देर बाद तक उसका प्रभाव तंत्रिका तंत्र (nervous system) में होता है। इस प्रभाव को उद्दीपक चिन्ह कहा जाता है। जब ये उद्दीपक चिन्ह वर्तमान तंत्रिका आवेग के साथ अन्तःक्रिया करते हैं तो उसे कालिक अन्तःक्रिया कहते हैं।

2. **स्थानिक अन्तःक्रिया (Sptial interaction)**

   इसमें उद्दीपक व्यक्ति के सामने होते हैं और इन उपस्थित उद्दीपकों से उत्पन्न तंत्रिका आवेगों के बीच हुए अन्तःक्रिया को स्थानिक अन्तःक्रिया कहा जाता है।

   हल ने तंत्रिका आवेग के बीच स्थानिक तथा कालिक अन्तःक्रियाओं के आधार पर एक विशेष ''संप्रत्यय उद्दीपक पैटर्न'' का प्रतिपादन किया है।

हल के अनुसार: जब एक ही संवेदी क्षेत्र के कई उद्दीपक बार-बार व्यक्ति के सामने उपस्थित किये जाते हैं तो इससे उद्दीपकों का एक पैटर्न विकसित होता है उस उद्दीपक पैटर्न के किसी भी पृथक उद्दीपक द्वारा उत्पन्न अनुक्रिया से अलग होती है।

एक ही उद्दीपक जब भिन्न-भिन्न उद्दीपक पैटर्न में सम्मिलित होता है तो प्रत्येक उद्दीपक प्रत्येक पैटर्न में अलग-अलग तरह की अनुक्रिया करता है।

हल के अनुसार उद्दीपकों के पैटर्निंग (Patterning)के आधार पर एक ही उद्दीपक का भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में अलग-अलग अर्थ निकाला जाता है।

उदाहरण:- Sword 8053

उपर्युक्त पंक्ति में एक शब्द Sword है जिसका अर्थ तलवार होता है तथा दूसरा शब्द आठ हजार तिरेपन है।

दोनों शब्दों में 'S'तथा अक्षर'O' समान ढंग से लिखा गया है फिर भी शब्द के संदर्भ में इसे 'एस' तथा 'ओ' के रूप में पढ़ा जाता है तथा अंक के संदर्भ में इसे 'पाँच' तथा 'जीरो' पढ़ा जाता है।

उद्दीपक में पैटर्निंग के तथ्य से सम्बन्धित प्रयोग:

वुडबरी (Woodburry,1943)द्वारा कुत्तों पर किया गया प्रयोग अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। उन्होंने 'डिक' नामक कुत्तों पर प्रयोग किया। इस प्रयोग में उच्च स्वर (High pitched sound) तथा मंद स्वर (Low pitched sound) एक साथ दिये जाने पर कुत्ता अपना मुँह रगड़ने की अनुक्रिया करता था, तो उसे भोजन दिया जाता था। परन्तु इन दोनों उद्दीपकों अर्थात उच्च स्वर तथा मंद स्वर में से कोई एक ही स्वर उपस्थित होने पर यदि कुत्ता मुँह रगड़ने की अनुक्रिया करता था तो उसे भोजन नहीं दिया जाता था।

परिणाम में देखा गया कि कुत्ता उच्च स्वर तथा मंद स्वर के अलग-अलग उपस्थित किये जाने पर अनुक्रिया न करना सीख लिया परन्तु इन दोनों उद्दीपकों को एक साथ उपस्थित किये जाने पर अनुक्रिया करना सीख लिया।

एक दूसरा प्रयोग दो अन्य कुत्तों पर किया।

एक कुत्ते का नाम 'टेड' (Ted) था तथा दूसरे कुत्ते का नाम 'बेंग्ट'(Benget) था। इस प्रयोग में सामायिक पैर्टनिग(temporal patterning) का अध्ययन किया । इस अध्ययम मे उच्च स्वर उपस्थित करने के एक सैकण्ड बाद मंद स्वर उपस्थित किया जाता था। इस तरह उच्च स्वर तथा मंद स्वर को एक खास स्वर में उपस्थित करने पर यदि 'टेड'अनुक्रिया करता था तो उसे भोजन दिया जाता था परन्तु इसी क्रम में उच्च स्वर तथा मंद स्वर के उपस्थित होने पर यदि 'बेंग्ट'अनुक्रिया करता था तो उसे भोजन नहीं दिया जाता था।

परन्तु दोनो उद्दीपकों को दूसरे क्रम में अर्थात मंद स्वर - उच्च स्वर क्रम मे देने पर यदि 'बेंग्ट' अनुक्रिया करता था तो उसे भोजन दिया जाता था। परन्तु यदि 'टेड 'अनुक्रिया करता था तो उसे भोजन नहीं दिया जाता था । इन प्रक्रियाओं को कई बार दुहराने पर देखा गया कि कुत्ते में उद्दीपक पैर्टन विकसित हो गया हालाकि इसमे काफी समय लगा।

4.7.1 व्यवहारवादी उपागम या सिद्धांत की आलोचनाएँ:

1. हल द्वारा प्रत्यक्षण की व्याख्या अन्तःक्रिया पूर्वकल्पना (Interaction hypothesis) द्वारा की गयी है जिसमें बहुत से रहस्यपूर्ण (Mysterious) संप्रत्यय है जिसका वस्तुनिष्ठ रूप से अध्ययन करना सम्भव नहीं है।
2. Osgood के अनुसार हल के सूत्रीकरण में कठिनाई यह है कि यह अत्यधिक घटिया है। मात्र इतना कह देने से कि संवेदी आवेग आपस में अन्तःक्रिया करते हैं, कुछ भी व्याख्या नहीं होती है।
3. गेस्टाल्टवादियो का कहना है कि प्रत्यक्षण की व्याख्या अंतक्रिया पूर्वकल्पना द्वारा करके जिसमें विभिन्न प्रकार के उद्दीपक चिन्ह की अंतक्रिया तथा उद्दीपक पैर्टन की बाते की गयी है, हल ने उन लोगो की व्याख्या में अनाधिकार प्रवेश किया है।

   इन आलोचनाओं के बावजूद भी व्यवहारवादियों के प्रत्यक्षण का सिद्धांत काफी महत्त्वपूर्ण है।

अभ्यास प्रश्न-4

1. व्यवहारवादी उपागम में प्रत्यक्षण की व्याख्या करने का मुख्य श्रेय .....को जाता है।
2. व्यवहारवादी उपागम के अनुसार प्रत्यक्षण एक प्रकार ..... का व्यवहार है।

4.8 सांराश

- प्रत्यक्षीकरण एक सक्रिय, चयनात्मक एवं संज्ञानात्मक, मानसिक प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्ति को अपने आन्तरिक अंगो (आन्तरिक वातावरण) तथा बाह्य वातावरण में उपस्थित वस्तुओं का तात्कालिक अनुभव होता है।
- वुण्ट प्रत्यक्षीकरण को संवेदना तथा उसके अर्थ का योगफल मानते हैं।
- संवेदना प्रत्यक्षीकरण का एक भाग है। प्रत्यक्षीकरण में संवेदना के अतिरिक्त अन्य मानसिक प्रक्रियाएं भी सम्मिलित होती है।
- प्रत्यक्षीकरण की प्रक्रिया को पूर्णरूपेण समझने के लिए मनोवैज्ञानिकों ने मुख्यतः सात तरह के उपागमों दैहिक उपागम या सिद्धांत, गिब्सन के द्वारा प्रतिपादित प्रत्यक्षण का सिद्धांत: परिस्थितिक, गेस्टाल्ट उपागम या सिद्धांत, व्यवहारवादी उपागम या सिद्धांत, सूचना संसाधन उपागम या सिद्धांत, निर्देश अवस्था उपागम या सिद्धांत, कृत्रिम बुद्धि उपागम या सिद्धांत।
- गेस्टाल्ट मनोवैज्ञानिको का मत है कि व्यक्ति उद्दीपक का प्रत्यक्षीकरण उद्दीपक के खण्डों में न करके पूर्ण रूप में करता है।
- सर्वप्रथम रूबिन ने आकृति पृष्ठभूमि गोचर का अध्ययन किया।
- समाकृतिकता का सिद्धांत गेस्टाल्टवादियों द्वारा प्रतिपादित एक महत्वपूर्ण नियम हैं।
- गेस्टाल्टवादियों ने दृष्टि क्षेत्र में दो प्रकार के बलों की कल्पना की है। ये दोनो बल हैं:- ससंजक बल तथा अवरोधक बल।
- व्यवहारवादी सिद्धांत के अनुसार प्रत्यक्षण भी अन्य व्यवहारों के समान सीखा गया व्यवहार है। प्रत्यक्षण भी उन्हीं नियमों व सिद्धांतों द्वारा निर्धारित होता है जिस प्रकार सीखा गया व्यवहार आदत रचना (Habit Formation), सामान्यीकरण (Generalization) तथा अवरोध (Inhibition) आदि नियमों द्वारा निर्धारण होता है।
- हल ने तंत्रिका आवेग के बीच स्थानिक तथा कालिक अन्तःक्रियाओं के आधार पर एक विशेष ''संप्रत्यय उद्दीपक पैटर्न'' का प्रतिपादन किया है।

4.9 अभ्यास प्रश्नो के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1

1. संवेदन तथा व्यवहार **2.** संवेदना **3.** उद्दीपक

अभ्यास प्रश्न 2

1. सरल एवं मानसिक **2.** पूर्वज्ञान

अभ्यास प्रश्न 3

1. जन्मजात **2.** संसजक बल तथा अवरोधक बल

3. रूबिन **4.** पूर्ण

अभ्यास प्रश्न 4

1. हल **2.** सीखा गया

4.10 बोध प्रश्न

1. प्रत्यक्षीकरण के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए इसकी विशेषताएं बताइए।

2. प्रत्यक्षीकरण तथा संवेदना में अन्तर बताइए।

3. प्रत्यक्षीकरण के गेस्टाल्ट उपागम या सिद्धांत की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।

4. प्रत्यक्षीकरण के व्यवहारवादी उपागम या सिद्धांत की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।

4.11 संदर्भ ग्रंथ सूची

- वर्मा प्रीति (2009) ''आधुनिक प्रयोगात्मक मनोविज्ञान'', विनोद पुस्तक मन्दिर आगरा।
- सिंह अरूण कुमार (2009) ''उच्चतर सामान्य मनोविज्ञान'', मोतीलाल बनारसीदास, आगरा।
- सिंह अरूण कुमार एवं सिंह आशीष कुमार (2009) ''आधुनिक सामान्य मनोविज्ञान'', मोतीलाल बनारसीदास, आगरा।
- डा. डी.एन एवं वर्मा प्रीति (2008) ''सामान्य मनोविज्ञान'', विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा।
- त्रिपाठी, लाल बच्चन (2007) ''आधुनिक प्रायोगिक मनोविज्ञान'', एच.पी. भार्गव बुक हाउस, आगरा।
- जेसवाल, सीताराम जेसवाल, सीताराम (2001) ''सामान्य मनोविज्ञान'', आर्य बुक डिपो, नई दिल्ली।
- सिन्हा दुर्गानन्द (1999) ''सामान्य मनोविज्ञान'', रूप साइकोलाजिकल सेन्टर, आगरा।

इकाई - 5

प्रत्यक्षणात्मक संगठन तथा निर्धारक
Perceptual Organization and Determinates

इकाई की रूपरेखा

5.1 प्रस्तावना

5.2 उद्देश्य

5.3 प्रत्यक्षणात्मक संगठन: परिचय

5.3.1 प्रत्यक्षणात्मक संगठन के नियम

5.3.2 परिधीय नियम

5.3.3 केन्द्रीय नियम

5.4 प्रत्यक्षीकरण के निर्धारक

5.4.1 प्रत्यक्षीकरण व्यक्तिगत निर्धारक

5.4.2 प्रत्यक्षीकरण सामाजिक निर्धारक

5.4.3 प्रत्यक्षीकरण सांस्कृतिक निर्धारक

5.5 सारांश

5.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

5.7 बोध प्रश्न

5.8 संदर्भग्रंथसूची

5.1 प्रस्तावना

प्रत्यक्षीकरण प्रक्रियाएं संवेदन (Sensation) की प्रकिया से प्रारम्भ होती है और किसी व्यवहार करने की क्रिया के पहले तक होती रहती हैं।

गेस्टाल्टवादियों का मत है कि प्रत्यक्षण में एक तरह का संगठन पाया जाता है। जब भी व्यक्ति किसी वस्तु का प्रत्यक्षण करता है, उसे एक विशेष पैटर्न के रूप में संगठित पाता है। प्रत्यक्षण भी अनेक निर्धारक द्वारा निर्धारित होता है।

5.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढने के बाद आप

- प्रत्यक्षज्ञानात्मक संगठन को समझ सकेंगे।
- प्रत्यक्षज्ञानात्मक संगठन के परिधीय नियमों के बारे मे जान सकेंगे।
- प्रत्यक्षज्ञानात्मक संगठन के केन्द्रीय नियमों के बारे मे जान सकेंगे।
- प्रत्यक्षीकरण मे व्यक्तिगत निर्धारको की भूमिका को बता सकेंगे।
- प्रत्यक्षीकरण मे सामाजिक निर्धारको की भूमिका को बता सकेंगे।
- प्रत्यक्षीकरण मे सांस्कृतिक निर्धारको की भूमिका को बता सकेंगे।

5.3 प्रत्यक्षज्ञानात्मक संगठनः परिचय (Perceptual Organization : Introduction)

गेस्टाल्ट सम्प्रदाय के मनोवैज्ञानिक का मत है कि व्यक्ति उद्दीपक का प्रत्यक्षीकरण उद्दीपक के खण्डों (part) में न करके पूर्ण रूप में करता है। प्रत्यक्षीकरण के गेस्टाल्ट उपागम या सिद्धांत की व्याख्या चार भागों में बाँटकर कर सकते हैं-

1. आकृति षृष्ठभूमि प्रत्यक्षीकरण (Figure Ground Perception)
2. प्रत्यक्षज्ञानात्मक संगठन के नियम (Principles of Perceptual Organization)
3. समाकृतिकता का सिद्धांत (Principle of Isomorphism)
4. क्षेत्र बल (Field Force)

5.3.1 प्रत्यक्षज्ञानात्मक संगठन के नियम (Principles of percpetual organization)

वदाईमर (Wertheimer) तथा कोहलर(Kohler) एवं कोफ्का (Koffka) आदि गेस्टाल्ट मनोवैज्ञानिको ने उद्दीपको के समूहीकरण का अध्ययन किया है। उनके अनुसार उद्दीपक का प्रत्यक्षीकरण संगठित रूप में होता हैं, जबकि उसके अवयवों का प्रत्यक्षीकरण हमेशा सहजता तथा सुन्दरता की ओर अनुभव होता है, इसे प्रैग्नाज का नियम (Law of Pragnanz) कहते हैं। इस नियम के अनुसार प्रत्यक्षीकरण में हमेशा नियमितता, सहजता एवं एकता पायी जाती है।

(a) परिधीय नियम (Peripheral principle)

(b) केन्द्रीय नियम (Central principle)

5.3.2 परिधीय नियम:

इसमें उन नियमों को रखा जाता है, जो कि उद्दीपक से सम्बन्धित होते हैं, उद्दीपक के गुणों से सम्बन्धित सभी नियम जन्मजात (Inborn)होते हैं न कि अर्जित किये जाते हैं। संगठन के इन नियमों को मूल संगठन के नियम (principles of primitive organization) भी कहा जाता है,इन्हें आंतरिक नियम भी कहते हैं। ये नियम इस प्रकार है-

1. समीपता का नियम (principles of proximity or nearness):

इस नियम के अनुसार जो उद्दीपक दूसरे उद्दीपक से समय या स्थान मे नजदीक होते हैं, उन्हे व्यक्ति आपस मे संगठित कर प्रत्यक्षीकरण करता हैं तथा उन्हें एक स्पष्ट आकृति के रूप में देखता है।

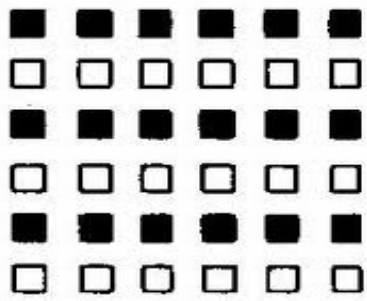

निम्न चित्र में दिखाया गया है कि वर्ग के पास पास होने के कारण सभी वर्ग पंक्ति में दिखायी देते है।

2. समानता का नियम (principles of similarity):

इस नियम के अनुसार जो उद्दीपक दूसरे उद्दीपक से समान होते हैं, उन्हे व्यक्ति आपस में संगठित कर प्रत्यक्षीकरण करता हैं तथा उन्हें एक स्पष्ट आकृति के रूप में देखता है जैसा कि निम्न चित्र में क्रास तथा वृत्त संगठित होकर कालम का प्रत्यक्षीकरण करा रहे है।

X O X O X O
X O X O X O
X O X O X O
X O X O X O
X O X O X O

चित्र में उजला आकृति अधिक संगठित एंव सममिति जबकि काला आकृति कम संगठित एंव सममिति दिखायी दे रही हैं।

3 सममिति का नियम (principles of symmetry):

इसे उत्तम आकृति (Good figure) नियम भी कहा जाता है। इस नियम के अनुसार जो उद्दीपक अधिक सुडौल होता है व्यक्ति उसे एक आकृति के रूप में देखता है जबकि जिन उद्दीपकों में सममिति नहीं होती उसे व्यक्ति उसे स्पष्ट आकृति में संगठित नहीं देख पाता है।

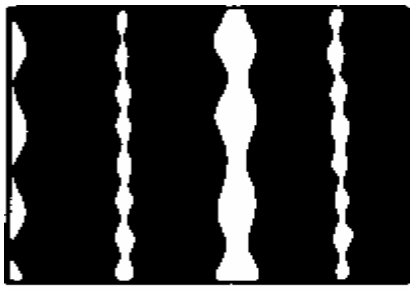

4. निरन्तरता का नियम (principles of continuation) :

इस नियम के अनुसार जिन उद्दीपकों में या उद्दीपकों के अंशो में एक ही दिशा में आने या जाने की निरन्तरता पायी जाती है, उन्हे व्यक्ति मे एक समूह में संगठित कर प्रत्यक्षीकरण करता हैं जैसा कि निम्न चित्र से प्रदर्शित है।

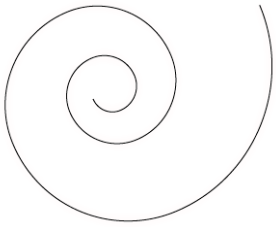

5. सामान्य गति का नियम (principles of symmetry):

जब दृष्टि क्षेत्र के उद्दीपक एक साथ एक दिशा में एक वेग से गतिशील होते हैं तो प्रत्यक्षीकरण संगठित रूप में होता है। सामान्य गति के कारण ही वह आपस में संगठित हो जाते हैं। जैसे - शांत गिरगिट झाडियों में गतिशील होने पर प्रत्यक्षीकृत होता है।

6. पूर्ति का नियम (principles of closure):

इस नियम के अनुसार व्यक्ति उद्दीपक मे रिक्त स्थानो को अपनी ओर से भरकर उसे संगठित पैर्टन के रूप मे देखता है जैसा कि निम्न चित्र से प्रदर्शित है।

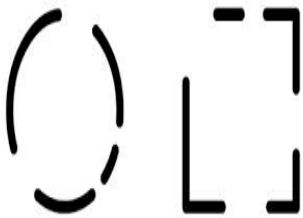

चित्र मे हम एक वृत्त तथा एक वर्गाकार आयत का प्रत्यक्षण करते हैं हालाँकि इनके प्रारूप में बहुत रिक्तिया है। ऐसा हम इसलिए कर पाते है क्योंकि हम इन रिक्तियाs को अपनी ओर से भरकर उसे एक सम्पूर्ण पैर्टन के रूप में देखते हैं।

5.3.3 केन्द्रीय नियम:

यह नियम प्राणी की व्यक्तिगत विशेषताओं पर निर्भर करते हैं। इन नियमो को व्यक्ति अपने जीवन काल में अर्जित करता हैं। ;as जन्मजात नहीं होते हैं। यह नियम निम्नलिखित है -

1. अर्थ का नियम (principe of learning)

व्यक्ति जिन उद्दीपकों का अर्थ समझता है उसे एक निश्चित पैर्टन में संगठित करके देखता है।

THEMANGOESTOMARKET

उपर्युक्त पंक्ति को व्यक्ति शब्द के अर्थ के अनुसार तुरन्त अलग-अलग करके एक निश्चित एक समूह में संगठित कर प्रत्यक्षीकरण करता हैं में संगठित कर प्रत्यक्षीकरण करता हैं।

उक्त तरह का अर्थपूर्ण केवल शाब्दिक सामग्रियों तक ही सीमित नहीं होता है बल्कि आकृतियों में भी व्यक्ति इस तरह का संगठन उपस्थित कर उसे एक पैर्टन के रूप में देखता है।

2. सेट का नियम (principle of set):

जब व्यक्ति किसी उद्दीपक को देखता है, तो उसके मन में एक विशेष प्रकार की मानसिक वृति उत्पन्न हो जाती हैं जिसके कारण वह उद्दीपकों को संगठित कर उसे एक निश्चित पैर्टन के रूप में देखता है। वृति उत्पन्न हो जाने पर यदि उद्दीपक मे कुछ परिवर्तन भी होता है, तो व्यक्ति उसे पहले के रूप में ही देखता है।

3. अर्थगर्भता का नियम (law of preganz):

इस नियम के अनुसार आकृति की अर्थगर्भता पर ही प्रात्यक्षिक संगठन निर्भर करता है। प्रस्तुत किये गये उद्दीपक में कितनी अर्थगर्भता पायी जाती है अर्थात उसके कितने अधिक अर्थ का अनुभव हमें होता है, प्रत्यक्षीकरण को प्रभावित करता हैं।

4. अभिप्रेरणात्मक नियम (motivational principle)

अनेक प्रयोगो से स्पष्ट हुआ है कि प्रत्यक्षणात्मक संगठन पर व्यक्ति के अभिप्रेरकों जैसे भूख, प्यास तथा व्यक्ति के मूल्यों आदि का तीव्र प्रभाव पडता है। इन कारको से व्यक्ति का प्रत्यक्षण संगठित हो जाता है।

गेस्टाल्टवादियों द्वारा प्रतिपादित प्रत्यक्षणात्मक संगठन की व्याख्या में केन्द्रीय नियमो की अवेहलना की गई। ये सभी नियम इस बात की ओर संकेत करते हैं कि प्रत्यक्षणात्मक संगठन की प्रक्रिया कुछ अर्जित कारको से प्रभावित होती है। गेस्टाल्टवादियों ने इन अर्जित कारको के महत्व को अस्वीकृत किया है।

मनोवैज्ञानिकों के अनुसार प्रत्यक्षीकरण प्रक्रम अनुभवों पर आधारित है। हेब्ब (Hebb, 1949)के अनुसार केन्द्रीय नाड़ी संस्थान की रचना से प्रत्यक्षपरक संगठन (Perceptual

Organization)प्रारम्भिक रूप से स्वतः निर्धारित होता है तथा प्रत्यक्षपरक संगठन की अन्य विशेषताएँ व्यक्ति के पूर्व-अनुभवों द्वारा निर्धारित होती हैं। इस सम्बन्ध में तीन प्रकार के अध्ययनों के आधार पर निष्कर्ष निम्न प्रकार से हैं -

(अ) जन्मजात वरीयताओं से सम्बन्धित अध्ययन (Sutdies of Innate Preferences)

फैन्टज (R.L. Fantz, 1957) ने अपने अध्ययन में मुर्गी के बच्चों को चुना। मुर्गी के बच्चे जन्म के कुछ समय बाद ही चुगने और चोंच मारने जैसी अनुक्रियाएँ करने लग जाते हैं। उसने अपने इस प्रयोग में चार रूपों के प्रति चुगने की अनुक्रिया का अध्ययन किया, यह चार रूप हैं-वृत्त (Sphere)चपटा वृत्त (Ellipsoid) पिरामिड (Pyramid) तथा तारा(Star)। इन चारों रूपों में से प्रत्येक रूप का सम्बन्ध ऐसे सूक्ष्म स्विचों से था कि मुर्गी का बच्चा यदि किसी रूप के प्रति चुगने की अनुक्रिया करता तो स्विच की सक्रियता की सहायता से चुगने सम्बन्धी अनुक्रियाओं की गणना की जा सकती थी। प्रयोग में फैन्टज ने यह देखा कि वृत्त तथा चपटे वृत्त के प्रति मुर्गियों के बच्चों ने पच्चीस हजार तथा अन्य दो रूपों के प्रति केवल दो हजार अनुक्रियाएँ कीं।

इन परिणामों से उसने यह निष्कर्ष निकाला कि दृष्टि रूपों के प्रति मुर्गी के बच्चों में जन्म के तत्काल बाद वरीयता (Preferences) पाई जाती है।

फैन्टज (1958) ने मानव शिशुओं पर प्रयोगों के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला कि शिशु विभिन्न प्रतिमानों का विभेदन (Pattern Discrimination) प्रारम्भिक छः मास में करने में सफल हो जाते हैं।

(ब) संवेदना वंचन सम्बन्धी प्रयोग (Studies of Sensory Deprivation)

रीजेन(Riesen, 1949, 1950) ने अपना यह प्रयोग डेवी, कोरा तथा लैड नामक चिम्पान्जियों पर किया। इन चिम्पान्जियों को ऐसे वातावरण में रखा गया जहाँ पर कि दृष्टि उद्दीपकों को नियन्त्रित प्रहस्तन (Controlled Manipulation) सम्भव था। डेवी को अँधेरे कमरे में रखा गया। कोरा को ऐसे अँधेरे कमरे में रखा गया जहाँ प्रतिदिन केवल डेढ़ घण्टे विसरित (Diffused) प्रकाश दिया जाता था।

लैड को ऐसे कमरे में रखा गया जहाँ प्रतिदिन डेढ़ घण्टे तक वस्तुओं को देखने का अवसर दिया जाता था। सात महीने तक इन तीनों चिम्पान्जियों को इन कमरों में रखने के बाद परीक्षण में यह पाया गया कि डेवी की आँखों में कोई विकृति नहीं थी।।

रीजैन ने अपने प्रयोग के निरीक्षणों के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला कि अनुभवों के अभाव में प्रत्यक्षीकरण क्रिया क्षीण हो जाती है। हेब्ब (1937) ने चूहों पर तथा सीगेल(1953) ने चिडियों पर सांवेदनिक वंचन सम्बन्धी प्रयोग किए। इन वैज्ञानिकों ने भी निष्कर्ष निकाला कि जब सांवेदनिक वंचन का अभाव होता है तो वंचन की अवधि के बाद यदि परीक्षण किया जाये तो प्रत्यक्षीकरण क्रिया क्षीण अथवा निम्न कोटि की देखी जाती है।

(स) अतिरिक्त अनुभवों से सम्बन्धित अध्ययन (Studies of Extra Experience or Enrichment)

हेब्ब (1949) ने चूहों के एक समूह को कई सप्ताह तक घर में रखा जहाँ वह हेब्ब साहब के घर के बच्चों के साथ खेलते तथा उन्हें खेलने के लिए घर का काफी बड़ा क्षेत्र उपलब्ध था। प्रत्यक्षीकरण की दृष्टि से हेब्ब साहब के घर का वातावरण अधिक समृद्ध (Enriched) अथवा अतिरिक्त अनुभवों से पूर्ण था। इन चूहों का जब परीक्षण किया गया तो हेब्ब ने यह देखा कि इन चूहों का सामान्य चूहों की अपेक्षा निष्पादन (Performance)सार्थक रूप से श्रेष्ठ था। इन चूहों में उच्च कोटि की प्रात्यक्षिक क्षमता अतिरिक्त अनुभवों के कारण थी।

गिब्सन (E. J. Gibson et. al., 1956, 1958) और उनके साथी ने इस दिशा में प्रयोगात्मक अध्ययनों के आधार पर हेब्ब के समान निष्कर्ष पर पहुचे। इनके एक प्रयोग में चूहों के दो समूहों को दो अलग-अलग पिंजड़ों में पाला गया। एक समूह के चूहों के पिंजड़ों के अन्तर वृत्त तथा त्रिभुज की दो-दो आकृतियाँ लगी थीं तथा दूसरे समूह के चूहों के पिंजड़े की दीवारें सादी थीं।

तीन मास के बाद यह देखा गया कि उस समूह के 90 चूहों ने, जिसके पिंजड़े में वृत्त और त्रिभुज की आकृतियाँ थीं, त्रिभुज और वृत्त विभेदन परीक्षण में सफलता प्राप्त की तथा दूसरे समूह में विभेदन केवल चान्स पर आधारित तथा बहुत कम प्रतिशत में था। उपर्युक्त तीनों प्रकार के प्रायोगिक अध्ययनों के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि प्रत्यक्षीकरण व्यक्ति के विगत अनुभवों से निर्धारित होता है।

अभ्यास प्रश्न 1

1. परिधीय नियमों में उन नियमों को रखा जाता है जो कि ..... सम्बन्धित होते हैं।
2. प्रत्यक्षात्मक संगठन के समीपता के नियम के अनुसार एक उद्दीपक दूसरे उद्दीपक..... में नज़दीक होते हैं।
3. प्रत्यक्षात्मक संगठन का केन्द्रीय नियम प्राणी की ..... विशेषताओं पर निर्भर करता है।

5.4 प्रत्यक्षीकरण के निर्धारक (Determinants of Perception)

प्रत्यक्षीकरण को प्रभावित करने वाले अनेक कारक हैं। ये कारक प्रत्यक्षीकरण को स्वतंत्र रूप से प्रभावित न करके एक विशेष स्थिति में पाये जाने वाले अनेक कारको की अन्तःक्रिया प्रत्यक्षीकरण को वास्तव में प्रभावित करती हैं। प्रत्यक्षीकरण पर अनेक कारकों का प्रभाव पड़ता है जैसे व्यक्ति की मनोवृत्ति, मानसिक मनोवृत्ति, मनोवृत्ति अभिप्रेरणा आदि सभी कारकों को हम निम्नांकित तीन भागों में बाँट सकते हैं।

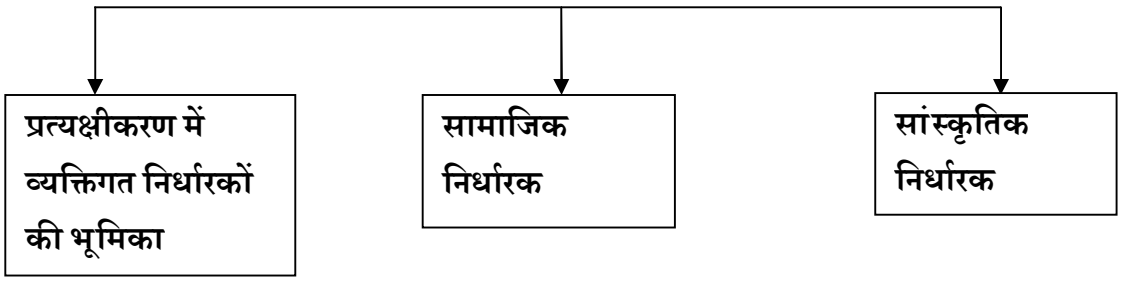

प्रत्यक्षीकरण को प्रभावित करने वाले अनेक कारक हैं ।ये कारक प्रत्यक्षीकारण को स्वतन्त्र रूप से प्रभावित न करके एक स्थिति से विशेष स्थिति में पाए जाने वाले अनेक कारकों की अन्तःक्रिया (Interactions)प्रत्यक्षीकरण को वास्तव में प्रभावित करते हैं। गेस्टाल्ट मनोवैज्ञानिकों के अनुसार केन्द्रीय नाड़ी संस्थान की जन्मजात विशेषताओं से प्रत्यक्षीकरण सम्बन्धित है । इन्द्रियानुभवादी (Empirisists) तथा साहचर्यवादी (Associationists)

5.4.1 प्रत्यक्षीकरण में व्यक्तिगत निर्धारकों की भूमिका:

प्रत्यक्षण में प्रत्यक्षणकर्ता से सम्बन्धित कारकों की भूमिका महत्त्वपूर्ण होती है। व्यक्तिगत कारकों को केन्द्रीय निर्धारक भी कहा जाता है । व्यक्तिगत कारकों में ऐसे तो कई कारकों को सम्मिलित किया जाता है परंतु उनमें प्रत्यक्षीकरण पर प्रत्यक्षणकर्ता की आवश्यकता, प्रत्यक्षणकर्ता के लिए वस्तु का मूल्य, सन्दर्भ का प्रभाव, प्रत्यक्षर्णकर्ता का मूल्य तंत्र, व्यक्तिगत शीलगुण, मानसिक वृत्ति, वस्तु का प्रत्यक्षणकर्ता के लिए प्रतीकात्मक अर्थ (Symbolic meaning) आदि को प्रधान बताया गया है। जिनका वर्णन इस प्रकार है:-

1. शारीरिक आवश्यकता तथा मनोवैज्ञानिक आवश्यकता का प्रत्यक्षण पर प्रभाव:

व्यक्ति अपनी शारीरिक आवश्यकताओं जैसे भूख, प्यास, नींद आदि के अनुरूप ही उद्दीपक का प्रत्यक्षण करता है। मनोवैज्ञानिक Osgood ने बताया कि जब वे भोजन करने के लिए जाते थे तो रास्ते में एक दफ्तर मिलता था जिसका नाम 400D था और वे प्रायः उसे FOOD पढ़ा करते थे।

इस उदाहरण से यह संकेत मिलता है कि Osgood अपने विशेष शारीरिक अर्थात भूख के कारण ही "400D" को FOOD पढ़ा करते थे। शारीरिक आवश्यकताओं के अतिरिक्त मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं, उपलब्धि अभिप्रेरक, संबंधन अभिप्रेरक आदि का प्रभाव भी व्यक्ति के प्रत्यक्षण पर पड़ता है।

पोस्टमैन, ब्रुनर तथा मैकगिन्नीज ने भी एक प्रयोग किया जिसमें यह स्पष्ट होता है कि व्यक्ति उन शब्दों का प्रत्यक्षण जल्द करता है जो उसकी आवश्यकता या मूल्य से संबंधितहोते हैं।

2. प्रत्यक्षण पर मानसिक वृत्ति का प्रभाव:

मानसिक वृत्ति से तात्पर्य एक विशेष तरह की मानसिक तत्परता से होती है। प्रयोज्यों में विशेष शाब्दिक निर्देश देकर मानसिक तत्परता उत्पन्न की जाती है या फिर गत अनुभूतियों से उत्पन्न प्रत्याशाओं से प्रयोज्यों में वृत्ति उत्पन्न हो सकती है।

प्रत्यक्षण पर सामान्य वृत्ति के अलावा दो विशेष तरह के वृत्ति (Set) का भी पड़ता है। ये दो वृत्ति हैं - बहुवृत्ति (Multiple Set) तथा भ्रामक वृत्ति (Misleading Set)।

बहुवृत्ति:-

इस वृत्ति में निर्देश देकर एक ही साथ कई मानसिक वृत्ति प्रयोज्य में उत्पन्न की जाती है फिर उसका तुलनात्मक अध्ययन एकाकी वृत्ति (Single Set) से किया जाता है।

भ्रामक वृत्ति:-

इस वृत्ति में प्रयोज्य में प्रयोग करने संबंधीकार्य को जानबूझ कर जटिल बना दिया जाता है जिसके कारण प्रयोज्य को कार्य में असफलता मिलती है और प्रयोज्य के मन में कुछ गलत प्राक्कल्पनाएँ

उत्पन्न हो जाती हैं । जिसके कारण उद्दीपकों के सही-सही प्रत्यक्षण में बाधा पहुँचती है । सेट सम्बन्धी दो प्रकार के अध्ययनों का यहाँ वर्णन दिया हुआ है-

(क) पहचान पर सेट का प्रभाव:

चेपमैन **(Chapmen, 1932)** ने अपने एक प्रयोग में प्रत्यक्ष निर्देशों के माध्यम से पहचान पर सेट के प्रभाव का अध्ययन किया। इनके प्रयोग में कुछ कार्डों को एक-एक करके टैचिस्टोस्कोप से दिखाया। यह कार्ड अक्षरों की संख्या, प्रकार तथा अक्षरों की स्थिति की दृष्टि से भिन्न थे।

प्रत्येक कार्ड का प्रदर्शन काल इतना कम था कि कार्डों की उपर्युक्त तीन विशेषताओं को पहचानना कठिन था। प्रत्येक कार्ड प्रदर्शित करने से पूर्व उपर्युक्त तीन विशेषताओं में से कोई एक विशेषता बताने के लिए प्रयोज्य को निर्देश दिये जाते थे।

प्रयोग के परिणामों के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला गया कि प्रत्यक्ष निर्देशों के आधार पर निर्मित सेट प्रत्यक्षीकरण को प्रभावित करते हैं ।

(ख) आकृति-पृष्ठभूमि सम्बन्ध पर सेट का प्रभाव:

लीपर **(Leeper, 1953)**ने बोरिंग (1930) द्वारा निर्मित **"My wife and mother-in-law"**एक चित्र की सहायता से सेट से सम्बन्धित एक प्रयोग किया। बोरिंग द्वारा निर्मित इस चित्र में एक ऐसी अस्पष्ट आकृति है जिसमें एक युवती और वृद्धों के दो अलग-अलग चित्र दिखाई देते हैं । लीपर इस प्रयोग में एक नियन्त्रित समूह था जिन्हें आकृति देखकर उसका वर्णन करने सम्बन्धी निर्देश दिये गए। प्रायोगिक समूह में दो उप-समूह थे। प्रथम प्रायोगिक उप-समूह को यह निर्देश दिया गया कि एक युवा का चित्र दिखाया जायेगा तथा दूसरे प्रायोगिक उप-समूह को यह निर्देश दिया गया कि एक युवा का चित्र दिखाया जायेगा।

प्रयोग के परिणाम के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला गया कि निर्देशों के आधार पर उत्पन्न सेट प्रयोज्यों के प्रत्यक्षीकरण को प्रभावित करते हैं ।

स्पष्ट है कि प्रयोग में निर्देश आकृति और पृष्ठभूमि के सम्बन्ध में हैं, अतः कहा जा सकता है कि निर्देशों के आधार पर निर्मित सेट आकृति और पृष्ठभूमि के सम्बन्ध प्रत्यक्षीकरण को प्रभावित करते हैं ।

ब्रूनर और उनके साथियों (J. S. Bruner; L. Postman J. Rodrigners, 1951) ने आकृति के रंग से प्रत्यक्षीकरण पर सेट के प्रभाव का चयन किया और अध्ययन परिणामों से यह निष्कर्ष निकाला कि आकृति के रंग के सम्बन्ध में निर्मित रंग प्रत्यक्षीकरण को प्रभावित करता है ।

सेट का प्रत्यक्षीकरण पर प्रभाव अनेक ढंगों से पड़ सकता है । सेट के विश्लेषण के आधार पर कहा जा सकता है कि सेट के प्रत्यक्षीकरण में चार प्रकार्य **(actions)** (सालीस तथा मर्फी, 1960)-(1) सेट की उपस्थिति में प्रत्यक्षीकरण में अनुक्रियाओं सीमित हो जाती हैं, (2) सेट की उपस्थिति में प्राणी की सक्रियता बढ़ जाती है, (3) सेट प्रत्यक्षीकरण एक निश्चित दिशा ही प्रदान नहीं करता है, बल्कि सेट की उपस्थिति में प्रत्यक्षीकरण में चयनात्मकता बढ़ जाती है । (4) सेट की उपस्थिति में सेट से सम्बन्धित परिस्थितियों में प्राणी की अनुक्रियाओं की संभावना बढ़ जाती है ।

3. प्रत्यक्षीकरण पर सन्दर्भ का प्रभाव -

प्रत्येक उद्दीपक जिसका व्यक्ति प्रत्यक्षीकरण करता है, वह शून्य में न होकर किसी-न-किसी सन्दर्भ **(Context)** में होता है। यह सन्दर्भ कई प्रकार के हो सकते हैं, इनमें से दो प्रमुख हैं-

(1) अंतःइन्द्रियसन्दर्भ का प्रभाव -

प्रत्यक्षीकरण किया जाने वाला उद्दीपक तथा उद्दीपक सन्दर्भ दोनों ही एक ही ज्ञान-इन्द्रिय के क्षेत्र में होते हैं तो इस अवस्था को अन्तःइन्द्रिय सन्दर्भ का प्रभाव कहा जाता है। इस प्रकार का सन्दर्भ प्रत्यक्षीकरण उद्दीपक के लिए पृष्ठभूमि का कार्य करता है। इस सन्दर्भ से प्रत्यक्षपरक विरोध**(Perceptual Context)** की उत्पत्ति उस समय हो सकती है जब पृष्ठभूमि तथा उद्दीपक के रंग में विरोध हो। इस प्रकार का सन्दर्भ प्रत्यक्षीकरण भ्रम **(Illusion)** उत्पन्न कर सकता है।

(2) इन्द्रिय-पेशीय सन्दर्भ का प्रभाव -

जब प्रत्यक्षीकरण उद्दीपक एक ज्ञान-इन्द्रिय के क्षेत्र में तथा प्रत्यक्षीकरण उद्दीपक का सन्दर्भ दूसरी ज्ञान-इन्द्रिय के क्षेत्र में होता है तो इस अवस्था को अन्तर-इन्द्रिय **(Inter-sensory or Inter-model)** सन्दर्भ कहते हैं।

कुछ अध्ययनों में यह देखा गया है कि उद्दीपक प्रत्यक्षीकरण के समय प्रयोज्य की कुछ मांसपेशियाँ भी सक्रिय हो जाती हैं जिससे 'गति विषयक संकेत' (Proprioceptive Cues) प्राप्त होते हैं। संकेतों और उद्दीपक की पारस्परिक अन्तःक्रिया भी प्रयोज्य के प्रत्यक्षीकरण को प्रभावित करती है। यह अवस्था इन्द्रिय पेशीय अन्तःक्रिया सन्दर्भ कहलाती है। वैपनर, वर्नर तथा शैन्डलर **(Wapner et. al., 1951)** तथा वर्नर और वैपनर **(Werner and Wapner, 1952)** ने अपने प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध किया कि इस प्रकार सन्दर्भ प्रत्यक्षीकरण को सार्थक ढंग से प्रभावित किया है।

4. प्रत्यक्षीकरण पर अधिगम का प्रभाव-

हेब्ब **(1949)** के अनुसार प्रत्यक्षपरक तादात्मीकरण **(Perceptual Identification)**अधिगम के ही कारण होता है तथा अधिगम संक्रियाओं **(Operations)** के द्वारा प्रत्यक्षीकरण को परिमार्जित भी किया जा सकता है।

यह देखा गया है कि व्यक्ति के वातावरण में उपस्थित अनेक उद्दीपकों के सम्बन्ध में व्यक्ति अपने दैनिक जीवन के अनुभवों के आधार पर कुछ अभिग्रह **(Assumptions)** विकसित करता है। यह अभिग्रह दीर्घकालीन पूर्व अनुभवों **(Long range past experience)** के रूप में प्रत्यक्षीकरण को प्रभावित करते हैं। कार्लसन **(Carlson, 1962)** ने दीर्घकालीन पूर्व अनुभवों के प्रभाव का अध्ययन किया है। दीर्घकालीन अनुभवों के अतिरिक्त अभ्यास **(Practice)**भी प्रत्यक्षीकरण को प्रभावित करता है।

गिब्सन (Gibson, 1954) ने अपने एक प्रयोग में देखा कि दूरी के एक विकासात्मक अध्ययन में विभिन्न आयु के बच्चों के समूहों को चुना तथा इन समूहों का दूरी निर्णय सम्बन्धी प्रत्यक्षीकरण का अध्ययन कर कुछ महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष प्राप्त किए। उसने यह देखा कि दूरी सम्बन्धी निर्णय में त्रुटियाँ आयु बढ़ने के साथ-साथ घटती जाती है तथा अभ्यास से इन त्रुटियों में कमी आ जाती है।

5. प्रत्यक्षीकरण पर अभिप्रेरणाओं का प्रभाव-

प्राणी को सक्रिय तथा लक्ष्य उन्मुख **(Goal Directed)** व्यवहार करने में अभिप्रेरणा प्रक्रम को दायी माना जाता है। अभिप्रेरणा एक व्यापक प्रक्रम होने के नाते सभी मानसिक प्रक्रमों को भी प्रभावित करते हैं। अतः अभिप्रेरणा से प्रत्यक्षीकरण का प्रभावित होना स्वाभाविक है। अभिप्रेरणा प्रत्यक्षीकरण से सम्बन्धित अनेक गोचरों को प्रभावित करती है। कुछ प्रमुख प्रत्यक्षीकरण गोचर **(Phenomenon)** जिन्हें अभिप्रेरणा परिवत्र्य करता है, निम्न प्रकार से हैं-

(अ) प्रात्यक्षिक सतर्कता –

कभी-कभी यह देखा गया है कि प्राणी कुछ उद्दीपकों के प्रति अतिरिक्त रूप से तत्पर होता है तथा यह तत्परता कभी-कभी इतनी बढ़ जाती है कि जीव उद्दीपक के प्रति उस अवस्था में भी अनुक्रिया करने लग जाता है जब उद्दीपक अस्पष्ट होता है। उद्दीपक में प्रत्यक्षीकरण की आवश्यक विशेषताएँ नहीं भी होती हैं। दूसरे शब्दों में जब प्राणी का पहचान सीमान्त या उद्दीपक तादात्मीकरण सीमान्त घट जाता है तो इस गोचर **(Phenomenon)** प्रत्यक्षिक सतर्कता कहते हैं।

मैकलीलैण्ड तथा लिवरमैन **(McClelland and Leverman, 1949)** ने एक अध्ययन में उपलब्धि अभिप्रेरणा **(Achievement Motivation)** से सम्बन्धित शब्दों के का उपलब्धि अभिप्रेरणा पर पड़ने वाले प्रभाव पर प्रयोग किया है। उसके इस प्रयोग में तीस थे जिनमें 20 तटस्थ तथा 10 उपलब्धि अभिप्रेरक से सम्बन्धित थे। इन शब्दों को उसने **Method animal Changes** से टैचिस्टोस्कोप की सहायता से प्रयोज्यों के सामने प्रस्तुत कर प्रत्येक शब्द का मीकरण सीमान्तर **(Identification Threshold)** ज्ञात किया।

प्रयोग परिणामों से यह निष्कर्ष माना गया कि उपलब्धि अभिप्रेरणा अपेक्षाकृत अधिक मात्रा में थी। अतः कहा जा सकता है कि जिन में उपलब्धि अभिप्रेरणा अधिक मात्रा में होती है वे इस अभिप्रेरणा से सम्बन्धित उद्दीपक शब्दों के अधिक संवेदनशील होते हैं।

(ब) प्रात्यक्षिक सुरक्षा-

कुछ प्रयोगों में यह देखा गया है कि जब प्रयोज्यों से सामने पीड़ादायक उद्दीपक उपस्थित किया जाता है तो साधारण तटस्थ उद्दीपकों की अपेक्षा इन उद्दीपकों का पहचान सीमान्त बढ़ जाता है, यह गोचर प्रात्यक्षिक सुरक्षा कहलाता है जिसका सर्वप्रथम अध्ययन पोस्टमैन **(Postman, Bruner and McGinnies, 1948)** और उनके साथियों ने किया। इन मनोवैज्ञानिकों ने निम्न मूल्य वाले प्रयोज्यों की उच्च पहचान सीमान्त की व्याख्या इस गोचर की सहायता से की है-

मैक्गिनिस **(MGinnies, 1949)** ने तटस्थ तथा टैबू शब्दों के तादात्मीकरण सीमान्त के निर्धारण सम्बन्धी एक प्रयोग में जिसमें ग्यारह तटस्थ तथा सात टैबू शब्द थे, यह देखा कि टैबू या वर्जित उद्दीपक शब्दों का तादात्मीकरण सीमान्त तटस्थ उद्दीपक शब्दों की अपेक्षा अधिक था।

लेजारस तथा मैक्क्लियरी **(R. S. Lazarus and R. A. McCleary, 1951)** ने अपने एक प्रयोग में प्रयोज्यों को पांच निरर्थक पदों को प्रस्तुत करने के साथ-साथ विद्युत आघात दिया तथा अन्य निरर्थक शब्दों के साथ किसी भी प्रकार का विद्युत आघात नहीं दिया।
इस प्रकार के अनेक प्रयासों के बाद प्रयोज्यों के त्वक् प्रत्युत्तर **(G.S.R.)** तथा पहिचान सीमान्त का मापन किया गया। प्रयोग परिणामों में यह देखा गया कि विद्युत आघात से सम्बन्धित निरर्थक पदों की पहिचान सीमान्त और जी.एस.आर. अधिक था।

(स) उद्दीपक गुणों के प्रत्यक्षीकरण पर अभिप्रेरणा का प्रभाव -

ब्रूनर तथा गुडमैन **(J. S. Bruner and C. C. Goodman, 1947)** के एक प्रयोग में यह परिकल्पना थी कि तटस्थ उद्दीपक के प्रत्यक्षित आकार की अपेक्षा प्रयोज्यों का मूल्यवान उद्दीपक का प्रत्यक्षित आकार बड़ा दिखाई देगा। इनके इस प्रयोग में दस वर्ष की आयु के बच्चों के दो समूह थे। एक समूह के बच्चे धनी परिवारों के बच्चों में धन की आवश्यकता प्रबल नहीं होगी तथा निर्धन परिवार के बच्चों में धन की आवश्यकता अपेक्षाकृत अधिक प्रबल होगी तथा निर्धन परिवार के बच्चों को सिक्कों का आकार अपेक्षाकृत बड़ा प्रतीत होगा। प्रयोग में प्रयोज्य का कार्य विभिन्न सिक्कों का आकार **(Size)** का अनुमान करना था।

प्रयोज्यों को यह कार्य एक बटन **(Knob)** की सहायता से करना था जिसके घूमने से पर्दे पर प्रकाश का बिम्ब बनता था।प्रयोग के दो भाग थे, प्रयोग के प्रथम भाग में विभिन्न सिक्कों की उपस्थिति में सिक्कों के आकार का अनुमान करना था तथा प्रयोग के द्वितीय भाग में सिक्कों की अनुपस्थिति में सिक्कों के आकार का अनुमान करना था।

प्रयोग परिणामों में यह देखा गया कि निर्धन परिवार के बच्चों ने सिक्कों का अधिक अनुमान (Over-estimation) किया तथा इन बच्चों में अधिक अनुमान की संख्या भी धनी परिवार के बच्चों की अपेक्षा अधिक थी। गरीब घर के बच्चों में यह भी देखा गया कि सिक्कों के मूल्य में वृद्धि के साथ-साथ उनका अधिक अनुमान भी बढ़ता गया, परन्तु आधे डालर के सिक्के के लिए यह परिणाम सत्य नहीं था।

प्रयोग में यह भी देखा गया कि विभिन्न सिक्कों की अनुपस्थिति में निर्धन परिवार के बच्चों ने सिक्कों का अनुमान अपेक्षाकृत अधिक किया। इन परिणामों से स्पष्ट है कि प्रयोग के सम्बन्ध में बनाई गई उपकल्पना सही सिद्ध होती है । इस उपकल्पना का सत्यापन सोलोमन और वाटसन (1949) तथा ऐरली (1951) एवं उनके साथियों ने भी किया था।

(द) उद्दीपक चयन पर अभिप्रेरणा का प्रभाव-

शैफर तथा मर्फी **(R. Schafer and G. Murphy, 1943)** ने इस पर अध्ययन किए । इनके प्रयोग में 100 प्रशिक्षण प्रयास दिए गए जिसमें चार आकृतियों में से कोई एक मुखाकृति प्रयोज्य के सामने 1/8 सेकण्ड के लिए प्रस्तुत की जाती, साथ ही प्रयोज्य को मुखाकृति का नाम भी बताया जाता ।

प्रयोज्यों को इन चारों मुखाकृतियों के नाम याद करने थे। प्रयोज्यों के सामने मुखाकृतियों के नाम याद करने के लिए पैसे मिलेंगे तथा अन्य दो नाम याद होने पर पैसे छीन लिए जायेंगे। प्रशिक्षण के बाद परीक्षण में मुखाकृति के अर्धांशों **(Half Parts)** को संयुक्त करके प्रस्तुत किया गया, इसमें से एक अर्धांश को पुरस्कृत किया गया था तथा दूसरे को दण्डित।

प्रयोग परिणामों से यह ज्ञात हुआ कि प्रयोज्यों ने दण्डित अर्धांश का प्रत्यक्षीकरण अधिक था। शैफर तथा मर्फी (1943) के इन परिणामों की पुष्टि जैक्सन **(Jackson, 1943)** तथा स्नाइडर और इडर **(C. W. Snyder and F. W. Snyder, 1957)** के प्रयोगों से भी होती है ।

6. प्रत्यक्षण पर प्रतीकात्मक अर्थ का प्रभाव:

कुछ वस्तुओं का व्यक्ति के लिए अप्रकट अर्थ (Implicit Meaning) होता है, जिसका स्वरूप व्यक्तिगत या प्रतीकात्मक होता है। वस्तुओं के प्रतीकात्मक अर्थ व्यक्ति के लिए सामान्य अर्थ से हटकर कुछ दूसरे अर्थ की ओर इशारा करते हैं। वस्तुओं का यह प्रतीकात्मक अर्थ व्यक्ति के लिए धनात्मक महत्त्व या ऋणात्मक भी हो सकता है तथा इससे व्यक्ति का प्रत्यक्षण काफी अधिक प्रभावित होता है।

अतः व्यक्तिगत कारकों के महत्त्व के आलोक में यह कहा जा सकता है कि हम वस्तुओं का प्रत्यक्षण उनके अनुसार नहीं बल्कि अपने अनुसार करते हैं।

5.4.2 सामाजिक निर्धारक:

सामाजिक कारकों का प्रत्यक्षीकरण करते समय स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है। इन निर्धारकों में निम्नांकित प्रमुख हैं:-

1. सामाजिक मनोवृत्ति:

सामाजिक मनोवृत्ति का प्रत्यक्षण पर बहुत ही स्पष्ट प्रभाव पड़ता है। इस संदर्भ में जेलिग (Zellig, 1952) द्वारा किया गया प्रयोग प्रसिद्ध है। इन्होंने अपने प्रयोग में छात्रों के दो समूह लिये जिन्हें अपने सहपाठियों के सामने व्यायाम करने के लिए कहा गया। इनमें से एक समूह के प्रति सहपाठियों की मनोवृत्ति अनुकूल थी तथा दूसरे समूह के प्रति सहपाठियों की मनोवृत्ति प्रतिकूल थी उन्हें प्रयोगकर्ता ने व्यायाम करने का प्रशिक्षण इस तरह का दे रखा था कि उसमें गलतियाँ न हों तथा जिस समूह के प्रति मनोवृत्ति अनुकूल थी, उन्हें प्रयोगकर्ता ने जानबूझ कर इस तरह से व्यायाम करने का प्रशिक्षण दे रखा था कि उनसे गलतियाँ अधिक हो। सहपाठियों से यह अनुरोध किया गया कि दोनों समूह के छात्रों द्वारा व्यायाम करते समय गलतियों को लिखते जाए।

परिणाम में देखा गया कि जिस समूह के प्रति उनकी मनोवृत्ति अनुकूल थी, उनके व्यायामों में उन्होंने त्रुटि का प्रत्यक्षण नहीं किया तथा जिस समूह के प्रति मनोवृत्ति प्रतिकूल थी, उनके व्यायामों में काफी त्रुटि का प्रत्यक्षण किया गया जबकि सच्चाई यह थी कि अनुकूल मनोवृत्ति वाले समूह द्वारा प्रतिकूल मनोवृत्ति वाले समूह की अपेक्षा अधिक त्रुटि की जा रही थी। इस प्रयोग के परिणाम से स्पष्ट होता है कि व्यक्ति की मनोवृत्ति का प्रभाव उसके प्रत्यक्षण पर पड़ता है।

2. सामाजिक मानक:

प्रत्येक समाज के कुछ मानक या नियम होते हैं जिनसे व्यक्ति का प्रत्यक्षण प्रभावित होता है। जैसे - हिन्दु समाज में गाय को माता का दर्जा दिया गया है जबकि मुस्लिम समाज में ऐसी मान्यता नहीं है। परिणामस्वरूप गाय का प्रत्यक्षण हिन्दुओं द्वारा एक खास ढंग से जबकि मुसलमानों द्वारा कुछ भिन्न ढंग से की जाती है।

3. सामाजिक सुझाव:

प्रत्यक्षण पर भी इसका प्रभाव पड़ता है। इसका सबसे उदाहरण शेरीफ द्वारा स्वचा.लित गति पर किये गये प्रयोगों से मिलता है। इस प्रयोग में दो अवस्थाएँ थीं। दोनों अवस्थाओं में प्रयोज्यों को अंधेरे कमरे में पर्दे पर प्रक्षेपित रोशनी का एक छोटा सा वृत्त दिखलाया गया। वृत्त स्थिर था लेकिन वह घूमता हुआ या चलता हुआ मालूम पड़ता था तथा प्रयोज्यों को उसके चलने की या गति की दर का अनुमान लगाना था। पहली अवस्था में प्रयोग्य एक-एक करके कमरे में प्रवेश किये और प्रक्षेपित

रोशनी के वृत्त के गति के दर का अनुमान लगाया। दूसरी अवस्था में सभी प्रयोग्य एक साथ कमरे में प्रवेश किये और जोर से बोलकर वृत्त के गति के दर का अनुमान लगाया।

परिणाम में देखा गया कि दोनों अवस्थाओं में प्रयोज्य को भ्रम हुआ परंतु दूसरी अवस्था की तुलना में पहली अवस्था में गलतियाँ अधिक हुई। इस प्रयोग के परिणाम से स्पष्ट होता है कि पारस्परिक सुझाव द्वारा किसी वस्तु का विशेष का अस्पष्ट वस्तुओं का प्रत्यक्षण प्रभावित होता है।

4. प्रचार:

जिन वस्तुओं के लिए अधिक प्रचार किया जाता है उन पर व्यक्ति का ध्यान तेज़ी से जाता है और इस तरह से उसका प्रत्यक्षण व्यक्ति जल्दी कर लेता है।

प्रचार व्यक्ति में एक विशेष तरह की मानसिक तत्परता उत्पन्न करता है जिसके कारण व्यक्ति खास तरह के उद्दीपक या वस्तु का जल्द प्रत्यक्षण करता है तथा साथ ही साथ उसे उस ढंग से प्रत्यक्षण करता है।

5.4.3 सांस्कृतिक निर्धारक:

प्रत्यक्षीकरण में सांस्कृतिक कारकों का भी विशेष योगदान होता है । रिवर्स (Reverse, 1905)ओलपार्ट तथा पेटिग्रिउ (Allport, Pettigrew, 1957), सीगाल कैम्पवेल एवं हर्षकोविट्स (Segall, Campbell & Herskovits, 1960) द्वारा महत्त्वपूर्ण अध्ययन किये गये हैं। इन्होंने अपने अध्ययन में पाया कि अपश्चिमी संस्कृति के लोगों में कुछ खास-खास तरह का भ्रम पश्चिमी संस्कृति के लोगों को अपेक्षा अधिक होता है।

इन्होने ने अपने अध्ययन में पाया कि पश्चिमी संस्कृति (western cultures) तथा अपश्चिमी संस्कृति (non western cultures) के लोगो में भ्रम (illusion) की मात्रा तथा दिशा में अन्तर होता हैं। दूसरे शब्दों में, इन्होने ने अपने अध्ययन में पाया कि अपश्चिमी संस्कृति के लोगो में कुछ खास-खास तरह का भ्रम पश्चिमी संस्कृति के लोगो की तुलना में अधिक होती है। इसका कारण यह बतलाया गया है कि अपश्चिमी संस्कृति (non western cultures) के लोग पश्चिमी संस्कृति के लोगो की अपेक्षा बौद्विक रूप से निम्न या तुच्छ होते हैं।

प्रत्यक्षण में सांस्कृतिक कारको के महत्व को दिखलाने के लिए सीगाल तथा उनके सहयोगी (Segall etal.,1996) द्वारा भी प्रयोग किया गया । इस अध्ययन में उन्होने चैदह अयूरोपीयन संस्कृति (non-Europeon cultures) तथा अमेरिकन संस्कृति से कुल 1878 प्रयोज्यों का चयन किया तथा विभिन्न प्रकार के भ्रमों के प्रत्यक्षण में होनें वाले अन्तरों का अध्ययन किया। इन प्रयोज्यों को तीन तरह के भ्रम उत्पन्न करने वाले आकृतियों से दिखलाया गया अर्थात सैण्डर समान्तर चतुर्भुज भ्रम, खडी -पडी रेखा भ्रम (vertical-horizontal illusion) तथा मूलर लायर भ्रम (Muller lyer illusion) के आकृति दिखलाये गये।

परिणाम में अमेरिकन संस्कृति तथा अयूरोपीयन संस्कृति के प्रयोज्यों में अन्तर पाया गया। अमेरिकन संस्कृति के प्रयोज्यों नें सैण्डर भ्रम में समानान्तर चतुभुर्ज के बाये कर्ण (left diagonal)को दाये कर्ण से बडा प्रत्यक्षण किया गया जबकि अन्य अयूरोपीयन संस्कृति जो अमेरिकन संस्कृति की तुलना में काफी अविकसित तथा पुरातन(primitive), में इस तरह का भ्रम का प्रत्यक्षण नहीं होते पाया गया।

कुछ इसी तरह का अंतर लायर भ्रम (Muller lyer illusion) में होते देखा गया। अमेरिकन संस्कृति के प्रयोज्यों नें मूलर लायर भ्रम के पंख रेखा को तीर रेखा से बडा होने का प्रत्यक्षण किया जबकि अन्य अपश्चिमी संस्कृति के प्रयोज्यों में इस तरह का भ्रम की मात्रा नहीं के बराबर पायी गयी। खडी-पडी रेखा भ्रम के कुछ दूसरा ही परिणाम पाया गया।अपश्चिमी संस्कृति (non western cultures) के प्रयोज्यों नें पडी रेखा (horizontal line)को खडी रेखा से छोटी होने का प्रत्यक्षण किया परन्तु अमेरिकन तथा यूरोपीयन प्रयोज्यों में ऐसा होते बहुत कम पाया गया।

इसी प्रकार अन्य बातों में भी इन लोगों के प्रत्यक्षण अनुभूतियों का विशेष महत्त्व होता है। विभिन्न संस्कृति में पले व्यक्तियों की अनुभूतियाँ अलग-अलग होती हैं। अतः उनके प्रत्यक्षण में भी भिन्नता होती है।

अतः यह स्पष्ट होता है कि प्रत्यक्षण को व्यक्तिगत, सामाजिक व सांस्कृतिक निर्धारक भी प्रभावित करते हैं। इन तीनों कारकों का प्रत्यक्षण पर पड़ने वाले प्रभावों को दिखाने के लिए कई तरह के प्रयोगात्मक सबूत उपलब्ध हैं।

अभ्यास प्रश्न 2

1. प्रत्यक्षण को व्यक्तिगत तथा सामाजिक एवं ..... निर्धारक प्रभावित करते हैं।
2. मानसिक वृत्ति से तात्पर्य एक विशेष तरह की ..... तत्परता होती है।
3. वस्तुओं का प्रतीकात्मक अर्थ व्यक्ति के लिए ..... तथा .....दोनों ही महत्त्व रखता है।

5.5 सारांश

- प्रत्याक्षणात्मक संगठन दो प्रकार के नियमों पर आधारित होता है परिधीय नियम जिसे आंतरिक नियम भी कहते हैं, इसमें उन नियमों को रखा जाता है, जो कि उद्दीपक से सम्बन्धित होते हैं,। उद्दीपक के गुणों से सम्बन्धित सभी नियम जन्मजात(Inborn) होते हैं न कि अर्जित किये जाते हैं।
- दूसरा केन्द्रीय नियम जिसे बाह्य नियम भी कहते हैं ।यह नियम प्राणी की व्यक्तिगत विशेषताओं पर निर्भर करते हैं। इन नियमो को व्यक्ति अपने जीवन काल में अर्जित करता हैं। यह जन्मजात नहीं होते हैं।
- प्रत्यक्षणात्मक संगठन के परिधीय नियम के अन्तर्गत समीपता का नियम, समानता का नियम, सममिति का नियम, निरन्तरता का नियम, सामान्य गति का नियम, पूर्ति का नियम आदि को रखा जाता है।
- प्रत्यक्षणात्मक संगठन के केन्द्रीय नियम के अन्तर्गत अर्थ का नियम, सेट का नियम, अर्थगर्भता का नियम तथा अभिप्रेरणात्मक नियमों को रखा जाता है।
- प्रत्यक्षण पर तीन तरह के निर्धारकों व्यक्तिगत, सामाजिक तथा सांस्कृतिक निर्धारक का प्रभाव पड़ता है।

- प्रत्यक्षण को प्रभावित करने वाले व्यक्तिगत निर्धारकों में व्यक्ति की शारीरिक व मनोवैज्ञानिक आवश्यकता, वस्तुओं का मूल्य, मानसिक वृत्ति, प्रतीकात्मक अर्थ को रखा जाता है।
- कुछ वस्तुओं का व्यक्ति के लिए अप्रकट अर्थ (Implicit Meaning) होता है, जिसका स्वरूप व्यक्तिगत या प्रतीकात्मक होता है।
- प्रत्यक्षण को सामाजिक निर्धारक जैसे सामाजिक मनोवृत्ति, सामाजिक मानक, सामाजिक सुझाव, प्रचार आदि भी प्रभावित करते हैं।

5.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न- 1

1. उद्दीपक से **2.** समय या स्थान **3.** व्यक्तिगत

अभ्यास प्रश्न - 2

1. सांस्कृतिक **2.** मानसिक **3.** अनुकूल या प्रतिकूल

5.7 बोध प्रश्न

1 प्रत्यक्षणात्मक संगठन के नियमों को सविस्तार समझाइए।

2 प्रत्यक्षण को प्रभावित करने वाले व्यक्तिगत निर्धारकों को बताइए।

3 प्रत्यक्षण को प्रभावित करने वाले सामाजिक निर्धारकों को बताइए।

4 प्रत्यक्षण को प्रभावित करने वाले सांस्कृतिक निर्धारकों को बताइए।

5.8 संदर्भ ग्रंथ सूची

- वर्मा प्रीति (2009) ''आधुनिक प्रयोगात्मक मनोविज्ञान'', विनोद पुस्तक मन्दिर आगरा।
- सिंह अरूण कुमार (2009) ''उच्चतर सामान्य मनोविज्ञान'', मोतीलाल बनारसीदास, आगरा।
- सिंह अरूण कुमार एवं सिंह आशीष कुमार (2009) ''आधुनिक सामान्य मनोविज्ञान'', मोतीलाल बनारसीदास, आगरा।
- डा. डी.एन एवं वर्मा प्रीति (2008) ''सामान्य मनोविज्ञान'', विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा।
- त्रिपाठी, लाल बच्चन (2007) ''आधुनिक प्रायोगिक मनोविज्ञान'', एच.पी. भार्गव बुक हाउस, आगरा।
- जेसवाल, सीताराम जेसवाल, सीताराम (2001) ''सामान्य मनोविज्ञान'', आर्य बुक डिपो, नई दिल्ली।
- सिन्हा दुर्गानन्द (1999) ''सामान्य मनोविज्ञान'', रूप साइकोलॉजिकल सेन्टर, आगरा।

इकाई - 6

मानव आँख व कान की संरचना तथा कार्य

Structure and Function of Human Eye & Ear

इकाई की रूपरेखा

6.1 प्रस्तावना

6.2 उद्देश्य

6.3 संवेदना: अर्थ

6.3.1 परिभाषा

6.3.2 विशेषताएँ

6.3.3 संवेदना के प्रकार

6.4 आँख की संरचना तथा कार्यप्रणाली

6.4.1 आँख की संरचना

6.4.2 श्वेत पटल

6.4.3 रंजित पटल

6.4.4 रेटिना

6.4.5 आँख की कार्यप्रणाली

6.5 कान की संरचना तथा कार्यप्रणाली

6.5.1 कान की संरचना

6.5.2 बाह्य कर्ण

6.5.3 मध्य कर्ण

6.5.4 आन्तरिक कर्ण

6.5.5 कान की कार्यप्रणाली

6.6 सारांश

6.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

6.8 बोध प्रश्न

6.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

6.1 प्रस्तावना

संवेदना किसी उत्तेजना के प्रति जीव की प्रथम अनुक्रिया है। यह प्रत्यक्षण से अलग नहीं होती केवल मौखिक अध्ययन के प्रयोजन से संवेदन को प्रत्यक्षीकरण से अलग मान लिया जाता है। वास्तव में संवेदना प्रत्यक्षीकरण की दिशा में एक कदम है।

प्रस्तुत इकाई में आप संवेदना का अर्थ, परिभाषा, विशेषताएँ एवं प्रकार तथा आँख व कान की संरचना एवं कार्य का विस्तारपूर्वक अध्ययन कर सकेंगे।

6.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप

- संवेदना का अर्थ बता सकेंगे एवं परिभाषित कर सकेंगे।
- संवेदना की विशेषताओं को बता सकेंगे।
- संवेदना के प्रकार के बारे में जान पायेंगे।
- आँख की संरचना व कार्य को बता सकेंगे।
- कान की संरचना व कार्य को बता सकेंगे।

6.3 संवेदना: अर्थ

प्राणी की समस्त क्रियाओं को तीन भागों में बाँटा जा सकता है। (1) ज्ञानात्मक (Cognitive) (2) भावात्मक (Affective) तथा (3) क्रियात्मक (Conative)।

ज्ञानात्मक क्रियाओं का सरलतम साधन संवेदना है। प्राणी संवेदनाओं का अनुभव ज्ञानेन्द्रियों के माध्यम से करते हैं। व्यक्ति की सभी ज्ञानेन्द्रियाँ वातावरण में उपस्थित उद्दीपकों के प्रभावों को वातावरण की सूचना के रूप में ग्रहण करते हैं। व्यक्ति सूचना ग्रहण करने तथा सूचना प्रकमण करने के बाद वातावरण के उद्दीपक के प्रति उपयुक्त अनुक्रिया करता है।

6.3.1 परिभाषा:

आइजनेक (1972) तथा उनके साथियों के अनुसार -

''संवेदना वह मानसिक प्रक्रम है जो आगे विभाजन योग्य नहीं होता। यह ज्ञानेन्द्रिय को प्रभावित करने वाली बाह्य उत्तेजना द्वारा उत्पादित होता है तथा इसकी तीव्रता उत्तेजना पर निर्भर करती है और इसके गुण ज्ञानेन्द्रिय की प्रकृति पर निर्भर करते हैं।

केण्डलर व केण्डलर (Kendler and Kendler) के अनुसार -

"प्राणी उद्दीपक के प्रति तब संवेदना का अनुभव करता है जब वह उसके प्रति अनुक्रिया करता है अर्थात जब वह अन्य उद्दीपकों से उसका विभेद कर सकता है।''

रैथस (Rathus,1984) के अनुसार -

"संवेदना का अर्थ संवेदी ग्राहकों का उद्दीपन और संवेदी सूचना का केन्द्रीय नाडी संस्थान तक संचरण से है।''

कून के अनुसार -

''संवेदना मस्तिष्क में उत्पन्न एक तात्कालिक अनुक्रिया है जो संवेदी ज्ञानेन्द्रियों के उत्तेजित होने पर होती है।

उपर्युक्त परिभाषाओं के विश्लेषण के आधार पर कहा जा सकता है कि संवेदना एक सरल एवं मानसिक प्रकिया है।यह प्रत्यक्षीकरण का एक भाग है।

संवेदना एक उद्दीपक द्वारा उत्पन्न व्यक्ति का प्रथम प्रत्युत्तर है। संवेदना किसी अनुभूति है अर्थात हमें वस्तुओं का केवल प्राथमिक परिचय कराती हैं।

प्राणी उद्दीपक के प्रति संवेदना का अनुभव तब करता है जब उसके प्रति अनुक्रिया करता है। वातावरण के उद्दीपकों के प्रभाव के कारण हमारी ज्ञानेन्द्रियों में जैव रासायनिक परिवर्तन होते हैं जिनके कारण नाड़ी आवेग (Nerve impulus) बनकर संवेदी नाडियों द्वारा उद्दीपक सूचनाएँ केन्द्रीय नाड़ी संस्थान (Central Nervous System)में पहुँचती है।

6.3.2 संवेदना की विशेषताएँ:

संवेदना की निम्न विशेषताएँ पायी गयी हैं।

1. गुण (Quality):

गुण के आधार पर संवेदनाएँ पाँच प्रकार की हैं। ये संवेदनाएँ हैं:- दृष्टि, श्रवण, स्वाद, सूघना तथा त्वचा।

2. तीव्रता (Intensity):

संवेदना की तीव्रता का अर्थ है कि संवेदना की अनुभूति तीव्र, मध्यम या मन्द किस प्रकार की है।

3. अवधि (Duration) :

संवेदना की अवधि से अभिप्राय संवेदना के सत्ताकाल से है। विभिन्न संवेदनाओं की अनुभूति भिन्न-भिन्न समय तक होती है।

4. स्पष्टता (Vividness) :

संवेदना की स्पष्टता संवेदना की तीव्रता व अवधि पर निर्भर करती है। जितनी अधिक तीव्रता एवं अवधि होगी उतनी ही अधिक संवेदना की स्पष्टता होगी।

5. विस्तार (Extensity):

संवेदना के विस्तार का अर्थ व्यापकता से है।

6.3.3 संवेदना के प्रकार:

संवेदनाएँ कई प्रकार की होती हैं:-

1. आंगिक संवेदना **2.** विशेष संवेदना **3.** गति संवेदना

1. आंगिक संवेदना:-

यह वह संवेदना है जो शरीर के आंतरिक अंगों की दशाओ से उत्पन्न होती है। इनकी विशेष इन्दियाँ नहीं होती है तथा न इनके लिए बाह्य उत्तेजनाओं की आवश्यकता होती है। यह आमाशय की दीवारों की रगड से उत्पन्न होती है। उदाहरण - भूख

इसी प्रकार प्यास भी एक आंतरिक संवेदना है जो गले के पिछले भाग में स्थित झिल्ली के सूखने से होती हैं।

2. गति संवेदना:-

यह गति से सम्बन्धित होती है। यह पेशियों तथा जोड़ों के द्वारा होती है।

उदाहरण:- तनाव, सिकुड़ना, खिंचना आदि।

ये पेशियों (Muscles) कण्डराओं (Tendons) और जोडों (Joints) के द्वारा होती हैं। इनमे रहने वाले कोश स्नायु पेशियो के सिकुडने तथा जोडो के हिलने से तनाव, भार आदि की गति संवेदनायें देते हैं। मस्तिष्क को इन संवेदनाओ की सूचना ज्ञानवही स्नायुओं से मिलती हैं।

3. विशेष संवेदना:-

यह वह संवेदना है जो विशेष इन्द्रियाँ आँख, कान, नाक, जीभ, त्वचा से होती है। यह एक दूसरे से अलग पहचानी जा सकती है। ये विशेष प्रकार की उत्तेजनाओं से उत्पन्न होती है।

विशेष तथा आंगिक संवेदनाओं मे अन्तर

विशेष संवेदना	आंगिक संवेदना
विशेष संवेदनायें बाह्य उत्तेजकों से उत्पन्न होती हैं।	आंगिक संवेदनायें अतिरिक्त उत्तेजनाओं से उत्पन्न होती हैं।
विशेष संवेदनाओं के लिए विशेष इंद्रियां होती हैं।	आंगिक संवेदनाओं के लिए विशेष इन्द्रियां नहीं होतीं।
विशेष संवेदनायें बाह्य जगत की सूचनायें देती हैं।	आंगिक संवेदनायें बाह्य जगत की सूचनायें नहीं देती।
विशेष संवेदनायें आसानी से पुनर्जीवन पा सकती हैं।	आंगिक संवेदनाओं को याद रखना कठिन है।
विशेष संवेदनायें एक-दूसरे से अलग स्पष्ट पहचानी जा सकती हैं।	आंगिक संवेदनाओं के विषय में ऐसा नहीं है।
विशेष संवेदनाओं का स्थानीयकरण संभव है।	आंगिक संवेदनाओं में अधिकतर का स्थानीयकरण नहीं हो सकता।

विशेष संवेदनाओं के प्रकार :

विशेष संवेदनाओं के पांच प्रकार होते हैं जिसका का विवरण निम्नलिखित है-

(अ) दृष्टि संवेदनायें (Visual Sensations)

इनकी संवेदनायें आँख के माध्यम से होती हैं। इनकी उत्तेजनायें (Stimuli) प्रकाश की तरंगे हैं। ये दो प्रकार की होती हैं- **1.** उज्जवलता **(Brightness)** की संवेदनायें **2.** रंगों (Colour) की संवेदनायें। रंग संवेदनाओं में मौलिक **(Primary)** चार हैं-लाल, पीला, हरा और नीला। वर्णान्ध लोगों की रंग संवेदनायें नहीं होती हैं।

(ब) श्रवण संवेदनायें (Auditory Sensations)

श्रवण संवेदनायें कान से ग्रहण की जाती हैं। वह वायु कम्पनों (Vibrations) के प्रति काम की अनुक्रिया है। साधारणतया इसमें स्थानीय चिन्ह का अभाव होता है और विवेचन अधिक मात्रा में होता है। इसका संवेगात्मक दृष्टि से बड़ा महत्त्व होता है।

(स) स्वाद संवेदनायें (Taste Sensations)

जिह्वा स्वाद की संवेदना ग्रहण करती है।जिह्वा में बहुत जिह्वांकुर (Papillae) होते हैं। अधिकतर जिह्वांकुरों में स्वाद (Taste Pours) होते हैं। प्रत्येक स्वाद कालिका में 10 या 11 स्वाद कोष (Taste cells) रहते हैं। ये स्वादकोष ही स्वाद संग्राहक (Taste receptors) हैं।

स्वाद छिद्रों से होकर संवेदना स्वाद कालिकाओं या थैलियों में प्रविष्ट होती है जिनसे स्वाद की संवेदना मस्तिष्क तक पहुंचती है और स्वाद का अनुभव होता है।

जिह्वा का मध्य भाग स्वाद की संवेदना ग्रहण नहीं करता। अन्य भागों में भिन्न-भिन्न स्वादों की संवेदनायें ग्रहण की जाती हैं। जिह्वा के अग्र भाग पर मिठास, पीछे के भाग पर कड़वाहट, दाहिने तथा बायें किनारों पर खट्टापन तथा लगभग चारों ओर समान रूप से नमकीन स्वाद कर संवेदना ग्रहण की जाती हैं।

(द) घ्राण संवेदनायें (Olfactory Sensations)

नाक के भीतर सबसे ऊपर की ओर गंध संवेदना के संग्राहक कोष (Receptor cells) होते हैं। नाक में जाने वाली श्वास का कुछ अंश इन तक पहुंचता है।अतः गंध के लिए गहरी श्वास लेनी पड़ती है। गंध हवा के साथ नाक में प्रवेश करती है और जब वह हवा इन संग्राहक कोषों को छूती है तो गंध की संवेदना उनसे मस्तिष्क तक पहुंचती है और गंध का अनुभव होता है।

(य) देहात्मक अथवा स्पर्श संवेदनायें (Tactual Sensations)

त्वचा में देहात्मक संवेदना (Somaesthetic Sensation) के संग्राहक होते हैं। देहात्मक संवेदना में स्पर्शात्मक अथवा त्वचात्मक (Cataneous) और चेष्टात्मक (Kinaesthetic) दो प्रकार की संवेदनायें आती हैं। स्पर्शात्मक संवेदना में दबाव (Pressure), उष्णता (Warmth), शीतलता (Cold) तथा वेदना (Pain) की संवेदनायें आती हैं।

इन सब संवेदनाओं के अनुभव के लिए त्वचा में अलग-अलग क्षेत्र होते हैं।इन क्षेत्रों के बीच संवेदना- शून्य (Insensitive) क्षेत्र भी होते हैं।चेष्टात्मक संवेदनायें, मांसपेशियों, हड्डियों तथा

विभिन्न स्नायुरज्जुओं के जोड़ों तथा उनके ऊपर की झिल्ली आदि में होती है ये पूर्वान्त संग्राहकों से संबंधितहोती है।

त्वचा की संवेदना चार प्रकार की होती है-दबाव, पीड़ा, उष्णता और शीत की संवेदना, ये चारों एक-दूसरे से भिन्न होती हैं और शरीर में इनके स्थान भी भिन्न-भिन्न होते हैं।

अभ्यास प्रश्न - 1

1. प्राणी संवेदना का अनुभव ..... के माध्यम से करता है।

2. संवेदना की स्पष्टता संवेदना की ..... तथा .... पर निर्भर करती है।

3. संवेदना ..... प्रकार की होती है।

6.4 आँख की संरचना व कार्यप्रणाली

संवेदी प्रणाली के अन्तर्गत आँख एक महत्वपूर्ण अंग है जिसके द्वारा व्यक्ति प्रत्येक वस्तु का प्रत्यक्षीकरण करता है।

6.4.1 आँख की संरचना

बाहर से देखने पर आँख में एक नेत्र गोलक (eyeball) दिखाई देता है जिसका औसत व्यास 25 m.m. तथा भार 7 ग्राम होता है। आँख के नेत्र गोलक में तीन परत होती हैं।

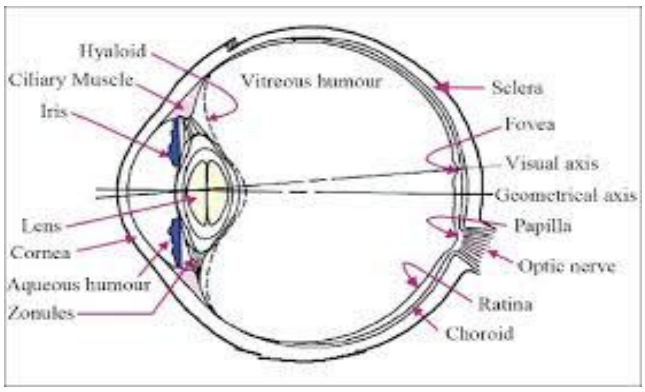

चित्र: 6.4 आँख की संरचना

6.4.2 श्वेत पटल (Sclera Coat)

यह सबसे ऊपरी परत होती है जो नेत्रगोलक की रक्षा करती है। यह कड़ी तथा अपारदर्शी होती है, परन्तु आगे की ओर उभरा हुआ भाग पारदर्शक (Transparent) होता है। जिसे कोर्निया (Cornea) कहते हैं।

कोर्निया के द्वारा सबसे पहले प्रकाश आँख के अन्दर जाता है, जिससे कोर्निया प्रकाश किरणों को फोकस करने का कार्य शुरू कर देता है तथा लेन्स दृष्टि पटल (Ratina) पर प्रकाश किरणों को फोकस करके कार्य को पूरा कर देता है।

6.4.3 रंजित पटल (Choroid Coat)

नेत्रगोलक के बीच की परत होती है जिसके अन्दर अनेक रूधिर वाहिकाएँ होती हैं, जो आँख के अन्य उत्तकों (tissues) को पोषण करती हैं। इसे मध्य पटल भी कहते हैं। रंजित पटल या मध्य पटल अपारदर्शी होती है तथा काली भूरी झिल्ली के समान होती है।

इसके कोशों में एक तत्व होता है जिसे वर्णक तत्व (Pigment)कहते हैं, जो नेत्रगोलक को पूर्णतया अंधकारमय बना देता है जिससे प्रकाश से नेत्रों में चकाचैंध उत्पन्न नहीं होती है।

आँख के अन्दर जो प्रकाश आता है वह केवल कोर्निया तथा लेन्स के माध्यम से ही आता है। कोर्निया व लेन्स से आगे की ओर पेशियों का एक समूह होता है, जिसे सिलियरी (Ciliary) पेशी कहा जाता है। सिलियरी पेशी दो भागों में विभक्त हो जाता है जिनका एक भाग लेन्स के ऊपर की ओर तथा दूसरा भाग लेन्स के नीचे की ओर होता है। ऊपर के भाग को आइरिस (Iris) तथा नीचे के भाग को विलम्बन स्नायु (Suspensory Ligament) कहा जाता है।

आइरिस के मध्य में एक छोटा सा छिद्र होता है जिसे पुतली (pupil) कहते हैं। पुतली प्रकाश की मात्रा को नियंत्रित करती है। आइरिस के पेशी तन्तुओं द्वारा पुतली का आकार घटता-बढ़ता रहता है। विलम्बन स्नायु भी लेन्स को छोटा बड़ा करते रहते हैं। दूर की वस्तुओं को देखते समय लेन्स छोटा हो जाता है।

कोर्निया व लेन्स के मध्य जो रिक्त स्थान होता है उसमें एक प्रकार का तरल पदार्थ भरा रहता है जिसे ऐकुअस ह्यूमर (Aqueous Humour) कहा जाता है। लेन्स के भीतर आँख में जो गुहा होती है, उसमें विट्रीयस ह्यूमर (Vitreous Humour) भरा रहता है।

6.4.4 रेटिना (Ratina)

नेत्र गोलक की अंदर की परत को रेटिना (Ratina) या दृष्टि पटल कहा जाता है। रेटिना दृष्टि स्नायुओं (Optic Nerve) का बना होता है। इनकी अनेक परत होती है जिसमें प्रमुख शलाकाएँ (Rods) तथा शंकु (Cones) हैं।

6.4.5 आँख की कार्यप्रणाली (Function of Eye):

आँख का कार्य देखने से सम्बन्धित है। जब नेत्र में प्रकाश उद्दीपक नेत्र लेन्स द्वारा अन्तःपटल (Ratina) पर पड़ता है तो अन्तःपटल के संग्राहक (Receptors) उत्तेजित हो जाते हैं। संग्राहकों में विद्युत रासायनिक परिवर्तन होते हैं जिसके कारण स्नायु आवेग बनता है।

इस प्रकार से उत्पन्न स्नायु आवेग को रेटिना की दूसरी सतह बाईपोलर (Bipolar) में स्थित बाईपोलर न्यूरोन्स ग्रहण करके रेटिना की तीसरी सतह गैगेलियन में भेज देते हैं। गैगलियन न्यूरोन्स इस आवेग को मस्तिष्क तक पहुँचाते हैं जिसके परिणामस्वरूप हमें दिखाई देता है।

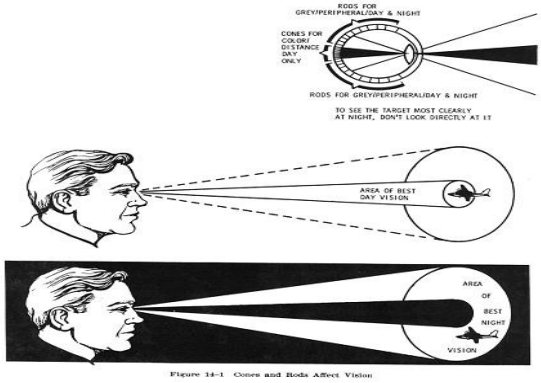

चित्र:6.4.1 आँख की कार्यप्रणाली

नेत्र में लगे लेन्स के कारण नेत्र एक कैमरे की तरह कार्य करता है। अन्तःपटल (Ratina) पर उद्दीपक की उल्टी प्रतिमा बनती है। यदि उद्दीपक या वस्तु दूर होती है तो दृष्टिकोण (Visual angle) छोटा बनेगा और रेटिना पर बनने वाली प्रतिमा भी छोटी होगी।

नेत्र से देखने के कार्य में आँख की माँसपेशिया अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। यह जरूरत के अनुसार लेन्स पर दबाव डालकर लेन्स के आकार को परिवर्तित कर देती हैं जिससे कि हमें देखने में कठिनाई न हो।

रेटिना में स्थित शलाकाएँ तथा शंकु की भी देखने के कार्य में महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। शलाकाएँ (Rods)अंधेरे में वस्तुएँ देखने के कार्य में सहायता करती हैं तथा शंकु प्रकाश में वस्तुओं को देखने में सहायता करते हैं।

शलाकाएँ तथा शंकु दोनों दृष्टि स्नायुओं की सहायता से प्रकाश के प्रभाव को मस्तिष्क केन्द्र तक स्पष्टीकरण के लिए भेजते हैं। जिस स्थान पर प्रकाश के प्रभाव का स्पष्टीकरण होता है, उसे पीत बिन्दु (Yellow's Pot) या फोविया (Fovea) कहते हैं। जब प्रकाश की किरणें इस बिन्दु पर केन्द्रित हो जाती हैं तो प्रतिमा स्पष्ट हो जाती है परंतु पीत बिन्दु से आगे-पीछे बनने वाली प्रतिमाएँ धुंधली होती हैं।

शंकु तथा शलाकाएँ दृष्टि पटल में सबसे महत्त्वपूर्ण कोशिकाएँ होती हैं जो प्रकाश के प्रति संवेदनशील होती हैं। शंकु मोटे तथा छोटे एवं शलाकाएँ लम्बी तथा पतली होती है। शलाका में रासायनिक पदार्थ पाया जाता है जिसको रेडोप्सिन (Rhodopsin) या विज़ुअल पर्पल (Visual purple) कहते हैं परंतु यह पदार्थ शंकुओं में नहीं होता है।

निशाचरों में अधिकतर शलाकाएँ ही पायी जाती हैं क्योंकि शलाकाएँ मंद प्रकाश को ही ग्रहण करती हैं। शंकुओं में आयोडोप्सिन (Iodopsin) नामक रासायनिक पदार्थ पाया जाता है जो शलाकाओं में नहीं होता है।

अंध बिन्दु दृष्टि पटल पर स्थित वह असंवेदनशील स्थान है जहाँ शलाकाएँ तथा शंकु नहीं पाये जाते हैं। नेत्र गोलकों की रक्षा के लिए पलकें (Eyelids) होती हैं। आँख की दोनों पलकों में अश्रु ग्रंथियाँ पायी जाती हैं जो आँसुओं के द्वारा आँख में गिरी किसी वस्तु को साफ कर देती हैं।

दृष्टि समस्याएँ :

आँखों से सम्बन्धित अनेक प्रकाश की समस्याएँ होती हैं जिनके कारण देखना दोषपूर्ण हो सकता है। इन समस्याओं को हम दो भागों में विभक्त कर सकते हैं - आंतरिक समस्याएँ तथा बाह्य समस्याएँ।

(A) आंतरिक समस्याएँ :

नेत्र की आंतरिक समस्याओं के अन्तर्गत निकट दृष्टि दोष, दूरदृष्टि दोष, ऐंची आँख तथा असम दृष्टि रोग को रख सकते हैं।

1. निकट दृष्टि दोष (Short-sight or Myopia):

श्वेत पटल पर अत्यधिक दबाव पड़ता है तो वह पीछे की ओर फैल जाती है जिसके कारण नेत्र गोलक की आकृति में विकृति आ जाती है नेत्र गोलक अपनी सामान्य स्थिति से लम्बा हो जाता है जिससे लेन्स तथा पीत बिन्दु (Fovea) के मध्य अन्तर उत्पन्न हो जाता है। दूर रखी वस्तु से जो किरणें आती हैं वह रेटिना के पीछे केन्द्रित हो जाती हैं जिससे रेटिना पर बना प्रतिबिम्ब धुँधुला बनता है। इस दृष्टि दोष को दूर करने के लिए नतोदार (Concave) लेन्स का होना आवश्यक है।

2. दूरदृष्टि दोष (Long-sight or Hypermetropia)

इस रोग का प्रमुख कारण नेत्र गोलक का अत्यधिक छोटा तथा चपटा होना है। इसमें वस्तु का प्रतिबिम्ब रेटिना पर पूर्ण रूप से स्पष्ट नहीं बनता। दूर रखी वस्तु से जो किरणें आती हैं वह रेटिना के पीछे केन्द्रित हो जाती हैं, जिससे रेटिना पर बना प्रतिबिम्ब धुँधुला बनता है। इस दृष्टि दोष को दूर करने के लिए उन्नतोदर (Convex)लेन्स का प्रयोग किया जाता है।

3. ऐंची आँख(Squint):

जब आँख की बाह् चेष्टा से सम्बन्धित माँसपेशियाँ शिथिल पड़ जाती हैं तथा मस्तिष्क का नियंत्रण दृष्टि तंत्र पर नहीं रहता तब यह रोग हो जाता है। इस रोग में रोगी अपनी दोनों आँखों से एक ओर नहीं देख पाता। इसमें एक आँख का प्रयोग दूसरी आँख की अपेक्षा अधिक होता है।

4. असमदृष्टि रोग:

इस दृष्टि दोष में रेटिना पर बनने वाले प्रतिबिम्ब का कुछ भाग रेटिना के आगे तथा कुछ भाग रेटिना के पीछे बनता है जिसका कारण कोर्निया के लेन्स पर असमतल वक्रता होती है। इस रोग के अन्दर आँख का एक भाग दूर दृष्टि दोष से पीडित होता है तथा दूसरा भाग निकट दृष्टि दोष से पीडित होता है। इस रोग से पीडित रोगी को मिश्रित लेन्स (Compound lens) का प्रयोग करना चाहिए।

(B) बाह्य समस्याएं:

आँखों के बाह्य रोगों में आँखों का दुःखना (Soreyes),मोतियाबिन्द (Cataract),फुल्ली, रतौंधी (Cxerophalmia) आदि को रख सकते हैं।

अनुकुलन (Adaption):

आँख में दो प्रकार के प्रक्रम कार्य करते हैं'-प्रकाश प्रक्रम तथा तिमिर प्रकम। प्रकाश प्रक्रम या प्रकाश अनुकुलन में आँख का प्रकाश संवेदी द्रव्य प्रकाश के कारण धुल जाता है।

तिमिर प्रक्रिया में प्रकाश संवेदी द्रव्य को पुनः निर्मित करने लगते है, चाहे आँख अंधेरे में हो या नहीं अतः प्रकाश अनुकुलन में प्रकाश तथा तिमिर प्रक्रियाएं दोनो चलती रहती है, परन्तु जब आँख अंधेरे में होती है, तो मात्र तिमिर प्रक्रिया कार्य करती है।

वर्णान्धता (Colour blindness)

सामान्य आँख वाले व्यक्ति सामान्यतः रंगो के तीन प्रकार के युग्मों में विभेद करते हैं- प्रकाश तथा तिमिर, लाल तथा हरा, पीला तथा नीला पूरक। अन्य प्रकार के संगठन इन्ही रंगो से बनते है।

वर्णान्धता **(Colour blindness)** एक ऐसा रोग है जिसके कारण व्यक्ति दो या दो से ज्यादा रंगो में भेद नहीं कर पाता है। वर्णान्धता कई प्रकार की होती है, जैसे अवर्णता अर्थात पूर्ण वर्णान्धता जिसमें व्यक्ति प्रत्येक वस्तु को काले या सफेद रंग में ही देख पाता है। द्विवर्णता जिसमें व्यक्ति मात्र पीले तथा नीले रंग को ही देख पाता हैं। अंध वर्णान्धता में व्यक्ति प्रायः नीले रंग में ही नहीं देख पाता है।

स्पष्ट है कि आँख की रचना जटिल हैं। आँख से देखने की क्रिया उत्पन्न होने के लिए यह आवश्यक है कि रोशनी कोर्निया से पुतली होते हुए लेन्स द्वारा दृष्टिपटल तक पहुँचे जहाँ शलाकाएँ तथा सूचियों के उतेजित होने से तंत्रिका आवेग उत्पन्न होता है जो दृष्टितंत्रिका (optic nerve) होते हुए मस्तिष्क में पहुच कर संवेदन उत्पन्न करता है।

अभ्यास प्रश्न - 2

1. आँख की श्वेत पटल ..... की रक्षा करती है।

2. आइरिस के मध्य में एक छोटा सा छिद्र होता ..... कहलाता हैं।

3. शंकुओं में ..... नामक रासायनिक पदार्थ पाया जाता है।

6.5 कान की संरचना तथा कार्य

श्रवण की संवेदनशीलता व्यक्ति को कान द्वारा होती है। विभिन्न उद्दीपकों से निकली ध्वनि तरंगे **(Sound Waves)** हमारे कानों को उद्दीपक करती हैं। यह देखा गया है कि भौतिक वातावरण को उद्दीपकों में जब कम्पन्न उत्पन्न होता है अथवा जब ध्वनि स्रोत में कम्पन्न उत्पन्न किया जाता है तो उद्दीपक अथवा ध्वनि स्रोत से ध्वनि तरंगे उत्पन्न होती हैं। यह ध्वनि तरंगे चारों ओर के वातावरण में फैल जाती हैं।

ध्वनि तरंगों को फैलने के लिए माध्यम की आवश्यकता होती है; भौतिक वातावरण में बहुधा हवा माध्यम हुआ करती है। ये ध्वनि तरंगे, हवा में होती हुई जब कान में प्रविष्ट होती हैं तो कान में स्थित ग्राहक उद्दीपक होते हैं और जब प्रद्दीपक की सूचना मस्तिष्क को पहुँचती है तब व्यक्ति को ध्वनि संवेदनशीलता का अनुभव प्राप्त होता है।

ध्वनि तरंगों की गति 1100 फुट प्रति सेकण्ड होती है। विभिन्न उद्दीपकों से निकली ध्वनि तरंगों की आवृत्ति भिन्न-भिन्न होती है। भिन्न-भिन्न आवृत्तियों वाली ध्वनि तरंगें हमारे कान पर भिन्न-भिन्न मात्रा में प्रभाव डालती हैं।

यह देखा गया है कि 20 से 20,000 आवृत्ति प्रति सेकण्ड वाली ध्वनि तरंगें ही मनुष्य के कान को प्रभावित करती हैं। इस सीमा से अधिक या कम की ध्वनि तरंगें व्यक्ति को सुनाई नहीं पड़ती हैं।

कान यांत्रिक संग्राहक (Mechanical Receptor) है। यह यांत्रिक उत्तेजनाओं को ग्रहण करता है। ध्वनि तरंगों की अनुभूति कान की संरचना पर भी निर्भर करती है। मनुष्य के पास यदि कान न हों तो वह वातावरण के समस्त उद्दीपकों को समझने में कठिनाई का अनुभव करता है।

6.5.1 कान की संरचना:

मुख्यतः कान की संरचना को निम्न तीन भागों में बाँटा गया है।

6.5.2 बाह्य कर्ण (Outer ear):

बाह्य कर्ण मे पिन्ना (Pinna) या जिसे हम कान कहते हैं, बाह्य श्रवण नलिका (External Auditory Canal) तथा कर्णपटल (Tympanum Eardrum)शामिल होते हैं। बाह्य कर्ण वायु कम्पन्नों को एकत्र करके उनको श्रवण नलिका में भेज देते हैं, श्रवण नलिका एक ऐसी नलिका होती है, जो कपाल की कर्णमूल अस्थि (Mastoid Bone)में मुड़कर कम्पन्नों को कर्णपटल को भेज देती है।

कर्णपटल ध्वनि की दबाव तरंगों के प्रति अनुक्रिया करता है। यह शंकु (Cone) के आकार का होता है। बाह्य कर्ण में कुछ ग्रंथियाँ भी होती हैं जिनमें मोम के समान एक तरल पदार्थ निकलता है, जो बाहरी धूल, मिट्टी इत्यादि को कान में जाने से रोकता है।

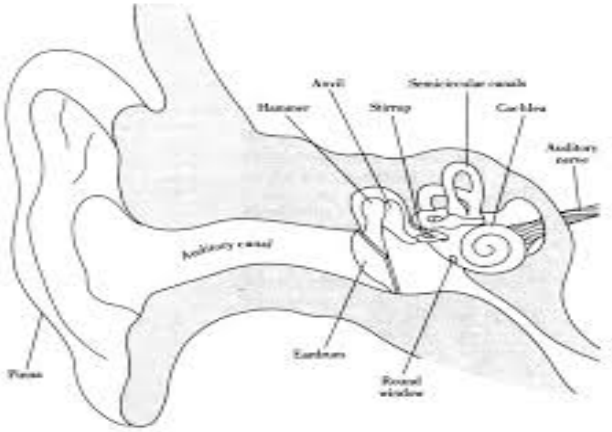

चित्र: 6.5 कान की संरचना

6.5.3 मध्य कर्ण (Middle Ear)

कर्णपटल (Eardrum) के बाद मध्य कर्ण का आरम्भ होता है। मध्य कर्ण में तीन छोटी-छोटी अस्थियाँ होती हैं जिनको क्रमशः हथौड़ा, निहाई तथा रकाब कहा जाता है। मध्य कर्ण में यूस्टेशियन नली या कण्ठ नली भी होती है, जो कण्ठ में मिली होती है। तीनों अस्थियों का कार्य है कि कम्पन्नों को ग्रहण करना तथा आन्तरिक कान में भेज देना।

हथौड़ा अस्थि कर्णपटल से जुड़ी रहती है तथा निहाई अस्थि में गति पैदा करती है तथा निहाई अस्थि रकाब ग्रंथि में गति उत्पन्न कर देती हैं यह तीनों अस्थियाँ स्नायु द्वारा मज़बूती से जुड़ी रहती हैं तथ एक इकाई के रूप में कार्य करती हैं जबकि कर्णपटल के दोनों ओर वायु का दबाव समान होता है। वायु दबाव को एक समान बनाने का कार्य यूस्टेशिनय नली द्वारा किया जाता है। अण्डाकार के द्वार के अतिरिक्त गोल द्वार भी होता है जो आंतरिक कान का ही एक भाग है।

6.5.4 आन्तरिक कान:

आंतरिक कान में वेस्टिब्युल अर्द्धवृत्ताकार नलिकाएँ तथा काकलिया शामिल है । सुनने के लिए काकलिया अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होती है । काकलिया के अन्दर तीन वाहिनियाँ (Duts) होती हैं - स्केला वैस्टिब्युली, स्केला मिडिया, स्केला टिम्पैनी। इन तीनों वाहिनियों में तरल द्रव्य भरा रहता है जिसे एण्डालिम्फ कहा जाता है । स्केला वैस्टिब्युली तथा मिडिया तथा स्केला टिम्पैनी आधार झिल्ली द्वारा पृथक होती है । स्कैला वैस्टिब्युली के आधार पर अण्डाकार द्वार (Oval window) तथा स्कैला टिम्पैनी के आधार पर गोलाकार द्वार होता है ।

काकलिया की आधार झिल्ली पर एक ग्राहक संरचना होती है जिसे कार्टी अंग (Organ of Corti) कहते हैं । कार्टी अंग में जो कोशिकाएँ होती हैं उन्हें रोम कोशिकाएँ (Hair cells)कहते हैं, जो टैक्टोरियल झिल्ली से जुड़ी रहती हैं ।

कोकिलिया के ध्वनि वर्द्धन का व्यवस्थित रूप से अध्ययन डेविस**(Davis, 1959)** ने किया है । स्केला मिडिया के आन्तरिक भाग में विद्युत का धनात्मक आवेग होता है । इस आवेग को इण्डोकोकिलियर पोटेन्शियल या (**Endolymphatic Potential)**कहा जाता है । श्रवण उद्दीपक को समझने के लिए सर्वाधिक महत्वपूर्ण कोकिलियर माइक्रोफानिक पोटेन्शियल है । यह पोटेन्शियल हेयर सेल्स में उत्पन्न होता है तथा जनरेटर पोटेन्शियल का कार्य करता है । इस जनरेटर पोटेन्शियल से ही हेयर सेल्स से सम्बन्धित नर्व फाइबर्स जो मस्तिष्क को जाते हैं, उद्दीप्त होते हैं । चूँकि यह सिस्टम माइक्रोफोन के विद्युत रिकार्ड की भांति होता है, इसीलिए इसे माइक्रोफानिक कहते हैं ।

6.5.5 कार्यप्रणाली:

बाह्य कर्ण तथा मध्य कर्ण से होती हुई ध्वनि तरंगे अण्डाकार द्वार से संलग्न रकाब के कारण काकलिया तक पहुँच जाती हैं तथा काकलिया के तरल द्रव्य एण्डोलिम्फ में गति होने लगती है, जो ध्वनि दबाव अण्डाकार द्वार पर पड़ता है वह गोलद्वार पर समाप्त हो जाता है । एण्डोलिम्फ श्रवण ग्राहक उद्दीप्त हो जाते हैं ।

तरल द्रव्य में दबाव परिवर्तनों के कारण आधार झिल्ली अपने स्थान से हट जाती है जिसके कारण कार्टी अंग की रोम कोशिकाओं का संवेदनशील तत्व उद्दीप्त हो जाता है जिसका परिणाम होता है कि आवेग श्रवण तंत्रिका के द्वारा मस्तिष्क में पहुँचकर श्रवण संवेदनाओं में परिवर्तित हो जाते हैं ।

श्रवण संवेदना (Auditory Sensation)

ध्वनि तरंगों की गति 100 फुट प्रति सैकण्ड होती है । विभिन्न उद्दीपकों से निकलने वाली ध्वनि तरंगों की आवृत्ति भी भिन्न-भिन्न होती है । सामान्यतः 16 से 22,000 आवृत्ति चक प्रति सैकण्ड वाली ध्वनि तरंगे हमारे कानों को प्रभावित करती हैं । ध्वनि तरंगे उतार चढ़ाव के साथ आगे की ओर बढ़ती हैं । तरंग आवृत्ति को चक प्रति सैकण्ड (CPS) के रूप में व्यक्त किया जाता है ।

जब तरंग अपनी शून्य स्थिति से एक बार ऊपर उठकर एक बार नीचे गिरती है, तो उस तरंग का एक चक बन जाता है तथा यह उसकी आवृत्ति कहलाता है । प्रति सैकण्ड एक चक को हटर्ज कहा जाता है ।

ध्वनि की तीव्रता के मापन की इकाई डेसीबल (Decibel)है जो कि बेल का दसवाँ भाग होता है। ध्वनि की तीव्रता का मापन एक निश्चित समय में कान के पर्दे पर पड़ने वाले दबाव के द्वारा किया जाता है। ध्वनि तीव्रता जब 100 कई से अधिक हो जाती है तो असहनीय होती है।

ध्वनि तारता (Pitch) का सम्बन्ध ध्वनि आवृत्ति से होता है। ध्वनि आवृत्ति बढ़ने पर ध्वनि तारता भी बढ़ती है। परंतु यह आवश्यक नहीं है कि जैसे-जैसे आवृत्ति बढ़ेगी वैसे-वैसे तारता में भी वृद्धि होगी। पुरूषों की आवाज़ में तारता कम तथा स्त्रियों की आवाज़ में तारता अधिक होती है। ध्वनि की एक प्रमुख विशेषता ध्वनि का लक्षण (Timber of quality)है। इस लक्षण के आधार पर हम समान आवृत्ति वाले दो स्वरों में अन्तर ज्ञात कर सकते हैं।

यह स्पष्ट होता है कि कान के माध्यम से श्रवण संवेदनाओं को ग्रहण किया जाता है। आवश्यक विश्लेषण के बाद यह संवेदना ज्ञानवाही नाडियों के माध्यम से मस्तिष्क में पार्श्व खंड (Parietal lobe) में पहुँच जाती है जिससे मनुष्य को सुनने का अनुभव होता है।

अभ्यास प्रश्न - 3

1. कर्णपटल ..... दबाव तरंगों के प्रति अनुक्रिया करता है।

2. काकलिया की आधार झिल्ली पर एक ग्राहक संरचना होती है जिसे .....अंग कहते हैं।

3. ध्वनि तरंगों की गति ..... प्रति सैकण्ड होती है।

6.6 सारांश

- संवेदनाओं का अनुभव ज्ञानेन्द्रियों के माध्यम से किया जा सकता है। यह वह मानसिक प्रक्रम है जो आगे विभाजन योग्य नहीं होता है।
- संवेदना की पाँच विशेषताएँ होती हैं:- गुण, तीव्रता, अवधि, स्पष्टता तथा विस्तार।
- संवेदी प्रणाली के अन्तर्गत आँख व कान महत्त्वपूर्ण अंग हैं।
- संरचना की दृष्टि से आँख में तीन परतें श्वेत पटल, रंजित पटल तथा रेटिना पायी जाती है।
- आँख में पाये जाने वाले शंकु प्रकाश में वस्तुएँ देखने में मदद करती हैं जबकि शलाकाएँ अंधेरे में वस्तुएँ देखने में सहायता करती हैं।
- निशाचरों में केवल शलाकाएँ ही पायी जाती हैं, शंकु नहीं पाये जाते हैं।
- कान की आंतरिक संरचना को तीन भागों में बाँटा गया है -बाह्य कर्ण, मध्य कण तथा आन्तरिक कर्ण।
- ध्वनि तरंगों की गति 100 फुट प्रति सैकण्ड होती है।
- ध्वनि की तीव्रता को मापने के लिए डेसीबल इकाई का प्रयोग किया जाता है।
- ध्वनि तीव्रता 100कइ से अधिक होने पर असहनीय होती है।

6.7 अभ्यास प्रश्नो के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1

1. ज्ञानेन्द्रियों **2**. तीव्रता व अवधि **3.** तीन

अभ्यास प्रश्न 2

1. नेत्रगोलक **2**. पुतली **3**. आयोडोप्सिन

अभ्यास प्रश्न 3

1. ध्वनि की **2.** का र्टी **3**. 100 फुट

6.8 बोध प्रश्न

1. संवेदना को परिभाषित करते हुए इसकी विशेषताएं व प्रकार बताइए।

2. आँख की संरचना व कार्यप्रणाली को समझाइए।

3. कान की संरचना को बताइए।

6.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

- वर्मा प्रीति (2010), ''आधुनिक प्रयोगात्मक मनोविज्ञान'', विनोद पुस्तक मन्दिर आगरा।
- सिंह अरूण कुमार (2009) ''उच्चतर सामान्य मनोविज्ञान'', मोतीलाल बनारसीदास, आगरा।
- सिंह अरूण कुमार एवं सिंह आशीष कुमार (2009) ''आधुनिक सामान्य मनोविज्ञान'', मोतीलाल बनारसीदास, आगरा।
- डा. डी.एन एवं वर्मा प्रीति (2008) ''सामान्य मनोविज्ञान'', विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा।
- त्रिपाठी, लाल बच्चन (2007) ''आधुनिक प्रायोगिक मनोविज्ञान'', एच.पी. भार्गव बुक हाउस, आगरा।
- सिन्हा दुर्गानन्द (1999) ''सामान्य मनोविज्ञान'', रूप साइकोलाजिकल सेन्टर, आगरा।
- जेसवाल, सीताराम (2001) ''सामान्य मनोविज्ञान'', आर्य बुक डिपो, नई दिल्ली।

इकाई – 7

अधिगम, प्रकृति , अधिगम के सिद्धांत
Learning, Nature, Theories of Learning

इकाई की रूपरेखा

7.1 प्रस्तावना
7.2 उद्देश्य
7.3 अधिगम का अर्थ
7.4 अधिगम की परिभाषा
7.5 अधिगम के सिद्धांत
7.6 प्रयत्न एवं भूल का सिद्धांत
7.7 सूझ या अंतर्दृष्टि का सिद्धांत
7.8 सारांश
7.9 शब्दावली
7.10 निबंधात्मक प्रश्न
7.11 अतिरिक्त संदर्भ ग्रंथ सूची

7.1 प्रस्तावना (Introduction)

मानव जीवन में अधिगम का महत्व सर्वविदित है | मूलतः अधिगम एक ऐसी प्रक्रिया है जो जीवन भर चलती रहती है | शायाद इसीलिये कहा जाता है कि मानव जीवन में इसकी बहुत व्यापक भूमिका है | इसका योगदान केवल कुछ कार्य, कौशल या शिक्षा अर्जन में ही नहीं बल्कि समायोजन करने से लगाकर , व्यक्तित्व के विकास तक में सहायक होती है | किसी भी व्यक्ति द्वारा जो व्यवहार प्रदर्शित किये जाते हैं उनमें से अधिकांश व्यवहार सीखे हुए या अर्जित किये हुए होते हैं | हम यह बात भी भली भांति जानते हैं कि जन्म के समय बालक में कुछ सीमित जैविक विशेषताएं ही होती हैं | परन्तु जैसे- जैसे उसकी आयु में बढोतरी होती है वह परिपक्व होता जाता है एवं अनुभव में वृद्धि के साथ-साथ उसका व्यवहार भी निरंतर परिमार्जित होता जाता है |

7.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप-

- अधिगम का अर्थ बता सकेंगे एवं परिभाषित कर सकेंगे।
- अधिगम की प्रकृति को स्पष्ट कर सकेंगे |
- अधिगम के सिद्धांतों के बारे में बता सकेंगे |

- प्रयत्न एवं भूल का सिद्धांत के मूलभूत सिद्धांतों के महत्व को समझ सकेंगे|
- सूझ या अंतर्दृष्टि का सिद्धांत के मूलभूत सिद्धांतों के महत्व को समझ सकेंगे|

7.3 अधिगम का अर्थ (Meaning of Learning)

मनोवैज्ञानिकों ने अधिगम को मूलतः एक मानसिक प्रक्रिया माना है जिसकी दो मुख्य विशेषताएं होती हैं – निरंतरता एवं सार्वभौमिकता| यह प्रक्रिया सदैव और सर्वत्र चलती रहती है | इसलिए मनुष्य अपने जीवन में सदैव कुछ न कुछ सीखते रहता है , उसकी सीखने की प्रक्रिया में कभी भी विराम या अस्थिरता नहीं आती है | आम देख कर बन्दर तुरंत आम पर झपटता है यह उसकी सीखी हुए प्रतिक्रया न होकर भूखे होने की स्थिति में आम के प्रति बन्दर की प्रतिक्रया है | यह प्रतिक्रया सीखी हुए न होकर स्वाभाविक (instinctive) है | दूसरी तरफ कोई छोटा बच्चा आम को छीनकर नहीं बल्कि मांग कर खाता है यह बालक की सीखी हुए प्रतिक्रया है क्योंकि जन्म के उपरान्त वह अपने वातावरण से कुछ न कुछ सीखता रहता है | पहली बार आग को देखकर वह उसे छु लेता है और जल जाता है परिणामस्वरूप , एक नया अनुभव पाता है | अतः जब वह आग को फिर देखता है, तब उसके प्रति उसकी प्रतिक्रया भिन्न होती है | अनुभव ने उसे आग को न छूना सीखा दिया है | अतः वह आग से दूर रहता है | इस प्रकार , सीखना – अनुभव द्वारा व्यवहार में परिवर्तन है |

अधिगम मूलतः अभ्यास या प्रयास पर निर्भर करता है | किसी भी कार्य में कौशल या दक्षता प्राप्तकरने के लिए हमें उसे पहले सीखने का प्रयास करना पड़ता है | प्रारम्भ में किसी नवीन कार्य को करने में कठिनाई अधिक अनुभव की जाती है तथा त्रुटियाँ भी अधिक होती हैं | परन्तु अभ्यास करने से कठिनाई एवं त्रुटियों में कमी आती है | ऐसा होना स्पष्ट करता है कि अधिगम हो रहा है | इसी कारण अधिगम को ऐसी प्रक्रिया के रूपम में परिभाषित किया जाताहै जिससे अनुभवों से प्राणी की क्रियाओं में सुधार होता है | अधिगम के परिणाम स्वरुप मनुष्य का व्यवहार क्रमशः जटिल एवं परिमार्जित होता रहता है | इससे स्पष्ट हैकि अधिगम के लिए अभ्यास करना आवश्यक है |

7.4 अधिगम की परिभाषा (Definition of Learning)

मनोवैज्ञानिको ने सीखने के अर्थ एवं क्रिया को स्पष्ट करने के लिए अपने अनुसार सीखने की अनेक परिभाषाएँ दी हैं | इनमें से कुछ महत्वपूर्ण परिभाषाएँ निम्नलिखित हैं –

मारगन एवं किंग के अनुसार " अनुभव के कारण व्यवहार में कोई स्थाई परिवर्तन होने के रूप में अधिगम को परिभाषित किया जा सकता है " |

"Learning can be defined as any relatively permanent change in behavior which occurs as a result of practice or experience."

स्किनर – "सीखना , व्यवहार में उतरोत्तर सामंजस्य की प्रक्रिया है"

"Learning is a process of progressive behavior adaptation".

वुडवर्थ के अनुसार : नवीन ज्ञान और नवीन प्रतिक्रियाओं को प्राप्त करने की प्रक्रिया सीखने की क्रिया है |

The process of acquiring new knowledge and new responses is the process of learning.

क्रो एंड क्रो के अनुसार – सीखना आदतों, ज्ञान और अभिवृत्तियों का अर्जन है |

Learning is a process of progressive behavior adoption.

गुथरी के अनुसार सीखना किसी परिस्थितिमें भिन्न ढंग से कार्य करने की वह क्षमता है जो कि परिस्थिति के अनुसार पूर्व अनुभवों के कारण आती है

Ability to learn is to respond differently to situation because of a past experience to a situation.

गिलफोर्ड के अनुसार हम इस शब्द की परिभाषा विस्तृत रूप में यह कर सकते हैं किसी सीखना व्यवहार के फलस्वरूप व्यवहार में कोई भी परिवर्तन है |

We may define the term very broadly in saying that learning is any change in behaviours resulting from behaviours.

अभ्यास प्रश्न

1. अधिगम से आपका क्या अभिप्राय है ? अपने शब्दों में समझाएं |
2. वुडवर्थ ने अधिगम (सीखना) को किस प्रकार से परिभाषित किया है ?
3. अधिगम को अपने शब्दों में परिभाषित करें |

7.4 अधिगम की विशेषताएं (Characteristics of Learning)

अधिगम : सम्पूर्ण जीवन चलता है (All living is Learning)- सीखने की प्रक्रिया आजीवन चलती है | व्यक्ति अपने जन्म के समय से मृत्यु तक कुछ न कुछ सीखता रहता है |

सीखना परिवर्तन है (Learning is Change)- व्यक्ति अपने और दूसरे के अनुभवों से सीखकर अपने व्यवहार , विचारों, इच्छाओं, भावनाओं आदि में परिवर्तन करता है | गिलफोर्ड के अनुसार – सीखना , व्यवहार के परिणामस्वरूप व्यवहार में कोई परिवर्तन है

अधिगम विकास है (Learning is Growth): व्यक्ति अपनी दैनिक क्रियाओं और अनुभवों के द्वारा कुछ न कुछ सीखता है | फलस्वरूप, उसका शारीरिक और मानसिक विकास होता है | अधिगम की इस विशेषता को पेस्टालाजी ने वृक्ष और फ्रोबेल ने उपवन का उदाहरण देकर स्पष्ट किया है |

अधिगम : अनुकूलन है (Learning is Adjustment) : अधिगम , वातावरण से अनुकूलन करने के लिए आवश्यक है | सीखकर ही व्यक्ति, नई परिस्थितियों से अपना अनुकूलन कर सकता है| जब वह अपने व्यवहार को इनके अनुकूल बना लेता है, तभी वह कुछ सीख पाता है |

अधिगम नया कार्य करना है (Learning is doing something new): वुडवर्थ के अनुसार – सीखना कोई नया कार्य करना है | पर उन्होंने यह भी कहा है कि सीखना नया कार्य करना तभी है, जबकि यह कार्य फिर किया जाये और दूसरे कार्यों में प्रकट हो |

अधिगम:अनुभवों का संगठन है (Learning is Organization of Experiences): अधिगम न तो नये अनुभव की प्राप्ति है और न पुराने अनुभवों का योग , वरन नए और पुराने अनुभवों का संगठन है | जैसे-जैसे व्यक्ति नए अनुभवों द्वारा नई बातें सीखता जाता है , वैसे- वैसे वह अपनी आवश्यकताओं के अनुसार अपने अनुभवों को संगठित चला जाता है |

अधिगम :उद्देश्यपूर्ण है (Learning is Purposive): अधिगम उद्देश्यपूर्ण होता है | उद्देश्य जितना ही अधिक प्रबल होता है, सीखने की क्रिया उतनी ही अधिक तीव्र होती है | उद्देश्य के अभाव में सीखना असफल होता है |

अधिगम : व्यक्तिगत व सामजिक, दोनों है (Learning is both Individual and Social): अधिगम व्यक्तिगत कार्य तो है ही, पर इससे भी अधिक सामजिक कार्य है |

अधिगम : वातावरण की उपज है (Learning is a Product of Environment): अधिगम रिक्तता में न होकर , सदैव उस वातावरण के प्रति प्रतिक्रया के रूप में होता है , जिसमें व्यक्ति रहता है |

अधिगम : खोज करना है (Learning is Discovery) : वास्तविक अधिगम किसी बात के खोज करना है | इस प्रकार के सीखने में व्यक्ति विभिन्न प्रकार के प्रयास करके स्वयं एक परिणाम पर पहुंचता है | मार्सेल ने कहा भी है कि – सीखना उस बात को खोजने और जानने का कार्य है, जिसे एक व्यक्ति खोजता और जानना चाहता है |

(Learning is an affair of discovering and seeing the point that one wants to discover and see.)

अधिगम की ये विशेषताएं उनके प्रकार तथा उसकी परिभाषाओं की उपज है | अधिगम में व्यवहार परिवर्तन होता है , यह परिवर्तन स्थायित्व लिए होता है | अनुभव, इन परिवर्तनों में योगदान देता है |

अभ्यास प्रश्न

1. अधिगम की विभिन्न विशेषताओं को लिखिए |
2. अधिगम : खोज करना है इस कथन की व्याख्या करें |
3. अधिगम : सम्पूर्ण जीवन चलता है (All living is Learning) से आप क्या समझते हैं?
4. सीखना परिवर्तन है (Learning is Change) कथन की अपने शब्दों में व्याख्या करें ?

7.5 अधिगम के सिद्धांत (Theories of Learning)

हिलगर्ड ने अपनी पुस्तक थ्योरीज़ आफ लीर्निंग में दस से भी अधिक अधिगम के सिद्धांतों का वर्णन किया है | इनके सम्बन्ध में यह निश्चय करना मुश्किल है कि कौन सा सिद्धांत ठीक और कौन सा

गलत है | फ्रेंडसन ने ठीक ही लिखा है कि सिद्धांत न तो ठीक होते हैं और न गलत| वे केवल कुछ विशेष कार्यों के लिए कम या अधिक लाभप्रद होते हैं | इस कथन को ध्यान में रखते हए सीखने कुछ महत्वपूर्ण सिद्धांतों का वर्णन कर रहे हैं |

1. प्रयत्न एवं भूल का सिद्धांत (Trial and Error theory)
2. सूझ का सिद्धांत (Insight Theory)
3. अनुकूलित- अनुक्रिया का सिद्धांत (Classical Conditioning)
4. क्रिया प्रसूत सिद्धांत (Operant conditioning)

अभ्यास प्रश्न

1. हिलगर्ड की एक पुस्तक का नाम बताएं ?
2. सिद्धांत से आप क्या समझते हैं ? स्पष्ट करें |
3. सीखने कुछ महत्वपूर्ण सिद्धांतों के नाम बताएं |

7.6 प्रयत्न एवं भूल का सिद्धांत (Trial and Error theory)

ई . एल. थार्नडाइक (E. L. Thorndike) ने 1913 में प्रकाशित होने वाली अपनी पुस्तक शिक्षा मनोविज्ञान (Educational Psychology) में सीखने का एक नवीन सिद्धांत प्रतिपादित किया| इस सिद्धांत को विभिन्न नामों से पुकारा जाता है | जैसे –

1. **Thorndike's Connectionism (थार्नडाइक का सम्बन्धवाद)**
2. **Connectionist Theory (सम्बन्धवाद का सिद्धांत)**
3. **Stimulus- Response (S-R) (उद्दीपन- प्रतिक्रया सिद्धांत)**
4. **Bond Theory of Learning (सीखने का सम्बन्ध- सिद्धांत)**
5. **Trial and Error Theory (प्रयत्न एवं भूल का सिद्धांत)**

इस सिद्धांत के अनुसार व्यक्ति बार- बार भूल व प्रयत्नों के द्वारा किसी भी व्यवहार को सीखता है | जब व्यक्ति किसी समस्या से निकलने के लिए शुरू में अनेक त्रुटियाँ या गलतियां करता है , लेकिन बार- बार करने से यह गलतियाँ कम होने लगती हैं और कई बार प्रयास करने से अंत में उसे सफलता प्राप्त होती है | प्रारम्भ में हुई गलतियों में व्यक्ति सीखता है और फिर वह इन गलतियों को दोहराता नहीं है | इस तरह बार- बार प्रयास करने व त्रुटियों को कम करने को ही प्रयास एवं त्रुटि का सिद्धांत कहलाता है|

थार्नडाईक के अनुसार सीखना परिस्थिति और उसके बीच के परिणामों का पारस्परिक सम्बन्ध है | (Learning is connecting the situation and its result)

प्रयोग: थार्नडाइक ने एक भूखी बिल्ली को एक जालीदार पिंजरे में बंद कर दिया| इस पिंज़रे का दरवाजा इस प्रकार लगाया गया था कि उसकी चटखनी दबाने पर दरवाजा खुल जाता था | उसने इस

पिंज़रे के बाहर कुछ दूरी पर एक मछली का टुकड़ा एक प्लेट में रख दिया जिसको देखकर बिल्ली पिंज़रे के अंदर उछलने कूदने लगी | इस उछल- कूद में बिल्ली का पैर अचानक चटखनी पर पड़ गया व दरवाजा खुल गया | बिल्ली ने बाहर आ कर मछली का टुकड़ा खा लिया | यह प्रयोग थार्नडाइक ने बिल्ली पर कई बार दोहराया | हर बार दरवाजा खोलने में होने वाली गलतियां कम होती गयीं| और अंत में ऐसी स्थिति आ गयी की बिल्ली ने सीधे अपना पैर चटखनी पर रखा और दरवाजा खोल लिया |

इस प्रकार बिल्ली ने बार-बार प्रयास एवं गलतियां कर के अपने व्यवहार में परिवर्तन कर लिया जो प्रयत्न एवं त्रुटि से ही संभव हो सका|

थार्नडाइक के सीखने के नियम: थार्नडाइक ने सीखने के तीन मुख्य नियम एवं पांच गौड़ नियम प्रतिपादित किये हैं |

- **अ) मुख्य नियम (Primary Law) :**तत्परता का नियम (Law of Readiness), अभ्यास का नियम (Law of Exercise),प्रभाव का नियम (Law of Effect)
- **ब) गौड़ नियम (Secondary Law):**बहुप्रतिक्रिया का नियम, अभिवृत्ति का नियम, आंशिक क्रिया का नियम, आत्मीकरण का नियम, सम्बंधित परिवर्तन का नियम

1.तत्परता का नियम (Law of Readiness): इस नियम का अभिप्राय यह है कि यदि हम किसी कार्य को सीखने के लए तत्पर रहते हैं तो उसे शीघ्र सीख लेते हैं | यदि किसी बच्चे में गणित के प्रश्न करने की इच्छा है, तो वह उनको करता है , अन्यथा नहीं| इतना ही नहीं , तत्परता के कारण वह उनको अधिक जल्दी करता है |

2. अभ्यास का नियम (Law of Exercise): अभ्यास के दो नियम हैं-

1. उपयोग का नियम : यदि हम किसी कार्य को करते रहते हैं तो हम उसे सफलतापूर्वक करना सीख जाते हैं और उसमें पारंगत हो जाते हैं |

2. अनुप्रयोग का नियम : इस नियम का अर्थ यह है कि यदि हम सीखे हुए कार्य का अभ्यास नहीं करते हैं तो हम उसे भूल सकते हैं | अभ्यास के माध्यम से ही हम उसे याद रख सकते हैं |

3. प्रभाव का नियम (Law of Effect): इस नियम के अनुसार हम उस कार्य को सिखाना चाहते हैं , जिसका परिणाम हमारे लिए हितकर होता है या जिससे हमें सुख और संतोष मिलता है | प्रभाव के नियम को संतोष या असंतोष का नियम भी कहा जाता है | इन नियमों के अतिरिक्त कुछ नियम सहायक नियम कहलाते हैं , जो इस प्रकार हैं-

1. बहु- प्रतिक्रया का नियम (Law of Multiple Response) : इस नियम का अभिप्राय यह है कि जब हम् कोई नया कार्य करना सीखते हैं , तब हम उसके प्रति अनेक और विभिन्न प्रकार की प्रतिक्रियाएं करते हैं | दूसरे शब्दों में कहा जाय तो हम विविध प्रकार के उपायों और विधियों का प्रयोग करके उस कार्य में सफलता प्राप्त करने का प्रयत्न करतें हैं | कुछ समय तक प्रयत्न करने के बाद हमें उस कार्य को करने की ठीक विधि मालूम चल जाती है |

2. मनोवृत्ति का नियम (Law of Disposition): इस नियम का अभिप्राय यह है कि जिस कार्य के प्रति हमारी जैसी अभिवृत्ति होती है , उसी अनुपात में हम उसको सीख पातें हैं | यदि मानसिक रूप से हम किसी कार्य को करने के लिए तैयार नहीं हैं तो या तो हम उसे करने में असफल होते हैं या अनेक गलतियां करतें हैं |

3. आंशिक क्रिया का नियम (Law of Partial Activity) : इस नियम का अनुसरण करके , हम जिस कार्य को करना चाहते हैं , उसे छोटे – छोटे भागों में विभाजित कर लेते हैं | इस प्रकार का विभाजन , कार्य को सरल और सुविधाजनक बना दते हैं |

4. आत्मीकरण का नियम (Law of Assimilation): इस नियम का अभिप्राय है कि हम जो भी नया ज्ञान प्राप्त करते हैं, उसका आत्मीकरण कर लेते हैं या उसे आत्मसात कर लेते हैं |

5. सम्बंधित परिवर्तन का नियम (Law of Associative Shifting): इस नियम का अभिप्राय है – पहले कभी की गई क्रिया को उसी के समान दूसरी परिस्थिति में उसी प्रकार करना | इसमें क्रिया का स्वरुप तो वही रहता है , पर परिस्थति में परिवर्तन हो जाता है उदाहरण के लिए प्रेमिका की अनुपस्थिति में प्रेमी उसके चित्र से उसी प्रकार बातें करता है जिस प्रकार वह उससे करता था|

सिद्धांत की आलोचना (Criticism of the Theory): इस सिद्धांत की आलुचना के प्रमुख बिंदु इस प्रकार हैं –

1. यह सिद्धांत सरल और निम्न स्तर के पशुओं का सीखने का अधिक स्पष्टीकरण करता है क्योंकि प्रयोगकर्ता ने अपने सभी प्रयोग पशुओं पर ही किये |
2. सिद्धांत के अनुसार सीखने में प्रगति धीरे- धीरे आती है तथा जो सफलता प्राप्त होती है वह बहुत बार अकस्मात ही होती है |
3. प्रयत्न व भूल द्वारा सीखने में बहुत प्रयत्न करने पड़ते हैं | इससे शक्ति व समय नष्ट होता है| केवल बहुत से प्रयत्न व अभ्यास से ही अधिक लाभ नहीं होता है |
4. यह सिद्धांत सीखने की प्रक्रिया को यंत्रवतमानता है तथा मानव को भी यंत्रवत मानता है |
5. व्यवहारवादी प्रभाव के नियम को नहीं मानते हैं | उनके अनुसार अभ्यास का नियम ही मुख्य है | यही सीखने के लिए पूर्ण तत्व है |

अभ्यास प्रश्न

1. Trial and Error Theory (प्रयत्न एवं भूल का सिद्धांत) को किन विभिन्ननामों से जाना जाता है?
2. Trial and Error Theory (प्रयत्न एवं भूल का सिद्धांत)की आलोचना करें |
3. थार्नडाइक के सीखने के नियम की व्याख्या करें |
4. थार्नडाइक के Trial and Error Theory (प्रयत्न एवं भूल का सिद्धांत) की व्याख्या करें ?
5. थार्नडाइक के Trial and Error Theory (प्रयत्न एवं भूल का सिद्धांत) के प्रयोग की व्याख्या करें |

7.6 सूझ या अंतर्दृष्टि का सिद्धांत(Insight Theory)

इस सिद्धांत को समग्राकृति सिद्धांत भी कहते हैं | इस सिद्धांत का प्रतिपादान जर्मन मनोवैज्ञानिक वार्दीमर कोफ्का तथा कोहलर ने किया था | इस सिद्धांत को गेस्टाल्ट सिद्धांत भी कहते हैं | यह जर्मन भाषा का शब्द है | इस सिद्धांत के अनुसार प्राणी जो कुछ देखते, सुनते या अनुभव करते हैं उसकी एक पूर्ण आकृति बनती है | हम कुछ कार्यों को करके सीखते हैं और कुछ को दूसरों को करते हुए देखकर सीखते हैं | कुछ कार्य ऐसे भी होते हैं , जिन्हें हम अपने आप सीख लेते हैं | इस प्रकार के सीखने को सूझ द्वारा सीखना कहते हैं | इसका अर्थ स्पष्ट करते हुए गुड ने लिखा है कि " सूझ , वास्तविक स्थिति का आकस्मिक, निश्चित और तात्कालिक ज्ञान है" |

कोहलर का प्रयोग : गेस्टाल्टवादियों का कहना है कि व्यक्ति अपनी सम्पूर्ण परिस्थिति को अपनी मानसिक शक्ति से अच्छी तरह समझ लेता है और सहसा उसे ठीक –ठीक करना सीख जाता है | वह ऐसा अपने सूझ के कारण करता है | इस सम्बन्ध बहुत से प्रयोग किये जा चुके हैं जिनमें कोहलर का प्रयोग सबसे प्रसिद्ध है |

कोहलर ने एक वनमानुष को , जिसका नाम सुलतान था को एक कमरे में बंद कर दिया | कमरे की छत में एक केला लटका दिया और कुछ दूर पर एक बक्सा रख दिया | वन मानुष ने उछाल कर केले को लेने का प्रयास किया किन्तु वह सफल नहीं हो पाया | वह थोड़ी देर इधर- उधर घूमा , बक्से में पास आ कर खडा हुआ , उसे खींच कर केले के नीचे ले गया, उस पर चढ गया और उछल कर केला ले लिया | सुलतान के इन सब कार्यों से सिद्ध हुआ कि उसमें सूझ थी, जिसने उसे अपने लक्ष्य को प्राप्त करने में सफलता दी |

अपने इस प्रयोग में थोड़ा सा सुधार कर के कोहलर ने एक अन्य प्रयोग सुलतान नामक चिम्पांजी पर किया | इस प्रयोग में कोहलर ने सुलतान को (जो सभी चिम्पांजियों में सबसे अधिक बुद्धिमान था) एक पिंजरे में रखा तथा कुछ केले पिन्ज़डे से बाहर रख दिए जो सुलतान की पहुँच से बाहर थे | दो छोटे डंडे भी पिंजरे में रख दिए गए | दोनों डंडे खोखले थे एवं इतने छोटे थे कि उनमें से कोइ भी सीधे केलों तक नहीं पहुँच सकते थे | इसके साथ साथ यह व्यवस्था भी था कि दोनों डंडों को आपस में जोड़ा जा सके | सुलतान प्रयास एवं त्रुटि में उलझा रहा किन्तु वह केलों तक पहुँच पाने में असफल रहा | कुछ समय बाद वह दोनों डंडों से खेलने लगा अचानक उसने पाया कि दोनों डंडों को आपस में जोड़ा जा सकता है | दोनों डंडों को आपस में जोड़कर उसने केले को अपनी तरफ खींच लिया | दुसरे प्रयास में उसे और कम समय लगा | इस प्रकार कोहलर ने यह सिद्ध किया कि तत्परता और सूझ से इस समस्या का हल निकाला गया न कि मात्र प्रयास एवं त्रुटि से |

कोहलर ने चिम्पांजी के अतिरिक्त एक प्रयोग 25 महीने की एक छोटी लड़की पर भी किया | इस लड़की ने कुछ सप्ताह पूर्व ही चलना सीखा था | कोहलर ने इस लड़की से करीब दो मीटर दूर एक खिलौना रख दिया| खिलौने के दूसरी ओर एक बाधा भी उत्पन्न कर दी गई अर्थात संदूक आदि रख दिया गया | संदूक देख कर लड़की थोड़ी सी ठीठक गयी फिर धीरे से संदूक के बगल से जा कर खिलौना ले लिया |

सिद्धांत के नियम : इस सिद्धांत के कुछ प्रमुख नियम निम्नलिखित है |

1. **संरचनात्मक सिद्धांत :** इस सिद्धांत के अनुसार सीखना एक निश्चित स्वरुप को प्रकट करता है | इस नियम का तात्पर्य यह होता है कि जब हम कोई कार्य सीख रहे होते हैं तो उसे सीखते हुए थोड़ी बहुत गलती पर कभी – कभी हमारा या देखने वालों का ध्यान नहीं जाता है | परन्तु बहुत गौर से देखने पर ही त्रुटियों पर जो की बहुत बारीक होती हैं ध्यान जाता है |
2. **समीपता का नियम :** इस नियम के अनुसार , जो वस्तुएं आकार में सामान या एक सी होती हैं वे एक समूह के रूप में दिखाई देतीं हैं | जैसे एक त्रिभुज वृत्त के समीपता और किसी कार्य को करने में सभी छात्रों का एक समूह के रूप में प्रतीत होता है |
3. **समानता का नियम :** इसके अनुसार जो वस्तुएं आकार एवं रूप में एक सी होतीं हैं उनमें सम्पूर्ण आकृति उसी तरह दिखाइ देती हैं | जैसे किसी एक व्यक्ति को देखकर किसी अन्य परिचित व्यक्ति की याद आ जाना समानता के कारण होती है | यह समानता रंग रूप आकृति या किसी भी कारण से हो सकती है |
4. **समापन का नियम :** मनुष्य के दिमाग में स्थिति क्षेत्र को बंद करने की प्रक्रिया इस नियम के अंतर्गत आती है | इसमें किसी एक समस्या पर ध्यान केंद्रित करना आता है |
5. **निरंतरता का नियम** : इस सिद्धांत के अनुसार जिन अवयवों में एक जैसे निरंतरता अर्थात क्रम होता है वो आसानी से संगठित रूप में व्यक्ति को दिखाई देतीं हैं वो ज़ल्दी ही ध्यान में आ जाती हैं |

सिद्धांत की आलोचना : इस सिद्धांत के आलोचना के प्रमुख बिंदु इस प्रकार हैं

1. इस सिद्धांत के नियमों के अनुसार प्रत्येक कार्य का अधिगम नहीं किया जा सकताहै , जैसे लिखना, पढाना , बोलना आदि
2. इस सिद्धांत में बतायी गयी बातें पशुओं तथा बच्चों पर लागू नहीं होती हैं , क्योंकि उनमें चिंतन का आभाव रहता है पर कभी कभी यह भी देखने में आता है कि बालक भी सूझ का प्रयोग करते हैं
3. यह सिद्धांत अपने में पूर्ण नहीं है क्योंकि प्रयत्न तथा भूल किसी न किसी स्तर पर आवश्यक है तथा हमारे पोरव अनुभव भी हमें समस्या के समाधान अथवा सीखने में सहायता देतें हैं |
4. सूझ पर भी बहुत सी बातें प्रभाव डालतीं हैं , जैसे शारीरिक क्षमता ,आयु , वंशानुक्रम , वैयक्तिक विभिन्नताएं अथा अधिगम की व्यावास्तित दशाएं आदि |
5. शेरिन्गटन आदि विद्वानों ने इस बात पर भी जोर दिया है कि अचानक समस्या का समाधान संयोग की बात है सूझ की बात नहीं है |

अभ्यास प्रश्न

1. सूझ या अंतर्दृष्टि का सिद्धांत से सम्बंधित कोहलर के सिद्धांत की व्याख्या करें |
2. सूझ या अंतर्दृष्टि का सिद्धांत की अपने शब्दों में आलोचना करें ?
3. सूझ या अंतर्दृष्टि का सिद्धांत किस तरह की परिस्थितियों में सहयोगी होता है ?

7.8 प्रयत्न एवं भूल विधि तथा सूझ विधि में अंतर (Differences between Trial and Error and Insight method of learning)

1. प्रयत्न एवं भूल विधि द्वारा सीखने में प्राणी परिस्थितियों को नहीं समझ पाता है परन्तु सूझ द्वारा सीखने में वह उसे अच्छी तरह समझता है |
2. प्रयत्न एवं भूल विधि में कुशलता प्राप्त करने के लिए शारीरिक कुशलता पर अधिक बल तथा सूझ द्वारा सीखने पर दिमाग का अधिक प्रयोग किया जाता है
3. प्रयत्न एवं भूल विधि में समस्या का समाधान करने में सभी शारीरिक भागों का नियोजन आवश्यक होता है, जबकि सूझ विधि में सीखना प्रत्यक्षीकरण पर निर्भर करता है |
4. प्रयत्न एवं भूल विधि सीखने में प्रत्येक समस्या के उपस्थित होने पर नए सिरे से प्रयत्न करना पड़ता हई | सूझ द्वारा ज्ञान का स्थानांतरण अधिक संभव होत्ता है |
5. प्रयत्न एवं भूल विधि में व्यक्ति की नजर लक्ष्य पर रहती है तथा क्रिया लक्ष्य प्राप्ति पर होती है | सूझ विधि में अचेतन मन अधिक क्रिया शील होता है तथा चेतन क्रियाएँ कम होतीं हैं |

अभ्यास प्रश्न

1. प्रयत्न एवं भूल विधि (Trial and Error) तथा सूझ विधि (Insight method of learning) में अंतर स्पष्ट करें |

7.9 सारांश (Summary)

मनोवैज्ञानिको ने अधिगम को मूलतः एक मानसिक प्रक्रिया माना है जिसकी दो मुख्य विशेषताएं होती हैं – निरंतरता एवं सार्वभौमिकता| यह प्रक्रिया सदैव और सर्वत्र चलती रहती है | इसलिए मनुष्य अपने जीवन में सदैव कुछ न कुछ सीखते रहता है , उसकी सीखने की प्रक्रिया में कभी भी विराम या अस्थिरता नहीं आती है |

ई . एल. थार्नडाइक (E. L. Thorndike) ने 1913 में प्रकाशित होने वाली अपनी पुस्तक शिक्षा मनोविज्ञान (Educational Psychology) में सीखने का एक नवीन सिद्धांत प्रतिपादित किया| इस सिद्धांत के अनुसार व्यक्ति बार- बार भूल व प्रयत्नों के द्वारा किसी भी व्यवहार को सीखता है | जब व्यक्ति किसी समस्या से निकलने के लिए शुरू में अनेक त्रुटियाँ या गलतियां करता है , लेकिन बार-बार करने से यह गलतियाँ कम होने लगती हैं और कई बार प्रयास करने से अंत में उसे सफलता प्राप्त होती है | प्रारम्भ में हुई गलतियों में व्यक्ति सीखता है और फिर वह इन गलतियों को दोहराता नहीं है | इस तरह बार- बार प्रयास करने व त्रुटियों को कम करने को ही प्रयास एवं त्रुटि का सिद्धांत कहलाता है |

सूझ या अंतर्दृष्टि के सिद्धांत को समग्राकृति सिद्धांत भी कहते हैं | इस सिद्धांत का प्रतिपादान जर्मन मनोवैज्ञानिक वार्दीमर कोफ्का तथा कोहलर ने किया था| इस सिद्धांत को गेस्टाल्ट सिद्धांत भी कहते हैं | यह जर्मन भाषा का शब्द है | इस सिद्धांत के अनुसार प्राणी जो कुछ देखते, सुनते या अनुभव

करते हैं उसकी एक पूर्ण आकृति बनती है | हम कुछ कार्यों को करके सीखते हैं और कुछ को दूसरों को करते हुए देखकर सीखते हैं | कुछ कार्य ऐसे भी होते हैं , जिन्हें हम अपने आप सीख लेते हैं | इस प्रकार के सीखने को सूझ द्वारा सीखना कहते हैं |

7.10 शब्दावली: (Glossary)

- **अधिगम (Learning) :** सीखने के कारण व्यक्ति के व्यवहार में परिवर्तन आता है, व्यवहार में यह परिवर्तन बाह्य एवं आंतरिक दोनों ही प्रकार का हो सकता है। अतः सीखना एक प्रक्रिया है जिसमें अनुभव एवं प्रशिक्षण द्वारा व्यवहार में स्थायी या अस्थाई परिवर्तन दिखाई देता है।

- **प्रयत्न एवं भूल का सिद्धांत(Theory of trial and Error) :** जब व्यक्ति किसी समस्या से निकलने के लिए शुरू में अनेक त्रुटियाँ या गलतियां करता है , लेकिन बार- बार करने से यह गलतियाँ कम होने लगती हैं और कई बार प्रयास करने से अंत में उसे सफलता प्राप्त होती है | प्रारम्भ में हुई गलतियों में व्यक्ति सीखता है और फिर वह इन गलतियों को दोहराता नहीं है | इस तरह बार- बार प्रयास करने व त्रुटियों को कम करने को ही प्रयास एवं त्रुटि का सिद्धांत कहलाता है|

- **सूझ या अंतर्दृष्टि का सिद्धांत(Insight Theory):** इस सिद्धांत के अनुसार प्राणी जो कुछ देखते, सुनते या अनुभव करते हैं उसकी एक पूर्ण आकृति बनती है | हम कुछ कार्यों को करके सीखते हैं और कुछ को दूसरों को करते हुए देखकर सीखते हैं | कुछ कार्य ऐसे भी होते हैं , जिन्हें हम अपने आप सीख लेते हैं | इस प्रकार के सीखने को सूझ द्वारा सीखना कहते हैं |

7.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. थार्नडाइक के Trial and Error Theory (प्रयत्न एवं भूल का सिद्धांत) की आलोचनात्मक व्याख्या करें |
2. अधिगम से आप क्या समझते हैं ? अधिगम की कुछ महत्वपूर्ण विशेषताओं को अपने शब्दों में समझाएं
3. प्रयत्न एवं भूल विधि (Trial and Error) तथा सूझ विधि (Insight method of learning) में अंतर स्पष्ट करें |
4. सूझ या अंतर्दृष्टि का सिद्धांत से सम्बंधित कोहलर के सिद्धांत की अपने शब्दों में विस्तार से व्याख्या करें |

7.12 अतिरिक्त संदर्भ ग्रंथ सूची(Suggested Readings)

- सिंह, अरूण कुमार, (2008) मनोविज्ञान में प्रयोग एवं परियोजना, मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशर्स.
- सिंह, अरूण कुमार, (2001) शिक्षा मनोविज्ञान, पटना, भारती भवन, पब्लिशर्स एड डिस्ट्रीब्यूटर्स।
- सिंह, अरूण कुमार, (2001) संज्ञानात्मक मनोविज्ञान, वाराणसी, मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशर्स एड डिस्ट्रीब्यूटर्स।
- सिंह, अरूण कुमार, (2001) उच्चतर मनोविज्ञान, पटना,भारती भवन, पब्लिशर्स एड डिस्ट्रीब्यूटर्स
- सुलैमान, डॉ॰ मुहम्मद (2007) "उच्चतर शिक्षा मनोविज्ञान"
- मंगल, एस॰के॰ (2010) "शिक्षा मनोविज्ञान". पीएचआई लर्निंग प्राइवेट लिमिटेड.
- एस॰के॰ मंगल (2010) "शिक्षा मनोविज्ञान". पीएचआई लर्निंग प्राइवेट लिमिटेड
- बद्रीलाल गुप्ता (2012). सीखने की विधियाँ. कॉन्सेप्ट पब्लिशिंग कम्पनी.
- Brown, Peter C.; Roediger, Henry L.; McDaniel, Mark A. (2014) Make It Stick: The Science of Successful Learning. Cambridge, MA: Belknap Press.
- Holt, John (1983). How Children Learn. UK: Penguin Books
- Vosniadou, Stella. How Children Learn. UK: UNESCO.

इकाई - 8

अनुकूलित अनुक्रिया एवं क्रिया प्रसूत अनुबंध, अधिगम स्थानांतरण

Classical and Operant Conditioning, Transfer of Learning

इकाई की रूपरेखा

8.1 प्रस्तावना
8.2 उद्देश्य
8.3 अनुकूलित अनुक्रिया का सिद्धांत
8.4 क्रिया प्रसूत अनुबंधन का सिद्धांत
8.5 अधिगम स्थानांतरण
8.6 सारांश
8.7 शब्दावली
8.8 अतिरिक्त संदर्भ ग्रंथ सूची
8.9 निबंधात्मक प्रश्न

8.1 प्रस्तावना (Introduction)

किसी भी कार्य को सीखने में मनोविज्ञान की भूमिका महत्वपूर्ण होती है | सीखने की प्रक्रिया से यदि मनोविज्ञान को अलग कर दिया जाय तो सीखने की प्रक्रिया शून्य हो जाती है | इसीलिये सीखने या अधिगम का सीधा सम्बन्ध मनोविज्ञान से होता है | अधिगम जीवन पर्यंत चलने वाली प्रक्रिया जिसके आधार पर प्रत्येक व्यक्ति के व्यवहार में परिवर्तन आता है जिसके फलस्वरूप व्यक्ति की क्रियाओं में परिवर्तन आता है | अधिगम के सिद्धांतों का परीक्षण पशुओं पर अनेक मनोवैज्ञानिकों द्वारा किये गए है | अधिगम के दो सिद्धांतों प्रयत्न एवं भूल का सिद्धांत(Trial and error theory) एवं सूझ के सिद्धांत(Insight Theory or Gestalt theory)को हमने पिछले अध्याय में पढ़ा | इस अध्याय में हम निम्न दो सिद्धांतों एवं अधिगम स्थानांतरण(Transfer of Learning) के बारे में पढेंगें |

1. अनुकूलित –अनुक्रिया का सिद्धांत (Classical Conditioning Theory)
2. क्रिया प्रसूत सिद्धांत (Operant conditioning Theory)

8.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप-

- अनुकूलित अनुक्रिया के सिद्धांत एवं अनुप्रयोग को समझ सकेंगें |
- क्रिया प्रसूत अनुबंधन का सिद्धांत एवं अनुप्रयोग को समझ सकेंगें |
- अधिगम स्थानांतरण के सिद्धांत एवं अनुप्रयोग को समझ सकेंगें |
- अनुकूलित अनुक्रिया के सिद्धांत एवं क्रिया प्रसूत अनुबंधन के सिद्धांत की कमियों को समझ सकेंगे |

8.3 अनुकूलित- अनुक्रिया का सिद्धांत (Classical – Conditioning Theory)

इस सिद्धांत को प्रतिस्थापन सिद्धांत या अनुबंध सिद्धांत भी कहते हैं | इस सिद्धांत को रूसी शरीर विज्ञानी आई. पी. पावलॉव ने दिया था | इस सिद्धांत में उद्दीपन व प्रतिक्रया के सम्बन्ध द्वारा सीखने पर बल दिया गया है | पावलॉव के अनुसार अनुकूलित – अनुक्रिया का अर्थ अस्वाभाविक उत्तेजना के प्रति स्वाभाविक उत्तेज़ना है | उदाहरण के लिए किसी बच्चे का चाकलेट देखकर स्वतः ही मुंह में पानी आ जाना या फिर किसी लड़की का इमली देखकर पानी आ जाना आदि अनुकूलित – अनुक्रिया का ही उदाहरण है |

लेस्टर एनडरसन (Lester Andersan) ने इस सिद्धांत को स्पष्ट करते हुए कहा है कि कुछ मूल उद्दीपको के प्रस्तुत किये जाने पर जो क्रियाएँ होतीं हैं उन्हें सहज या स्वाभाविक क्रियाएँ कहते हैं | अब यदि इस मूल उद्दीपक के साथ एक नया उद्दीपक और जोड़ दिया जाय और इसकी बार – बार दोहराया जाये तो एक ऐसी स्थितिआ जाती है कि यदि मूल उद्दीपक को हटा दिया जाये और उसके स्थान पर केवल नवीन उद्दीपक ही रहने दिया जाये तो व्यक्ति वही प्रतिक्रया करता है जो उसने मूल उद्दीपक के साथ की थी | ऐसा इसलिए होता है क्योंकि प्रतिक्रया नए उद्दीपन के साथ संबंधहो जाता है यही अनुकूलित अनुक्रिया का सिद्धांत है| इस तथ्य की सामान्य व्याख्या निम्न प्रकार है-

इसकी सामान्य व्याख्या यह है कि जब दो उत्तेज़नाएं बार – बार दी जातीं हैं , पहले नयी बाद में मौलिक, कुछ समय बाद पहली क्रिया भी प्रभावशाली हो जाती है |

प्रयोग (Experiment): पावलॉव ने अपना अनुकूलित अनुक्रिया का प्रयोग एक कुत्ते पर किया | जिसको उसने एक ध्वनि रहित कमरे में मेज़ से बाँध दिया जिससे कुत्ते को बाहरी शोर प्रभावित न कर सके | वह उसने एक छोटी सी खिडकी खोल दी जिसमें से अंदर झाँक कर कुत्ते की क्रियाओं को देखा जा सकता था | उसने कुत्ते की लार की नाली को काट कर एक रबर की नली द्वारा जोड़ कर कांच की टोकरी में रख दिया , जिससे कि कुत्ते की लार उसमें एकत्रित हो जाए |

प्रयोग शुरू करने से पहले पावलॉव ने कुत्ते के सामने गोस्त का टुकड़ा रखा , जिसके स्वाद एवं गंध के कारण कुत्ते के मुंह से लार टपकने लगी | दूसरी बार पावलॉव ने भोजन रखने के साथ – साथ एक

घंटी बजाई जिससे कुत्ते के मुंह से लार लपकने लगा | इस घंटी वाले प्रयोग को कई बार दोहराने में घंटी बजा कर कुत्ते को हटा दिया गया | अंत मन एक स्थिति ऐसी आयी की केवल घंटी बजाती ही कुत्ते की लार टपकने लगी | इससे यह ज्ञात हुआ कि कुता घंटी की आवाज़ से प्रतिबद्ध हो गया है | इसमें भोजन प्राकृतिक स्वाभाविक उद्दीपक है | घंटी अस्वाभाविक उद्दीपक है व लार टपकाना एक प्रकार की अनुक्रिया है |

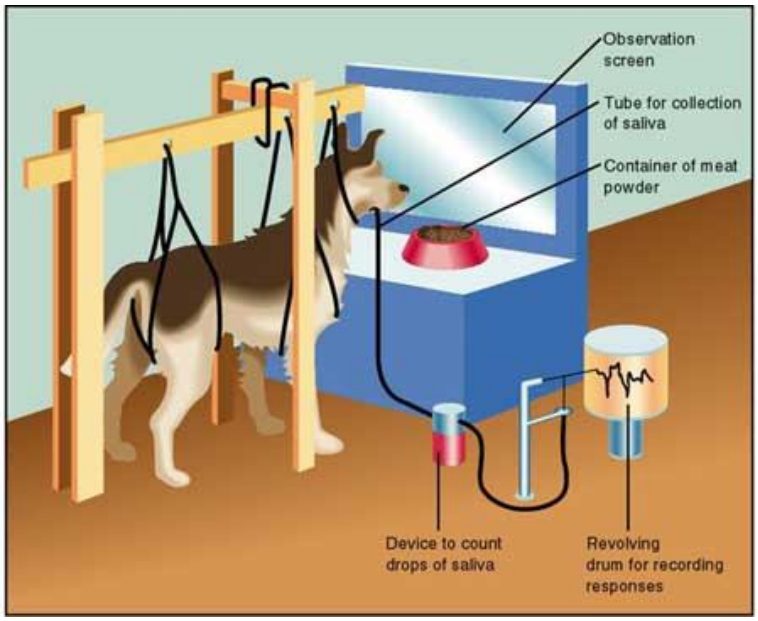

वाटसन का प्रयोग : वाटसन ने भी अपने ग्यारह वर्षीय पुत्र के साथ एक प्रयोग किया| वाटसन ने उसे एक खरगोश लाकर दिया | उसके पुत्र अलबर्ट ने उसे बहुत प्यार करना शुरू कर दिया | वो उसके साथ खेलता तो कभी उसके ऊपर हाथ फेरता था | इसके पश्चात वाटसन ने खरगोश के साथ अलबर्ट के प्यार करने के दौरान एक डरावनी ध्वनि उत्पन्न की | इस डरावनी ध्वनि को अलबर्ट के खरगोश के साथ प्यार करने के दौरान दोहराया गया | यह आवाज़ उसी समय की जाती थी बालक खरगोश के साथ खेलता था | इसके पश्चात ध्वनि उत्पन्न करनी बंद कर दी | देखने में आया कि बालक अब केवल खरगोश को देखा कर ही डरने लगा | इस प्रकार भय की अनुक्रिया खरगोश (कृत्रिम उद्दीपन के साथ) अनुबंधित हो गयी और इस अनुबंधन के परिणामस्वरूप उसने खरगोश के बालों जैसे अन्य जानवरों से भी डराना शुरू कर दिया अर्थात वह कृत्रिम उद्दीपन से भी भयभीत होने लगा | अतः इन प्रयोगों से यह निष्कर्ष निकाला गया कि सीखने की क्रियाओं को अनुबंधन प्रक्रिया के माध्यम से अच्छी तरह समझा जा सकता है |

सिद्धांत : इस सिद्धांत के निम्नलिखित नियमहैं -

1. **समय सिद्धांत (Time Principle)** : इस सिद्धांत में दोनों उतेज़को (घंटी बजाना व खाना देना) के बीच जितना कम समय अंतराल होता है | वह प्रभाव उतना ही अधिक प्रभावी होता है | जैसे – कुत्ते को घंटी बजा कर एक निश्चित समय पर ही खाना दिया गया और इन दोनों के बीच कम से कम समय रखा गया |
2. **तीव्रता का सिद्धांत (Principle of Intensity**): इस सिद्धांत के अनुसार जो क्रिया हमें व्यवहार में लानी होती है उस क्रिया की शिक्षा हम उसे पहले देते हैं और बाद में अन्य सामान्य शिक्षा देते हैं | पावलाव ने पहले घंटी बजाई बाद में कुत्ते को भोजन दिया अगर उसे (कुत्ते) को भोजन पहले ही दे दिया गया होता तो घंटी की आवाज़ से प्रतिबद्ध नहीं हो पाता|
3. **एकरूपता का सिद्धांत (Principle of Consistency):** इस प्रयोग में की गयी अनुक्रिया को उसी प्रकार दोहराना चाहिए जिस प्रकार हमने पहले दुहराई है | इससे उसे व्यवहार में लाना आसान हो जाता है |
4. **पुनरावृत्ति का सिद्धांत (Principle of Repetition)** : इस सिद्धांत के अनुसार जब कोई क्रिया बार बार की जाती है या दोहराई जाती है , तो वह हमारे व्यवहार में आ जाती है| जैसे यंहा बार – बार एक ही प्रकार से कुत्ते को घंटी बजाने के बाद ही भोजन दिया गया जो बाद में उसके व्यवहार का अंग बन गया |
5. **व्यवधान का सिद्धांत (Principle of Inhibition):** पावलॉव के इस सिद्धांत के अनुसार अनुबंधन की स्थापना किसी ऐसी जगह होनी चाहिए जहाँ पर शांति एवं नियंत्रण हो इससे किसी क्रिया को सीखने में बाधा नहीं होती और कार्य जब बिना किसी बाधा के सीखा या सिखाया जाता है | तो वह आसानी से एवं ज़ल्दी ही सीख लिया है | इसलिए पावलाव ने कुत्ते को एक शांत एवं नियंत्रित कमरे में बांधा था | जिससे कोई भी बाह्य बाधा उसकी अनुक्रिया में बाधा उत्पन्न ना कर सके |

अनुकूलित – अनुक्रिया के सिद्धांत की आलोचना (Criticism of Classical-Conditioning Theory) :

1. इस सिद्धांत के द्वारा केवल कुछ ही क्रियाओं को सीखाना संभव है | सभी क्रियाओं को इसके द्वारा नहीं सीखाया जा सकता |

2. यह सिद्धांत केवल जानवरों पर ही लागू हो सकता है व्यक्तियों पर नहीं, क्योंकि हम जानवरों को तो बाँध कर सीखा सकते हैं लेकिन व्यक्तियों एवं मानव को नहीं |
3. यह सिद्धांत मनुष्य को एक मशीनरी मान कर चलता है और उसी के आधार पर व्यक्तियों को कार्य सीखता है जबकी मनुष्य कभी भी मशीन की तरह कार्य नहीं कर सकता है |
4. कभी भी किसी कार्य को अनुबंधित कर के नहीं सीखाया जा सकता है , चाहे वह कार्य शिक्षण का हो या खेल का , बालक अपने शिक्षा के अनुसार ही सीखते हैं |
5. इस सिद्धांत से किसी भी क्रिया को सीखाना हानिकारक हो सकता है क्योंकि बालक जन्म लेने के साथ ही अपनी इच्छानुसार कार्य करने लगता है | उसको बाध्य नहीं किया जा सकता है |
6. इस सिद्धांत में निरंतर अभ्यास से ही किसी क्रिया को सीखाया जा सकता है और इस क्रिया में बालक की स्वयं की इच्छाओं का दमन हो जाता है |

अभ्यास प्रश्न

1. अनुकूलित- अनुक्रिया के सिद्धांत से आप क्या समझते हैं ?
2. अनुकूलित- अनुक्रिया के सिद्धांत के नियमों के बारे में विस्तार से बताएं |
3. अनुकूलित- अनुक्रिया के सिद्धांत की आलोचना करें|
4. अनुकूलित- अनुक्रिया के सिद्धांत से सम्बंधित पावलव के प्रयोग की व्याख्या करें|
5. अनुकूलित- अनुक्रिया के सिद्धांत से सम्बंधित वाटसन के प्रयोग की व्याख्या करें|

8.4 Operant Conditioning (क्रिया प्रसूत अनुबंध)

क्रिया प्रसूत अनुबंधन के सिद्धांत का प्रतिपादन अमेरिकन मनोवैज्ञानिक बी एंफ़. स्किनर ने १९३८ में किया| इस सिद्धांत की रचना के लिए इन्होने चूहे कबूतर आदि प्राणियों पर महत्वपूर्ण प्रयोग किये | इस सिद्धांत को नैमित्तिक अनुबंधन सिद्धांत , सक्रीय अनुकूलित सिद्धांत भी कहते हैं |एंम . एल. बिगी ने अपनी पुस्तक Learning Theories for Teachers में स्किनर के क्रिया प्रसूत सिद्धांत के विषय में कहा है कि क्रिया प्रसूत अनुबंधन अधिगम की एक प्रक्रिया है जिसमें सतत एवं संभावित अनुक्रिया होती है | ऐसे समय में क्रिया प्रसूतता की शक्ति बढ़ जाती है |

Operant Conditioning is the learning process whereby a response is made more probable or more frequent an operant is strengthened.

क्रिया प्रसूत अनुबंधन : इसको समझने के लिए आप अपने उन दिनों को याद कर सकते हैं जब आप छोटे थे और स्कूल जाना नहीं चाहते थे क्योंकि वँहा आपका मन नहीं लगता था | वंह जब आप को कोई चाकलेट देता था तो कुछ देर के लिए आपका मन लग जाता था किन्तु कुछ समय बाद आप फिर उदास हो जाते थे और ये प्रक्रिया तब तक चलती रहती थी जब तक आप घर नहीं लौट आते थे | यही प्रक्रिया दूसरे दिन भी चलती रहती थी लेकिन आपको जब कोई अन्य प्रलोभन जैसे टाफी इत्यादि दिया जाता था तो आप स्कूल जाने के लिए तैयार हो जाते थे | धीरे – धीरे आप

बड़े हो गये और आप को पढाने में मज़ा आने लगा तब ऐसी स्थिति में आप बिना किसी प्रलोभन के ही स्कूल जाने के लिए तैयार होने लगे | यहाँ पहली क्रिया या स्थिति शास्त्रीय या क्लासिकल अनुबंधन के है एवं दूसरी क्रिया, क्रिया प्रसूत अनुबंधन की है | अगर यहाँ देखा जाये तो आप विद्यालय दोनों ही परिस्थितियों में गए लेकिन पहले परिस्थिति में लालच द्वारा आपको विद्यालय तक ले जाया गया | जबकि दूसरी परिस्थिति में पढाने के प्रति रुचि आपको विद्यालय तक ले गयी अतः स्किनर के अनुसार क्रिया प्रसूत अनुबंधन एक अधिगम प्रक्रिया है जिसके द्वारा अधिगम अनुक्रिया को अधिक संभाव्य एवं अधिक द्रुत बनाया जाता है |

"Operant conditioning is the learning process whereby a response is made more probable or more frequent."

स्किनर ने जिस आधार पर अपने सिद्धांत को प्रतिपादित किया , वह उद्दीपन – अनुक्रिया(Stimulus- Response) व सम्बंधवाद (Connectionism) पर आधारित है | स्किनर का सिद्धांत इन दोनों का ही सम्मिलित रूप है | चूँकि स्किनर एक व्यवहारवादी थे इस आधार पर इन्होने दो प्रकार के व्यवहारों को बताया है |

१. प्रसूत व्यवहार (Emitted Behavior)
२. अनुक्रिया व्यवहार (Elicited Behavior)

1.प्रसूत व्यवहार (Emitted Behavior): कुछ अनुक्रियायें ऐसी होतीं हैं , जिनको करने के लिए किसी उद्दीपन की आवश्यकता नहीं होती है अर्थात जो अनुक्रियायें स्वेच्छा से होती हैं , प्रसूत व्यवहार के अंतर्गत आती हैं | जैसे – किसी मानव का स्वयं हाथ या पैर हिलाना , तीव्र प्रकाश में पलको का झपकाना, इत्यादि |

2. अनुक्रिया व्यवहार (Elicited Behavior): कुछ क्रियाएँ ऐसी होती हैं जिनको करने या कराने के लिए किसी उद्दीपन की आवश्यकता होती है | बिना उद्दीपन के क्रिया होने की संभावना या तो होटी ही नहीं है या बहुत ही कम होती है | अतः ऐसी क्रियाएँ या अनुक्रियायें जो किसी उद्दीपन के कारण होती हैं उन्हें अनुक्रिया व्यवहार कहा जाता है | जैसे – सुई चुभने पर हाथ हटा लेना , खाने की बढिया वस्तु दिखाई दे जाने पर लार का टपकाना |

पुनर्बलन : पुनर्बलन का तात्पर्य है किसी अनुक्रिया के बार – बार दुहराने की संभावना का बढ़ना (Reinforcement means that the probability of the repetition pf certain responses is increased.).

डब्लू एंफ़ हिल ने भी बताया है कि – पुनर्बलन अनुक्रिया का परिणाम है जिससे भविष्य में उसके होने की संभावना बढ़ जाती है |

क्रिया प्रसूत व्यवहार को बल प्रदान करके वांछनीय व्यवहार करने में पुनर्बलन द्वारा भरपूर सहायता मिलती है | व्यवहार अथवा अनुक्रिया के घटित होने पर उसका पुनर्बलन करने का तात्पर्य कुछ इस प्रकार के है जिसके द्वारा उस प्रकार की अनुक्रिया अथवा व्यवहार के पुनः घटित होने की संभावना को बढ़ा दिया जाय | अनुक्रिया तथा व्यवहार का हम दो प्रकार से पुनर्बलन कर सकते हैं –

1. धनात्मक पुनर्बलन (Positive Reinforcement)

2. ऋणात्मक पुनर्बलन (Negative Reinforcement)

1.धनात्मक पुनर्बलन (Positive Reinforcement):धनात्मक पुनर्बलन प्रदान करने वाला उद्दीपन अनुक्रिया की गति में वृद्धि करता है है या यह वह उत्तेज़क होते हैं, जो परिस्थिति से जुडने पर सक्रीय – अनुक्रिया की संभावना को बढ़ा देते हैं, जैसे- भोजन , पानी , सम्मान प्रशंसा आदि |

2. ऋणात्मक पुनर्बलन (Negative Reinforcement): यह किसी भी अनुक्रिया की सम्भावना को कम करता है और परिस्थिति से हटा लेने पर सक्रीय अनुक्रिया की संभावना को बल देता है | जैसे अपमान, दंड आदि |

मुख्य रूप से निम्न चार प्रकार का पुनर्बलन आयोजन (Reinforcement Schedule)प्रयोग में लाया जाता है |

1. **सतत पुनर्बलन (Continuous Reinforcement Schedule)**
2. **निश्चित अंतराल पुनर्बलनFixed interval Reinforcement Schedule**
3. **निश्चित अनुपात पुनर्बलनFixed Ratio Reinforcement Schedule**
4. **परिवर्तन शील पुनर्बलन Variable Reinforcement Schedule**

1. सतत पुनर्बलन (Continuous Reinforcement Schedule):इसको शत प्रतिशत अनुसूची भी कहते हैं, इसके अनुसार सीखने वाले की प्रत्येक सही अनुक्रिया या व्यवहार को पुनर्बलित किया जाता है | जिससे वह कार्यों शीघ्रता से सीख सके |

2. निश्चित अंतराल पुनर्बलन (Fixed interval Reinforcement Schedule):इस आयोजन में सीखने वाले को एक निश्चित समय बाद पुनर्बलन प्रदान किया जाता है | यह समयावधि एक मिनट, घंटा , दिन , सप्ताह या महीना भी हो सकता है |

3. निश्चित अनुपात पुनर्बलन (Fixed Ratio Reinforcement Schedule):इसमें पुनर्बलन देने से पहले यह निश्चित कर लिया जाता है कि कितनी बार सही अनुक्रिया करने पर उसे पुनर्बलन दिया जाएगा जैसे- पूछे जाने वाले प्रश्नों में से प्रत्येक तीन के ठीक उत्तर दिए जाने पर बालक को पुनर्बलन दिया जाना आदि |

4. परिवर्तन शील पुनर्बलन (Variable Reinforcement Schedule): इसे आंशिक आयोजन भी कहते हैं | इस आयोजन में पुनर्बलन कभी भी दिया जा सकता है या उसे रोका जा सकता है | इसमें पुनर्बलन करते समय सही या गलत अनुक्रिया को महत्व नहीं दिया जाता है |

स्किनर द्वारा किया गया प्रयोग : स्किनर ने अपने प्रयोगों को चूहों व कबूतरों के ऊपर उनके व्यवहार परिवर्तन के लिए किया |

प्रयोग 1. स्किनर ने स्वाभाविक व्यवहार को उभारने की मंशा से एक बाक्स तैयार किया , जिसे स्किनर का बाक्स कहते हैं | स्किनर ने अपने इस बाक्स को अन्धकार युक्त एवं शब्द्ध विहीन बनाया| जिसमें चूहे को ग्रिल युक्त संकरे रास्ते से गुजर कर अपने लक्ष्य तक पहुँचना होता था |

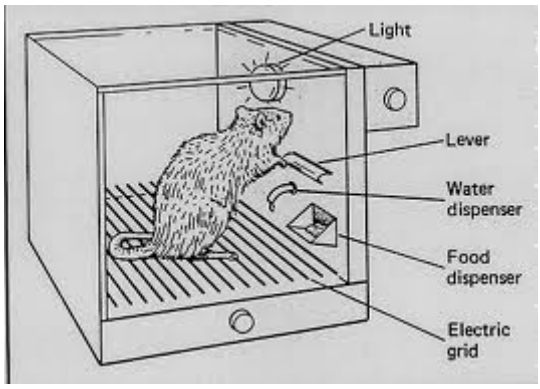

प्रयोग शुरू करने से पहले स्किनर ने कई दिनों तक चूहों को भोजन नहीं दिया जिससे वह भूखा रह कर अपने लक्ष्य को ज़ल्दी प्राप्त कर सके | स्किनर के इस बाक्स में एक लीवर था जिस पर पैर पड़ते ही खट की आवाज़ होती थी व बल्ब जल जाता था और खट की आवाज़ से ही चूहों को भोजन प्राप्त होता था |

प्रयोग आरम्भ करने पर स्किनर चूहे को उस बाक्स में छोड़ दिया और उसमें चूहा इधर- उधर घुमाने लगा | जब चूहा ग्रिल युक्त रास्ते से गुजरता तब वहाँ अचानक उसका पैर लीवर पर पड़ता है जिससे प्रकाश युक्त बल्ब खत की आवाज़ के साथ जल जाता है | इस आवाज़ के होते ही उसे भोजन की प्राप्ति होती है | प्रारंभ में वह इस प्रक्रिया को समझ नहीं पाया व देर –देर से उसे भोजन की प्राप्ति होती है लेकिन धीरे-धीरे चूहे के व्यवहार में परिवर्तन आता गया वह सीधे जा कर लीवर पर पैर रख कर उसे दबाता जिससे आवाज़ और प्रकाश उत्पन्न हो कर उसे भोजन की प्राप्ति होती | इससे चूहा यंहा इस व्यवहार के प्रति सामान्यीकरण करने लगा|

प्रयोग संख्या 2 : स्किनर ने अपना दूसरा प्रयोग कबूतरों पर किया | जिसके लिए उन्होंने एक विशेष संयंत्र पेटिका का निर्माण किया | जिसे कबूतर पेटिका या बाक्स कहते हैं |

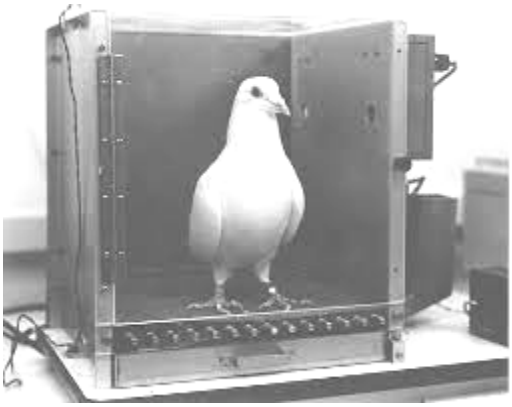

अपने इस प्रयोग में स्किनर ने यह लक्ष्य रखा कि कबूतर दाहिनी तरफ से एक पूरा चक्कर लगा कर एक निश्चित स्थान पर ही चोंच मारना सीख जाए | इसके लिए भी उन्होंने कबूतर को भूखा रखा और यहां पुनर्बलन के रूप में कबूतर को आनाज का दाना प्राप्त होता है | प्रयोग शुरू किया , यदि कबूतर सही दिशा में घूम कर चोंच मारता है तो उसे दाने की प्राप्ति होती है | यदि वह ऐसा नहीं कर पता है तो उसे पुनर्बलन अर्थात अनाज का दाना नहीं दिया जाता है | इस तरह से पुनर्बलन देने कबूतर एक ही

बार में सही दिशा में घूम कर एक निश्चित स्थान पर चोंच मारना सीख गया | इससे कबूतर क्व व्यवहार में परिवर्तन आ गया |

प्रयोग संख्या 3 (मनुष्यों के साथ किया गया प्रयोग): सन 1950 में एक 70 वर्षीय व्यक्ति , जिसने 50 वर्ष की आयु में अपनी आवाज़ खो दी थी, मनोविश्लेषण विधि से उसका उपचार नहीं किया जा सका | बाद में उसे क्रिया – प्रसूत अनुबंधन के हवाले किया गया | केसोरन नाम की महिला ने उसका उपचार किया | प्रयोग की प्रथम अवस्था में रोगी को भोजन दिया गया तथा केसोरन स्वयं एक तरफ बैठकर रोगी को देखती रही | रोगी ने बार- बार भोजन देखा लेकिन बोल नहीं सका | महिला रोगी की तरफ ध्यान नहीं दिया और नहीं उसके प्रति कोई सहानुभूति दिखाई | रोगी ने सिर्फ अपने होठ हिलाए एवं इसके अतिरिक्त और कोई क्रिया नहीं की | महिला खाना वापस उठा ले गयी| अगले दिन जब उसे पुनः खाना दिया गया तो रोगी ने बोलने के प्रयास कल की तुलना में कुछ अधिक किये | इस बार महिला ने कुछ खाना उसके सामने रख दिया | परिणामस्वरूप यह देखा गया कि पच्चीस दिनों में रोगी की 75 % आवाज़ वापस लौट आयी क्योंकि रोगी 70 वर्ष का बूढा व्यक्ति था अतः इसलिए उसकी 100 % आवाज़ वापस नहीं लौटाई जा सकती यही कारण है कि व्यवहार संशोधन के लिए इस तकनीकी का प्रयोग मानसिक अस्पतालों में प्रायः किया जाता है |

सिद्धांत की आलोचना : स्किनर की सिद्धांत की आलोचना भी की गयी हैं |

आलोचना के कुछ महत्वपूर्ण बातें निम्न प्रकार हैं |

1. यद्यपि सक्रिय अनुकूलित अनुक्रिया द्वारा सीखना एक महत्वपूर्ण सिद्धांत है परन्तु यह सभी प्रकार के सीखने के एक पर्याप्त व्याख्या नहीं देता |
2. स्किनर ने अपना अध्ययन निम्न स्तर के जानवरों तह ही सीमित रखा क्योंकि उनका व्यवहार सरल होता है | तथा उनके चारों तरफ की परिस्तितियों को अच्छी प्रकार से नियंत्रित किया जा सकता है इसलिए मानवीय अधिगम की व्याख्या करने में यह सिद्धांत असफल रहा है |
3. यह सिद्धांत यह बताता है कि कुछ विशेष प्रकार के सीखने के लिए विशेष प्रकार का अनुकूलन होना चाहिए | यह सिद्धांत यह बताने में असफल हो जाता है कि उच्च विचार , तर्क और ऐच्छिक क्रियाएँ आदि हम किस प्रकार करते हैं
4. स्किनर सीखने में सूझ का स्थान नहीं मानता, उसके अनुसार किसी समस्या का समाधान उसका सरल होना या इससे मिलती जुलती पहले हल की गयी समस्या का ज्ञान होना है | इस प्रकार वर्तमान समस्या का पूर्व में हल की गयी समस्या से अनुकूलन होना|

अभ्यास प्रश्न

1. क्रिया प्रसूत अनुबंधन में पुनर्बलन की क्या भूमिका होती है ?
2. क्रिया प्रसूत अनुबंधन के अंतर्गत चूहों पर स्किनर द्वारा किये गए प्रयोग की व्याख्या करें |
3. क्रिया प्रसूत अनुबंधन सिद्धांत की कुछ प्रमुख कमियों के बारे में बताएं |

4. धनात्मक पुनर्बलन (Positive Reinforcement)एवं ऋणात्मक पुनर्बलन (Negative Reinforcement) से आप क्या समझते हैं ?
5. प्रसूत व्यवहार (Emitted Behavior) एवं अनुक्रिया व्यवहार (Elicited Behavior) से आप क्या समझते हैं ?

8.5 शास्त्रीय अनुबंधन एवं क्रिया प्रसूत अनुबंधन में अंतर(Difference between Classical conditioning and Operant Conditioning)

शास्त्रीय अनुबंधन एवं क्रिया प्रसूत अनुबंधन में मुख्य अंतर इस प्रकार है –

क्रम संख्या	शास्त्रीय अनुबंधन	क्रिया प्रसूत अनुबंधन
1.	यह सिद्धांत रूसी मनोवैज्ञानिक पावालव द्वारा प्रतिपादित किया गया है	यह सिद्धांत अमेरिकी मनोवैज्ञानिक बी. एफ. स्किनर द्वारा प्रतिपादित किया गया है |
2.	यह सिद्धांत टाईप –I अधिगम के नाम से प्रसिद्द है |	यह सिद्धांत टाइप-२ अधिगम के नाम से प्रसिद्द है |
3.	इसमें अनुक्रिया स्वाभाविक रूप से होती है	इसमें अनुक्रिया ऐच्छिक रूप से होती है|
4.	इसमें S-R साह्चर्य समीपता के नियम पर आधारित है	इसमें S-R साहचर्य प्रभाव के नियम पर आधारित है |
5.	यह प्राणी के स्वचालित तंत्रिका तंत्र से सम्बंधित है	यह प्राणी के केंद्रीय तंत्रिका तंत्र से सम्बंधित है
6.	इसमें अनुक्रिया करने से पूर्व ही प्रबलन (Reinforcement) किया जाता है	इसमें अनुक्रिया(Response) करने के पश्चात प्रबलन किया जाता है|
7.	यह एकल S-R बंध पर जोर देता है |	यह श्रृंखला(Series) S-R बंध पर जोर देता है|
8.	इसमें समय नियंत्रण पर बल दिया जाता है	इसमें अभिप्रेरणा(Motivation) तथा पुरस्कार पर बल दिया जाता है|
9.	इसमें व्यवहार आतंरिक(Internal) होता होता है	इसमें व्यवहार बाह्य(External) होता है |
10	इसमें प्रयोगकर्ता प्रयोज्य से अनुक्रिया करवाता है |	इसमें प्रयोजन स्वयं अनुक्रिया करता है
11.	इसमें प्रयोज्य को नियंत्रण में रखा जाता है (कुत्ते को स्टैंड से बांधना)	इसमें प्रयोज्य विभिन्न प्रकार की गतियाँ करने के लिए स्वतंत्र होता है (जैसे – स्किनर बाक्स में चूहा, कबूतर)
12.	इसमें CR तथा UR सामान होते हैं (जैसे- भोजन खाना)	इसमें SR तथा UR एक सामान नहीं होते हैं (जैसे- लीवर का दबाना)
13.	इसमेंCS तथा UCS एक साथ प्रस्तुत	इसमें केवल प्रयोज्य को प्रयोग की स्थिति में रखा

	किये जाते हैं	जाता है
14.	इसे S-Rरूप में व्यक्त किया जाता है	इसे R-Sरूप में व्यक्त किया जाता है |
15.	यह सिद्धांत केवल पशु अधिगम(Animal Learning) तक ही सीमित है|	यह सिद्धांत पशु अधिगम के साथ –साथ मानव अधिगम (Human Learning) के लिए भी उपयोगी है |

अभ्यास प्रश्न

1. किस प्रकार के अनुबंधन कों टाइप १ एवं किस प्रकार के अनुबंधन को टाइप २ अनुबंधन रखा जाता है ?
2. शास्त्रीय अनुबंधन एवं क्रिया प्रसूत अनुबंधन में कोई पांच महत्वपूर्ण अंतर बताएं |
3. किस प्रकार का अनुबंधन मानव अधिगम के लिए उपयोगी सिद्ध हो सकता है ?

8.7 अधिगम स्थानांतरण (Transfer of Learning)

जब व्यक्ति किसी कौशल को सीख लेता हैं या किसी विषय का ज्ञान प्राप्त कर लेता हैं ,उस सीखे गये कौशल तथा अर्जित ज्ञान का उपयोग किसी अन्य परिस्थिति में करता हैं तो वह स्थति अधिगम या प्रशिक्षण का स्थानान्तरण कहलाती हैं |

सीखने के या प्रशिक्षण के स्थानान्तरण से अभिप्राय –"किसी सीखी हुई क्रिया या विषय का अन्य परिस्थितियों में उपयोग करने से हैं |'' इसे इस तरह भी स्पष्ट किया जा सकता हैं कि अर्जित ज्ञान का अन्य विषयों तथा क्रियाओं पर प्रभाव पड़ता हैं |

हम स्थानान्तरण के अर्थ को और अधिक स्पष्ट करने के लिए कुछ परिभाषाएँ दे रहे हैं ,यथा –

1.सोरेन्सन- "स्थानान्तरण एक परिस्थिति में अर्जित ज्ञान, प्रशिक्षण और आदतों को दूसरी परिस्थिति में स्थानान्तरित किए जाने का उल्लेख करता हैं |"

"Transfer refers to the knowledge, training and habits acquired in one situation to another". **Sorenson**

2. **क्रो व क्रो** –"सीखने के एक क्षेत्र में प्राप्त होने वाले ज्ञान या कुशलताओं का और सोचने,अनुभव करने या कार्य करने की आदतों का सीखने के दूसरे क्षेत्र में प्रयोग करना साधारणतः प्रशिक्षण का स्थानान्तरण कहा जाता हैं |"

"The carry-over of habits of thinking, of feeling, of working, of knowledge, or of skills, from one learning area to another usually is referred to as the transfer of training."

-Crow and Crow

3. पीटरसन –" स्थानान्तरण सामान्यीकरण हैं क्योंकि यह एक नये क्षेत्र तक विचारों का विस्तार हैं|"

" Transfer is generalization for it is extension of ideas to a new field."-**Peterson**

2:- स्थानान्तरण के प्रकार (Kinds of Transfer)

प्रशिक्षण –स्थानान्तरण के मुख्य रूप से दो प्रकार का होता हैं –(१)सकारात्मक और (२) नकारात्मक |

(1):- सकारात्मक प्रशिक्षण - स्थानान्तरण (Positive Transfer of Training)- यदि पूर्व ज्ञान, अनुभव या प्रशिक्षण नए प्रकार के सीखने में सहायता देता हैं ,तो उसे सकारात्मक प्रशिक्षण – स्थानान्तरण कहते हैं ; उदाहरण के लिए , जो व्यक्ति स्कूटर चलाना जानता हैं, उसे मोटर -साइकिल चलने में कोई कठिनाई नहीं होती हैं |

(2):-नकारात्मक प्रशिक्षण - स्थानान्तरण (Negative Transfer of Training) - यदि पूर्व ज्ञान , अनुभव या प्रशिक्षण नए प्रकार के सीखने में कठिनाई उपस्थित करता हैं, तो उसे नकारात्मक प्रशिक्षण – स्थानान्तरण कहते हैं ;उदाहरण के लिए , मोटर-साइकिल के मेकेनिक को स्कूटर के मरम्मत करने में कठिनाई का अनुभव होता हैं

3:- स्थानान्तरण के सिद्धांत (THEORIES OF TRANSFER)

प्रशिक्षण – स्थानान्तरण के मुख्य सिद्धांत निम्नलिखित हैं –

1:- मानसिक शक्तियों का सिद्धांत (Theory of Mental Faculties)-प्रशिक्षण – स्थानान्तरण का यह सबसे पुराना सिद्धांत है |गेट्स एव अन्य (Gates and Orthers)के अनुसार ,इस सिद्धांत का अर्थ यह हैं- तर्क ,ध्यान ,स्मृति ,कल्पना आदि मानसिक शक्तियाँ एक दूसरे से स्वतन्त्र हैं | अतः उनको स्वतन्त्र रूप से प्रशिक्षण करके सबल बनाया जा सकता हैं |आधुनिक सिद्धांत मस्तिष्क की शक्तियों के विभाजन को स्वीकार नहीं करता हैं |अतः इस सिद्धांत की मान्यता समाप्त हो गई हैं |

2:- औपचारिक मानसिक प्रशिक्षण का प्रकार (Theory of Formal Mental Discipline)- गेट्स एव अन्य (Gates and Orthers) ने इस सिद्धांत का अर्थ स्पष्ट करते हुए लिखा हैं –मानसिक शक्तियों को प्रशिक्षण के द्वारा समान और समग्र रूप से विकसित करके किसी भी परिस्थिति में कुशलतापूर्वक प्रयोग किया जा सकता हैं | व्यावहारिक जीवन में यह बात सत्य की कसौटी पर खरी नहीं उतरती हैं ,क्योंकि न तो डॉक्टर को इंजीनियर और कलाकार को दार्शनिक बनते हुए देखा जाता हैं | गेट्स (Gates) ने ठीक लिखा हैं- "स्थानान्तरण के तथ्यों की मानसिक

शक्तियों की सामान्य और चतुर्मुखी उन्नति के आधार पर व्याख्या नहीं की जा सकती हैं |" फलस्वरूप 19वीं शताब्दी का यह सिद्धांत आज अपनी लोकप्रियता खो चुका हैं |

3:- समान तत्वों का सिद्धांत (Theory of Similar Elements)-इस सिद्धांत का प्रतिपादक ,(Thorndike)हैं |इसका स्पष्टिकरण करते हुए क्रो एवं क्रो (crow and crow) ने लिखा हैं – "समान तत्वों के सिद्धांत के अनुसार , एक स्थति से दूसरी स्थिति को स्थानान्तरण उसी अनुपात में होता हैं ,जिसमें दोनों स्थितियों की विषय–सामग्री , दृष्टिकोण ,विधि या उद्देश्य के तत्वों में सामान होती हैं |" दूसरे शब्दों में , दो कार्यों ,विषयों ,अनुभवों आदि में जितनी अधिक समानता होती हैं , उतना ही अधिक वे एक दूसरे के अध्ययनों में सफलता देते हैं ; उदाहरण के लिए ,भूगोल का ज्ञान ,इतिहास के अध्ययन में सहायता दे सकता हैं पर कला या विज्ञान के अध्ययन में नहीं |

4:-सामान्यीकरण का सिद्धांत (Theory of Generalization)- इस सिद्धांत के प्रतिपादक सी.एच.जड(C.H.Judd, Educational Psychology,) ने सामान्यीकरण के अर्थ पर प्रकाश डालते हुए लिखा हैं – "जब एक छात्र ,विज्ञान के किसी विषय के सामान्य सिद्धांत को भली प्रकार समझा जाता हैं ,तब उसमें अपने प्रशिक्षण की दूसरी स्थितियों में स्थानांतरित करने की क्षमता उत्पन्न हो जाती है |

5. सामान्य व विशिष्ट तत्वों का सिद्धांत (Theory of G and S factor): इस सिद्धांत के प्रतिपादक स्पीयर मैन हैं | इनके अनुसार मनुष्य में दो प्रकार की बुद्धि होती है | सामान्य एवं विशिष्ट , जिनका सम्बन्ध सामान्य योग्यता और विशिष्ट योग्यता से होता है | स्थानांतरण केवल सामान्य योग्यता का होता है , उदाहरण के लिए – यदि बालक भूगोल , गणित , विज्ञान आदि किसी विषय का अध्ययन करता है तो वह केवल अपनी सामान्य योग्यता का ही स्थानांतरण करता है |

अभ्यास प्रश्न

1. अधिगम स्थानांतरण से आप क्या समझते हैं ?
2. अधिगम स्थानांतरण के सिद्धांतों की व्याख्या करें ?
3. अधिगम स्थानांतरण के विभिन्न प्रकारों के बारे में लिखें ?

8.8 सारांश (Summary)

सीखने या अधिगम का सीधा सम्बन्ध मनोविज्ञान से होता है | अधिगम जीवन पर्यंत चलने वाली प्रक्रिया जिसके आधार पर प्रत्येक व्यक्ति के व्यवहार में परिवर्तन आता है जिसके फलस्वरूप व्यक्ति की क्रियाओं में परिवर्तन आता है | अधिगम के सिद्धांतों का परीक्षण पशुओं पर अनेक मनोवैज्ञानिको द्वारा किये गए है | इस अध्याय में हम निम्न दो सिद्धांतों एवं अधिगम स्थमांतरण (Transfer of Learning) के बारे में अध्ययन किया |

1. अनुकूलित –अनुक्रिया का सिद्धांत (Classical Conditioning Theory)
2. क्रिया प्रसूत सिद्धांत (Operant conditioning Theory)

अनुकूलित –अनुक्रिया का सिद्धांत को प्रतिस्थापन सिद्धांत या अनुबंध सिद्धांत भी कहते हैं | इस सिद्धांत को रूसी शरीर विज्ञानी आई. पी. पावलॉव ने दिया था | इस सिद्धांत में उद्दीपन व प्रतिक्रया के सम्बन्ध द्वारा सीखने पर बल दिया गया है | पावालव के अनुसार अनुकूलित – अनुक्रिया का रथ अस्वाभाविक उत्तेजना के प्रति स्वाभाविक उत्तेज़ना है | उदाहरण के लिए किसी बच्चे का चाकलेट देखकर स्वतः ही मुंह में पानी आ जाना या फिर किसी लड़की का इमली देखकर पानी आ जाना आदि अनुकूलित –अनुक्रिया का ही उदाहरण है |

क्रिया प्रसूत अनुबंधन के सिद्धांत का प्रतिपादन अमेरिकन मनोवैज्ञानिक बी एंफ़. स्किनर ने १९३८ में किया| इस सिद्धांत की रचना के लिए इन्होने चूहे कबूतर आदि प्राणियों पर महत्वपूर्ण प्रयोग किये | इस सिद्धांत को नैमित्तिक अनुबंधन सिद्धांत , सक्रीय अनुकूलित सिद्धांत भी कहते हैं | स्किनर ने जिस आधार पर अपने सिद्धांत को प्रतिपादित किया , वह उद्दीपन – अनुक्रिया(Stimulus-Response) व सम्बंधवाद (Connectionism) पर आधारित है | स्किनर का सिद्धांत इन दोनों का ही सम्मिलित रूप है |

8.9 शब्दावली: (Glossary)

- **अनुकूलित – अनुक्रिया:** पावालव के अनुसार अनुकूलित – अनुक्रिया का अर्थ अस्वाभाविक उत्तेजना के प्रति स्वाभाविक उत्तेज़ना है | उदाहरण के लिए किसी बच्चे का चाकलेट देखकर स्वतः ही मुंह में पानी आ जाना या फिर किसी लड़की का इमली देखकर पानी आ जाना आदि अनुकूलित –अनुक्रिया का ही उदाहरण है |
- **क्रिया प्रसूत अनुबंधन :** क्रिया प्रसूत अनुबंधन एक अधिगम प्रक्रिया है जिसके द्वारा अधिगम अनुक्रिया को अधिक संभाव्य एवं अधिकतीव्र बनाया जाता है |
- "Operant conditioning is the learning process whereby a response is made more probable or more frequent."

8.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. क्रिया प्रसूत अनुबंधन एवं अनुकूलित – अनुक्रिया अनुबंधन में अंतर् स्पष्ट करें |
2. अनुकूलित – अनुक्रिया अनुबंधन की उदाहरण सहित व्याख्या करें |
3. क्रिया प्रसूत अनुबंधन की उदाहरण सहित व्याख्या करें |

8.11 अतिरिक्त संदर्भ ग्रंथ सूची(Suggested Readings)

- सिंह, अरूण कुमार, (2008) मनोविज्ञान में प्रयोग एवं परियोजना, मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशर्स.

- सिंह, अरूण कुमार, (2001) शिक्षा मनोविज्ञान, पटना, भारती भवन, पब्लिशर्स एड डिस्ट्रीब्यूटर्स।
- सिंह, अरूण कुमार, (2001) संज्ञानात्मक मनोविज्ञान, वाराणसी, मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशर्स एड डिस्ट्रीब्यूटर्स।
- सिंह, अरूण कुमार, (2001) उच्चतर मनोविज्ञान, पटना,भारती भवन, पब्लिशर्स एड डिस्ट्रीब्यूटर्स
- सुलैमान, डॉ॰ मुहम्मद (2007) "उच्चतर शिक्षा मनोविज्ञान"
- मंगल, एस॰के॰ (२०१०) "शिक्षा मनोविज्ञान". पीएचआई लर्निंग प्राइवेट लिमिटेड.
- एस॰के॰ मंगल (२०१०) "शिक्षा मनोविज्ञान". पीएचआई लर्निंग प्राइवेट लिमिटेड
- बद्रीलाल गुप्ता (2012). सीखने की विधियाँ. कॉन्सेप्ट पब्लिशिंग कम्पनी.
- Brown, Peter C.; Roediger, Henry L.; McDaniel, Mark A. (2014) Make It Stick: The Science of Successful Learning. Cambridge, MA: Belknap Press.
- Holt, John (1983). How Children Learn. UK: Penguin Books
- Vosniadou, Stella. How Children Learn. UK: UNESCO.

इकाई-9

स्मरण एवं विस्मरण
Remembering and Forgetting

इकाई की रूपरेखा

9.1 प्रस्तावना

9.2 उद्देश्य

9.3 स्मरण की परिभाषा एवं विशेषताएं

9.4 स्मृति की प्रक्रिया

9.5 स्मृति के प्रकार

9.6 विस्मरण एवं विस्मरण के कारण

9.7 स्मृति वर्धन के उपाय

9.8 इकाई सारांश

9.9 अभ्यास प्रश्न

9.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

9.1 प्रस्तावना

व्यक्ति की स्मरण शक्ति का उसके जीवन में महत्त्वपूर्ण स्थान है | स्मृति मनुष्य की कल्पनाओं एवं विचारों का महत्वपूर्ण आधार है | व्यक्ति द्वारा सीखी गयी सभी सभी बातें उसके स्मृति पर निर्भर करती है | स्मरण एक मनोशारीरिक प्रक्रिया है। स्मरण की समस्या का अध्ययन प्राचीन काल से ही होता चला आ रहा है, परन्तु इस समस्या का सर्वप्रथम प्रयोगात्मक या वैज्ञानिक अध्ययन एबिंगहास ने प्रारम्भ किया। एबिंगहास के इस दिशा में प्राप्त परिणामों की पुष्टि अनेक मनोवैज्ञानिकों ने की है। मनुष्य वस्तुतः आज मनुष्य जिस स्थान पर है वह उसकी स्मरण शक्ति की ही देन है | प्रश्न उठता है कि स्मरण क्या है ? सामान्य अर्थों में स्मरण शक्ति का तात्पर्य गत अनुभवों को संचित करने की शक्ति है जिसके द्वारा आवश्यकता पड़ने पर उन संचित अनुभवों को क्रमिक रूप से याद किया जा सकता है।

9.2 उद्देश्य:

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप-

- स्मरण की परिभाषा एवं विशेषताएं बता पाने में सक्षम होंगे|

- स्मृति की प्रक्रिया की व्याख्या कर पाने में सक्षम होंगे |
- स्मृति के विभीन प्रकारों को बता सकेंगे |
- विस्मरण एवं विस्मरण के कारणों की व्याख्या कर सकेंगे |
- स्मृति वर्धन के सामान्य उपायों पर प्रकाश डाल सकेंगे |

9.3 स्मरण की परिभाषा एवं विशेषताएं

रोस (Ross) के अनुसार "स्मृति एक जीवन अनुभव है जो पूर्व अनुभवों द्वारा निर्धारित होता है एवं दोनों के मध्य का सम्बन्ध स्पष्ट करता है"।

वुडवर्थ (Woodworth) के अनुसार "*भूतकाल में सीखे जा चुके तथ्यों का प्रत्यास्मरण ही स्मृति है*"।

रॉयबर्न(Roybern) के अनुसार "*अपने अनुभवों को संचित करने एवं उन्हें पुनः चेतना में लाने की शक्ति स्मृति कहलाती है*

स्काउट (Scout) के अनुसार "स्मृति एक आदर्श पुनरावृति है"।

लेहमैन, लेहमैन एवं बटरफील्ड, 1979 ने स्मृति को परिभाषित करते हुए कहा है कि *''विशेष समयावधि के लिये सूचनाओं को संपोषित करके रखना ही स्मृति है।''* समयावधि एक सेकेंड से कम या सम्पूर्ण जीवन काल का भी हो सकता है। हिलगार्ड और एटकिनसन (1976) के अनुसार, पहले सीखी गई अनुक्रियाओं में चिन्हों को वर्तमान समय में व्यक्त या प्रदर्शित करनेका अर्थ ही स्मरण है।

आइसेंक (1970) के अनुसार, "स्मृति व्यक्ति की वह योग्यता है जिसके द्वारा वह पहले अधिगम की हुई प्रक्रियाओं (अनुभव, धारण) से सूचना एकत्र करता है फिर इस सूचना को विशिष्ट उद्दीपकों की अनुक्रिया में पुनरोत्पादित करता है"।

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर कहा जा सकता है कि **स्मरण वह योग्यता है जिसमें व्यक्ति सीखी हुई विषय-सामग्री को धारण करता है, इस धारण से सूचना को एकत्र कर विशिष्ट उद्दीपकों की अनुक्रिया में पुनः उत्पादित कर सीखी गयी सामग्री को पहचानता है।**

9.4 स्मृति की प्रक्रिया (Process of Memory)

स्मृति किसी सूचना को एक समय तक धारित करना तथा उसका प्रत्याह्वान करना है जो इस बात पर निर्भर करता है कि किस तरह का संज्ञानात्मक कार्य किया जाना है। कभी किसी सूचना को कुछ क्षणों के लिए रोक कर रखना होता है।

उदाहरणार्थ, एक अपरिचित टेलीफोन नंबर को तब तक धारित रखना पड़ता है जब तक कि आप टेलीफोन यंत्र तक उस नंबर को डायल करने के लिए पहुँच नहीं जाते या अपने स्कूल के प्रारंभिक

दिनों में जोड़-घटाव करने की जो विधि आपने सीखी थी वह कई वर्षों बाद भी याद रहती है। स्मृति सम्बन्धी मानसिक क्रिया में सबसे पहले कूटसंकेतन होता है। कूटसंकेतन में ज्ञानेन्द्रियों के माध्यम से प्राप्त सूचनाओं का निवेश मस्तिष्क में किया जाता है। कूटसंकेतन द्वारा प्राप्त सूचनाओं का निवेश मस्तिष्क में किया जाता है। कूटसंकेतन द्वारा प्राप्त सूचनायें, स्मृति में बनाये रखने की द्वितीय समृति सम्बन्धी मानसिक क्रिया या अवस्था प्रत्यक्षपरक प्रकमण हैं इसे भण्डारण भी कहते है। पुररूद्धार स्मृति की तीसरी अवस्था है जिसमें प्रत्याह्वान और पहचान प्रक्रियाएँ होती है।

स्मृति एक प्रक्रिया है जिसमें तीन स्वतंत्र किन्तु अंत:संबंधितअवस्थाएँ होती हैं। ये हैं-

- **कूट संकेतन (Encoding)**
- **भंडारण (Storage)**
- **प्रत्यस्मरण (Retrieval)**

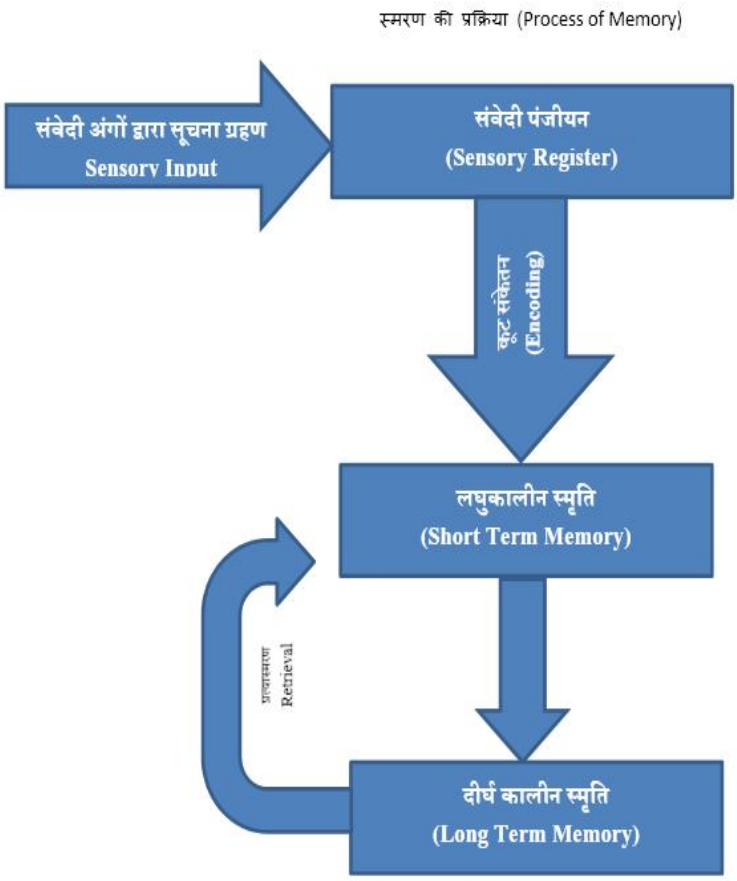

कोई भी सूचना जो हमारे द्वारा ग्रहण की जाती है वह इन अवस्थाओं से अवश्य प्रवाहित होती है।

कूट संकेतन (Encoding) स्मरण की पहली अवस्था है | कूट संकेतन जिसका तात्पर्य उस प्रक्रिया से है जिसके द्वारा सूचना स्मृति तंत्र में पहली बार पंजीकृत की जाती है, ताकि इसका पुन: उपयोग किया जा सके। जब भी कोई बाह्य उद्दीपक हमारी ज्ञानेंद्रियों को प्रभावित करता है तो वह तंत्रिका आवेग उत्पन्न करता है और इन्हें हमारे मस्तिष्क के विभिन्न क्षेत्रों में पुन: प्रक्रमण के लिए ग्रहण किया जाता है। कूट संकेतन में आने वाली सूचना को ग्रहण किया जाता है तथा उससे कोई अर्थ व्युत्पन्न किया जाता है। उसे इस प्रकार से प्रस्तुत किया जाता है कि उसका पुन: प्रक्रमण किया जा सके।

भंडारण (Storage)

स्मृति की द्वितीय अवस्था है। सूचना, जिसका कूट संकेतन किया गया, उसका भंडारण भी आवश्यक है जिससे उस सूचना का बाद में उपयोग किया जा सके। अत:भंडारण उस प्रक्रिया को कहते हैं जिसके द्वारा सूचना कुछ समय सीमा तक धारण की जाती है।

प्रत्यस्मरण (Retrieval)

प्रत्यस्मरण स्मृति की तीसरी अवस्था है। सूचना का उपयोग तभी किया जा सकता है जब कोई व्यक्ति अपनी स्मृति से उसे वापस प्राप्त करने में समर्थ हो। विभिन्न प्रकार के संज्ञानात्मक कार्यों जैसे- समस्या समाधान, निर्णयन इत्यादि को करने के लिए जब संचित सूचना को पुन: चेतना में लाया जाता है तो इस प्रक्रिया को पुनरुद्धार कहा जाता है। यह एक रोचक तथ्य है कि स्मृति की विपफलता इनमें से किसी भी अवस्था में हो सकती है। आप किसी सूचना का पुन:स्मरण इसलिए नहीं कर पाते हैं क्योंकि आपने उसका ठीक ढंग से कूट संकेतन नहीं किया या आपका भंडारण कमजोर था। अत: आवश्यकता पड़ने पर उसका पुनरुद्धार नहीं किया जा सका।

9.5 स्मृति के प्रकार (Types of Memory)

प्रारंभ में यह समझा जाता था कि हम जो कुछ भी सीखते हैं या अनुभव करते हैं उन समस्त सूचनाओं को संचित करने की क्षमता स्मृति में होती है। इसे एक वृहद् भंडार की भाँति समझा जाता था जिससे आवश्यकता पड़ने पर उस सूचना को वहाँ से निकाल कर उसका उपयोग किया जा सके। किन्तु कंप्यूटर के आविष्कार से मानव स्मृति को भी उसी तंत्र के रूप में देखा जाने लगा है जिसमें सूचनाओं का प्रक्रमण कंप्यूटर की भाँति होता है। दोनों ही बड़ी मात्र में सूचना का पंजीकरण, भंडारण और उसमें फेरबदल करते हैं और इस फेरबदल के परिणामस्वरूप कार्य करते हैं। यदि आपने कभी कंप्यूटर पर काम किया होगा तो आपको पता होगा कि इसमें एक अस्थायी स्मृति (यादृच्छिक अभिगम स्मृति) और एक स्थायी स्मृति (जैसे- हार्ड डिस्क) होती है। कार्यक्रम आदेश के आधार पर कंप्यूटर अपनी स्मृति की सूचना में फेरबदल करके उत्पादित सूचना को कंप्यूटर की स्क्रीन पर प्रदर्शित करता है। उसी प्रकार मनुष्य भी सूचना को पंजीकृत करता है, संचित करता है तथा आवश्यकतानुसार संचित सूचना में फेरबदल करता है। उदाहरणार्थ, जब आपको किसी गणितीय समस्या का समाधान करना हो तो गणितीय संक्रिया से संबंधितस्मृति, जैसे- भाग या घटाव इत्यादि का उपयोग किया जाता है और इससे स्मृति क्रियाशील होती है तथा समस्या का समाधान उत्पादित सामग्री के रूप में प्राप्त किया जाता है। इस सादृश से प्रेरित होकर एटकिंसन (**Atkinson**) एवं शिप्रिफन (**Shiffrin**) ने **1968** में स्मृति का प्रथम मॉडल प्रस्तुत किया, जिसे **अवस्था मॉडल** (**stage model**) के रूप में जाना जाता है।

स्मृति तंत्र : संवेदी, अल्पकालिक एवं दीर्घकालिक स्मृतियाँ

अवस्था मॉडल के अनुसार स्मृति तंत्र तीन प्रकार के होते हैं:

संवेदी स्मृति (**sensory memory**) , **अल्पकालिक स्मृति** (**short-term memory**) एवं **दीर्घकालिक स्मृति** (**longterm Memory**)। प्रत्येक तंत्र की अपनी अलग विशेषताएँ होती हैं तथा इनके द्वारा संवेदी सूचनाओं के संबंधमें भिन्न-भिन्न प्रकार्य निष्पादित किए जाते हैं

संवेदी स्मृति(Sensory Memory)

कोई भी नयी सूचना पहले संवेदी स्मृति में आती है। संवेदी स्मृति की संचयी क्षमता तो बहुत होती है किन्तु इसकी अवधि बहुत कम होती है, एक सेकण्ड से भी कम। यह एक ऐसा स्मृति तंत्र है जो प्रत्येक संवेदना को परिशुद्धता से ग्रहण करता है। अक्सर इस तंत्र को संवेदी स्मृति या संवेदी पंजिका कहते हैं, क्योंकि समस्त संवेदनाएँ यहाँ उद्दीपक की प्रतिकृति के रूप में ही संग्रहित की जाती हैं।

अल्पकालिक स्मृति (Short Term Memory)

हम उन सभी सूचनाओं पर ध्यान नहीं देते जो हमारे संवेदी ग्राहकों को प्रभावित करती हैं। जिन सूचनाओं पर हम ध्यान देते हैं वे हमारी द्वितीय स्मृति भंडार में प्रवेश करती हैं जिसे अल्पकालिक स्मृति कहा जाता है, जो थोड़ी सूचना को थोड़े समय तक (सामान्यत: **30** सेकण्ड या उससे कम) ही रख पाती है। एटकिंसन एवं शिफ्रिन के अनुसार अल्पकालिक स्मृति में सूचना का कूट संकेतन मुख्य रूप से ध्वन्यात्मक होता है। ध्यान दीजिए कि अल्पकालिक स्मृति कमजोर तो होती है लेकिन संवेदी पंजिका की भाँति नहीं, जहाँ एक सेकण्ड से भी कम समय में सूचना का क्षय हो जाता है। इसे विलियम जेम्स ने प्राथमिक स्मृति भी कहा है। इस तरह की स्मृति की दो मुख्य विशेषताएँ है। पहला STM में किसी सूचना को अधिक से अधिक 20-30 सेकंड तक संचित करके रखा जा सकता है तथा दूसरा इसमें प्रवेश पाने वाली सूचनाएँ कमजोर प्रकृति की होती है। STM को अन्य नामों से भी जैसे - सक्रिय स्मृति, तत्कालिक स्मृति, चलन स्मृति से भी जाना जाता है। सारांशतः लघुकालीन स्मृति से तात्पर्य उस सीमित सूचनाओं के संचयन से होता है जिसे थोड़े समय अर्थात् न्यूनतम एक सेकंड तथा अधिकतम 20-30 सेंकड तक के लिये सक्रिय अवस्था में व्यक्ति रख पाता है। दूसरे शब्दों में, इसमें वैसी सूचनाएं संचित होती हैं जिस पर व्यक्ति ध्यान देता है, उसे संधारित करता है तथा उसे दोहराता है। मनोवैज्ञानिकों द्वारा किये गए अध्ययनों के आलोक में लघुकालीन स्मृति की कुछ स्पष्ट विशेषताओं पर प्रकाश पड़ता है। ये विशेषताएं निम्नांकित है -

- लघुकालीन स्मृति कमजोर होती है।
- लघुकालिन स्मृति में उद्दीपकों के बारे में ज्ञानेन्द्रिय द्वारा प्राप्त सूचनाओं का कूटसंकेतीकरण करके उन्हें संचित किया जाता है।
- मनोवैज्ञानिकों द्वारा किये गये अध्ययनों से स्पष्ट हुआ है कि लघुकालीन स्मृति में सामान्यत: पांच से नौ अलग-अलग सूचनाओं को ही एक साथ संचित किया जा सकता है।
- लघुकालीन स्मृति की अवधि अधिक से अधिक 20-30 सेंकड तक होती है

दीर्घकालिक स्मृति (Long Term Memory)

ऐसी सामग्री, जो अल्पकालिक स्मृति की क्षमता एवं धारण अवधि की सीमाओं को पार कर जाती है, वह दीर्घकालिक स्मृति में प्रवेश करती है जिसकी क्षमता व्यापक है। यह स्मृति का ऐसा स्थायी भंडार है जहाँ सूचनाएँ, चाहे वह कितनी भी नयी क्यों न हों, जैसे आपने कल क्या नाश्ता किया था से

लेकर इतनी पुरानी, जैसे आपने अपना छठा जन्मदिन कैसे मनाया था, सभी संचित होती हैं। कोई सूचना एक बार दीर्घकालिक स्मृति के भंडार में चली जाती है तो उसे हम जल्दी नहीं भूलते क्योंकि वह कूट संकेतन, द्वारा संग्रहित की जाती है।

दीर्घावधि स्मृति के प्रकार (Types of Long Term Memory)

टलविंग (Tulving, 1972) ने दीर्घावधि स्मृति को दो भागों में बाँटा। टलविंग (Tulving, 1972) के अनुसार दीर्घावधि स्मृति के दो प्रकार होते हैं: घोषणात्मक स्मृति (Declarative Memory) एवं प्रक्रियात्मक स्मृति (Procedural Memory)। इसमें से भी आगे उन्होंने घोषणात्मक स्मृति के दो प्रकार बताये अर्थगत स्मृति (Semantic Memory) एवं प्रासंगिक स्मृतिEpisodic Memory)।

टलविंग (Tulving, 1972) द्वारा दिया गया दीर्घवादी स्मृति का वर्गीकरण:

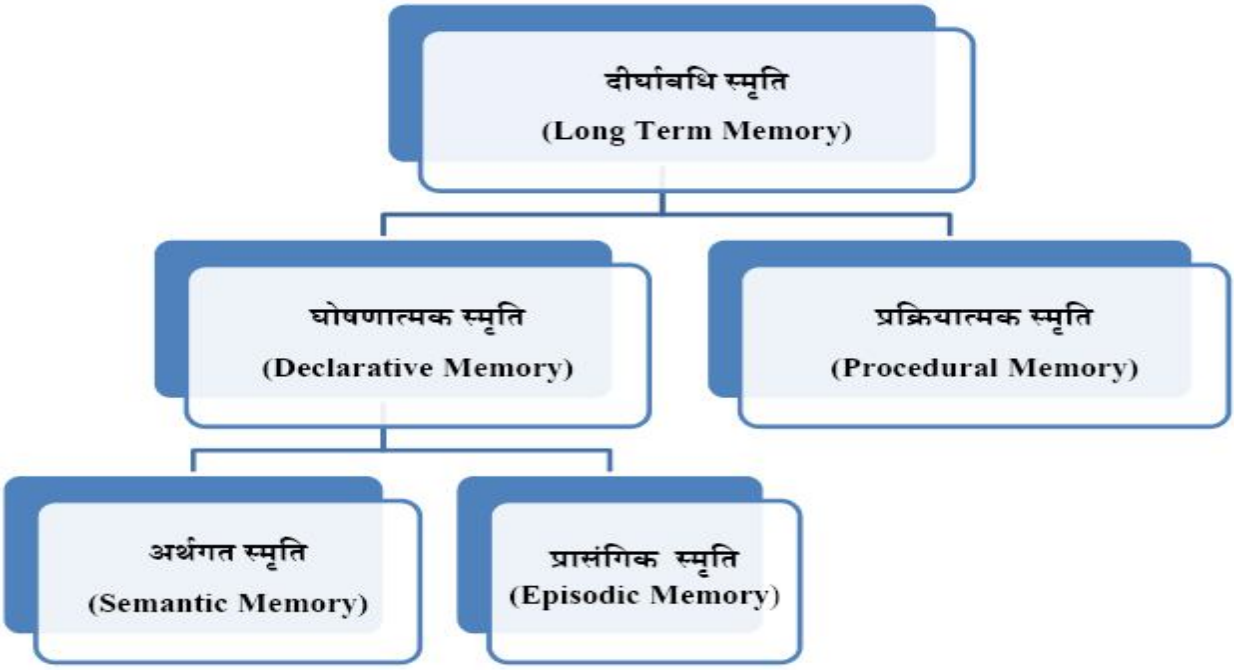

घोषणात्मक स्मृति*(Declarative Memory)*: घोषणात्मक स्मृति से तात्पर्य उस स्मृति से है जो विभिन्न उन सूचनाओं को संचित रखता है जिनके लिए शारीरिक गति अपेक्षित नहीं होती, यथा नाम, कोई तथ्य, संकल्पना आदि का स्मरण एवं प्रत्यस्मरण।

प्रक्रियात्मक स्मृति *(Procedural Memory)*: प्रक्रियात्मक स्मृति में प्रायः वैसी सूचनाएँ संचित होती हैं जिसमे शारीरिक गति अपेक्षित होती है। जैसे साईकिल चलाना, तैरना, टाइप करना आदि। घोषणात्मक स्मृति एवं प्रक्रियात्मक स्मृति में मूल अंतर यह है कि घोषणात्मक स्मृति से संबंधित तथ्यों का शाब्दिक वर्णन किया जा सकता है जबकि प्रक्रियात्मक स्मृति को सहजता से वर्णित नहीं

किया जा सकता। उदाहरण के लिए, आप साइकिल चला तो सकते हैं, पर यदि कोई पूछे कि साइकिल कैसे चलाई जाती है तो यह बताना आपके लिए कठिन होता है।

अर्थगत स्मृति *(Semantic Memory)*: अर्थगत स्मृति का तात्पर्य वैसी स्मृति से है जिसमे शब्दों*(Words)*, संप्रत्ययों *(Concepts)*, तथ्यों *(Facts)* एवं प्रतीकों *(Symbols)* के अर्थ से सम्बंधित सूचनाएँ संचित होती हैं, अर्थात अर्थगत स्मृति शब्दों, संप्रत्ययों, तथ्यों एवं प्रतीकों के अर्थ से सम्बंधित एक संगठित ज्ञान *(Orgenised Knowledge*) है। **वुड एंड वुड** ने अर्थगत स्मृति को **'मानसिक विश्वकोष'** की संज्ञा दी है जैसे: मैं जानता हूँ कि १ में १ जोड़ने पर २ प्राप्त होता है, या स्मृति के तीन मुख्य प्रकार होते हैं या भारत की राजधानी दिल्ली है आदि अर्थगत स्मृति के उदहारण हैं। **अर्थगत स्मृति** सामान्य ज्ञान एवं जागरूकता की स्मृति है। सभी प्रकार के संप्रत्यय, विचार तथा तर्कसंगत नियम अर्थगत स्मृति में संचित होते हैं।

***प्रासंगिक स्मृति* (Episodic Memory):** प्रासंगिक स्मृति *(Episodic Memory)* का तात्पर्य वैसी स्मृति से है जिसमें सामयिक रूप से व्यवस्थित अथवा दिनांकित घटनाओं से सम्बंधित सूचनाएँ उनके सन्दर्भों के साथ संचित रहती है| अर्थात प्रासंगिक स्मृति में संचित सूचनाएँ यह बताती हैं कि ये घटनाएँ कब किस सन्दर्भ में घटित हुईं जैसे किसी को याद है कि उसका आरंभिक जीवन काफी सुखद था या किसी को यह याद है कि उसे विश्वविद्यालय की परीक्षा में प्रथम आने पर पुरस्कार दिया गया था या किसी को यह याद है उसके शादी कब हुई थी आदि। वुड एवं वुड ने प्रासंगिक स्मृति को **'मानसिक डायरी'** की संज्ञा दी है। **प्रासंगिक स्मृति** में जीवन चरित से संबंधितसूचनाएँ होती हैं। वस्तुतः निजी जीवन से संबंधित स्मृतियाँ घटनापरक स्मृति कानिर्माण करती हैं और इसीलिए सामान्यतया इनका सांवेगिक स्वरूप (Emotional Nature) होता है। जैसे: आप जब कक्षा में प्रथम आए तो आपको कैसा लगा? यदि इस तरह की घटनाएँ वास्तव में आपके जीवन में घटित हुई हों तो संभवत: आप इन सभी प्रश्नों का सही उत्तर देने में समर्थ होंगे। दीर्घकालिक स्मृति का अध्ययन एक रोचक विषय है तथा शोधकर्ताओं ने कई नवीन तथ्यों को उद्घाटित किया है। निम्न विवरण मानव स्मृति की जटिल एवं गत्यात्मक प्रकृति को प्रदर्शित करते हैं।

प्रासंगिक स्मृति एवं अर्थगत स्मृति की तुलना:

- प्रासंगिक स्मृति में सूचनाएँ उनके सन्दर्भों के साथ संचित होती हैं जबकि अर्थगत स्मृति की प्रकृति तथ्यात्मक होती है।
- प्रासंगिक स्मृति में विस्मरण अर्थगत स्मृति की बजाय ज्यादा तीव्रता से होती है।
- प्रासंगिक स्मृति से सूचनाओं की पुनर्प्राप्ति तभी सम्भव है जब व्यक्ति को उन घटनाओं से सम्बंधित सही संकेत उपलब्ध कराया जाय जबकि अर्थगत स्मृति में संचित सूचनाएँ संकेतों की उपलब्धता पर निर्भर नहीं करती है।

- प्रासंगिक स्मृति में पुनर्संग्राहक अनुभूतियाँ (Recollective Experiences) उपस्थित होती हैं जबकि अर्थगत स्मृति में पुनर्संग्राहक अनुभूतियाँ उपस्थित नहीं होती हैं।
- प्रासंगिक स्मृति में संवेदी तत्त्व (Emotional Elements) उपस्थित होते हैं जबकि अर्थगत स्मृति में संवेदी तत्त्व उपस्थित नहीं होते। प्रासंगिक स्मृति में संचित सूचनाओं का प्रत्यास्मरण करने पर व्यक्ति को उस से जुड़े संवेगों (Emotions) का अनुभव भी होता है जबकि अर्थगत स्मृति में संवेगों का सर्वथा अभाव होता है।
- प्रासंगिक स्मृति की तुलना मानसिक डायरी से की जा सकती है जिसमे दिनांकित,सन्दर्भ सहित सूचनाएँ संचित होती हैं जबकि अर्थगत स्मृति को मानसिक विश्वकोष की तरह देखा जा सकता है जिसमें तथ्यात्मक सूचनाएँ संचित होती हैं।

9.6 विस्मरण के स्वरूप एवं कारण

कई बार हम किसी विशेष समय पर उन सूचनाओं को याद नहीं कर पाते जब हमे उनकी जरुरत होती है। जैसे कई बार परीक्षा के दौरान हम उन प्रश्नों के उत्तर भूल जाते हैं। कई बार हम किसी व्यक्ति का नाम भूल जाते हैं। आखिर ऐसा क्यों होता है? जब हम पूर्व में सीखे गए अनुभवों को किसी कारण से खो देते हैं तो उसे विस्मरण की संज्ञा की जाती है। जब भी हम कोई विषय या पाठ सीखते है तो उसे स्मृति चिन्ह के रूप में मस्तिष्क में धारण कर लेते हैं। जब ये स्मृति चिन्ह किसी कारणवश कमजोर पड़ जाते हैं या समाप्त हो जाते हैं तो हम पूर्व में सीखे गए अनुभवों को याद नहीं कर पाते हैं और हम कहते हैं कि उसका विस्मरण हो गया है। इस तरह से हम कह सकते हैं कि विस्मरण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें स्मृति चिन्हों के खत्म हो जाने के कारण व्यक्ति पूर्व में सीखे गए अनुभवों को व्यक्ति याद नहीं कर पाता है। मनोवैज्ञानिक रूप से विस्मरण एक जटिल प्रक्रिया है क्योंकि कभी-कभी ऐसा भी होता है कि किसी सीखे गए पाठ की स्मृति चिन्ह बनी हुई होती है अर्थात हम उन अनुभवों को धारण किए हुए होते हैं फिर भी प्रत्यस्मरण (recall) नहीं कर पाते हैं, परन्तु जैसे ही उस से सम्बंधित पुनर्प्राप्ति संकेत दिया जाता है हम उसका प्रत्यस्मरण (recall) कर लेते हैं। अतः विस्मरण को परिभाषित करते हुए कहा जा सकता है कि विस्मरण एक ऐसी मानसिक प्रक्रिया है जिसमें व्यक्ति पूर्व में सीखे गए अनुभवों या पाठों का प्रत्यस्मरण (recall) करने में असमर्थ रहता है। इस असमर्थता का कारण स्मृति चिन्हों का खत्म हो जाना भी हो सकता है या उपयुक्त पुनः प्राप्ति संकेत की अनुपस्थिति भी हो सकती है।

विस्मरण के स्वरूप के बारे में मनोवैज्ञानिकों के बीच दो तरह के दृष्टिकोण या विचारधाराएं हैं। पहली विचारधारा इविंगहॉस (Ebbinghaus) की है जिन्होंने स्मरण तथा विस्मरण पर पहला प्रयोगात्मक अध्ययन किया और बतलाया कि विस्मरण एक निष्क्रिय मानसिक प्रक्रिया है। दूसरी विचारधारा अन्य मनोवैज्ञानिकों मेल्टन, मूल्लर तथा पिलजेकर, मैग्यू तथा जेनकिंस एवं डैल्लेनबैक

आदि की है जिनके अनुसार विस्मरण एक निष्क्रिय मानसिक प्रक्रिया नहीं बल्कि एक सक्रिय प्रक्रिया है। इन दोनों विचारधाराओं की व्याख्या इस प्रकार है-

विस्मरण एक निष्क्रिय मानसिक प्रक्रिया:

इविंगहॉस ने विस्मरण का प्रयोगात्मक अध्ययन किया| इन्होंने अपने इस अध्ययन में निरर्थक पदों की कई सूचियों को स्वयं सीखा तथा भिन्न-भिन्न समय अंतरालों पर अपनी स्मृति की जाँच की। इन्होंने अपने प्रयोग में पाया कि सीखने के बाद जैसे-जैसे समय बीतता जाता है, वैसे-वैसे निष्क्रिय रूप से मस्तिष्क में बने स्मृति-चिन्ह अपने आप कमजोर पड़ जाते हैं। इस तरह से इविंगहॉस के अनुसार भूलने का मुख्य कारण सीखने के बाद समय का बीतना होता है। समय बीतने के साथ-साथ स्मृति चिन्हों में क्रमिक ह्रास होता जाता है और उसी के अनुसार विस्मरण की मात्रा भी बढ़ती जाती है।

विस्मरण एक सक्रिय मानसिक प्रक्रिया:

आधुनिक मनोवैज्ञानिकों ने यह साबित करने का प्रयास किया है कि विस्मरण एक निष्क्रिय मानसिक प्रक्रिया नहीं बल्कि एक सक्रिय मानसिक प्रक्रिया है एवं विस्मरण का कारण सिर्फ समय बीतना नहीं है। विभिन्न प्रयोगों में यह पाया गया है कि सीखने के बाद समय का बीतना अपने आप में विस्मरण का कारण नहीं है बल्कि व्यक्ति इस समय अंतराल में जब कुछ दूसरा कार्य करता है या कुछ नया पाठ सीखता है वह स्मृति चिन्हों को धीरे-धीरे कमजोर कर देता है और व्यक्ति उस मौलिक पाठ को भूल जाता है। अतः विस्मरण निष्क्रिय रूप से समय बीतने के साथ अपने आप नहीं होता है बल्कि उस बीते हुए समय में जब व्यक्ति सक्रिय होकर किसी नए ज्ञान को सीखता है तो इससे विस्मरण होता है।

विस्मरण के कारण (Causes of Forgetting):

विस्मरण के कारणों के सन्दर्भ में विद्वानों द्वारा कई सिद्धांत प्रस्तुत किये गए जिनमे से प्रमुख निम्नांकित हैं:

- **अप्रभावी कूट संकेतन (Ineffective Encoding):** कई बार सीखी गयी सूचना के प्रत्यास्मरण न कर पाने के पीछे उसका प्रभावी कूट संकेतन न होना भी होता है। वस्तुतः ऐसा तब होता होता है जब सूचना प्रभावी तरीके से दीर्घावधि स्मृति में नहीं जा पाती क्योकि उनका प्रभावी कूट संकेतन नहीं हुआ है। ऐसा प्रायः तब होता है जब व्यक्ति ने अधिगम के समय ध्यान केंद्रित नही किया हो, जब सूचना का उपयुक्त कूट संकेतन नहीं हुआ और सूचना दीर्घावधि स्मृति में संगृहीत ही नहीं हो पाई तो उसका प्रत्यस्मरण संभव नहीं हो पाता।
- **प्रत्यस्मरण विफलता (Retrieval Failure or Tip-of-the Toungue Phenomnon):** कई बार ऐसा देखा जाता है कि कोई सूचना दीर्घावधि स्मृति मे संचित तो है परन्तु समय विशेष पर उसका प्रत्यस्मरण नहीं हो पाता जिसका प्रमुख कारण होता है स्मरण के लिए आवश्यक स्मृति संकेतों का अभाव| ऐसे मे व्यक्ति को यह एहसास होता है

कि सूचना विशेष उसकी स्मृति में संगृहीत तो है परन्तु वह उसका प्रत्यस्मरण कर के पुनरुत्पादन नहीं कर पा रहा है।

- **मस्तिष्कीय चिन्हों का क्षय अथवा विलोपन (Decay /fading of memory traces):** कुछ मनोवैज्ञानिकों का मत है कि समय बीतने के साथ साथ पुनरावृति नहीं किये जाने के कारण ग्रहण की गयी सूचना से सम्बंधित चिन्ह धीरे धीरे विलोपित होने लगते हैं और इन मस्तिष्कीय चिन्हों के क्षय के कारण हम सूचना विशेष भूल जाते हैं।
- **व्यवधान (Interference):** कुछ विद्वानों का मत है कि व्यवधान के सिद्धांत के कारण हम भूलते हैं। मस्तिष्कीय चिन्हों के ह्रास के कारण हम उतना नहीं भूलते जितना हम नयी सीखी गयी चीजों के व्यवधान के कारण भूलते हैं। व्यवधान के भी दो प्रकार बताये गए हैं:
  - **पूर्व व्यापी व्यवधान (Retroactive interference):** पूर्व व्यापी व्यवधान तब उत्पन्न होता है जब वर्तमान में सीखी गयी सूचना पूर्व में सीखी गयी सूचना के साथ व्यवधान उत्पन्न करती है और इसके फलस्वरूप व्यक्ति पूर्व में सीखा गया ज्ञान भूलने लगता है। जैसे कोई मनोविज्ञान का छात्र समाजशास्त्र का अध्ययन कर रहा हो और इसके फलस्वरूप उसका पहले से सीखा गया मनोविज्ञान सम्बन्धी सूचनाएँ भूलती जा रही हों तो यह पूर्व व्यापी व्यवधान (Retroactive interference) है। अर्थात वर्तमान में सीखी गयी सामग्री के कारण पूर्व में सीखे गए ज्ञान का भूलना पूर्व व्यापी व्यवधान (Retroactive interference) है।
  - **अग्रसक्रिय व्यवधान (Proactive interference):** यह पूर्व व्यापी व्यवधान (Retroactive interference) की विपरीत प्रक्रिया है जिसमे पुराना सीखा गया ज्ञान नए ज्ञान को सीखने में कठिनाई पैदा करता है और इसके कारण नया सीखा हुआ ज्ञान भूलने लगता है। जैसे यदि कोई मनोविज्ञान का विद्यार्थी समाजशास्त्र का अध्ययन कर रहा हो परन्तु उसके द्वारा पूर्व में सीखी गयी मनोविज्ञान की सामग्री उसे वर्तमान में समाजशास्त्र सीखने एवं उसे याद करने में व्यवधान उत्पन्न कर रहा हो तो यह अग्रसक्रिय व्यवधान (Proactive interference) का उदहारण होगा।
- **अभिप्रेरित विस्मरण (Motivated Forgetting) :** अभिप्रेरित विस्मरण की सर्वप्रथम व्याख्या फ्रायड ने अपने रक्षात्मक युक्तियों के वर्णन में किया था। अभिप्रेरित विस्मरण का तात्पर्य है अप्रिय स्मृतियों का चेतन से अचेतन में चले जाना। फ्रायड के अनुसार अभिप्रेरित विस्मरण की प्रक्रिया दो प्रकार की हो सकती है:
  - **शमन के द्वारा विस्मरण (Forgetting through repression):** यह विस्मरण का अचेतन (Unconscious) स्वरुप है। शमन के द्वारा विस्मरण में अप्रिय अनुभूतियों को मस्तिष्क के द्वारा आपने आप ही समय के साथ अचेतन में पहुंचा दिया जाता है और धीरे धीरे व्यक्ति उसे पूरी तरह भूल जाता है। जैसे कोई विद्यार्थी परीक्षा में फेल हो जाता है वह धीरे धीरे अपने आप भूल जाता है और वह आगे की परीक्षाओं की तयारी करने लगता है।
  - **दमन के द्वारा विस्मरण(Forgetting through Supression)-** यह विस्मरण का चेतन (Conscious) स्वरुप है। कई बार जीवन की अनुभूतियाँ इतनी करुण होती हैं कि

वे अपने आप अचेतन में नहीं जाती और न ही भूलती हैं। ऐसे में व्यक्ति के द्वारा मानसिक स्वस्थ्य के लिए चेतन प्रयास के द्वारा उन्हें भूलने का प्रयास किया जाता है। उदहारण के लिए यदि किसी माँ का बच्चा अचानक अकाल मृत्यु का शिकार हो जाये तो वह इसे जल्दी नहीं भूल पाती, जैसे ही उस आयु का कोई बच्चा उसके सामने आता है उसे उसकी स्मृति हो जाया करती है। ऐसी परिस्थिति मे व्यक्ति दमन के द्वारा विस्मरण का सहारा लेता है और उसे बलपूर्वक भूलना चाहता है और धीरे धीरे वह दुखद स्मृति को अचेतन मे भेज देता है। शमन एवं दमन के द्वारा विस्मरण में एक बड़ा अंतर यह है कि शमन की प्रक्रिया में दुखद स्मृतियाँ आपने आप भूल जाती हैं परन्तु दमन के द्वारा विस्मरण में व्यक्ति कोशिश कर के दुखद स्मृतियों को भूलने का प्रयास करता है तथा उसे यह ध्यान होता है कि ऐसी दुखद घटना उसके साथ हुई है जो समान परिस्थितियाँ प्राप्त होने पर उसे पुनः याद आ जाती हैं।

9.7 स्मृति वर्द्धन के उपाय

विस्मरण के नकारात्मक परिणामों से हम सभी परिचित हैं विस्मरण के परिणाम कई बार हमें विचित्र एवं कठिन परिस्थितियों मे ले जाते हैं। कल्पना कीजिये कि आपकी कोई मीटिंग आपके बॉस के साथ प्रस्तावित है और जब मीटिंग आरम्भ होता है तब आपको ध्यान आता है कि मीटिंग से सम्बंधित महत्वपूर्ण दस्तावेज आप लाना भूल गए हैं। यह आपके सामने एक अत्यंत ही विकट परिस्थिति उत्पन्न कर देता है। आपके मन में प्रश्न उठ रहा होगा कि क्या ऐसे विषम परिस्थितयों से बचा जा सकता है ? यदि हाँ तो ऐसी कौन सी युक्तियाँ है जिनके द्वारा स्मृति में सुधार संभव है? आइये स्मृति वर्द्धन के कुछ सामान्य युक्तियों की चर्चा करें।

- **अधिगम के समय ध्यान केन्द्रण (Being attentiveduring learning):** अच्छी स्मृति की प्रथम शर्त है उपयुक्त अधिगम जो तभी संभव है जब अधिगम के समय आपने अपना सम्पूर्ण ध्यान उसपर केंद्रित कर रखा है यदि आप एक प्रभावी स्मृति चाहते हैं तो आप अधिगम के समय अपना सम्पूर्ण ध्यान संदर्भित विषय पर केंद्रित करने की आदत डालिए।

- **प्रत्यस्मरण अभ्यास विधि(Recitation Method):** इस विधि में पहले एक या दो बार दी गयी सामग्री को ध्यान से पढ़ें / सुनें और तब अधिगम सामग्री का प्रयोग किये बिना उसका प्रत्यस्मरण करने का अभ्यास करें। आप स्वयं प्रत्येक अभ्यास के बाद अपनी स्मृति का मूल्यांकन करें । किसी अध्ययन सामग्री के बार बार पठन की बजाय प्रत्यस्मरण अभ्यास विधि (Recitation Method) ज्यादा प्रभावी पाई गयी है।

- **सम्पूर्ण एवं खंडीयन विधि(Whole and Part Methods):** संदर्भित सामग्री को पूरी तरह से एक बार के सिटिंग में याद करना सम्पूर्ण विधि है जबकि उसे विभिन्न खण्डों में बाँट कर प्रत्येक खंड को अलग अलग याद करना खंडीयन विधि है । दोनों विधियों का अपना

अपना महत्व है। यदि अधिगम सामग्री सरल एवं अल्प समय लेने वाला हो तो सम्पूर्ण विधि का प्रयोग करना उचित है जबकि यदि अधिगम सामग्री जटिल, अपेक्षाकृत बड़ी एवं ज्यादा समय लेने वाली हो तो उसे खंडीयन विधि का प्रयोग करके स्मरण करने का प्रयास करें।

- **संगति का सिद्धांत (Method of Association):** संगती के सिद्धांत के अनुसार हमें वे चीजें लंबे समय तक याद रहती हैं जो हमारे मस्तिष्क में मौजूद पुराने ज्ञान से जोड़ दी जाती है। अतः किसी भी सामग्री को पुरानी सीखी गयी सामग्री से जोड़ने का प्रयास करें। जैसे यदि आप स्मृति वर्द्धन की विधियाँ याद रखना चाहते हैं तो यह प्रयास कीजिये कि यह आपके मस्तिष्क मे पहले से मौजूद अन्य सूचनाओं से जोड़ा जा सके।

- **न्युमोनिक्स का प्रयोग (Use of Mnemonics):** न्युमोनिक्स (Mnemonics) ग्रीक भाषा का शब्द है जिसका अर्थ है 'स्मृति सहायक साधन'। न्युमोनिक्स दृश्य / श्रब्य / लिखित सामग्री के स्मरण के लिए उपयोगी संगती एवं संयोजन प्रदान करता है। न्युमोनिक्स तैयार करने की कई विधियाँ हैं:

- **आधार शब्द विधि (Peg Word Method):** इस विधि में सीखी जा रही सामग्री को एक मानसिक प्रतिविम्ब के साथ जोड़ देते हैं। इसका उदहारण बच्चों को अंग्रेजी की वर्णमाला याद करने के लिए एप्पल के चित्रके साथ 'A' जोड़ना बाल के चित्र के साथ 'B' को जोड़ना, कैट के चित्र के साथ 'C' को जोड़ना है जिसे बच्चे आसानी से याद कर लेते हैं क्योंकि यह उनके मस्तिष्क मे पहले से मौजूद विभिन्न दृश्य सामग्रियों से जोड़ दिया गया है।

- **कथा श्रृंखला विधि (Narrative Chaining Method):** इस विधि में अध्ययन सामग्री को एक कथा के रूप में परिवर्तित कर के उसे याद करने का प्रयास किया जाता है।

- **प्रथम वर्ण तकनीक (First Letter Technique):** इस विधि में विभिन्न शब्दों के प्रथम वर्णों का प्रयोग संगती एवं संयोजन के लिए किया जाता है। अंक गणितीय संक्रियाओं क्रम को स्मरण रखने के लिए प्रयुक्त BODMAS (B=Bracket, O=of, D=Divison, M=Multiplication, A=Addition and S=Substraction) प्रथम वर्ण तकनीक का एक उत्कृष्ट उदाहरण है।

- **योग प्राणायाम एवं ध्यान का अभ्यास (Practicising Yoga, Pranayama & Dhyana)** विभिन्न अनुसंधानों द्वारा यह साबित हो चुका है कि योग प्राणायाम एवं ध्यान का अभ्यास मस्तिष्क की क्रियाशीलता को बढ़ा कर स्मृति वर्द्धन में सहायक है।

- **PQRST Method: थामस (Thomas) और रॉबिन्सन (Robinson)** ने स्मृति वर्द्धन के लिए **P Q R S T** विधि विकसित की है जिसमे P=Preview, Q=

Questioning, R=Read, S=Self Retention करने का द्योतक है। पूर्व-अवलोकन का अर्थ है किसी भी अध्याय की पूरी सामग्री पर एक विहंगम दृष्टि डालना तथा उससे परिचित होना। प्रश्न करने से तात्पर्य है पठित सामग्री से प्रश्न करना एवं उसका उत्तर खोजना है। S=Self Retention का अर्थ है पठित सामग्री को दुहराना। Test का अर्थ है पढ़ने के बाद जो कुछ भी आपने पढ़ा है उसे लिखिए और अंत में अपना परीक्षण स्वयं कीजिए कि आप कितना समझ पाए हैं।

ध्यातव्य है कि ऐसी कोई भी विधि नहीं है जो याद करने से संबंधित सारी समस्याओं का निवारण कर सके तथा रातों-रात स्मृति में सुधार कर दे। अपनी स्मृति को सुधारने के लिए आपको कई कारकों की ओर ध्यान देना होगा जो आपकी स्मृति को प्रभावित करते हैं।

9.8 सारांश

स्मृति में तीन अंत:संबंधित प्रक्रियाएँ, कूट संकेतन, भंडारण एवं पुनरुद्धार सम्मिलित हैं। कूट संकेतन का तात्पर्य आने वाली सूचना को इस प्रकार पंजीकृत करना है कि वह स्मृति तंत्र के अनुरूप हो, भंडारण और पुनरस्मरण का तात्पर्य क्रमश: सूचना को एक समय तक रखना तथा फिर पुन: चेतना में लाना है। स्मृति का अवस्था मॉडल स्मृति प्रक्रियाओं की तुलना कंप्यूटर से करता है तथा इसके अनुसार स्मृति में आने वाली सूचना का तीन भिन्न अवस्थाओं संवेदी स्मृति, अल्पकालिक स्मृति एवं दीर्घकालिक स्मृति बांटता है। दीर्घकालिक स्मृति का वर्गीकरण कई प्रकार से किया गया है। घोषणात्मक स्मृति एवं प्रक्रियात्मक स्मृति, स्मरण एक मुख्य वर्गीकरण है तथा दूसरा वर्गीकरण है घटनापरक एवं अर्थगत स्मृति। दीर्घकालिक स्मृति में सामग्री संप्रत्यय, श्रेणियों एवं प्रतिमाओं के रूप में प्रस्तुत होती है। विस्मरण किसी समयावधि तक संचित सामग्री की हानि से संबंधित है। विस्मरण के कारणों में अप्रभावी कूट संकेतन (Ineffective Encoding), मस्तिष्कीय चिन्हों का क्षय अथवा विलोपन (Decay /fading of memory traces, प्रत्यस्मरण विफलता (Retrieval Failure or Tip-of-the Toungue Phenomnon) व्यवधान (Interference) एवं अभिप्रेरित विस्मरण (Motivated Forgetting) प्रमुख हैं।अधिगम के समय ध्यान केन्द्रण, प्रत्यस्मरण अभ्यास विधि(Recitation Method), सम्पूर्ण एवं खंडीयन विधि (Whole and Part Methods), संगति का सिद्धांत (Method of Association), न्युमोनिक्स का प्रयोग (Use of Mnemonics), आधार शब्द विधि (Peg Word Method) एवं कथा श्रृंखला विधि (Narretive Chaining Method) प्रथम वर्ण तकनीक (First Letter Technique), योग प्राणायाम एवं ध्यान का अभ्यास (Practicising Yoga, Pranayama & Dhyana) एवं PQRST Method आदि प्रमुख स्मृति वर्धन के उपाय हैं।

9.9 अभ्यास प्रश्न

1. स्मृति के की प्रक्रिया का वर्णन करें।
2. दीर्घावधि स्मृति से आप क्या समझते हैं? दीर्घावधि स्मृति का वर्गीकरण प्रस्तुत करें ।
3. विस्मरण एवं विस्मरण के कारणों पर प्रकाश डालें।
4. स्मृति वर्धन के उपायों की चर्चा करें।

9.10 सन्दर्भ ग्रन्थ

- सिंह, अरूण कुमार, (2001) शिक्षा मनोविज्ञान, पटना, भारती भवन, पब्लिशर्स एड डिस्ट्रीब्यूटर्स।
- सिंह, अरूण कुमार, (2001) संज्ञानात्मक मनोविज्ञान, वाराणसी, मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशर्स एड डिस्ट्रीब्यूटर्स।
- सिंह, अरूण कुमार, (2001) उच्चतर मनोविज्ञान, पटना,भारती भवन, पब्लिशर्स एड डिस्ट्रीब्यूटर्स।
- सिंह, अरूण कुमार, (2001) नैदानिक मनोविज्ञान, पटना,भारती भवन, पब्लिशर्स एड डिस्ट्रीब्यूटर्स।
- सिंह, अरूण कुमार, (2001) आसामान्य मनोविज्ञान, पटना,भारती भवन, पब्लिशर्स एड डिस्ट्रीब्यूटर्स।

इकाई -10

चिंतन: स्वरूप एवं प्रक्रिया

Thinking: Nature and Process

इकाई की रूपरेखा

10.1 प्रस्तावना

10.2 उद्देश्य

10.3 चिंतन: अर्थ एवं परिभाषा

10.4 चिंतन की विशेषताएँ

10.5 चिंतन का स्वरूप

10.6 चिंतन के साधन

10.7 चिंतन के प्रकार

10.8 चिंतन के सोपान

10.9 चिंतन: प्रभावक प्रतिकारक

10.10 चिंतन एवं स्मरण

10.11 चिंतन एवं कल्पना

10.12 चिंतन एवं भाषा

10.13 सारांश

10.14 शब्दावली

10.15 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

10.16 निबंधात्मक प्रश्न

10.17 संदर्भ ग्रन्थ सूची

10.1 प्रस्तावना

मनुष्य को संसार का सर्वश्रेष्ठ प्राणी कहा गया है। इसका कारण है - उसका चिन्तनशील होना। भगवान ने मनुष्य को जो बहुत से वरदान दिये हैं उनमें चिन्तन प्रक्रिया का महत्वपूर्ण स्थान है। इस चिन्तन प्रक्रिया के कारण ही मनुष्य अन्य प्राणियों से श्रेष्ठ हैं। अन्य प्राणियों की अपेक्षा, मानव-जीवन अधिक गहन है। इस चिन्तन प्रक्रिया के कारण ही व्यक्ति वातावरण के साथ समायोजन बनाये रख सकता है और अपने जीवन के उद्देश्यों की पूर्ति कर सकता है। मनोवैज्ञानिकों का कथन है चिन्तन, सोचने की एक प्रक्रिया है, जो किसी समस्या के कारण प्रारम्भ होती है और समस्या समाधान तक बराबर चलती रहती है। चिन्तन का हमारे व्यक्तित्व से प्रत्यक्ष संबंध है। मनुष्य का

चिन्तन जितना समुचित होगा उतना उसका व्यवहार भी समुचित होगा और वह जीवन में सफलता प्राप्त करेगा। क्योंकि हमारा चिन्तन जितना श्रेष्ठ होगा, हमारा व्यक्तित्व भी उतना ही विकसित एवं परिपक्व होगा। हमारे चिन्तन का हमारे स्वास्थ्य पर भी गहरा प्रभाव पड़ता है क्योंकि हम जैसा सोचते हैं, हमारा शरीर वैसी ही प्रतिक्रिया व्यक्त करता है। नकारात्मक चिन्तन शरीर की प्रतिरोधक क्षमता को कमकर उसे अस्वस्थ और कमजोर बना देता है। सकारात्मक चिन्तन उत्तम स्वास्थ्य एवं श्रेष्ठ व्यक्तित्व की कुंजी है। चिन्तन ज्ञानात्मक व्यवहार का जटिल स्वरूप है जो मानव-जगत में देखने को मिलता है। चिन्तन एक विचारात्मक प्रक्रिया है जिसका स्वरूप प्रतीकात्मक है। इसका प्रारम्भ व्यक्ति के समक्ष किसी समस्या अथवा क्रिया से होता है जिसमें कुछ मात्रा तक प्रयास भी सम्मिलित रहता है, परन्तु समस्या के प्रत्यक्ष प्रभाव से प्रवाहित होकर चिन्तन-क्रिया अन्तिम रूप से समस्या सुलझाने अथवा उसके निष्कर्ष की ओर ले जाती है। चिन्तन का कार्य आन्तरिक व्यवहार से है जिसमें पदार्थों और विचारों के लिए प्रतीक शामिल रहते हैं, प्रिय विद्यार्थियों प्रस्तुत इकाई में आप चिंतन प्रक्रिया के अर्थ, विभिन्न मनोवैज्ञानिकों की परिभाषायें उनका विश्लेषण, चिंतन की विशेषताओं, प्रकार आदि को समझ सकेंगे।

10.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप -

- चिंतन के अर्थ को स्पष्ट कर सकेंगे।
- चिंतन की विभिन्न परिभाषाओं का विश्लेषण कर सकेंगे।
- चिंतन के स्वरूप एवं विभिन्न विशेषताओं का अध्ययन कर सकेंगे।
- चिंतन के विभिन्न प्रकारों का वर्गीकरण कर सकेंगे।
- चिंतन के सोपान एवं प्रभावहक प्रतिकारक समझ सकेंगे।
- चिंतन एवं कल्पना, चिंतन एवं स्मरण का भेद कर स्पष्ट कर सकेंगे।
- चिंतन एवं भाषा का एक दूसरे से क्या सम्बन्ध है, इसे समझ सकेंगे।
- चिंतन प्रक्रिया को हम किस प्रकार विकसित कर सकते हैं, इसे स्पष्ट कर सकेंगे।
- व्यावहारिक जीवन में चिंतन के महत्व को समझ सकेंगे।

10.3 चिंतन: अर्थ एवं परिभाषा (Thinking: Meaning & Defination)

सामान्य बोलचाल की भाषा में चिंतन का अर्थ सोचने, समझने, कल्पना करने, विचार-विमर्श करने आदि से लिया जाता है, परन्तु मनोविज्ञान ने उसे सीमित अर्थ द्वारा ही प्रदर्शित किया है - समस्या समाधान। वारेन के शब्दों में, ''चिंतन प्रतीकात्मक प्रकृति वाली, व्यक्ति के सम्मुख उपस्थित किसी समस्या अथवा काम से प्रारम्भ होने वाली, कुछ प्रयत्न और भूल सम्मिलित करने वाली परन्तु उसकी समस्या तत्परता से प्रभावित और आखिरकार समस्या के एक निष्कर्ष या सुलझाव पर पहुँचने वाली एक प्रत्यात्मक क्रिया है।'' इस प्रकार चिन्तन की प्रक्रिया किसी न किसी समस्या में प्रारम्भ होती है। वह समस्या के प्रति व्यक्ति की अनुक्रिया है। मानव के व्यहार में चिंतन का विशेष महत्व

है। चिंतन के कारण ही मनुष्य पशुओं से भिन्न है । अपनी चिंतन क्षमता द्वारा ही मनुष्य एक नयी सभ्यता और संस्कृति का निर्माण कर सका, जबकि पशु ऐसा न कर सका।

मनुष्य के सामने कभी-कभी किसी समस्या का उपस्थित होना स्वाभाविक है । ऐसी दशा में वह उस समस्या का समाधान करने के उपाय सोचने लगता है । वह इस बात पर विचार करना आरम्भ कर देता है कि समस्या को किस प्रकार सुलझाया जा सकता है । उसके इस प्रकार सोचने या विचार करने की प्रक्रिया को चिन्तन कहते हैं । दूसरे शब्दों में, चिंतन विचार करने की वह मानसिक प्रक्रिया है जो किसी समस्या के कारण आरम्भ होती है और उसके अन्त तक चलती रहती है ।'' एक उदाहरण लीजिए - एक गरीब युवक बारहवीं कक्षा पास करने के बाद कॉलेज शिक्षा प्राप्त करना चाहता है, परन्तु गरीबी के कारण उसके पास इतना पैसा नहीं है कि वह फीस भर सकें और न कहीं और से सहायता मिलने की आशा है, ऐसी परिस्थिति में उसके सामने एक समस्या उपस्थित हो जाती है कि कॉलेज की पढ़ाई का खर्चा किस प्रकार चलाया जाये अब वह अपनी कल्पना को इधर उधर दौड़ता है । एक विचार आता है कहीं नौकरी कर ली जाये । पहले उसको इस विचार में कुछ आशा दिखाई देती है, परन्तु वह फिर सोचता है कि बारहवीं पास को कौन नौकरी देगा, दूसरे यदि मिल भी जाये तो काम के बाद इतना समय कहाँ मिलेगा कि प्रथम श्रेणी की पढ़ाई की जा सके। फिर यदि समय न मिलने से परीक्षा होने के बाद अच्छे अंक नहीं मिले तो पास होने का क्या लाभ? इन सब बातों को सोचकर वह नौकरी करने का विकल्प छोड़ देता है । अब दूसरा विकल्प सामने आता है ट्यूशन का। ट्यूशन करके पढ़ने का समय तो मिल जाता है परन्तु बारहवीं पास को ट्यूशन कौन देगा आज के समय में तो बेरोजगारों की भरमार है, इस संकल्प-विकल्प में कुछ देर के लिए उसके सामने निराशा सी छा जाती है । परन्तु फिर उसको अपने एक धनी मित्र की याद आती है । जिसने कभी उससे कहा था कि मेरे योग्य कोई काम हो तो बतलाना। उसकी याद आते ही उसे आशा की किरण दिखाई पड़ती है, पहले मन में कई शंकायें उठती है कि उसे कोई काम मिलेगा की नहीं, वह सहायता करेगा या नहीं, वह उसके बारे में क्या सोचेगा आदि। परन्तु धीरे-धीरे सभी शंकाओं का समाधान होने लगता है और वह इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि मित्र से मिलकर दो-तीन घण्टे का कोई काम लिया जाये और उससे मिले वेतन से काम चलाकर कॉलेज की शिक्षा प्राप्त करे। इस प्रकार, उसकी समस्या तत्परता के निर्देशन में बहुत कुछ प्रयत्न और भूल के बाद उसको अपनी समस्या का सुलझाव मिल जाता है । परन्तु अभी इससे न उसको काम मिल गया और न रूपये का प्रबन्ध होकर पढ़ाई ही प्रारम्भ हो गयी। इस प्रकार समस्या का सुलझाव वास्तविक न होकर प्रत्ययात्मक ही हुआ है । चिंतन में समस्या का सुलझाव बाह्य क्रियाओं द्वारा नहीं बल्कि आन्तरिक रूप में होता है ।

समस्या के प्रति अनुक्रिया के रूप में चिंतन के इस लम्बे उदाहरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि चिंतन समस्या से प्रारम्भ होता है और उसके सुलझाव में समाप्त होता है । जब मनुष्य को किसी समस्या का समाधान खोजना होता है तब वह चिंतन प्रक्रिया का ही आश्रय लेता है । वह चिंतन प्रक्रिया द्वारा वातावरण, उसकी वस्तुओं और वस्तुओं के पारस्परिक संबंधों को जानने का प्रयास करता है । अत: कहा जा सकता है कि चिंतन एक महत्वपूर्ण मानसिक प्रक्रिया है, जो समस्या समाधान की ओर उन्मुख होती है । भिन्न-भिन्न व्यक्तियों की प्रक्रियाएँ एक सी नहीं होती। एक परिस्थिति एक व्यक्ति के लिए एक समस्या हो सकती है, परन्तु अधिकांश को उनमें कोई समस्या नहीं दिखायी पड़ेगी। एक तर्कशास्त्री की समस्याएं साधारण व्यक्ति लिए निरर्थक होती है पर तर्कशास्त्री दिन-रात उन्हीं के सुलझाव में लगा रहता है । इसी प्रकार दार्शनिक, वैज्ञानिक, धार्मिक आदि भिन्न-भिन्न प्रवृत्ति वाले

व्यक्तियों की समस्याएँ भिन्न-भिन्न होती है। कुछ समस्याएँ सैद्धान्तिक होती है और कुछ समस्याएँ व्यावहारिक होती है । कॉलेज शिक्षा या बी.ए. की पढ़ाई की समस्या व्यवहारिक समस्या है । तर्कशास्त्री की समस्यायें सैद्धान्तिक है । व्यावहारिक समस्याओं के सुलझाव दैनिक जीवन में सहायक होती है।

सैद्धान्तिक समस्याओं के सुलझाव से जिज्ञासा की शान्ति होती है । इस संबंध में विभिन्न परिभाषाओं को जानना एवं उनका विश्लेषण करना आवश्यक है।

चिंतन की परिभाषा :-

- रॉस - ''अपने ज्ञानात्मक स्वरूप में चिंतन एक मानसिक प्रक्रिया है।''
- वैलनटाइन - ''चिंतन एक क्रिया है जिसमें अविराम गति से बहने वाले प्रत्ययों का सम्बन्ध किसी न किसी प्रयोजन का उद्देश्य से होता है।''
- वुडवर्थ - ''चिंतन करना एक कठिनाई को दूर करना है।''
- डीवी - ''अपने क्रियात्मक पक्ष में चिन्तन एक विश्वास या अनुमानित ज्ञान है।''
- गैरेट के अनुसार - ''चिन्तन एक अन्रतभूत व्यवहार है, जिसमें प्रतीक, विचार एवं प्रयत्नों को सामान्य रूप में व्यक्त किया जाता है।''
- इंगलिश और इंगलिश के अनुसार - ''चिंतन के चार मुख्य अर्थ है -

1. कोई भी प्रक्रिया कार्य जो मुख्यत: प्रत्यक्षात्मक नहीं, चिंतन हो सकता है।
2. दूसरे अर्थ में समस्या का समाधान ही चिंतन है। जिसमें प्रकट प्रहस्तन और प्रत्यक्षीकरण न होकर मुख्यत: विचार होते हैं।
3. तीसरे अर्थ में चिंतन का अर्थ किसी समस्या में निहित संबंधों को समझना अथवा उस पर विचार करना है।
4. चिंतन का अर्थ आन्तरिक और मुखवाणी व्यवहार से मिलाया जाता है।

- कागन तथा हैवमैन ने चिंतन की एक सर्वश्रेष्ठ एवं व्यापक परिभाषा दी है। इनके अनुसार, ''प्रतिभाओं, प्रतीकों, संप्रत्ययों, नियमों एवं अन्य मध्यस्थ इकाइयों के मानसिक जोड़-तोड़ को चिन्तन कहा जाता है।
- रेबर तथा रेबर के अनुसार, सामान्यत: चिंतन का अर्थ है, विचारों, प्रतिमाओं, प्रतीकों, शब्दों, कथनों, स्मृतियों, प्रत्ययों, अवबोधनों, विश्वासों तथा अभिप्रायों का अन्त: ज्ञानात्मक तथा मानसिक परिचालन।''
- सिलवरमैन के अनुसार, ''चिंतन एक ऐसी मानसिक प्रक्रिया है जो हम लोगों को उद्दीपक तथा घटनाओं के प्रतीकात्मक प्रतिनिधित्व द्वारा किसी समस्या का समाधान करने में मदद करती है।''
- जॉर्सविक - ''चिंतन की कार्यात्मक परिभाषा यह है कि इसके द्वारा अनुभव की गई सांसारिक घटनाओं अथवा उनके प्रतिनिधियों के बीच व्यवस्था स्थापित की जाती है।''

- आईजेन्क तथा उनके साथियों के अनुसार - ''काल्पनिक परिभाषा के रूप में चिंतन का काल्पनिक जगत में व्यवस्था स्थापित करना है। यह व्यवस्था स्थापित करना वस्तुओं से संबंधित होता है तथा साथ ही साथ वस्तुओं के जगत की प्रतीकात्मकता से भी संबंधित होता है। वस्तुओं में संबंधों की व्यवस्था तथा वस्तुओं में प्रतीकात्मकता संबंधों की व्यवस्था का नाम चिंतन है।''

चिंतन के संबंध में हम्फ्रे ने निम्न विचार व्यक्त किये हैं -

- जब प्राणी किसी समस्या का समाधान करता है तो इस क्रिया में वह पूर्व अनुभव का प्रयोग करता है।
- समस्या प्राणी को उसके उद्देश्य तक पहुंचने में बाधा उत्पन्न करती है, अत: चिंतन की आवश्यकता पड़ती है।
- समस्या समाधान की परिस्थिति में चिंतन क्रियाशील होता है।
- सभी विचारपूर्ण क्रियाओं में प्रयास और भूले का स्वरूप देखा जाता है, चाहे वे क्रिया में आन्तरिक हो अथवा बाह्य।
- चिंतन में प्रेरणा पाई जाती है। इसका अर्थ यह है कि चिंतन उद्देश्यपूर्ण होता है।
- चिंतन प्रक्रिया से भाषा को अलग नहीं किया जा सकता। भाषा मानव चिंतन में अति आवश्यक है।
- समस्या के समाधान में जब चिंतन क्रिया या प्रारम्भ होती है तो उसमें प्रतिमाएँ, पेशीय, क्रियाएँ तथा आन्तरिक सम्भाषण आदि पाये जाते हैं।

इन परिभाषाओं का विश्लेषण करने पर हमें चिंतन प्रक्रिया के बारे में कुछ ठोस तथ्य प्राप्त होते हैं, जो निम्नलिखित हैं -

चिंतन का संबंध उपस्थित वस्तुओं से कम और उनके प्रतिनिधियों और प्रतीकों से अधिक है। प्रतीक हमारे मानसिक जगत के पूर्व अनुभवों में जब कोई मानसिक क्रिया उस वस्तु का प्रतिनिधित्व करती है तो उसे मध्यस्थ इकाई कहते हैं। चिंतन में भौतिक वस्तुओं की उपस्थिति वर्जित नहीं है परन्तु चिंतन क्रिया अनुपस्थित वस्तुओं के अनुपस्थिति के प्रतीकों को भी अपने अन्दर अनिवार्य रूप से समेट लेती है। चूंकि चिंतन में वस्तुओं एवं विषयों की भौतिक उपस्थिति आवश्यक नहीं है। इसलिए इसमें सम्पूर्ण जीवन में सीखी गयी मध्यस्थ इकाईयों के प्रवेश करने की पूरी गुंजाइश रहती है। इससे स्पष्ट है कि चिंतन में मानसिक स्तर पर प्रयत्न एवं भूल अनियमित ढंग से नहीं बल्कि समस्या से उत्पन्न एक विशेष प्रकार की तत्परता द्वारा संचालित होते हैं। किसी समस्या का समाधान कब प्राप्त होगा अथवा समस्या पर चिंतन कब समाप्त होगा। इसे निश्चित नहीं किया जा सकता है। किसी किसी समस्या पर चिंतन क्रिया जीवनभर चलती रहती है।

चिंतन में भूत, वर्तमान और भविष्य तीनों से व्यक्ति का संबंध रहता है। भूतकाल से चिंतन की सामग्रियाँ मिलती है, वर्तमान चिंतन को समस्या देता है और भविष्य चिंतन के फल दर्शाता है। कल्पना की कोई दिशा नहीं होती है और न इसकी कोई अन्तिम सीमा होती है, जबकि चिंतन की एक निश्चित दिशा होती है, और समस्या समाधान होते ही यह चिंतन क्रिया समाप्त हो जाती है।

इसी आधार पर विद्वानों ने निर्दिष्ट चिंतन तथा अनिर्दिष्ट चिंतन में भेद किया है। निर्दिष्ट चिंतन किसी समस्या से उत्पन्न होता है और साहचर्यों के आधार पर एक लक्ष्य तक पहुँचता है। इसके विपरीत अनिर्दिष्ट चिंतन स्वत: उत्पन्न होता है और इसका कोई लक्ष्य नहीं होता है।

इन परिभाषाओं से यह स्पष्ट है कि चिंतन मानसिक क्रिया का ज्ञानात्मक पक्ष है। यह प्रक्रिया किसी विशेष उद्देश्य की ओर परिलक्षित होती है। इसमें इच्छा तथा असंतोष का महत्व है। इच्छा तथा असंतोष मनुष्य को चिंतन करने के लिए विवश करते हैं।

10.4 चिंतन की विशेषताएँ

सी.टी. मार्गन के शब्दों में - ''वास्तव में प्रतिदिन की वार्ता में प्रयोग होने वाले चिन्तन शब्द में विभिन्न क्रियाओं की संरचना निहित है।'' इसका सम्बन्ध गम्भीर विचारशील क्रिया से है। इस दृष्टि से चिंतन की विशेषताएँ इस प्रकार है-

- **विशिष्ट गुण -** चिंतन मानव का एक विशिष्ट गुण है, जिसकी सहायता से वह अपनी बर्बर अवस्था से सभ्य अवस्था तक पहुँचने में सफल हुआ है।
- **मानसिक प्रक्रिया-** चिन्तन मानव की किसी इच्छा, असन्तोष, कठिनाई या समस्या के कारण आरम्भ होने वाली एक मानसिक प्रक्रिया है।
- **भावी आवश्यकता की पूर्ति हेतु व्यवहार -** चिंतन किसी वर्तमान या आवश्यकता को पूर्ण करने के लिए एक प्रकार का व्यवहार है। हम अंधेरा होने पर बिजली का बटन दबाकर प्रकाश कर लेते हैं और मार्ग पर चलते हुए सामने से आने वाली मोटर को देखकर एक ओर हट जाते हैं।
- **समस्या समाधान -** मर्सेल के अनुसार - चिंतन उस समय आरंभ होता है जब व्यक्ति के समझ कोई समस्या उपस्थित होती है और वह उसका समाधान खोजने का प्रयत्न करता है।
- **अनेक विकल्प -** चिंतन की सहायता से व्यक्ति अपनी समस्या का समाधान करने के लिए अनेक उपायों पर विचार करता है। अन्त में वह उनमें से एक का प्रयोग करके अपनी समस्या का समाधान करता है।
- **समस्या समाधान तक चलने वाली प्रक्रिया -** इस प्रकार चिंतन एक पूर्ण और जटिल मानसिक प्रक्रिया है जो समस्या की उपस्थिति के समय से आरम्भ होकर उसके समाधान के अन्त तक चलती रहती है।
- चिंतन एक संज्ञानात्मक क्रिया है।
- चिंतन संकल्पना का पुनर्गठन है।

10.5 चिंतन का स्वरूप

चिंतन की विभिन्न परिभाषाओं का विश्लेषण करने के उपरान्त उन तथ्यों से चिंतन के स्वरूप की एक झलक तो अवश्य मिल जाती है। परन्तु इसके स्वरूप के बारे में विस्तृत रूप से जानने के लिए हमें

उन निष्कर्षों पर भी ध्यान देना होगा जिसे हम्फ्रे महोदय ने चिंतन पर व्यक्त किये गये अनेकों मनोवैज्ञानिकों के विचारों का विश्लेषण करके बताया है । हम्फ्रे ने चिंतन के स्वरूप के बारे में निम्नांकित तथ्यों को रखा है।

1. चिंतन प्रक्रिया की शुरूआत उस समय होती है, जब मनुष्य या पशु के सामने कोई ऐसी समस्या आती है जिसका समाधान वह करना चाहता है, समस्या से तात्पर्य एक ऐसी परिस्थिति से होता है, जिसे जीव (पशु या मनुष्य) को लक्ष्य पर पहुँचने का रास्ता नहीं दिखलाई पड़ता है । अर्थात उसमें चिंतन की प्रक्रिया प्रारंभ होती है । अत: स्पष्ट है कि चिंतन एक समस्या समाधान व्यवहार है।
2. चिंतन की समस्या में भिन्न-भिन्न पहलुओं को जो समाधान के पहले अलग-अलग होते हैं, एक साथ संयोजित किया जाता है।
3. चिंतन एक अव्यक्त मानसिक प्रक्रिया है, अर्थात इसे स्थूल वस्तुओं की भाँति प्रत्यक्ष रूप से आँखों से नहीं देखा जा सकता है, वरन् प्राणी के व्यवहार के आधार पर यह पता लगता है कि वह क्या सोच रहा है? उसके चिंतन का स्तर क्या है?
4. चिंतन प्रक्रिया का संबंधभूत, वर्तमान एवं भविष्य तीनों से होता है।
5. चिंतन का प्रमुख उद्देश्य किसी समस्या का समाधान करना होता है, अत: इसमें प्रयत्न एवं त्रुटि की प्रक्रिया शामिल होती है।
6. चिंतन की एक निश्चित दिशा होती है, क्योंकि यह लक्ष्य निर्देशित होती है । चिन्तन में अभिप्रेरणा का भी विशेष महत्व है।
7. चिंतन में भाषा का भी बड़ा महत्व है । चिंतन करते समय या कभी-कभी हम जोर से कुछ बोलने लगते हैं अर्थात भाषा का प्रयोग करते हैं। चिंतन में भाषा के अलावा प्रतीक का भी हम उपयोग करते हैं । चिंतन में दृष्टि प्रतिभा तथा श्रृव्य प्रतिभा अन्य दूसरे तरह की प्रतिभाओं की अपेक्षा अधिक होते हैं।

हम्फ्रे द्वारा प्रस्तुत किये गये उपयुक्त तथ्यों से चिंतन के स्वरूप का प्रत्येक पहलू स्पष्ट हो जाता है । इसके आधार पर मनोवैज्ञानिकों ने यह स्पष्ट रूप से बतलाया है कि चिंतन एक जटिल मानसिक प्रक्रिया है जिसकी सहायता से प्राणी किसी भी समस्या का समाधान करता है।

10.6 चिंतन के साधन

चिंतन के विभिन्न साधन निम्न प्रकार के हैं -

1. **प्रतिबिम्ब -** प्रतिमायें वस्तुओं, व्यक्तियों, दृश्यों एवं व्यक्तिगत अनुभवों की मानसिक तस्वीरे हैं । जिन्हें देखा, सुना एवं अनुभव किया जा सकता है । ये मानसिक प्रतिमायें वास्तविक वस्तुओं अनुभवों एवं क्रियाओं के प्रतीक होते हैं । हम चिंतन में वास्तविक अनुभवों क्रियाओं व वस्तुओं की अपेक्षा उनके प्रतिबिम्ब या मानसिक प्रतिमाओं में फेरबदल करते हैं।

2. **प्रत्यय -** चिंतन में प्रत्यय अनिवार्य होते हैं। पदार्थों का वर्गीकरण इस आधार पर किया जाता है। प्रत्यात्मक चिंतन में कम समय लगता है। चिंतन हमारे प्रयत्नों में मितव्ययता लाते हैं।

3. **प्रतीक एवं चिन्ह -** प्रतीक एवं चिन्ह वास्तविक अनुभवों, वस्तुओं एवं क्रियाओं के प्रतिस्थापन हैं। इस अर्थ में ये केवल शब्द, चिन्ह, प्रतीक या संख्याओं के अतिरिक्त ट्रैफिक लाईटें, बैज, ध्वज, विद्यालय की घंटी, गाने एवं नारे भी हैं।

4. **भाषा -** भाषा अभिव्यक्ति का माध्यम है जिसमें व्यक्ति अपनी अनुभूति एवं विचारों को अभिव्यक्त करता है। प्रलेख एवं साहित्य को पढ़ने से चिन्तन की प्रक्रिया को उत्तेजना मिलती है।

5. **माँसपेशियों की क्रियायें -** चिन्तन की प्रक्रिया के अन्तर्गत माँसपेशियों के समूह को क्रियाशीलता के साथ मिलते हैं। जब हम किसी एक शब्द के बारे में सोचते हैं तो हल्की-सी गति होती है। इस गतिविधि में शब्दों को जोर से बोलने के समान गति होती है। चिंतन की प्रक्रिया में माँसपेशियों में तनाव होता है। चिंतन की प्रक्रिया में संलग्नता के साथ माँसपेशियों में तनाव बढ़ जाता है। जब चिंतन प्रक्रिया धीमी होती है तो माँसपेशियों का तनाव भी कम हो जाता है।

6. **मस्तिष्क -** चिंतन की प्रक्रिया मुख्य रूप से मस्तिष्क की प्रकार्यात्मकता से जुड़ी हुई है। ज्ञानेन्द्रियों के अनुभव बिना मस्तिष्क से असम्भव है। मस्तिष्क ज्ञानेन्द्रियों की संवेदनाओं को ग्रहण कर उनके अर्थ ग्रहण करने में सहायता करता है। मस्तिष्क ही मानसिक प्रतिमाओं के संग्रहण, पुन: व्यवस्थित करने व प्रयोग करने के कार्य करता है। चिंतन की प्रक्रिया मस्तिष्क की गतिविधियों का परिणाम है।

10.7 चिंतन के प्रकार

मनोवैज्ञानिकों ने चिन्तन को कई भागों में बाँटकर अध्ययन किया है। जिम्बार्डी तथा रूक ने चिन्तन को निम्नांकित दो भागों में बाँटा है -

(1) स्वली चिंतन (Autistic Thinking)

(2) यथार्थवादी चिंतन (Realistic Thinking)

(1) स्वली चिंतन - स्वली चिंतन का तात्पर्य ऐसे चिंतन से होता है जिसमें व्यक्ति अपनी काल्पनिक विचारों एवं इच्छाओं की अभिव्यक्ति करता है। स्वप्न, स्वपन चित्र तथा अभिलाषा आदि सभी स्वाली चिंतन के उदाहरण है। यदि कोई छात्र कल्पना करता है कि पढ़ाई खत्म करने के बाद वह प्रशासनिक अधिकारी बनेगा, देश की सेवा करेगा, उसका खूब नाम होगा, सम्मान मिलेगा, खूब सारा पैसा कमायेगा, यह निश्चय ही स्वली चिंतन का उदाहरण होगा। इस तरह के चिंतन का कोई वास्तविक आधार नहीं होता है, साथ ही इसका संबंध किसी भी प्रकार की समस्या के समाधान से नहीं हो पाता है।

स्वली चिंतन का आधार वास्तविक न होने के कारण कई बार व्यक्ति अपने उद्देश्य से भटककर भी चिंतन करना प्रारम्भ कर सकता है, जिससे उसके समय व ऊर्जा दोनों की बर्बादी होती है, जिस समय

का सदुपयोग वह अपने उद्देश्य की पूर्ति हेतु प्रयत्न करने में कर सकता था उस समय को वह यूँ ही व्यर्थ कल्पनाओं में बिता देता है।

(2) यथार्थवादी चिंतन - यथार्थवादी चिंतन का तात्पर्य ऐसे चिंतन से होता है, जिसका संबंध वास्तविकता से होता है । व्यक्ति जीवन में इसके सहारे समस्या का समाधान कर पाता है । उदाहरणार्थ यदि कोई व्यक्ति गाड़ी में बैठकर सफर कर रहा है। गाड़ी अचानक रूक जाती है, ऐसी रूकावट अचानक आने से व्यक्ति तरह-तरह की बातें सोचना प्रारम्भ कर देता है। कहीं इंजन में कोई खराबी तो नहीं आ गई है। कहीं गाड़ी का पेट्रोल या टायर तो नहीं फट गया, आदि-आदि। इस तरह का चिंतन यथार्थवादी चिंतन का उदाहरण है । व्यक्ति समस्या उत्पन्न करने से संभावित विभिन्न कारणों पर चिंतन करने के पश्चात् मुख्य कारण तक पहुँचता है तथा निश्चित करता है कि गाड़ी इस कारण से ही बन्द हुई है, फिर वह प्रस्तुत समस्या के समाधान का प्रयास करता है।

यथार्थवादी चिंतन प्रक्रिया के अन्तर्गत कई बातें आती हैं -

- नई समस्या की खोज करके उसको पहचानना।
- समस्या के संकेतों का अर्थ समझना।
- अतीत के अनुभवों का स्मरण करना।
- अतीत के अनुभवों का लाभ उठाकर, उनके आधार पर कल्पना करना।
- परिकल्पना के आधार पर नियम खोजना तथा नियमों के आधार पर सही निष्कर्ष तक पहुँचना।

मनोवैज्ञानिकों ने यथार्थवादी चिंतन को निम्नांकित तीन भागों में बाँटा है -

(1) अभिसारी चिंतन एवं अपसारी चिंतन

(2) सर्जनात्मक चिंतन

(3) आलोचनात्मक चिंतन

1. अभिसारी चिंतन - इस तरह के चिंतन की निगमनात्मक चिंतन भी कहा जाता है । अभिसारी चिंतन का प्रतिपादन सर्वप्रथम जॉय पॉल गिलफोर्ड ने किया। अभिसारी चिंतन में व्यक्ति दिये गये तथ्यों के आधार पर किसी सही निष्कर्ष पर पहुँचने की कोशिश करता है। उदाहरणार्थ यदि आप प्रश्न का उत्तर जानना चाहें कि 10 में 2 से गुणा करने पर क्या उत्तर आयेगा तो उसके उत्तर जानने में निहित चिंतन अभिसारी चिंतन का उदाहरण होगा। अभिसारी चिंता में गति परिशुद्धता तथा तर्कणा का विशेष महत्व है। अभिसारी चिंतन का प्राथमिक उद्देश्य कम से कम समय में सर्वश्रेष्ठ तार्किक उत्तर तक पहुंचना होता है । एक अभिसारी चिंतक प्राय: ऐसी जानकारियों के एकत्रीकरण का प्रयास करता है अर्थात ऐसे ज्ञान को प्राप्त करता है जिसका उपयोग वह भविष्य में आने वाले समस्याओं के समाधान में करता है। अभिसारी चिंतन में हम सामान्य से विशिष्ट की ओर जाते हैं। अर्थात इसमें ज्ञात सामान्य नियमों के अनुसार किसी विशिष्ट बात या घटनाक्रम का हम विश्लेषण करते हैं। जब किसी प्रदत्त नियम के आधार पर हम विशिष्ट निष्कर्ष पर पहुँचते हैं तब हमारा चिंतन अभिसारी चिंतन के प्रकार का होता है। अभिसारी चिंतन का केन्द्र बिन्दु किसी समस्या का

समाधान करना होता है, इसके लिए हम विभिन्न साक्ष्य व तथ्य एकत्र करते हैं, उनका विश्लेषण करते हैं और समस्या का समाधान करते हैं। इस तरह के चिंतन में व्यक्ति अपनी जिन्दगी के भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में प्राप्त अनुभवों को एक साथ मिलाकर उसके आधार पर क समाधान खोजता है। ऐसे चिंतन द्वारा जिस समस्या का समाधान होता है, उसका एक निश्चित उत्तर होता है। बहुविकल्पी प्रश्न में अभिसारी चिंतन का प्रयोग करना होता है।

2. **अपसारी चिंतन -** अपसारी चिंतन का प्रतिपादन सर्वप्रथम जॉय पॉल गिलफोर्ड ने किया। अपसारी चिंतन में किसी भी समस्या का समाधान करने हेतु विभिन्न जानकारियाँ, साक्ष्य व तथ्य एकत्र किये जाते हैं फिर इन जानकारियों, साक्ष्यों व तथ्यों के आधार पर अलग-अलग तरीकों से समस्या समाधान किया जाता है। अपसारी चिंतन सामान्यत: स्वतंत्र व स्वैच्छिक होता है। जिससे हमारा मस्तिष्क अव्यवस्थित रूप से समस्या समाधान के उपाय खोजता है और विभिन्न तरीकों से समस्या समाधान करता है। अपसारी चिंतन का प्रयोग सामान्यत: ओपन इन्डेड प्रश्नों के समाधान में किया जाता है।

3. **सृजनात्मक चिंतन -** इस तरह के चिंतन को अगमनात्मक चिंतन कहा जाता है। इस तरह के चिंतन में व्यक्ति दिये गये तथ्यों से अपनी तरफ से नया तथ्य जोड़कर एक निश्चित निष्कर्ष पर पहुँचता है। जब तक व्यक्ति इस नये तथ्यों को अपनी ओर से उसमें नहीं जोड़ता है, अर्थात इन तथ्यों का सृजन नहीं करता है समस्या का समाधान नहीं हो पाता है, विज्ञान, साहित्य और कला का विकास रचनात्मक चिंतन का परिणाम है। हिन्दी-अंग्रेजी के शब्दों को जानने वाले करोड़ों है परन्तु इन्हीं शब्दों के अनुपम प्रयोग से कुछ लोग बड़े कवि तथा कलाकार बन जाते हैं। हर नवीन कृति को सृजनात्मक मानते हैं। सृजनात्मकता व्यक्ति की ऐसी मानसिक शक्ति है जिससे वह नवीन व उपयोगी वस्तु सम्प्रत्यय या सिद्धान्त निर्मित करता है। सृजनात्मक चिंतन करने वाले व्यक्ति की कल्पनाओं में इतनी नवीनता तथा सहजता होती है कि वह विभिन्न वस्तुओं का असाधारण उपयोग बता सकता है। रचनात्मक चिंतन उद्देश्यपूर्ण होता है तथा वह व्यक्ति को क्रियाशील बनाता है।

4. **आलोचनात्मक चिंतन -** इस तरह के चिंतन में व्यक्ति किसी वस्तु, घटना या तथ्य की सच्चाई को स्वीकार करने के पहले उसके गुण-दोष की परख कर लेता है, समाज में कुछ व्यक्ति तो ऐस होते हैं जिन्हें किसी घटना या वस्तु के बारे में जो कुछ भी कहा जाता है उसे वे सही समझकर मान लते हैं। तब ऐसा कहा जाता है कि इस तरह के व्यक्ति में आलोचनात्मक चिंतन की शक्ति कम है। कुछ समाज में ऐसे व्यक्ति होते हैं जिन्हें कुछ घटना या वस्तु के बारे में कहने का उसका गुण दोष परखते हैं, और तब उसे सही या गलत मानते हैं। व्यक्ति के इस तरह के चिन्तन को आलोचनात्मक चिंतन कहा जाता है।

मनोवैज्ञानिकों ने चिंतन के कई प्रकार बतलाये हैं। इस विभिन्न प्रकारों में अभिसारी चिंतन तथा सृजनात्मक चिंतन के अध्ययन पर मनोवैज्ञानिकों ने अधिक बल दिया है।

10.8 चिंतन के सोपान (Steps of Thinking)

ह्यूजोज ने चिंतन के ये सोपान बताये हैं -

1. **समस्या का आंकलन -** चिंतन समस्या के उत्पन्न होने से सम्पन्न होता है। मूर्त तथा अमूर्त समस्याएँ जिज्ञासा के माध्यम से चिंतन का आरम्भ करती है। मूर्त से अमूर्त की ओर इस पद में बढ़ा जाता है।

2. **सम्बन्धित तथ्यों का संकलन -** समस्या को समझने के बाद उन तथ्यों को एकत्र किया जाता है जो समस्या का कारण खोजने में सहायक होते हैं। तथ्यों के संकलन में प्रेरणा का महत्व भी होता है।

3. **निष्कर्ष पर पहुँचना -** तथ्यों का संकलन कर उनका विश्लेषण किया जाता है। इस विश्लेषण से किसी निष्कर्ष पर पहुँचा जाता है।

4. **निष्कर्ष का परीक्षण -** चिंतन से प्राप्त परिणामों का परीक्षण कर उसकी जाँच की जाती है। इससे चिंतन की वैधता तथा विश्वसनीयता की परीक्षा हो जाती है।

10.9 चिंतन: प्रभावक प्रतिकारक

चिंतन पर अनेक प्रतिकारकों का प्रभाव पड़ता है। ये प्रतिकारक इस प्रकार हैं -

1. **सशक्त प्रेरणा -** प्रेरणा के अभाव में सशक्त एवं व्यवस्थित चिंतन सम्भव नहीं है। चिंतन के द्वारा किसी समस्या का समाधान खोजा जाता है। अत: प्रेरणा किसी समस्या के समाधान के लिए जितनी अधिक शक्ति का संचालन करेगी, चिंतन उतना ही अधिक सशक्त होगा।

2. **ध्यान तथा रूचि -** जिन विषयों में हमारी रूचि होती है, उन विषयों में हम अधिक ध्यान संकेन्द्रण कर पाते हैं। चिन्तन की प्रक्रिया हेतु ध्यान एवं रूचि को विकसित करने की आवश्यकता है।

3. **बुद्धि -** मानसिक प्रक्रियाओं के लिए बुद्धि एक अति-आवश्यक तत्व है। बुद्धि चिंतन की अभियोग्यता है। उच्च स्तर के व्यक्ति कुशलतापूर्वक अपनी समस्याओं के समाधान ढूंढ पाते हैं जबकि निम्न बुद्धि के व्यक्ति चिंतन के अभाव में समस्याओं के हल नहीं खोज पाते।

4. **संवेगों की अनुपस्थिति -** चिंतन संवेगात्मक स्थिति में नहीं होता। क्रोध, प्रेम, भय आदि से चिंतन नहीं होता। यदि ऐसी अवस्था में चिंतन हो भी जाये तो वह एकांगी होगा।

5. **भाषा का ज्ञान -** भाषा, प्रतीकों व चिन्हों के बिना चिंतन नहीं हो सकता है। इन आवश्यक साधनों को पहले विकसित करना पड़ता है।

6. **प्रत्यय -** शब्दों से प्रत्यय, प्रत्यय से अधिनियम, अधिनियम से सिद्धान्त की कड़ी बनती है। यदि एक कड़ी भी टूट जाती है तो सम्पूर्ण चिंतन की प्रक्रिया विखण्डित हो जाती है। प्रत्यय निर्माण में निरीक्षण, विश्लेषण, अमूर्तकरण व सामान्यीकरण की मनोवैज्ञानिक प्रक्रियायें विकसित होती है। जिनका प्रयोग उत्तरोत्तर चिंतन व समस्या समाधान में किया जाता है।

7. **समाज से सम्पर्क -** चिंतन की प्रक्रिया का प्रत्यक्ष सम्बन्ध बाह्य जगत से है। बाह्य जगत की वस्तुओं, व्यक्तियों एवं घटनाओं के सम्पर्क में से चिन्तन की प्रक्रिया का जन्म लेती है। सरल समाजों में व आज के आधुनिक जटिल समाजों में चिंतन की प्रक्रिया प्रभावित हुई है। चिंतन के विषय, समस्यायें, समस्याओं के स्वरूप को विभिन्न समूहों की वैचारिकता ने

प्रभावित किया है । जितना अधिक समाज के सम्पर्क में होता है, उतना ही चिंतन व्यापकता, विस्तार व गहनता प्राप्त करता है।

8. **प्रत्यक्षानुभव -** जिन व्यक्तियों को स्थूल पदार्थों का प्रत्यक्षानुभव होता है उनकी चिंतन क्षमता अधिक होती है। छात्र अपनी पाठ्य पुस्तक में मोर से सम्बन्धित पाठ पढ़ता है। अब जब तक वह मोर को देख नहीं लेता तब तक वह मोर के बारे में चिंतन कर नहीं सकता।

10.10 चिंतन एवं स्मरण (Thinking & Memory)

चिंतन एवं स्मरण दोनों ही मानसिक प्रक्रियाएँ हैं। परन्तु इस समानता के अतिरिक्त उनमें भेद भी हैं। दोनों में भेद निम्नलिखित है -

1. चिन्तन मुख्य से समस्या का समाधान होता है और स्मरण पूर्व घटनाओं के सम्बन्ध में होता है।
2. चिंतन का ध्येय समस्या समाधान से होता है जबकि स्मरण का ध्येयपूर्व अनुभवों का पुन: स्मरण होता है।
3. चिंतन में प्रतीकों का प्रयोग होता है जबकि स्मरण साहचर्य के आधार पर होता है।
4. चिंतन नवीन बातों की ओर ले जाता है जबकि स्मरण में पूर्व-अनुभवों की स्मृति उभर कर आती है।

10.11 चिंतन एवं कल्पना

चिंतन तथा कल्पना ज्ञानात्मक एवं रचनात्मक प्रक्रियाएँ हैं। इसमें भेद निम्नलिखित है -

1. चिंतन में मुख्य रूप में समस्या का समाधान होता है तथा कल्पना में परिस्थिति को नया रूप दिया जाता है।
2. चिंतन का स्वरूप तार्किक होता है, जबकि कल्पना इसके अभाव में होती है।
3. चिंतन का सम्बन्ध चेतना से है, जबकि कल्पना अचेतन रूप में होती है।
4. चिंतन का आरम्भ समस्या उत्पन्न होने पर होता है । कल्पना का आरम्भ अनायास हो सकता है।

10.12 चिंतन एवं भाषा (Thinking & Language)

मानव की चिंतन प्रक्रियाओं के लिए भाषा का होना आवश्यक है। पशुओं का चिंतन बिना भाषा के सम्पन्न हो सकता है जैसा गेस्टालटवादी मनोवैज्ञानिकों के प्रयोगों से सिद्ध है । कुछ मनोवैज्ञानिक विचार क्रिया को आन्तरिक सम्भाषण कहकर पुकारते हैं। चिन्तन प्रक्रिया में भाषा को महत्वपूर्ण मानते हुए इसे निम्न स्थान दिये जाते हैं -

1. भाषा को चिंतन का माध्यम कहा जाता है। व्यक्ति भाषा के ही द्वारा विचार प्रस्तुत करता है तथा दूसरों के विचार ग्रहण करके उन पर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करता है । विभिन्न मनोवैज्ञानिक इस बात पर बल देते हैं कि भाषा में चिन्हों के प्रयोग क कारण इसे विचारों का माध्यम कहा जाता है। भाषा के अन्तर्गत शब्द विन्यास विचारों के संकेत के रूप में कार्य

करते हैं। कॉलिन्स और ड्रेवर के अनुसार - ''चिन्तनकला भाषा की सहायता से अपने विचारों को नियन्त्रित करता है और चिंतन क्रिया का ठीकठाक संचालन भी करता है।''

- भाषा के द्वारा विचारों की स्मृति बनती है। विचार मानसिक संस्कारों के रूप में हमारे मस्तिष्क के स्थान ले लेते हैं। इस प्रकार भाषा के आधार पर आवश्यकता के समय उनका स्मरण करना अति सरल होता है।
- भाषा को चिंतन प्रक्रिया की अभिव्यक्ति भी कहा जाता है। मानव के समस्त विचार भाषा के माध्यम से व्यक्त होते हैं। भाषा के माध्यम से लिखे विचार कभी भी पढ़े जा सकते हैं तथा स्मृति के अन्तर्गत लाये जा सकते हैं। मानव का मानव के परस्पर मिलन भाषा के द्वारा परस्पर विचारों की अभिव्यक्ति के रूप में होता है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि भाषा विचारों की अभिव्यक्ति है।
- भाषा के द्वारा चिन्तन की बचत होती है। जब मानव भाषा का प्रयोग विचारों के लिखने पढ़ने के रूप में करता है तो उसे विचारों की अभिव्यक्ति में कम परिश्रम की आवश्यकता पड़ती है। भाषा के माध्यम से ही विचार रूपी सागर के गागर के रूप में व्यक्त किया जा सकता है। यह भाषा के द्वारा चिंतन प्रक्रिया में बचत का उदाहरण है।
- भाषा की सहायता से क्रियाशील होने की प्रेरणा प्राप्त होती है।
- भाषा की सहायता से हम तर्क कर सकते हैं, वाद-विवाद कर सकते हैं तथा अपने चिंतन की उत्तम व्याख्या कर सकते हैं।
- चिंतन एवं भाषा परस्पर विकसित होती है। भाषा के साथ विचारों को तथा विचारों के साथ भाषा को विकसित होने का अवसर प्राप्त होता है।
- भाषा के द्वारा दूसरे व्यक्तियों को चिंतन करने का प्रोत्साहन मिलता है। लेख, कवितायें तथा कहानियाँ व्यक्ति को चिन्तनशील बना देते हैं।

कुछ मनोवैज्ञानिकों का कथन है कि भाषा चिंतन के लिए सहायक हो सकती है आवश्यक नहीं। यदि भाषा चिंतन के लिए आवश्यक होती तो छोटे बच्चे और पशु जिन्हें भाषा नहीं आती समस्याओं का समाधान नहीं कर पाते। समस्या समाधान मूलत: चिंतन का एक रूप है।

चिंतन में भाषा बहुत सहायक होती है। भाषा के माध्यम से मनुष्य अपने चिंतन को नियोजित करके उसे ठीक से निर्वाह करने में सफल होता है। भाषा प्रत्ययों के निर्माण में सहायक होती है। एक शब्द अर्थ के लिए केन्द्रिय भाव बनता है। चाहे वह शब्द प्रतिमा के रूप में विकसित हो या प्रस्तावित कार्य या विचार साहचर्य के रूप में हो। भाषा के द्वारा चिन्तन का विस्तार किया जाता है।

10.13 सारांश (Summary)

चिंतन प्रतीकात्मक प्रकृति वाली एक वैचारिक प्रक्रिया है जो व्यक्ति के सम्मुख उपस्थित किसी समस्या अथवा काम से प्रारम्भ होती है तथा अन्त में निष्कर्ष अथवा समाधान तक पहुँचती है। चिंतन लक्ष्य निर्देशित है। वास्तविक चिंतन में हम दिव्य स्वप्न एवं मनतरंग की भांति अपने विचारों को इधर उधर नहीं भटकने देते। चिंतन का संबंधभूत-वर्तमान एवं भविष्य तीनों से होता है।

मनोवैज्ञानिकों ने चिंतन को कई भागों में बांटा है। जिम्बार्डो तथा रूक ने चिंतन को दो भागों में बांटा है - स्वली चिंतन एवं यथार्थवादी चिंतन, यथार्थवादी चिंतन को अभिसारी चिंतन, अपसारी चिंतन, सृजनात्मक चिंतन एवं आलोचनात्मक चिंतन में बांटा गया है। चिंतन पर अनेक प्रतीकारकों का प्रभाव पड़ता है - सशक्त प्रेरणा, ध्यान तथा रूचि, बुद्धि, संवेगों की अनुपस्थिति, भाषा का ज्ञान, प्रत्यय, प्रत्यक्षनुभव एवं समाज से सम्पर्क। मनोवैज्ञानिकों के चिंतन एवं स्मरण, चिंतन एवं कल्पना का भेद किया है। विभिन्न प्रयोगों के माध्यम से मनोवैज्ञानिकों ने चिंतन में भाषा के महत्व को भी स्वीकार किया है। भाषा को चिंतन प्रक्रिया की अभिव्यक्ति भी कहा जाता है।

10.14 शब्दावली

- चिंतन - सोचने की प्रक्रिया
- सम्प्रत्यय - अवधारण
- प्रत्यात्मक - अवधाराणात्मक
- यथार्थवादी - वास्तविक
- पेशीय क्रियायें - मांसपेशियों से सम्बद्ध क्रियाकलाप

10.15 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

नीचे कुछ कथन दिये गये हैं, जो कथन सत्य हैं उनके आगे सही का निशान एवं जो गलत है उनके आगे क्रॉस का निशान लगायें -

1. चिंतन ज्ञानात्मक मानसिक क्रिया है। ( )
2. चिंतन की क्रिया का आरम्भ समस्या की उपस्थित से नहीं होता। ( )
3. चिंतन की एक निश्चित दिशा होती है। ( )
4. चिंतन प्रक्रिया का संबंध केवल भविष्य से होता है। ( )
5. प्रतिबिम्ब, प्रत्यय, भाषा एवं मस्तिष्क चिंतन के साधन है। ( )
6. स्वली चिंतन का संबंध काल्पनिक विचारों एवं इच्छाओं की अभिव्यक्ति से है। ( )
7. अभिसारी चिंतन एवं अपसारी चिंतन यथार्थवादी चिंतन के भाग हैं। ( )
8. मानसिक प्रक्रियाओं के लिए बुद्धि एक आवश्यक तत्व नहीं है। ( )
9. चिंतन का स्वरूप तार्किक होता है। ( )
10. चिंतन में प्रतीकों का प्रयोग नहीं होता है। ( )

उत्तर- (1) सही (2) गलत (3) सही (4) गलत (5) सही
(6) सही (7) सही (8) गलत (9) सही (10) गलत

10.16 निबन्धात्मक प्रश्न

1. चिंतन को परिभाषित करे एवं उसके स्वरूप पर प्रकाश डालें ?
2. चिंतन के विभिन्न प्रकारों का वर्णन कीजिए।
3. चिंतन की विशेषताओं पर प्रकाश डालें।
4. चिंतन प्रक्रिया में भाषा के महत्व को स्पष्ट कीजिए।

10.17 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. सिंह, अरूण कुमार (2006) - संज्ञानात्मक मनोविज्ञान, मोतीलाल बनारसीदास, बंगाली रोड़, जवाहर नगर, दिल्ली
2. शर्मा, रामनाथ एवं शर्मा रचना (2010) - उच्चतर शिक्षा मनोविज्ञान, एटलांटिक पब्लिशर, नई दिल्ली
3. श्रीवास्तव, रामजी (2003) - संज्ञानात्मक मनोविज्ञान
4. शर्मा, एस.एन. एवं शर्मा, अंजना (2007) - आधुनिक सामान्य मनोविज्ञान के आधार, एच.पी. भार्गव बुक हाऊस, आगरा

इकाई -11

सृजनात्मक चिंतन, समानांतर चिंतन

Creative Thinking, Parallel Thinking

इकाई की रूपरेखा

11.1 प्रस्तावना

11.2 उद्देश्य

11.3 सृजनात्मक चिंतन का अर्थ एवं स्वरूप

11.4 सृजनात्मक चिंतन की विशेषताएँ एवं तत्व

11.5 सृजनात्मक चिंतन की अवस्थाएँ

11.6 सृजनात्मक के लिए शिक्षण विधियाँ

11.7 सृजनात्मक चिंतन के निर्धारक

11.8 पाश्विक चिंतन

11.9 समानांतर चिंतन

11.10 सारांश

11.11 शब्दावली

11.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

11.13 निबंधात्मक प्रश्न

11.14 संदर्भ ग्रन्थ सूची

11.1 प्रस्तावना

सृजनात्मकता मानव के क्रियाकलापों एवं निष्पत्ति के लिए आवश्यक है । सृजनात्मकता का अर्थ वैज्ञानिक या कलात्मक सर्जन से ही नहीं है, सृजनात्मकता किसी भी व्यक्ति की क्रिया में पाई जाती है। समाज के कार्य करने वाले प्रत्येक व्यक्ति के कार्य या व्यवसाय में सृजनात्मकता के दर्शन होते हैं । सृजनात्मकता से अभिप्राय मौलिकता से लिया जाता है । सृजनात्मकता के कारक है - साहचर्य, आदर्शात्मक मौलिकता अनुकूलता, तार्किक विकास की योग्यता। सृजनात्मक चिंतन शब्द का प्रयोग उस क्रिया के लिए किया जाता है, जिसमें श्रृंखलाबद्ध विचार किसी लक्ष्य अथवा उद्देश्य की ओर प्रवाहित होते हैं । रचनात्मक चिंतन में विचारों का आगमन अथवा समस्या समाधान प्राय: बड़े सहज ढंग से अचानक होता है । सृजनात्मक चिंतन चिंतन का एक प्रमुख प्रकार है । चिंतन का मानव के व्यवहार में विशेष महत्व है । पाश्विक चिंतन एवं समानान्तर चिंतन के बारे में भी इस इकाई में जानेंगे। चिंतन की सहायता से मुनष्य अनेक प्रकार की समस्याओं का समाधान करता है । चिंतन का प्रयोग समस्या समाधान में ही नहीं अपितु और प्रकार के अधिगम में किया जाता है ।

11.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई का अध्ययन करने के बाद आप -

- सृजनात्मक चिंतन के अर्थ को समझ सकेंगे।
- सृजनात्मक चिंतन की परिभाषाओं का विश्लेषण कर सकेंगे।
- सृजनात्मक चिंतन की अवस्थाएँ समझ सकेंगे।
- सृजनात्मक चिंतन के लिए शिक्षण विधियाँ समझ सकेंगे।
- सृजनात्मक चिंतन के निर्धारकों की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- पाश्विक चिंतन एवं समानान्तर चिंतन को समझ सकेंगे।
- सृजनात्मक चिंतन किस प्रकार विकसित कर सकते हैं।
- व्यावहारिक जीवन में चिंतन के महत्व को स्पष्ट कर सकेंगे।

11.3 सृजनात्मक चिंतन अर्थ एवं स्वरूप (Creative Thinking: Forms & Meaning)

चिन्तन का एक प्रमुख प्रकार सृजनात्मक चिंतन है, सृजनात्मक चिंतन को कई अर्थों में प्रयोग किया गया है। हरलॉक ने सृजनात्मक चिंतन के क्षेत्र में किये गये शोधों एवं अध्ययनों की समीक्षा करके बतलाया है कि सृजनात्मक चिंतन को आठ अर्थों में प्रयोग किया है। सृजनात्मक चिंतन का सबसे लोकप्रिय अर्थ गिलफोर्ड द्वारा बतलाया गया है। इन्होंने चिंतन को दो भागों में बांटा है - अभिसारी चिंतन एवं अपसरण चिंतन -

अभिसारी चिंतन में व्यक्ति दिये गये तथ्यों के आधार पर किसी सही निष्कर्ष पर पहुँचने की कोशिश करता है। इस तरह के चिंतन में व्यक्ति एक रूढ़िवादी तरीका अपना कर अर्थात समस्या सम्बन्धी दी गई सूचनाओं के आधार पर उसका समाधान करता है। अपसरण चिंतन में व्यक्ति भिन्न-भिन्न दिशाओं में चिंतन करता है तो स्वभावत: वह समस्या के कई संभावित उत्तरों को सोचता है और अपनी ओर से कुछ नये एवं मूल चीजों को जोड़ने की कोशिश करता है। इस तरह के चिंतन में एक विशेषता यह है कि (जो इसे अभिसारी चिंतन से अलग करता है) इसमें व्यक्ति आसानी से एक पूर्व सुनिश्चित कदमों के अनुसार चिंतन नहीं कर पाता है। क्योंकि उसे कुछ नया एवं मूल चिंतन करना होता है। परन्तु अभिसारी चिंतन में व्यक्ति बहुत आसानी से एक पूर्व निश्चित क्रम में चिंतन कर लेता है। मनोवैज्ञानिकों ने अपसरण चिंतन को सृजनात्मक चिंतन के तूल्य माना है। ऐसे तो सृजनात्मक चिंतन को कई मनोवैज्ञानिकों ने परिभाषित किया परन्तु सृजनात्मक चिंतन की सबसे उचित एवं विस्तृत परिभाषा ड्रेवडाल ने दी जो इस प्रकार हैं - ''सृजनात्मक चिंतन या सृजनात्मकता व्यक्ति की उस क्षमता को कहा जाता है जिसमें वह कुछ ऐसी चीजों रचनाओं या विचारों को पैदा करता है जो नया होता है एवं जो नई चीजों, रचनाओं या विचारों को पैदा करता है जो नया होता है एवं जो पहले से उसे ज्ञात नहीं होता है। यह एक काल्पनिक क्रिया या चिंतन संश्लेषण हो सकता है। इसमें गत् अनुभूतियों से उत्पन्न सूचनाओं का एक निश्चित रूप से उद्देश्यपूर्ण या लक्ष्य निर्देशित होता है न कि

एक निराधार स्वप्न चित्र होता है। यह वैज्ञानिक, कलात्मक या साहित्यिक रचना के रूप में हो सकता है।''

रॉस के अनुसार - सृजनात्मक चिंतन ज्ञानात्मक पक्ष की मानसिक क्रिया है। वेलेन्टाइन के शब्दों में - सृजनात्मक चिंतन शब्द का प्रयोग उस क्रिया के लिए किया जाता है, जिसमें श्रृंखलाबद्ध विचार किसी लक्ष्य अथवा उद्देश्य की ओर प्रवाहित होते हैं।''

बेरोन (2001) ने सृजनात्मक चिंतन की सटीक परिभाषा दी है जो इस प्रकार हैं - ''मनोवैज्ञानिकों द्वारा सृजनात्मकता की ऐसी कार्य करने की क्षमता के रूप में परिभाषित किया जाता है जो नवीन (मौलिक) तथा उचित (लाभदायक) दोनों ही होते हैं।

मैडनिक ने कहा - ''सृजनात्मक चिंतन में साहचर्य के तत्वों का मिश्रण रहता है जो विशिष्ट आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु संयोगशील होते हैं या किसी अन्य रूप में लाभदायक होते हैं। नवीन संयोग के विचार जितने कम होंगे, सृजनात्मकता की सम्भावना उतनी ही अधिक होगी।''

सृजनात्मक चिंतन की इन परिभाषाओं का विश्लेषण करने पर हमें कुछ ऐसी विशेषताओं का पता चलता है जिससे सृजनात्मक चिंतन के स्वरूप पर स्पष्ट रूप में प्रकाश पड़ता है।

सृजनात्मक चिंतन एक ऐसी प्रक्रिया है जो लक्ष्य निर्देशित होता है। इसमें व्यक्ति को लक्ष्य निर्देशित रूप से पता होता है और उसका प्रत्येक व्यवहार इसी लक्ष्य से संबंधित होता है, व्यक्ति इस ढंग का व्यवहार अपने व्यक्तिगत या सामूहिक लाभ के लिए भी करता है।

सृजनात्मक चिंतन में व्यक्ति कुछ नया एवं भिन्न चीजों की रचना करता है। इसलिए उस व्यक्ति के लिए भी अनूठा होता है। इस तरह की अनूठी रचना शाब्दिक, अशाब्दिक, मूर्त या अमूर्त कुछ भी हो सकती है तथा वह व्यक्ति के लिए लाभदायक भी होता है।

सृजनात्मक चिंतन में व्यक्ति समस्या से भिन्न-भिन्न पहलुओं पर भिन्न-भिन्न दिशाओं में चिंतन करता है। इस तरह से भिन्न-भिन्न दिशाओं में चिंतन करने को क्षमता को अपसरण चिंतन भी कहा जाता है, यही कारण है कि सृजनात्मक चिंतन में अपसरण चिंतन भी सम्मिलित हुआ माना जाता है।

सृजनात्मक चिंतन, चिंतन का एक विशेष तरीका है, यह बुद्धि से एक अलग सम्प्रत्यय है क्योंकि बुद्धि से सृजनात्मक चिंतन के अलावा भी अन्य मानसिक क्षमताएँ सम्मिलित होती है।

सृजनात्मक चिंतन करने की क्षमता व्यक्ति द्वारा पहले से प्राप्त सार्थक ज्ञान पर निर्भर करती है। यह सार्थक जितना अधिक होगा, सृजनात्मक चिंतन की क्षमता उतनी ही अधिक होगी।

सृजनात्मक चिंतन में स्वली चिंतन नियंत्रित ढंग से सम्मिलित होती है अर्थात सृजनात्मक रूप से सोचते समय व्यक्ति कुछ अर्थपूर्ण कल्पनाएँ करता है। इसी अर्थपूर्ण कल्पना का परिणाम होता है कि व्यक्ति कुछ वैज्ञानिक, कलात्मक तथा साहित्यिक रचना कर पाता है।

सृजनात्मक चिंतन में एक सीमा तक अभिसारी चिंतन भी सम्मिलित होता है। अभिसारी चिंतन करके व्यक्ति कुछ इस तरह की सूचनाएँ एवं सामग्रियों को इकट्ठा करता है जिनसे उसे सृजनात्मक समाधान में मदद मिलती है।

इन विवरणों से स्पष्ट हो जाता है कि सृजनात्मक चिंतन एक जटिल प्रक्रिया है। इस तरह के चिंतन करने की क्षमता सभी व्यक्तियों में अधिक हो, यह आवश्यक नहीं है। यह प्रक्रिया समस्या समाधान

की प्रक्रिया से भिन्न है। क्योंकि समस्या समाधान में कोई नवीन खोज करना आवश्यक नहीं होता है, जबकि सृजनात्मक चिंतन में मौलिकता का होना आवश्यक है अर्थात जो उपलब्धि या समाधान प्रस्तुत किया जाता है वह अपने आप आप में नया होता है। सृजनशीलता का आशय ऐसे कार्य से है जो नवीन तथा उचित भी हो।

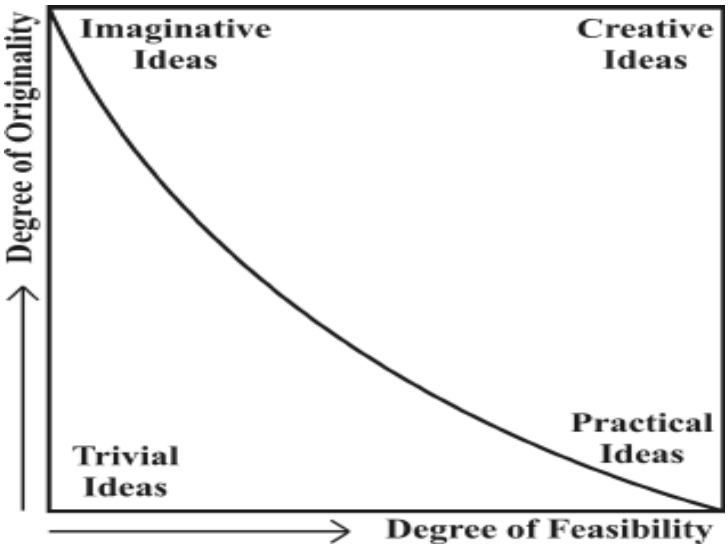

चित्र 11.1 सृजनात्मक चिंतन में मौलिकता (Originality) एवं व्यवहार्यता (Fesaibility) संयुक्तरूप में मिलती है।

(MC Mullan and Stocking 1978)

11.4 सृजनात्मक चिंतन की विशेषताएँ (Characterstics of Creative Thinking)

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट होता है कि सृजनशीलता में मौलिकता, सभ्यता, विलक्षणता तथा नवीनता जैसी विशेषताएँ सन्निहित होती है।

यह पूर्वानुमानों पर आधारित समाधान या पुनरोत्पादन नहीं है, न ही कल्पना मात्र है क्योंकि इसमें मौलिकता होती है और यह लक्ष्योन्मुख व्यवहार है। यह समस्या समाधान से भी भिन्न है क्योंकि समस्या समाधान में मौलिकता का होना आवश्यक नहीं है।

चित्र 11.1 के अवलोकन से स्पष्ट होता है कि अपसारी चिंतन सृजनशीलता का एक महत्वपूर्ण पक्ष है, परन्तु सृजनशीलता की सभी विशेषताएँ अपसारी चिंतन में होना आवश्यक नहीं है। सृजनात्मक चिंतन के लिए प्रस्तुत समाधान नवीन, मौलिक या असाधारण से भी कुछ भिन्न होना चाहिए। यदि एक खोज है तो इसे व्यावहारिक भी होना चाहिए और यदि यह एक विचार है तो इसे तर्कसंगत भी होना चाहिए।

- सृजनात्मक चिंतन लक्ष्य निर्देशित होती है इसमें व्यक्ति को अपने लक्ष्य का स्पष्ट ज्ञान होता है तथा उसका प्रत्येक व्यवहार इसी लक्ष्य प्राप्ति हेतु होता है।
- सृजनात्मक चिंतन में व्यक्ति समस्या समाधान के अनेक उपायों पर विचार करता है और अन्त में किसी एक उपाय का प्रयोग करके समस्या का समुचित समाधान करता है।

- सृजनात्मक चिंतन की दिशा सूक्ष्म की ओर होती है।
- सृजनात्मक चिंतन मानव का एक विशिष्ट गुण है, जो उसे प्राणी जगत में सर्वोच्च स्थान प्रदान करता है।

सृजनात्मक चिंतन के तत्व :- इसके स्वरूप को स्पष्ट करने के लिए इनमें कुछ तत्वों का उल्लेख किया जा सकता है (Hurlock 1984)

- सृजनशीलता एक प्रक्रम है न कि उत्पाद है।
- इसमें नभ्यता (Flexibility) एवं जिज्ञासा पायी जाती है।
- यह प्रक्रम व्यक्ति के लाभ या समूह के लाभ के लिए लक्ष्य अभिविन्यासी होता है।
- इसमें कोई नवीन या भिन्न परिणाम प्राप्त होता है। अत: यह विशिष्ट होता है, चाहे इसका स्वरूप वाचिक हो या अवाचिक मूर्त हो या अमूर्त।
- सृजनशीलता अपसारी चिंतन पर आधारित होती है जबकि अनुरूपता और दैनिक जीवन में समस्या समाधान में अभिसारी चिंतन की आवश्यकता पड़ती है । परन्तु ध्यान रहे कि सृजनशीलता कहीं अधिक मौलिक होती है।
- यह चिंतन का एक रूप है न कि बुद्धि का पर्यायवाची है, जिसमें मानसिक योग्यताएं सन्निहित होती है।
- इसमें अन्त: ज्ञान (Intuition) का भी योगदान होता है।
- सृजन की योग्यता स्वीकृत ज्ञान पर आश्रित होती है।
- सृजनशीलता एक प्रकार की नियन्त्रित कल्पना है जिसमें किसी क्षेत्र में किसी प्रकार की उपलब्धि होती है।
- इससे असाधारण समाधान प्राप्त होता है।

11.5 सृजनात्मक चिंतन की अवस्थाएँ

सृजनात्मक चिंतन में सन्निहित अवस्थाएँ समस्या समाधान के व्यवहार में सन्निहित अवस्थाओं से मिलती जुलती है, परन्तु सृजनात्मक चिंतन में समाधान का नवीन तथा मौलिक होना आवश्यक है। सृजनात्मक चिंतन का स्वरूप काफी जटिल होता है । इसमें व्यक्ति किसी समस्या के भिन्न भिन्न दिशाओं में चिंतन कर कुछ नये विचारों एवं तथ्यों का सृजन करता है। मनोवैज्ञानिकों ने सृजनात्मक चिंतन तथा समस्या समाधान व्यवहार के विश्लेषण करने पर यह बतलाया है कि इसमें कुछ अवस्थाएँ सम्मिलित होती है। वालास (1926) पैट्रिक (1925, 1937), विनाके (1952) एवं कोफर के अनुसार इसमें चार अवस्थाएँ पाई जाती है।

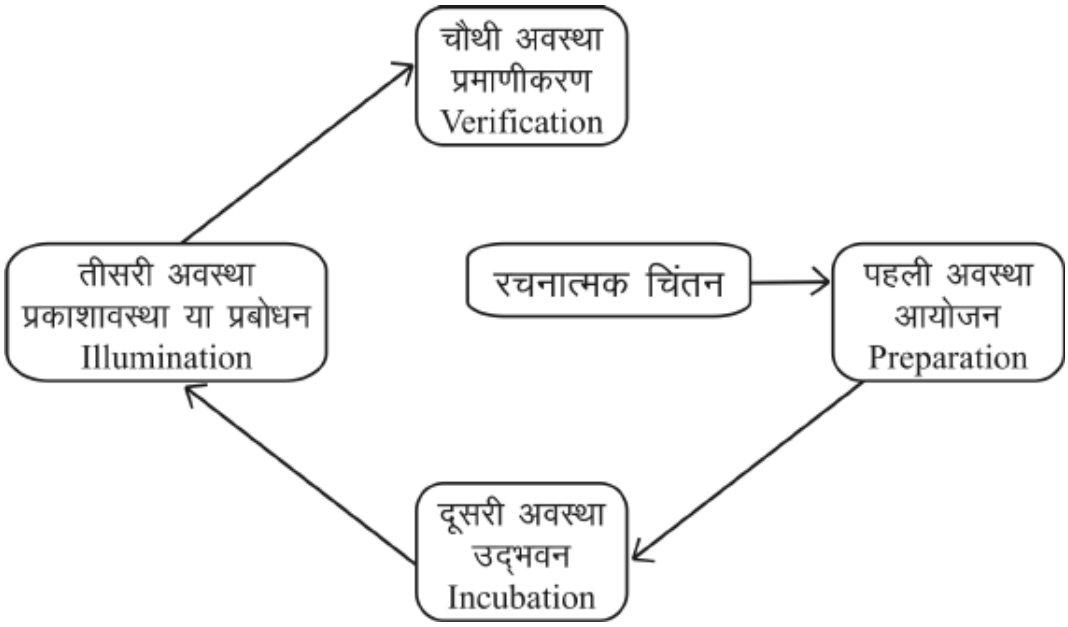

चित्र 11.2 रचनात्मक चिंतन की अवस्थाएँ

1. आयोजन :-

सृजनात्मक चिंतन की यह प्रारम्भिक अवस्था है । इस अवस्था में समस्या से संबंधित आवश्यक तथ्यों को एकत्रित करने का आयोजन किया जाता है । समस्या को ठीक ढंग से परिभाषित करके उसके पक्ष विपक्ष में प्रमाण एकत्रित किया जाता है । ऐसा करने में व्यक्ति प्रयत्न तथा त्रुटि का भी सहारा लेता है । उदाहरणार्थ - राईट भाईयों (Wright Brothers) के द्वारा जब हवा में उड़ने की बात सोची गयी तो उन्होंने पहले भौतिक विज्ञानों के ज्ञान के आधार पर इस समस्या से संबंधिततथ्यों एवं प्रमाणों को एकत्रित करने का आयोजन किया होगा। इस प्रकार से प्रत्येक सृजनात्मक चिंतन विभिन्न प्रकार के तथ्यों एवं प्रमाणों को एकत्रित करने का आयोजन करता है । समस्या के स्वरूप तथा व्यक्ति के ज्ञान के अनुसार यह अवस्था लम्बे या कम समय के लिए होता है । यदि समस्या जटिल है तथा व्यक्ति का ज्ञान सीमित है तो वह अवस्था लम्बे समय तक जारी रह सकता है । परन्तु यदि समस्या में जटिलता कम है तथा व्यक्ति का ज्ञान का भण्डार अधिक परिपक्व है तो यह अवस्था कम समय तक ही जारी रहता है । मनोवैज्ञानिकों के अनुसार इस अवस्था में व्यक्ति की आयु तथा बुद्धि का भी प्रभाव पड़ता है ।

2. उद्भवन:-

किसी भी सृजनात्मक चिंतन की या समस्या समाधान की दूसरी अवस्था उद्भवन की होती है । इस अवस्था में व्यक्ति में निष्क्रियता बढ़ जाती है और थोड़े समय के लिए समस्या के बारे में यह चिंतन करना छोड़ देता है । जब कई ढंग से कोशिश करने के बाद भी किसी समस्या का समाधान नहीं हो पाता, तो इस अवस्था की उत्पत्ति होती है । इस अवस्था में व्यक्ति समस्या के समाधान के बारे में चिंतन करना छोड़कर विश्राम करने लगता है । पेट्रीक ने कवियों तथा कलाकारों पर अध्ययन करके इस बात की पुष्टि की है कि सृजनात्मक चिंतन में उद्भवन की अवस्था होती है ।

मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि इस अवस्था में यद्यपि व्यक्ति अपना ध्यान समस्या की ओर से पूर्णत: हटा देता है फिर भी अचेतन रूप से उसके बारे में सोचते रहता है। इस तरह से इस अवस्था में चेतन रूप में व्यक्ति समस्या के बारे में चिंतन करना छोड़ देता है परन्तु अचेतन रूप से उसके समाधान के बारे में चिंतन जारी रखता है।

3. **प्रबोधन:-** इस अवस्था में उद्भवन में उत्पन्न विचारों को किसी लक्ष्य से सम्बन्धित कर लिया जाता है। सिलभरमैन के अनुसार ''समाधान के अकस्मात् को प्रबोधन कहा जाता है।'' यह अवस्था प्रत्येक सृजनात्मक चिंतन में पायी जाती है। प्रबोधन की यह घटना सूझ के समान है।

4. **प्रमाणीकरण :-** यह अन्तिम अवस्था है। इसमें उत्पन्न विचारों की जाँच, आलोचना, परिमार्जन, सरलीकरण या विस्तार किया जाता है। कुछ मनोवैज्ञानिकों ने इन अवस्थाओं की आलोचना की है और कहा है कि सभी सृजनात्मक चिंतन में ये सभी अवस्थाएँ नहीं होती है जैसे सर एलेक्जेण्डर फ्लेमिंग जिन्होंने पेन्सिलिन की खोज की, के इस खोज के सृजनात्मक चिंतन में न तो उद्भवन और न ही प्रबोधन की कोई अवस्था पाई गई। यद्यपि सृजनात्मक चिंतन की इन अवस्थाओं की आलोचना की गई है, फिर भी हमारे दिन प्रतिदिन का अनुभव तथा अधिकतर वैज्ञानिकों, कलाकारों एवं कवियों के सृजनात्मक चिंतन का विश्लेषण इस बात का प्रमाण है कि इस प्रकार का चिंतन उपर्युक्त अवस्थाओं के अनुसार ही होता है।

11.6 सृजनात्मक चिंतन के लिए शिक्षण विधियाँ

सृजनात्मक चिंतन के लिए निम्न विधियों को प्रयुक्त किया जा सकता है -

- **व्याख्यान -** किसी विषय पर सीधा भाषण न देकर या किसी प्रकार की सहायक सामग्री का उपयोग करके व समूह का सहभागित्व प्राप्त कर निष्कर्ष पर पहुँचना। अध्यापक किसी भी ज्वलंत समस्या या विषय पर व्याख्यान देकर विद्यार्थियों को सोचने के लिए तैयार कर सकता है। आपदा प्रबंधन, जीवन कौशल, विश्व शान्ति, पर्यावरण सन्तुलन, इन्टरनेट हैकिंग जैसे कुछ विषयों को लेकर चिंतन जागृत किया जा सकता है।

- **वाद-विवाद -** वाद-विवाद नियन्त्रित या स्वतंत्र हो सकता है। ''अध्यापक अपने विचारों के न देकर केवल मात्र निर्णय देकर वार्ता को बीच-बीच में सही दिशा देता है। भविष्य के पूर्वानुमान, कल्पना सोच को विकसित करने के लिए यह प्रयोग किया जा सकता है।

- **प्रोजेक्ट -** प्रोजेक्ट एक नियोजित उद्देश्यपूर्ण क्रिया है। अध्यापक वैयक्तिक व सामूहिक प्रोजेक्ट का चयन कर सकता है जो भविष्य से सम्बन्धित है।

- **निरीक्षण अध्ययन विधि -** विद्यार्थियों में अच्छी आदतों, ऊँचे मूल्यों, वैयक्तिक गुणों व बौद्धिक क्षमताओं का विकास करना।

- **अभिक्रमित अनुदेशन -** विद्यार्थियों को अपनी रूचि व गति सीखने का अवसर देना ही अभिक्रमित अनुदेशन है। अध्यापक का कार्य अभिक्रमित अनुदेशन के लिए पाठों का प्रोग्राम रूप में विकसित करना है।
- **ब्रेन स्टोर्मिंग -** यह एक प्रारम्भिक अवस्था है जिसमें विद्यार्थियों को भविष्य की विभिन्न कल्पनायें करने को कहा जाता है। उन कल्पनाओं को वास्तविक रूप कैसे दिया जा सकता है, उसके लिए समूह चर्चा की जाती है। किसी भी विचार या कल्पना को अस्वीकृत नहीं किया जाता।
- **सेमीनार -** सेमिनार के अन्तर्गत अध्यापक कुछ विषयों पर पत्र तैयार करवा कर समूह के सम्मुख वाचन करवाता है। सेमिनार अध्यापक के नियन्त्रित व स्वतंत्र दोनों प्रकार का हो सकता है, यह विधि विद्यार्थियों में सम्प्रेषण की कला रूचि, दृष्टिकोण, मूल्यों व वैयक्तिक गुणों को विकसित करने क लिए काम में लायी जाती है।
- **डेल्फी विधि -** विभिन्न विषयों के विशेषज्ञों के बिना बताये किसी एक विषय पर विचार मांगे जाते हैं फिर उन्हीं विचारों को बिना नाम बताये दूसरों के पास भेजा जाता है और अन्त में एक मत निर्धारित किया जाता है।
- **दृश्य लेखन -** कुछ विषयों पर अपनी कल्पना शक्ति का उपयोग करते हुए विचार लिखना दृश्य लेखन कहलाता है।
- **फाक्स ट्रेप प्रोब्लम -** इस विधि में अध्यापक विभिन्न प्रकार की समस्याओं का चयन करता है। समस्या का समाधान में आने वाली बाधाओं को पहिचानना व संकट प्रबन्ध करना होता है।

आल अनी (Al Ani) ने बीस व्यूह रचनाओं का सुझाव दिया है -

- अपसारी चिंतन
- खोज उपागम
- विचारोत्तेजक प्रश्न
- चित्रात्मक पहलेलियाँ
- अन्त-विरोध
- विज्ञान खेल
- अनुमान लगाना
- विचारात्मक सम्भावनायें

11.7 सृजनात्मक चिंतन के निर्धारक

सृजनात्मक चिंतन पर निम्नांकित कारकों का प्रभाव पड़ता है -

- **व्यक्तित्व -** कुछ अध्ययनों से निष्कर्ष प्राप्त हुआ है कि व्यक्तित्व के कुछ गुण सृजनशीलता को प्रभावित करते हैं। इस योग्यता के व्यक्तियों में कुछ प्रमुख लक्षण पाये जाते हैं, जैसे - आत्मविश्वास, जिज्ञासा, साहस, व्यावहारिक, नभ्यता, विचारों में समन्वय की क्षमता एवं आत्मकेन्द्रता इत्यादि (Torrance 1969) राइना (1968) का अध्ययन सृजनशीलता के लिए व्यक्ति की विशेषताओं को महत्व देता है।

- **बुद्धि -** उच्च मानसिक योग्यता सृजनात्मक क्षमता में वृद्धि करती है। माक्रस (1976) के अनुसार अधिकतर सृजनात्मक वैज्ञानिकों की सामान्य मानसिक योग्यता भी उच्च होती है। परन्तु इसका आशय यह नहीं लगाया जाना चाहिए कि उच्च बुद्धि के सभी व्यक्ति सृजनात्मक ही होंगे, जैसे - टोरेन्स (1960) के अध्ययन में बुद्धि एवं सृजनात्मकता में निम्न सह सम्बन्ध पाया गया बैरन (1965) ने इनमें निम्न धनात्मक सहसम्बन्ध प्राप्त किया है। संक्षेप मं निष्कर्ष यही है कि सृजनात्मक चिंतन में बुद्धि सहायक है।

- **अभिप्रेरणा -** सृजनात्मक चिंतन पर जिज्ञासा अन्वेषण की प्रवृत्ति उपलब्धि की आवश्यकता एवं आकांक्षा स्तर इत्यादि पर प्रभाव पड़ता है। टारेन्स (1960) ने निष्कर्ष दिया है कि जिन छात्रों में विद्यालयी उपलब्धि की प्रेरणा अधिक होती है, उनमें सृजनशीलता भी अधिक पायी जाती है। मुखर्जी (1968) ने उपलब्धि एवं सृजनशीलता में सम्बन्ध का उल्लेख किया है।

- **जन्मक्रम -** कुछ लोगों का विचार है कि बच्चों के जन्मक्रम का भी सृजनशील योग्यता पर प्रभाव पड़ता है। (जैसे भ्ंततपेवद 1969ए कृंजजं 1968) अपने अध्ययनों में यह पाया कि मध्य या अन्त में पैदा हुए बच्चों में सृजनशीलता अपेक्षाकृत अधिक पायी जाती है।

- **पारिवारिक संरचना एवं पर्यावरण -** इन कारकों का भी सृजनात्मक योग्यता से सम्बन्ध है। जिन परिवारों के बच्चों को दमित करके रखा जाता है। उनमें सृजनशीलता का विकास कम होता है। इसी प्रकार खण्डित परिवारों तथा अभावग्रस्त परिवारों के भी बच्चों में यह योग्यता कम पायी जाती है। लेम्ब्राइट एवं योमैमटों (1965) ने यह निष्कर्ष दिया है कि पर्यावरणीय परिवेश भी सृजनशीलता को प्रभावित करता है जैसे ग्रामीण बच्चे, शहरी बच्चों की तुलना में सृजनशीलता का कम प्रदर्शन कर पाते हैं।

आधुनिक मनोवैज्ञानिकों का मत है कि सृजनशीलता के विकास में किसी भी कारक को अधिक महत्व देना उचित नहीं है। इसके बारे में समन्वित दृष्टिकोण ही प्रयुक्त करना उचित होगा। इसके अनुसार इस पर अनेक कारकों का प्रभाव पड़ता है इसके अन्तर्गत बौद्धिक योग्यता, ज्ञान, चिंतन की निश्चित शैली, निश्चित व्यक्तित्वशील गुण, अन्त: स्वप्रेरणात्मक कार्य एवं सृजनशीलता को प्रोत्साहित करने वाला वातावरण आदि सम्मिलित है। (Amabile 1983 & Lubart 1994) इन्हें चित्र 11.3 में दर्शाया गया है।

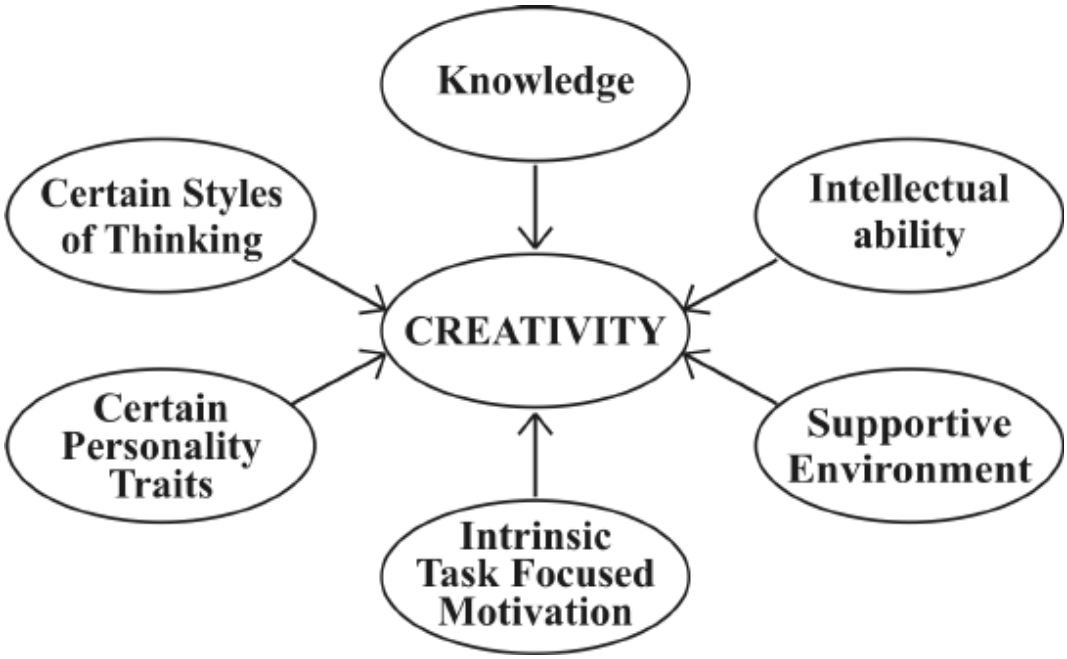

चित्र 11.3 सृजनशीलता का समन्वयात्मक दृष्टिकोण

11.8 पाश्विक चिंतन

पाश्विक चिंतन पद का प्रयोग सर्वप्रथम माल्टा के मनोवैज्ञानिक चिकित्सक तथा लेखक एडवर्ड बोनो (Edward De Bono) ने अपनी पुस्तक 'New Think : The use of Lateral Thinking में किया है। ऑक्सफोर्ड इंग्लिश शब्दकोश में पाश्विक चिंतन को निम्नांकित शब्दों में परिभाषित किया गया है । पाश्विक चिंतन - चिंतन की वह विधि है जिसके द्वारा उलझी हुई समस्याओं का हल परम्परावादी विधि या तत्वों द्वारा इस प्रकार प्राप्त किया जाता है जिसे सामान्यत: तार्किक चिंतन द्वारा उपेक्षित कर दिया जाता है।'' डॉ. बोनो न पाश्विक चिंतन को प्रत्यक्षीकरण और सम्प्रत्यय - परिवर्तन की चिंतन विधि के रूप में वर्णित किया है।

उसका विश्वास है कि पाश्विक चिंतन का प्रत्यक्ष प्रशिक्षण दिया जा सकता है। अनेक तकनीकी इसके लिए सुझाई है जिनको सीखने से पाश्विक चिंतन बढ़ाया जा सकता है।

(1) बाह्य स्त्रोतों से प्राप्त यादृच्छ आगत जिससे पुराने सम्बन्ध प्रभावित होते हैं,

(2) अगला कदम बढ़ाने से पूर्व वैकल्पिक उपागमों का नियत विनिधान स्थापित करना,

(3) अवधान को चक्रित करना।

पाश्विक चिंतन स्पष्टत: संज्ञानात्मक क्षेत्र से सम्बन्धित है। डी बोनो का सिद्धान्त सौद्देश्य शुद्ध रेखीय चिंतन से परे हटता है। पाश्विक चिंतन, असंवेगात्मक अर्थों में चिंतन के सम्बन्ध में चिंतन है। यह सिद्धान्त समाधान के क्षेत्र में ही अनुचिंतन की सीमाओं को समाधान के क्षेत्र में ही बढ़ाने की इच्छा करता है और किस प्रकार अधिक उत्तम समाधान की सम्भावित विधियों को सृजित करता है।

डी बोनो का मानना है कि पाश्विक चिंतन दृष्टिकोण के विशिष्ट निर्देश एकाकी पाठ्यक्रम के अन्तर्निहित होते हैं। इसके अतिरिक्त अपने सिद्धान्तों के निर्देशों द्वारा डी बोनो ने एक उद्योग की रचना कर डाली।

पाश्विक चिंतन के चार सहायक कारक हो सकते हैं -

- उन प्रभावपूर्ण विचारों को ग्रहण करना जो समस्या को प्रतिक्षण घेरे रहते हैं।
- वस्तुओं को भिन्न दृष्टि से देखना।
- चिंतन के कठोर नियंत्रण को शिथिल करना | तथा
- अन्य विचारों को प्रोत्साहित करने के लिए संयोग का प्रयोग करना।

अन्तिम कारक का सम्बन्ध इस तथ्य से है जिनके सामान्य रूप से घटित होने की प्रत्याशा नहीं होती। पाश्विक चिंतन का उपयोग समस्या समाधान के लिए तो किया ही जा सकता है पर इससे से अधिक कार्यों के लिए भी इसका उपयोग हो सकता है। पाश्विक चिंतन कथन और विचारों के गतिमान मूल्य से सम्बन्धित है। कोई व्यक्ति पाश्विक चिंतन का प्रयोग तभी करेगा जब वह प्राप्त विचार से नवीन विचार उत्पन्न करने के इच्छा रखता है। पाश्विक चिंतन निदान की तरह है।

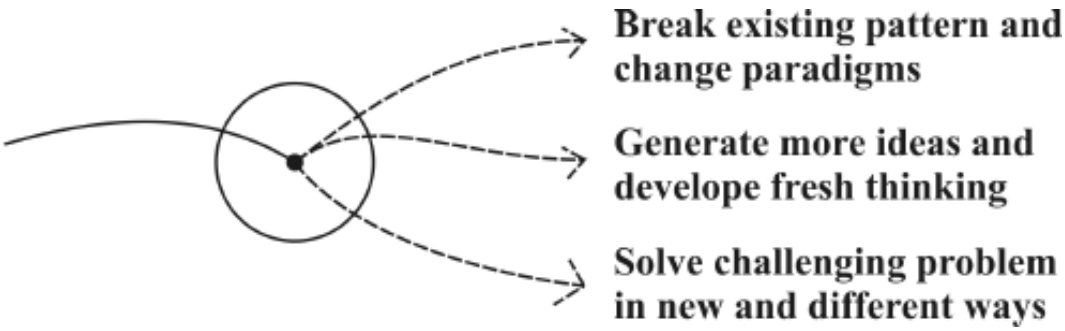

एडवर्ड डी बोनो का पाश्विक चिंतन

Edward De Bono's Lateral Thinking

11.9 सामानान्तर चिंतन

एडवर्ड डी बोनो (1933) माल्टा के मनोवैज्ञानिक चिकित्सक तथा लेखक ने सर्वप्रथम समानांतर चिंतन पद का प्रयोग अपनी पुस्तक (Parallel Thinking1985) में किया।

समानान्तर चिंतन को डॉ. बोनो ने सृजनात्मक विकल्प के रूप में प्रयोग किया जो कि पारम्पिरक सोच या विरोधात्मक सोच की तुलना में अंतर स्पष्ट करती है। परम्परागत सोच या विरोधात्मक सोच बहस या संवादों के रूप में जानी जाती है। विरोधात्मक दृष्टिकोण (अदालतों में उपयोग किया जाता है) विरोधात्मक बहस में उद्देश्य साबित या बयानों दलों (आमतौर पर दो) द्वारा अपने विचारों को आगे रखने एक दूसरे के विरूद्ध विचारों के खंडन करने के लिए जाना जाता है। इसे बहस, विरोधात्मक या पश्चिमी सोच से भी जाना जाता है। चौबीस हजार वर्षों पहले युनानी दार्शनिक चिंतक सुकरात, प्लेटो और अरस्तु के चिंतन पर आधारित है। जहाँ प्रत्येक पक्ष में सोच परम्परागत तार्किक द्वंद्ववाद या विरोधात्मक के साथ अलग स्थान लेता है और फिर दूसरे पक्ष पर हमला करता है, बहस करता है अपनी सोच को साबित करने में लगता है। ऐसी सोच आंशिक रूप से ही विषय या समस्या का अन्वेषण करती है जो कि ''क्या है'' से संबंधित है और विश्लेषण भी न्याय और

बहस के आधार पर हो पाता है जो कि ग्रीक गेंग ऑफ थ्री (GG3) द्वारा ज्ञात किया गया है। एक साथ कई पक्षों पर सोचा जाता है एक समय → ←में सामान्य दृष्टिकोण में जैसे वकालत करने के लिए होता है।

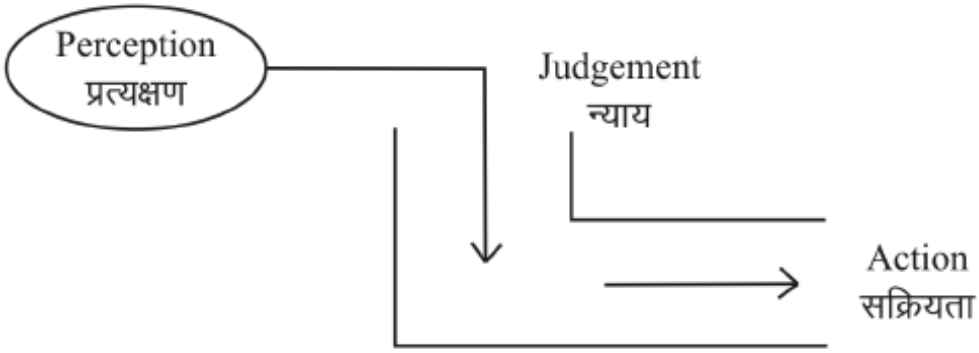

पारम्परिक सोच

Traditional Thinking

पारम्परिक सोच रचनात्मक सृजनात्मक और विशेष उद्देश्य की योजना बनाने से संबंधित नहीं है केवल विश्लेषण, न्याय दिलाने और बहस को ही शामिल कर पाती है, किसी एक उद्देश्य में ध्यान केन्द्रित न करके विभिन्न आयामों के बारे में एक समय में सोचते हैं। सामानांतर सोच सृजनात्मक क्रम में है विरोधात्मक सोच के, समानांतर सोच को सोच प्रक्रिया के रूप में परिभाषित किया गया है जहाँ समानांतर सोच का ध्यान केन्द्रित विभिन्न दिशाओं में विभाजित है। जब एक समूह में किया गया जब इसे प्रभावी ढंग से विरोधात्मक दृष्टिकोण अदालतों में उपयोग किया जाता है, के परिणामों से बचा जाता है। विरोधात्मक बहस में उद्देश्य साबित या बयानों दलों (आमतौर पर दो) से विचार रखना आगे खंडन करने के लिये है। इसे द्वंद्वात्मक दृष्टिकोण में भी जाना जाता है।

समानान्तर सोच में चिकित्सकों ने कई (दो से अधिक) सम्भावित विचारों को समानांतर पटरियों के रूप में आगे रखा, जहाँ एक विषय या समस्या के अन्वेषण करने के लिए सहयोग, समानांतर सोच गढ़ा और कार्य कार्यान्वित किया। समानांतर सोच में सभी प्रतिभागी समानांतर रूप से ज्ञान, तथ्यों, भावनाओं आदि के साथ एक रूप में योगदान कर सकते हैं। महत्वपूर्ण इस प्रक्रिया में यह है कि सब एक अनुशासित तरीके से होता है। सभी प्रतिभागी अपने अपने कार्य को अच्छे सहयोग से पूर्ण करते हैं। एक ही दिशा में समानांतर सोच रखते हैं जहाँ सहयोगी व साथ लेने की सोच होती है जहाँ स्थिति को विशिष्ट दिशा में रखा जाता है। सभी प्रतिभागी एक साथ अपनी अपनी समानांतर सोच रखते हुए वाक्य या विचार रखते हैं जिसमें कोई बहस या बयान नहीं होता केवल समानांतर रूप में संभव बयानों को रखा जाता है। जिससे एक विषय के अन्वेषण और सभी विचारों से निष्कर्ष निकाला जाये।

ऊपरी तौर से देखें तो यह सम्भावनाओं की शक्ति है, जो कि पश्चिमी तकनीकी विकास के लिए उत्तरदायी है न कि बहस के लिए। सम्भावित विचार स्वयं परिकाल्पनिक युक्ति है जो कि वैज्ञानिक शोध की घटित होने की शुरूआत है। हमारे वैज्ञानिक शोध की शुरूआत परिकल्पना और विचारों से

करते हैं। किसी अन्वेषण एवं वैद्यता को जानने के लिए यह प्रत्यक्षण और विचारों को संगठित कर सुचनायें प्रदान करने की रूपरेखा तैयार करता है। बिना किसी बहस और विरोध किये बिना व्यक्ति विचारों का निर्माण कर सकता है। समानांतर सोच से जो कि ज्ञान का सृजनात्मक ढंग है। यह सहयोग और समन्वयक रूप में दिखती है। विचारों को भिन्न भिन्न रूप में रखती है। समस्या को पूर्ण रूप से देखती है एक ही दिशा में।

समानांतर सोच

Parallel Thinking

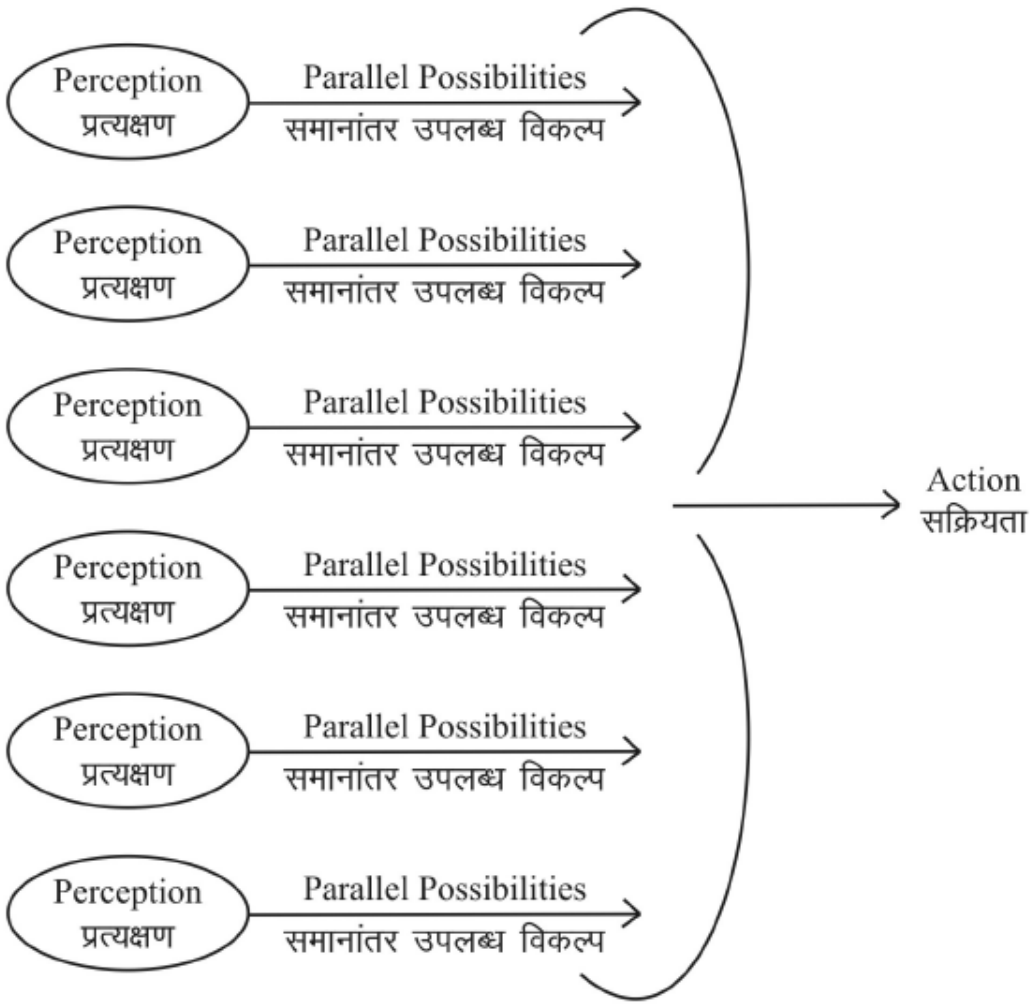

एडवर्ड डी बोनो तर्क देते हैं कि व्यक्ति जो सोचते हैं वो पहले से संचालित पैटर्न के आधार पर ही होता है जैसे विश्लेषण और न्याय का प्रयोग जो हमारी क्षमताओं को तथ्य और सूचनाओं तक ही सीमित करती है। एडवर्ड डी बोनो सृजनात्मक परिणाम और विचार के लिए चिंतन की ऑलटरनेटिव विधि बताते हैं। ''समानांतर चिंतन'' जो कि स्वेच्छा से तथ्यों को खंडन करती है न कि बहस कर उसे खंडन करती है। समानांतर चिंतन में प्रत्येक चिंतन अपने विचारों को समानांतर रूप से दूसरे के विचारों के साथ रखता है ना कि दूसरे के विचारों को प्रहार या गलत साबित करता है। समानांतर सोच विचारों को एक समय में एक ही दिशा में सोचने पर निर्देशित करती है जिससे हम चर्चा का जो विषय है उसे सही तरह से विश्लेषण कर सकें, नये विचारों को ला सकें और उससे सही निर्णय कर सकें।

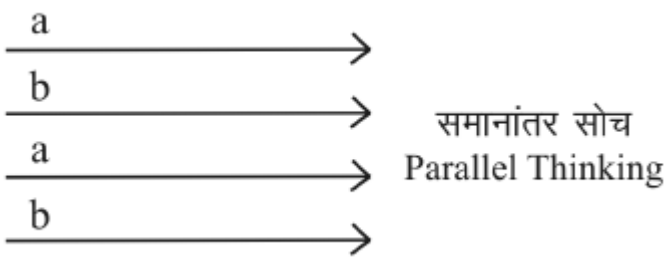

समानांतर सोच पाश्विक सोच प्रक्रियाओं का एक और विकास है जो ''क्या है'' के लिए नहीं बल्कि ''क्या हो सकता है'' को खोजने में अधिक ध्यान केन्द्रित करता है। एडवर्ड डी बोनो की "Six Thinking Hats" विधि एक व्यवहारिक तरीका है समानांतर सोच का यह मौलिक रूप से सृजनात्मक सोच के लिए महत्वपूर्ण है।

एडवर्ड डी बोनो का छ: सोच सलाम (Six Thinking Hats) बहुत प्रभावी है समस्या समाधान के लिए, निर्णय निर्माण में, टीम में, रूपरेखा या योजना मूल्यांकन आदि में।

यह समानांतर सोच के सम्प्रत्य पर आधारित है जिसे व्यापारी, अध्यापक, विद्यार्थी बच्चे सभी प्रयोग में ला सकते हैं। यह विभिन्न रंगों के काल्पनिक टोपी है जिसे समूह में पहन सकते हैं निकाल सकते हैं। ये टोपी समूह को समानांतर सोच के लिये मदद करती है। विभिन्न रंगों की टोपी विभिन्न दिशा में सोच के प्रकार को पहचान करती है। एक समय में समूह केवल एक टोपी पहनें। यह साधारण एवं प्रभावशाली समानांतर सोच की प्रक्रिया है जो मस्तिष्क को सक्रिय एवं उत्पादक केन्द्रित रखता है। एक शक्तिशाली उपकरण के तरह जिसे सीखते हैं तुरन्त प्रयोग में लिया जाता है।

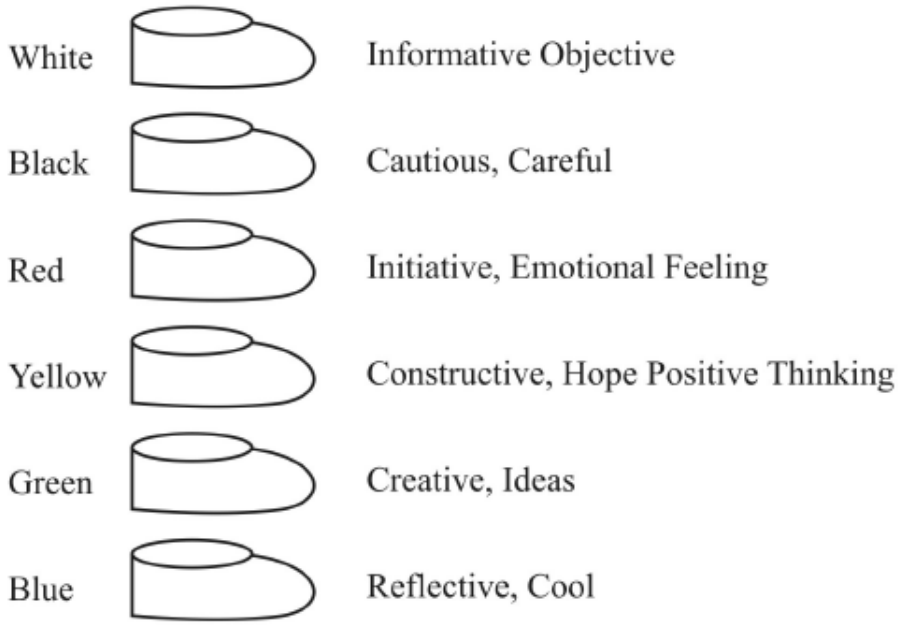

Six Thinking Hats (Art of Parallel Thinking)

समानांतर सोच उपलब्ध विकल्पों नये सृजनात्मक योजना, को प्रभावी ढंग से प्रयोग में लेती है। यह कॉपरेटिव एवं को-ऑटिनेट थिंकिंग है। सभी प्रतिभागी समानांतर तरीके से योगदान कर सकते हैं। यह सोच प्रक्रिया है, जो स्वतंत्र रूप से सोचने, एक दिशा में परिणामों को जानने के संभावनाओं को

तलाशते हैं। जो कि पारम्परिक सोच से अलग है जहाँ पर हम एक पक्ष लेते हैं, बहस करते हैं दूसरे को गलत साबित करते हैं।

11.10 सारांश

सृजनात्मक चिंतन, चिंतन की एक सकारात्मक प्रक्रिया है जिसमें व्यक्ति दिये गये तथ्यों में कुछ नये शब्द जोड़कर निष्कर्ष तक पहुँचता है। सृजनात्मक चिंतन ज्ञानात्मक पक्ष की मानसिक क्रिया है। सृजनात्मक चिंतन करने वाले व्यक्ति की कल्पनाओं में इतनी नवीनता तथा सहजता होती है कि वह विभिन्न वस्तुओं का असाधारण उपयोग बता सकता है सृजनात्मक चिंतन लक्ष्य निर्देशित होता है इसमें व्यक्ति को अपने लक्ष्य का स्पष्ट ज्ञान होता है। सृजनात्मक चिंतन में स्वली चिंतन नियंत्रित ढंग से सम्मिलित होती है। अपसारी चिंतन सृजनशीलता का एक महत्वपूर्ण पक्ष है। परन्तु सृजनशीलता की सभी विशेषताएँ अपसारी चिंतन में होना आवश्यक नहीं है। सृजनात्मक चिंतन में नभ्यता एवं जिज्ञासा पायी जाती है।

सृजनात्मक चिंतन की मनोवैज्ञानिकों ने चार प्रमुख अवस्थाएँ बताई हैं -

1. आयोजन
2. उद्भवन
3. प्रबोधन
4. प्रमाणीकरण

सृजनात्मक चिंतन के लिए कई शिक्षण विधियों का प्रयोग किया जाता है - व्याख्यान, वाद-विवाद, निरीक्षण अध्ययन विधि, अभिक्रमित अनुदेशन ब्रेन-स्टोर्मिंग, सेमीनार, डेल्फी विधि, दृश्य लेखन आदि।

सृजनात्मक चिंतन पर कई कारकों का प्रभाव पड़ता है - व्यक्तित्व, बुद्धि, अभिप्रेरणा, जन्मक्रम, पारिवारिक संरचना एवं पर्यावरण आदि।

पाश्विक चिंतन की वह विधि है जिसके द्वारा उलझी हुई समस्याओं का हल परम्परावादी विधि या तत्वों द्वारा इस प्रकार प्राप्त किया जाता है जिसे सामान्यत: तार्किक चिंतन द्वारा उपेक्षित कर दिया जाता है। एडवर्ड डी बोनो का पाश्विक चिंतन ज्यादा सोचो, अलग सोचो और मूल रूप से सोचने पर जोर देता है।

समानांतर चिंतन पद का प्रयोग सर्वप्रथम एडवर्ड डी बोनो द्वारा ही किया गया। समानांतर चिंतन का ध्यान केन्द्रित विशिष्ट दिशाओं में विभाजित है जिसे एक सोच प्रक्रिया के रूप में परिभाषित किया गया है। समानांतर चिंतन पारम्परिक चिंतन या विरोधात्मक सोच में अंतर स्पष्ट करती है। यह एक रचनात्मक व उपयोगी व कोऑपरेटिव चिंतन है। समानांतर सोच हमारे विचारों को अधिक संगठित बनाता है। सभी एक भी दिशा में कार्य सोचते हैं। नये रूप में सोचने में जोर देते हैं। आगे क्या है के लिए की तुलना में क्या हो सकता है के लिए अन्वेषणों पर जोर देता है। रचनात्मक का विकास करने के लिए खोज के अवसर प्रदान करने चाहिए और वातावरण ऐसा हो, जिसमें बालक स्वतंत्र महसूस करे, विविधता तथा मौलिकता को उत्साहित करना चाहिए।

11.11 शब्दावली

सृजनात्मक चिंतन	-	नये विचारों की प्रक्रिया या नई सोच।
अभिसारी चिंतन	-	दिये गये तथ्यों के आधार पर किसी सही निष्कर्ष पर पहुँचने की कोशिश।
अपसरण चिंतन	-	भिन्न-भिन्न दिशाओं में चिंतन कर समस्या का समाधान करने की कोशिश।
पाश्विक चिंतन	-	परम्परावादी विधि या तत्वों द्वारा समस्याओं का हल करना।
समानांतर चिंतन	-	रचनात्मक विकल्प के रूप में वर्णित सहयोगी व समन्वय सोच है।

11.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

नीचे कुछ कथन दिये गये हैं जो कथन सत्य है उनके आगे सही का निशान एवं जो गलत है, उनके आगे क्रास का निशान लगायें -

1. सृजनात्मक की पहचान होती है, नवीन परिणाम से। ( )
2. अपसरण चिंतन में व्यक्ति एक ही दिशा में चिंतन करता है। ( )
3. सृजनात्मक चिंतन में नभ्यता एवं जिज्ञासा पायी जाती है। ( )
4. सृजनात्मक चिंतन की प्रारम्भिक अवस्था आयोजन है। ( )
5. सृजनात्मक चिंतन की शिक्षण विधियाँ व्याख्यान, वाद-विवाद एवं अभिक्रमित अनुदेशन है। ( )
6. अभिसारी चिंतन का सर्वप्रथम प्रतिपादन पॉल गिल्फोर्ड ने किया था। ( )
7. समानांतर चिंतन पाश्विक चिंतन प्रक्रियाओं का विकासात्मक रूप है। ( )
8. समानांतर सोच रचनात्मक व सहयोगी नहीं है। ( )
9. सृजनात्मक चिंतन उद्देश्यपूर्ण नहीं होता है। ( )
10. सृजनात्मक चिंतन की मुख्य चार अवस्थाएँ होती है। ( )

उत्तर- (1) सही (2) गलत (3) सही (4) सही (5) सही
(6) सही (7) सही (8) गलत (9) गलत (10) सही

11.13 निबंधात्मक प्रश्न

1. सृजनात्मक चिंतन को परिभाषित करते हुए इसके स्वरूप पर प्रकाश डाले।
2. सृजनात्मक चिंतन एवं सृजनशीलता से क्या तात्पर्य है? इसके निर्धारकों का वर्णन कीजिए।
3. आप बालकों में सृजनात्मकता की पहचान तथा उनके शिक्षण के लिए क्या उपाय करेंगे?
4. पाश्विक चिंतन को समझाइये।

5. समानांतर चिंतन की चर्चा करें।

11.14 संदर्भ ग्रन्थ सूची

- सिंह, अरूण कुमार (2006) उच्चतर सामान्य मनोविज्ञान मोतीलाल बनारसीलाल, बंगाली रोड़, जवाहर नगर, दिल्ली।
- सिंह, अरूण कुमार (2006) संज्ञानात्मक मनोविज्ञान मोतीलाल बनारसीदास, बंगाली रोड़ जवाहर नगर, दिल्ली।
- भारद्वाज, शुभा एस. एवं सिंह आर.एस. (2012) मूल मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाएँ, अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा
- शर्मा, डॉ.एस.एन. (2007) शिक्षा में मनोविज्ञान, एच.पी. भार्गव, हाऊस, आगरा 282004
- श्रीवास्तव, बीना एण्ड आनंद, वर्षा एण्ड आनन्द बानी (2003) संज्ञानात्मक मनोविज्ञान, मोतीलाल बनारसीदास |

इकाई -12

समस्या समाधान उपागम
Problem Solving Approaches

इकाई की रूपरेखा

12.1 प्रस्तावना

12.2 उद्देश्य

12.3 समस्या समाधान उपागम

12.3.1 समस्या समाधान का अर्थ

12.3.2 समस्या समाधान के स्तर

12.3.3 समस्या समाधान की विधियाँ

12.3.4 समस्या समाधान को प्रभावित करने वाले कारक

12.3.5 समस्या समाधान के सिद्धान्त

12.3.6 कक्षा में समस्या समाधान

12.3.7 छात्रों को समस्या समाधान में प्रशिक्षित करने के उपाय

12.4 समस्या समाधान के चरण

12.5 सारांश

12.6 शब्दावली

12.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

12.8 निबंधात्मक प्रश्न

12.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

12.1 प्रस्तावना

प्रिय विद्यार्थियों, इससे पूर्व की इकाईयों में आप जान चुके हैं कि चिंतन क्या है, इसका स्वरूप क्या है, चिंतन की प्रक्रिया किस प्रकार होती है । सृजनात्मक चिंतन, सृजनात्मक चिंतन का विकास इत्यादि। इस इकाई में आप समस्या समाधान क्या होता है । समस्या समाधान के सम्बन्ध में किन-किन सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया है । यदि समस्या का समाधान होता है तो किन-किन विधियों के द्वारा होता है । समस्या समाधान के विभिन्न सोपान क्या है?

इस इकाई को पढ़ने समझने के बाद आप अपनी जिज्ञासाओं का समाधान कर सकते हैं । समस्या समाधान शिक्षण का एक रूप है । जिसमें उचित उत्तर की खोज की जाती है ।

विद्यार्थियों, यदि प्रस्तुत इकाई का अध्ययन करते समय आप एक बार चिंतन के अर्थ को भी पुन: स्मरण कर लें तो प्रस्तुत विषय को अधिक अच्छे तरीके से समझ सकते हैं।

12.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप -

- समस्या समाधान के अर्थ व स्वरूप को स्पष्ट कर सकेंगे।
- समस्या समाधान के विभिन्न उपायों का अध्ययन कर सकेंगे।
- समस्या समाधान को प्रभावित करने वाले कारकों को जान सकेंगे।
- समस्या समाधान के विभिन्न सिद्धान्तों का अध्ययन कर सकेंगे।
- समस्या समाधान के चरण को जान सकेंगे।

12.3 समस्या समाधान उपागम

12.3.1 समस्या समाधान का अर्थ

समस्या समाधान एक प्रमुख संज्ञानात्मक व्यवहार है। जन्म के पश्चात् से प्रत्येक व्यक्ति किसी न किसी समस्या से घिरा रहता है। हमें अपनी आवश्यकताओं तथा प्रेरकों को संतुष्ट करना होता है। इस संतुष्टि हेतु सभी व्यक्ति किसी न किसी लक्ष्य का निर्धारण करते हैं। उद्देश्यों को प्राप्त करते समय प्रत्येक व्यक्ति बाधाओं एवं अवरोधों को अनुभव करता है। इन बाधाओं एवं अवरोधों को दूर करने हेतु व्यक्ति गम्भीर एवं सोचे समझे प्रयास करता है। परिस्थितियों के मूल्यांकन एवं उद्देश्यों को प्राप्त करने हेतु व्यूह रचनाओं को समस्या समाधान कहा जाता है। वैयक्तिक उन्नति एवं सामाजिक प्रगति के लिये समस्या समाधान आवश्यक है। समस्या समाधान उस समय पैदा होता है जब लक्ष्य की प्राप्ति के लिए बाधा पर विजय प्राप्त करनी होती है या व्यक्ति किसी लक्ष्य पर पहुँचना चाहता है परन्तु लक्ष्य आसानी से उपलब्ध नहीं होता है। जब लक्ष्य आसानी से उपलब्ध हो जाता है तो कोई समस्या नहीं उत्पन्न होती है और तब समस्या-समाधान का प्रश्न ही नहीं उठता है। जैसे यदि कोई व्यक्ति कुछ लिखना-पढ़ना चाहता है परन्तु कलम व पुस्तक उपलब्ध नहीं है तो वह व्यक्ति के लिए समस्या होगी परन्तु यदि उसके पास कलम और पुस्तक दोनों उपलब्ध है तो कोई समस्या नहीं होगी। इसका स्पष्ट मतलब यह हुआ कि समस्या समाधान एक ऐसी परिस्थिति होती है जिसमें लक्ष्य तक पहुँचने में कुछ चीजें बाधा उत्पन्न करती है। समस्या समाधान को मनोवैज्ञानिकों ने कुछ न कुछ इसी संदर्भ में परिभाषित किया है।

विटिंग एवं विलियम्स के अनुसार, ''समस्या का समाधान का अर्थ होता है बाधाओं को दूर करने तथा लक्ष्यों की ओर पहुंचने के लिए चिंतन प्रक्रियाओं का उपयोग करना। ''

स्टानले ग्रे के अनुसार - ''समस्या समाधान वह प्रतिरूप है जिसके भीतर सृजनात्मक चिंतन और तर्क होता है। अमूर्त इच्छाओं से उत्पन्न तनाव व्यक्ति को अधिकतम प्रयत्न करने को प्रेरित करता है।'' इस प्रकार से प्रेरित हुआ व्यक्ति तनाव निवृत्ति के रूप में समस्या समाधान की ओर उन्मुख होता है।

समस्या समाधान का मतलब है ऐसी विधियों का ज्ञान प्राप्त करना, जिनके प्रयोग से हम आगामी जीवन में आने वाली समस्याओं को हल कर सकें। समस्या समाधान सीखना - इस सम्बन्ध में हावर्ड किंग्सले ने ये विचार व्यक्त किये हैं -

- एक अच्छी समस्या, अधिगम का एक अच्छा प्रेरक है।
- इससे व्यक्ति में अपनी योग्यता के संबंधमें आत्म विश्वास हो जाता है कि अपनी समस्याओं को स्वयं हल कर सकता है।

12.3.2 समस्या समाधान के स्तर

समस्या समाधान के दो स्तर कहे जा सकते हैं -

1. सरल स्तर 2. जटिल स्तर

सरल स्तर की समस्याओं का समाधान उस समय बिना किसी प्रकार की कठिनाई के हो जाता है। जैसे गर्मी लगने पर बिजली का पंखा चलना और उसकी हवा में बैठना।

जटिल स्तर की समस्याओं का हल तात्कालिक रूप से नहीं होता। इसके हल के लिए कई बाधाओं को पार करना पड़ता है। उदाहरण स्वरूप मरूस्थल में सिंचाई की समस्या ऐसी ही है। मरूस्थल में जल कहाँ से लाया जाये? नदी कितनी दूर है? क्या वहाँ से नहर लाई जा सकती है? उस पर कितना खर्च होगा? इत्यादि कई बाधाओं को पार करके ही इस जटिल स्तर की समस्या का हल किया जा सकता है। फलत: इसके समाधान के लिए व्यक्ति को कुछ विशेष तरह के उपाय ढूंढने पड़ते हैं।

मैटलिन (1983) के अनुसार समस्या समाधान के तीन महत्वपूर्ण पहलू बतलाये गये हैं -

1. **मौलिक अवस्था -** मौलिक अवस्था से तात्पर्य उस अवस्था से होता है जो समस्या के सामने आने पर प्रारंभ में उत्पन्न होती है।
2. **लक्ष्य अवस्था -** लक्ष्य अवस्था से तात्पर्य उस अवस्था से होता है जो लक्ष्य पर पहुँचने अर्थात समस्या समाधान होने के बाद उत्पन्न होती है।
3. **नियम -** नियम से तात्पर्य उन कार्य विधि से होता है जिसे व्यक्ति समस्या की मौलिक अवस्था से लक्ष्य अवस्था तक पहुँचने में अपनाता है।

जैसे मान लिया जाये कि आपको तीन किलोमीटर की दूरी तय करके शॉपिंग मॉल जाना है। इस उदाहरण में समस्या की मौलिक अवस्था यह चिंतन हो सकता है कि अभी हम तीन किलोमीटर उस स्थान से दूर हैं जहाँ हमें अभी पहुँचना है, परन्तु जाने का साधन भी कुछ नहीं है। लक्ष्य अवस्था में यह हो सकता है कि हम आखिर शॉपिंग मॉल पहुँच गये। नियम में कई तरह की कार्य विधियाँ हो सकती है - जैसे पैदल चलकर आना, दूसरे की कार से लिफ्ट लेकर आना आदि-आदि। यह समस्या के स्वरूप पर निर्भर करता है कि उस समस्या का समाधान कब और किस प्रकार से होगा। कुछ समस्यायें आसान होती है, जिनका समाधान आसानी से हो जाता है किन्तु कुछ समस्याओं का स्वरूप अत्यन्त जटिल होने के कारण उनके समाधान में भी समय लगता है।

12.3.3 समस्या समाधान की विधियाँ या उपाय -

प्रिय पाठकों, आप सोच रहें होंगे कि समस्या उत्पन्न होने पर उसका समाधान किस प्रकार से किया जाता है? क्या मनोविज्ञान में समस्या समाधान की विशिष्ट तकनीकें या कोई उपाय हैं? जी हाँ, व्यक्ति समस्या समाधान के लिए कई तरह की विधियाँ या उपायों को अपनाता है। इनमें से कुछ विधि ऐसी हैं जिसमें समय तो अधिक लगता है परन्तु इनमें समस्या का समाधान निश्चित रूप से होता है। कुछ विधि ऐसी हैं जिसमें समय तो कम लगता है परन्तु उनसे समस्या का समाधान होना निश्चित नहीं है। इस क्षेत्र में किये गये अध्ययनों के आलोक से यह कहा जा सकता है कि समस्या समाधान के निम्नांकित दो विधियाँ हैं जो काफी महत्वपूर्ण हैं -

- यादृच्छिक अन्वेषण विधि
- स्वत: शोध अन्वेषण विधि

इन सब का वर्णन निम्नांकित है -

1. **यादृच्छिक अन्वेषण विधि -** इस विधि में व्यक्ति समस्या के समाधान के लिए प्रयत्न एवं त्रुटि उपायों की सहायता लेता है। दूसरे शब्दों में समस्या के समाधान के लिए वह एक तरह का यादृच्छिक अन्वेषण करता हे जो दो प्रकार का होता है - अक्रमबद्ध यादृच्छिक अन्वेषण विधि तथा क्रमबद्ध यादृच्छिक अन्वेषण विधि।

- **अक्रमबद्ध यादृच्छिक अन्वेषण विधि -** इस विधि में व्यक्ति किसी समस्या का समाधान करने के लिए सभी संभावित अनुक्रियाओं को अक्रमबद्ध विधि से अपनाता है। अर्थात कार्यों का न तो कोई निश्चित क्रम होता है और न वह पहले से अपनायी गयी क्रियाविधियों का कोई रिकॉर्ड ही रखता है।
- **क्रमबद्ध यादृच्छिक अन्वेषण विधि -** इस विधि से समस्या का समाधान एक निश्चित क्रम में किया जाता है तथा समाधानकर्ता पहले से की गई अनुक्रियाओं का एक रिकॉर्ड भी रखता है जिससे कि पहले हुई त्रुटियों के पुन: होने की संभावना नहीं होती है। यद्यपि क्रमबद्ध विधि में अक्रमबद्ध विधि की तुलना में समय अधिक लगता है, किन्तु यह विधि अधिक प्रभावशाली है।

2. **स्वत: शोध अन्वेषण विधि -** इस विधि के अन्तर्गत व्यक्ति समस्या का समाधान करने के लिए सभी विकल्पों को नहीं ढूंढता है बल्कि सिर्फ उन्हीं विकल्पों का चयन करके समस्या समाधान करने की कोशिश करता है जो उसे संगत प्रतीत होते हैं। इस विधि में इस बात की गारंटी नहीं होती कि समस्या का समाधान निश्चित रूप से ही हो जायेगा, लेकिन समाधान निकल आने की संभावना अधिक रहती है। यादृच्छिक अन्वेषण विधि की तुलना में इसमें समय कम लगता है। स्वत: शोध अन्वेषण विधि में निम्न प्रविधियों को शामिल किया गया है।

(i) **साधन साध्य विश्लेषण -** साधन साध्य विश्लेषण एक लोकप्रिय विधि है जिसका उपयोग व्यक्ति किसी समस्या के समाधान में प्राय: करता है। इस विधि में मुख्य समस्या को अनेक छोटी-छोटी समस्याओं अर्थात उपसमस्याओं में बाँट दिया जाता है। जब इन उपसमस्याओं का समाधान होता जाता है तो मौलिक अवस्था एवं लक्ष्य अवस्था के बीच अन्तर कम

होता जाता है। अर्थात व्यक्ति समस्या समाधान के अत्यन्त निकट पहुँच जाता है। इस विधि का उपयोग मुख्य रूप से शतरंज की समस्या के समाधान में, गणितीय समस्याओं को हल करने में, कम्प्यूटर द्वारा किसी समस्या के समाधान हेतु कार्यक्रम तैयार करने में इत्यादि में किया जाता है।

(ii) **पश्चगामी अन्वेषण -** यह एक ऐसा स्वत: शोध अन्वेषण है जिसमें समस्या समाधान करने के विचार से व्यक्ति लक्ष्य अवस्था से अपना प्रयास प्रारम्भ करता है और पश्चगामी दिशा में कार्य करते हुए प्रारम्भिक मौलिक अवस्था तक आता है। इस विधि का निम्न स्थितियों में प्रयोग किया जाता है।

- जब समस्या का स्वरूप कुछ ऐसा होता है जहाँ उसका लक्ष्य तथा अवस्था में मौलिक अवस्था की तुलना में अधिक सूचनाएँ सम्मिलित होती हैं।
- जब समस्या का स्वरूप कुछ ऐसा होता है उसके समाधान के लिए प्रयास अग्रगामी एवं पश्चगामी दोनों ही दिशा में संभव है।
- पश्चगामी अन्वेषण शैक्षिक समस्याओं एवं मनोरंजन समस्याओं में अक्सर किया जाता है।

(iii) **योजना विधि -** इस विधि द्वारा समस्या के समाधान को व्यक्ति समस्या को मुख्य रूप से दो भागों में बांट देता है - साधारण पहलू तथा जटिल पहलू। व्यक्ति सर्वप्रथम साधारण पहलू का समाधान करता है और उसके बाद जटिल पहलू की दिशा में अग्रसर होता है।

12.3.4 समस्या समाधान व्यवहार को प्रभावित करने वाले कारक:-

समस्या समाधान व्यवहार के प्रयोगों में मनोवैज्ञानिकों ने विभिन्न प्रकार के परिवर्ती के प्रभाव का अध्ययन किया है जिनको समस्यात्मक स्थिति की विशेषताओं, समस्या समाधान की विशेषताओं तथा समस्या समाधानकर्ता की विशेषताओं के आधार पर प्रमुख तीन भागों में बाँटा गया है।

(1) **समस्या समाधान स्थिति की विशेषताओं का प्रभाव:-** समस्या समाधान की स्थिति की कुछ विशेषताएँ होती हैं जो समाधान में प्रमुख भूमिका निभाती हैं। जैसे समस्या का आकार, समस्या तथा समाधान स्थितियों में समानता, समस्यात्मक स्थिति का संगठन आदि प्रमुख हैं इनको प्रायोगिक रीति से अध्ययन करके सिद्ध किया गया है।

(अ) **समस्या का आकार -** समस्यात्मक स्थिति के आकार का प्रभाव इसके अन्तर्गत लगने वाले समय पर पड़ता है। प्रायोगिक रीति से यह सिद्ध हो चुका है कि समस्या का आकार जितना बड़ा होगा उसका समाधान उतना ही विलम्ब से होगा। नेमार्क और वैग्नर (1964) ने मानव प्रयोज्य के सम्मुख एक समस्यात्मक स्थिति को रखा। प्रयोज्यों को बहुत से चित्रों में से एक मानक चित्र के बराबर चित्र छाँटने को दिया। बहुत से चित्रों की आकृति को भी घटाया बढ़ाया। लगने वाले समय को नोट करने से यह प्रमाणित हुआ कि समस्या का आकार समाधान में लगने वाले समय को प्रभावित करता है। उक्त प्रयोग में यह पाया गया चित्रों की संख्या जितनी अधिक होगी समस्या समाधान उतना ही विलम्ब से होगा। कैपलान (1968) के प्रयोग परिणाम भी यह सिद्ध करते हैं कि एनाग्राम्स की संख्या जितनी अधिक होती है, समाधान में समय भी उतना ही लगता है। इन प्रयोगों से यह निष्कर्ष

निकलता है कि समस्यात्मक स्थिति का आकार जितना बड़ा होता है उसका समाधान उतना ही कठिन होता है।

(ब) **समस्या एवं समाधान स्थितियों में समानता -** यह बात बड़ी ही सरलता से परिकल्पना में निर्मित की जा सकती है कि समस्या एवं समाधान स्थितियों में जितनी अधिक समानता होगी, प्रयोज्य को उस स्थिति का समाधान करने के लिए उतना ही पुनर्गठन कम करना पड़ेगा और इसका यह प्रभाव पड़ेगा कि समस्या का हल उतना ही सरल हो जायेगा। डौमीनोस्की (1966) के प्रयोग परिणाम; जो एनाग्राम्स के अध्ययन के बाद निकाले गये, यह सिद्ध करते हैं कि एनाग्राम्स में एक अक्षर का परिवर्तन करने के बाद हल सर्वाधिक सरल होता है।

(स) **समस्यात्मक स्थिति का संगठन -** समस्यात्मक स्थिति में उपस्थित घटकों का सुसंगठन समस्या समाधान को प्रभावित करते हैं। संगठित समस्याएँ समाधान को सरल बनाती हैं तथा असंगठित कठिन। इसी प्रकार के संगठित तथा असंगठित एनाग्राम्स को लेकर वाइलिन तथा हार्न (1962) ने प्रयोगात्मक निष्कर्ष ज्ञात किए हैं। संगठित एनाग्राम्स का उदाहरण COLOUR है तथा असंगठित का RLOUCO संगठित एनाग्राम्स से शब्द बनाने में कम समय लगता है तथा असंगठित से अधिक समय लगता है।

2. **समाधान की विशेषताओं का प्रभाव -** समस्या समाधान की प्रकृति में जटिलता हो सकती है। समाधान में यदि चरण अधिक हैं तो समाधान अपेक्षाकृत कठिन होगा जिसमें चरण कम हैं। इसके साथ ही विभिन्न चरणों के साथ प्रयोज्य का परिचित होना भी एक अन्य विशेषता है। इनका वर्णन निम्नलिखित हैं -

(अ) **समाधान की जटिलता -** हेयेस (1965) तथा अन्य के प्रयोग परिणाम यह सिद्ध करते हैं कि समाधान में जितने चरण होते हैं, समाधान करने में उतनी ही कठिनाई होती है। इस प्रकार के प्रयोग हेयेस ने जासूस समस्या तथा गैग्नी एवं स्मिथ (1962) ने पिरामिड पहेली पर प्रयोग करके यह सिद्ध किया कि समस्या समाधान के चरणों में वृद्धि के कारण समस्या अधिक कठिन हो जाती है और इसी कठिनाई के कारण समाधान भी विलम्ब से होता है।

(ब) **समाधान के चरणों की सामान्यता -** समस्या समाधान के समय परिचित उद्दीपक संकेत प्रयोज्य को प्रभावित करते हैं। यह पूर्व परिचय समाधान में सहायता देता है और इसी सुविधा के कारण समाधान सरलता से होता है।

3. **समाधानकर्ता की विशेषताओं का प्रभाव -** समस्या समाधान की सम्भावना समाधानकर्ता की विशेषताओं पर भी निर्भर करती है। इसमें अभिप्रेरणा स्तर, पूर्व अनुभव एवं सेट महत्वपूर्ण विशेषताओं के रूप में जाने जाते हैं। इनका वर्णन प्रस्तुत है -

(अ) **अभिप्रेरणा स्तर -** यह स्पष्ट है कि अभिप्रेरित व्यक्ति ही कार्य करने को तैयार होता है। अभिप्रेरणात्मक वृत्ति चिन्ता के होने से निष्पादन में भी त्रुटियाँ होती हैं। एक कार्य में असफल हो जाने से भी दूसरे कार्य के निष्पादन पर प्रभाव पड़ता है और यह निष्पादन दुर्बल हो जाता है।

(ब) **अभ्यास अथवा पूर्ण अनुभव का प्रभाव -** मायर (1930, 1945) के प्रयोग परिणाम यह सिद्ध करते हैं कि समस्यात्मक स्थिति के चरों का पूर्व अनुभव समस्या समाधान में लाभकारी होता है। मायर ने हेट रखने के लिए खूँटी बनाने की समस्या तीन समूहों में सामने रखी। प्रथम समूह के सम्मुख पूर्व अनुभव वाले चर प्रत्यक्षीकरण के लिए रखे गए, दूसरे को उनसे वंचित रखा गया तथा तीसरा समूह पूर्व अनुभव से रहित। प्रायोगिक परिणामों से ज्ञात हुआ कि प्रथम समूह के परिणाम द्वितीय से तथा द्वितीय के तृतीय समूह से अच्छे थे।

(स) **मानसिक सेट का प्रभाव** (Effect of Mental Set) - समाधान के समय किसी विशेष प्रकार से अनुक्रिया करने की प्रवृत्ति को सेट कहते हैं। यह एक ही प्रकार की अनुक्रिया करते रहने के कारण होती है। इस प्रभाव को वुडवर्थ तथा श्लासवर्ग ने 'अन्धा करने वाला प्रभाव' कहा है। मनोवैज्ञानिकों ने एनाग्राम्स की सहायता से प्रयोग करके सेट के प्रभाव का अध्ययन कर स्पष्ट किया है। इस सेट के कारण प्रत्यक्षीकरण सम्बन्धी स्थिरता उत्पन्न होती है जो समाधान में सहायक होती है। लुचिन्स (1942) ने इसी प्रकार के प्रयोग कर सेट के प्रभाव को प्रमाणित किया है।

12.3.5 समस्या समाधान के सिद्धान्त -

समस्या समाधान व्यवहार की व्याख्या करने के लिए कुछ महत्वपूर्ण सिद्धान्तों का प्रतिपादन हुआ है।

1. **व्यवहारवादी सिद्धान्त -** व्यवहारवादी जिस प्रकार अधिगम की व्याख्या उद्दीपक-अनुक्रिया के सिद्धान्त के आधार पर करते हैं। इसी प्रकार से समस्या समाधान व्यवहार की व्याख्या की जाती है। थॉर्नडाइक के प्रयोग से जो बिल्ली पर किया गया, समस्या समाधान की स्थिति में व्यवहारवादी विचारधारा को जन्म मिलता है। व्यवहारवादी मनोवैज्ञानिक इस प्रकार समस्या समाधान की व्याख्या निम्न विचारों के आधार पर करते हैं।

(अ) **अनुक्रिया पदानुक्रम -** समस्या समाधान को व्यवहारवादी व्याख्या में अनुक्रिया पदानुक्रम की विचारधारा इस रूप में प्रस्तुत की गई है कि इस कि क्रियातन्त्र में उद्दीपक स्थिति के साथ प्राणी अनेक अनुक्रियाएँ करता है। इनमें कुछ अनुक्रियाये सीख ली जाती हैं तथा कुछ भुला दी जाती है। इसका अर्थ यह है कि साहचर्य जहाँ शक्तिशाली होता है वहाँ अनुक्रिया सीख ली जाती है। यह व्यवस्था पदानुक्रम रीति में व्यवस्थित मानी जा सकती है। थार्नडाइक की बिल्ली की अनुक्रियाओं के साथ यही बात है।

(ब) **अप्रकट प्रयत्न तथा त्रुटि** - समस्यात्मक स्थिति में पशु प्रकट रूप से अनुक्रियाएँ करता है जबकि मनुष्य अप्रकट रूप से भी करता है। मानव आन्तरिक रूप से बहुत से उपाय समस्या समाधान के समय सोचता है तथा चिन्तन स्तर का प्रयोग में लाता है। इस प्रकार की क्रियाओं को जो चिन्तन स्तर पर होती है अप्रकट प्रयत्न एवं त्रुटि के रूप में कहा गया है।

(स) **व्यवहार खण्डों का समन्वय -** समस्या समाधान व्यवहार का समन्वित रूप करने पर भी सम्भव हो सकता है। थार्नडाइक के प्रयोग में बिल्ली द्वारा लीवर दबाकर दरवाजा खोलना उसके बाद दरवाजे से बाहर निकलकर भोजन प्राप्त कर लेना समन्वित व्यवहार का परिचायक है। हल तथा आसगुड ने इस सम्बन्धित रूप को मध्यस्थताकारी साहचर्यात्मक

क्रियातन्त्र कहा है। हल ने मायर (1929, 1932) के प्रयोगों के माध्यम से यह बताया है कि चूहे अनुक्रियाओं का समन्वय करके समस्या समाधान कर लेते हैं।

व्यवहारवादियों के अनुसार किसी समस्या का सामना होने पर प्राणी एक ही बार में आदत परिवार पद सोपान से कोई शुद्ध और सीधा मार्ग नहीं चुन लेता है बल्कि अप्रकट प्रयत्न एवं भूल स्वरूप की क्रियाएँ होने के पश्चात् ही कोई क्रिया चुनी जाती है। बहुत सी परिस्थितियों में प्राणी बिल्कुल नये ढंग से समस्या का समाधान करता है। गेस्टालट मनोवैज्ञानिक कोहलर का चिम्पांजी अपनी सूझबूझ द्वारा केले को छड़ी से खींचने में सफल हुआ। व्यवहारवादी मनोवैज्ञानिक इस प्रकार के व्यवहार की व्याख्या सामान्यीकरण के आधार पर करते हैं।

2. **गेस्टाल्टवादी सिद्धान्त -** यह सिद्धान्त व्यवहारवादी सिद्धान्त के विपरीत है। गेस्टाल्टवादी मनोवैज्ञानिकों, जिनमें वर्दीमर, कोफ्का तथा कोहलर आते हैं ने समस्या समाधान को प्रत्यक्षीकरण प्रक्रिया में आने वाले पुनर्गठन को जिम्मेदार माना है। इनका कथन है कि समस्या का जन्म उस समय होता है जब प्रारूप स्थिति का प्रत्यक्षीकरण सही रूप में नहीं कर पाता। जब उसे सही प्रत्यक्षीकरण हो जाता है तो उसकी समस्या का समाधान हो जाता है। इसी को गेस्टालटवादी सूझ-बूझ के नाम से जानते हैं। सूझ-बूझ जिसे अंतर्दृष्टि भी कहा गया है। लक्ष्य, बाधा, तनाव, संगठन और पुनर्गठन की क्रिया के बाद उत्पन्न होती है। अन्तदृष्टि यकायक सही उत्तर आना।

समस्या का समाधान अचानक होता है। यह सूझपूर्ण व्यवहार है। प्रयोज्य समस्यात्मक परिस्थिति में प्रयत्न एवं त्रुटि या असंगत व्यवहार नहीं बल्कि लक्ष्योन्मुख व्यवहार करता है। इनका मत है कि समाधान प्राप्त करने के लिए परिस्थिति की आवश्यकतानुसार पुनर्गठित करना पड़ता है - जैसे बॉक्स के बाहर रखे केले को अन्दर खींचने के लिए प्रयोज्य (सुल्तान वनमानुष) ने दोनों छड़ियों को जोड़ लिया और केला अन्दर खींच लिया। इस सिद्धान्त के मुख्य अधिग्रह इस प्रकार हैं। (कोहलर 1925, कोफ्का 1935)

1. **सीधे मार्ग द्वारा लक्ष्य तक पहुँचना -** कोहलर ने पहला निष्कर्ष दिया कि जब जीव समस्यात्मक परिस्थिति में होता है तो पहले वह लक्ष्य तक पहुँचने के लिए सबसे सीधे मार्ग का अनुसरण करता है। जब प्रयोज्य दृष्टि क्षेत्र में किसी वस्तु को देखता है तो वह उस तक जाने के लिए सीधा मार्ग अपनाता है और यदि उसके मार्ग में कोई बाधा उत्पन्न होती है तो वह अपना मार्ग बदलना चाहता है।

2. **तनाव का उत्पन्न होना -** गेस्टाल्ट सिद्धान्त की दूसरी मान्यता यह है कि जब लक्ष्य तथा जीव के बीच में बाधाएँ उत्पन्न होती है तो प्राणी में तनाव पैदा होता है। तनाव की मात्रा पर दो कारकों का स्पष्ट प्रभाव पड़ता है -

   1. लक्ष्य की जीव के लिए आवश्यकता एवं
   2. लक्ष्य वस्तु की।

3. **तनाव का वितरण -** जीव तथा लक्ष्य के बीच बाधा आ जाने से जीव में उत्पन्न तनाव जारी रहता है तथा इसका वितरण होता है। उत्पन्न तनाव प्राणी को लक्ष्य की ओर उन्मुख

करता है। यदि लक्ष्य समीप है तो तनाव एवं सक्रियता और भी बढ़ जाती है। परन्तु यदि लक्ष्य दूर या जटिल प्रतीत होता है तो प्रयोज्य में उदासीनता आ जाती है। इससे सक्रियता घट जाती है। इस प्रकार स्पष्ट है कि लक्ष्य की सन्निकटता से उसके प्रति प्रयास में तेजी आती है। परन्तु लक्ष्य के दूर होने पर प्रयोज्य प्रयासों में कमी कर सकता है, क्योंकि लक्ष्य प्राप्ति के बारे में उसका विश्वास घटने लगता है।

4. **तनाव में ह्रास -** समस्या के कारण उत्पन्न तनाव समाधान प्राप्त होने पर घटता है और अन्ततः समाप्त भी हो जाता है। इसे तनाव में ह्रास कहा जाता है। इससे प्राणी पुनः सामान्य स्थिति में आ जाता है। ऐसी दशा में गेस्टाल्ट मनोवैज्ञानिकों ने कुछ महत्वपूर्ण परिकल्पनाओं को प्रस्तुत किया है -

- यदि तनाव औसत स्तर का है तो सूझ के उत्पन्न होने की सम्भावना अधिक रहती है।
- यदि प्रयोज्य भौगोलिक वातावरण में अपनी स्थिति स्थिर करने के स्थान पर परिवर्तित करता रहता है तो पुनर्गठन के प्रक्रम पर धनात्मक प्रभाव पड़ता है अर्थात सूझ उत्पन्न होने की सम्भावना अधिक रहती है।
- सूझपूर्ण पुनर्संगठन के उपयोग में आने वाले नये मार्गों या यन्त्रों की सम्भावना कुछ तथ्य पर निर्भर करती है कि वे कितनी मात्रा में विद्यमान क्षणिक शक्तियों के प्रतिमानों के उपयुक्त होते हैं।
- विकसित प्राणियों में अन्तर्दृष्टि शीघ्र होती है।
- सीखने की आयु, अनुभव और बुद्धि का प्रभाव भी अन्तदृष्टि पर देखा गया है।

5. **अनुक्रिया में परिमार्जन का प्रतिरोध -** गेस्टाल्ट सिद्धान्त का यह अन्तिम अभिग्रह है। इसका अर्थ यह है कि प्रयोज्य को जिस अनुक्रिया से समस्या का समाधान प्राप्त होता है उसे वह स्थिर कर लेता है, अपने व्यवहार का अंग बना लेता है एवं उसमें परिवर्तन नहीं करना चाहता है क्योंकि आवश्यकता पड़ने पर वह उसका पुनः उपयोग करेगा।

उपर्युक्त विवेचनों के आधार पर समस्या के सूझपूर्ण समाधान के बारे में अग्रांकित निष्कर्षों का उल्लेख किया जा सकता है।

- प्रारम्भ में प्रयोज्य प्रयत्न एवं त्रुटि व्यवहार कर सकता है परन्तु इसी बीच समाधान अचानक उत्पन्न हो जाता है अर्थात इसमें आकस्मिकता की विशेषता पायी जाती है।
- सूझपूर्ण समाधान नियमित एवं उद्देश्यपूर्ण होता है।
- समाधान व्यवहारिक रूप में प्रदर्शित होने से पहले ही मानसिक स्तर का उत्पन्न हो चुका रहता है।
- सूझपूर्ण समाधान में नवीनता भी पाई जा सकती है।
- सूझपूर्ण समाधान प्रयोज्य की प्रजातीय विशेषता पर भी निर्भर करेगा।
- अन्तर्दृष्टि सिद्धान्त उच्च मानसिक क्षमताओं वाले प्राणियों की समस्याओं के समाधान का सिद्धान्त है।

3. **सूचना-प्रक्रमण सिद्धान्त -** सूचना-प्रक्रमण सिद्धान्त एक नवीन अवधारणा है । यह सिद्धान्त मनुष्य की सूचना प्रक्रमण सम्बन्धी योग्यता पर अधिक बल देता है तथा इसकी तुलना कम्प्यूटर कार्यक्रमों से करता है। इस सिद्धान्त के समर्थकों का विचार है कि समस्या समाधान के कार्य में यदि विकल्पों की संख्या कम कर दी जाये तो समाधान शीघ्रता से हो सकता है। इसके लिए कम्प्यूटर कार्यक्रम उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं।

   (Simon and Newell 1971, Simon, 1969) शोधकर्त्ताओं का विचार है कि कम्प्यूटर की ही भाँति मनुष्य का तान्त्रिक तन्त्र भी कार्य करता है । इनका कहना है कि व्यक्ति में सूचनाओं को संग्रहीत करने एवं उनकी छानबीन करने की योग्यता होती है । यह क्रिया समस्या समाधान में महत्वपूर्ण स्थान रखती है। इसी आधार पर समस्या समाधान के लिए कम्प्यूटर कार्यक्रमों को विकसित करने की योजनाएँ भी चल रही है । इन कार्यक्रमों में व्यवहारवादी एवं गेस्टाल्ट दोनों सिद्धान्तों के उपयोगी पहलुओं को भी सम्मिलित किया गया है।

12.3.6 कक्षा में समस्या समाधान -

मरसेल का कथन है - समस्या समाधान की विधि का शिक्षा में सर्वाधिक महत्व है।

छात्रों की शिक्षा में समस्या समाधान की विधि का महत्व इसके अनेक लाभों के कारण हैं। कुछ मुख्य लाभ इस प्रकार हैं -

1. यह छात्रों की रूचि को जागृत करता है।
2. यह उनमें स्वयं कार्य करने का आत्मविश्वास उत्पन्न करती है।
3. यह उनकी समस्याओं का समाधान करने के लिए वैज्ञानिक विधियों के प्रयोग का अनुभव प्रदान करती है।
4. यह उनको विचारात्मक और सृजनात्मक चिन्तन एवं तार्किक प्रशिक्षण देती है।
5. यह उनको अपने भावी जीवन की समस्याओं का समाधान करने का प्रशिक्षण देती है।

इन सभी लाभों के कारण क्रो एवं क्रो का सुझाव है - ''शिक्षकों को समस्या समाधान की वैज्ञानिक विधि में प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए। केवल तभी वे शुद्ध स्पष्ट और निष्पक्ष चिन्तन का विकास करने के लिए छात्रों का प्रदर्शन कर सकेंगे।''

12.3.7 छात्रों को समस्या समाधान में प्रशिक्षित करने के उपाय:-

समस्या समाधान की समस्याएँ हम दैनिक जीवन में प्राय: अनुभव करते हैं। यह व्यवहार तब प्रदर्शित होता है कि जब हम अपने अनुभवों के आधार पर किसी वर्तमान समस्या को हल नहीं कर पाते हैं। ऐसे में विद्यालय, परिवार की जिम्मेदारी बढ़ जाती है कि कैसे छात्रों को प्रशिक्षित करें। चिंतन प्रक्रिया की शुरूआत समस्या की उपस्थिति से होती है। इसके लिए सभी को संयुक्त प्रयास करने होंगे। छात्रों में चिंतन शक्ति के विकास और इसके प्राय: समस्या समाधान के लिए विद्यालयों को निम्नलिखित उपाय करने चाहिए।

- **भाषा विकास -** चिंतन का मूल आधार भाषा है। भाषा एवं विचार का अटूट सम्बन्ध है। विभिन्न अध्ययनों में यह देखा गया है कि जिन बच्चों का भाषा पर अच्छा अधिकार होता है वे उतने ही अच्छे तरीके से चिंतन करते हैं। अत: बच्चों की चिंतन शक्ति बढ़ाने के लिए सर्वप्रथम उन्हें भाषा का स्पष्ट ज्ञान कराना चाहिए।
- **स्पष्ट ज्ञान का विकास -** बालकों को जितना अधिक ज्ञान होगा और सही व स्पष्ट होगा उतना ही अच्छा इसके आधार पर चिंतन कर सकेंगे। अत: आवश्यक है कि प्रारम्भ से ही बच्चों को संवेदना तथा प्रत्यक्षीकरण के अवसर दिये जाये और उन्हें विभिन्न प्रत्ययों का स्पष्ट ज्ञान कराया जाये। ज्ञान के निरन्तर प्रयोग से ज्ञान स्पष्ट व स्थायी होता है।
- **समस्या समाधान विधि का प्रयोग -** चिंतन की शुरूआत प्राय: समस्या की शुरूआत के साथ होती है और समाधान के साथ समाप्त हो जाती है। अत: आवश्यक है कि बालकों में जैसे ही ज्ञान का विकास हो और उन्हें विभिन्न प्रत्यय स्पष्ट हो वैसे ही उन्हें समस्या समाधान विधि से पढ़ाया लिखाया जाये। इस विधि से सीखने पर उन्हें चिंतन करना पड़ेगा और वे समस्या समाधान करने में सक्षम होंगे।
- **प्रेरणा, रूचि एवं अवधान का प्रयोग -** बालकों में सीखने के लिए अभिप्रेरणा एवं रूचि जागृत की जाये, बच्चों में चिंतन शक्ति के विकास के लिए सबका विकास आवश्यक है।
- **विचारात्मक प्रश्नों का प्रयोग-** अध्यापकों को बालकों को कुछ भी पढ़ाते लिखाते समय विचारात्मक प्रश्न पूछने चाहिये, जिसका उत्तर देने के लिए वे बरबस विचार करेंगे और इस प्रकार वे धीरे-धीरे चिंतन की कला में प्रशिक्षित हो जायेंगे।
- **स्वतंत्र अभिव्यक्ति के अवसर -** बच्चे अपने दिन प्रतिदिन के जीवन में अनेक समस्याओं का सामना करते हैं, इन समस्याओं के सम्बन्ध में छात्रों को स्वयं सोचने के अवसर देने चाहिये। इससे उन्हें स्वतंत्र चिंतन का अवसर मिलता है जिससे वे चिंतनकला में प्रशिक्षित होते हैं।
- **रटने की आदत पर नियन्त्रण -** रटने की आदत पड़ जाने से बच्चे चिंतन नहीं सीख पाते। अत: शिक्षकों को बच्चों की इस आदत पर नियंत्रण करना चाहिए। वे जो कुछ पढ़े-सीखें, समझ के साथ पढ़े-सीखें।
- **सह पाठ्यचारी क्रियाओं का आयोजन -** कुछ पाठ्यचारी क्रियायें ऐसी होती हैं, जिसमें बालकों की रूचि होती है और जिनमें भाग लेने से उनमें चिंतन शक्ति का विकास होता है जैसे विचार विमर्श और वाद-विवाद प्रतियोगिता इनका आयोजन किया जाये।
- **उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य -** यदि परिवार एवं विद्यालयों में बालकों के ऊपर कुछ उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य सौंपे जायें जो उनकी क्षमता के अनुरूप हो, तो इन्हें पूरा करने में उनके सामने स्वाभाविक रूप से कुछ समस्यायें आयेगी, उन समस्याओं का समाधान वे स्वयं करेंगे। यही तो चिंतन की क्रिया है।
- समस्या के प्रति संवेदनशीलता विकसित करके।

- अन्य व्यक्तियों की अनुक्रियाओं के मूल्य निर्णय न करना।
- अनुमानों, उपकल्पनाओं व विचारों को व्यवस्थित रूप से परीक्षण करना।
- स्वयं अथवा समूह के द्वारा तैयार किये मानकों के सन्दर्भ में सम्भावित हलों का मूल्यांकन करना।
- आन्तरिक एवं बाह्य मानदण्ड को तय करना।
- समस्या एवं कार्य के उद्देश्य के अनुरूप मानदण्ड को तय करना।
- समस्या एवं कार्य के उद्देश्य के अनुरूप मानदण्ड से परिचित होना।
- आवश्यक मानदण्ड का निर्धारण करना।
- रचनात्मक आलोचना को विकसित करना।
- योजना के क्रियान्वयन में आने वाली बाधाओं को दूर करना।
- योजनाओं में संशोधन करना।
- कौतुहल, मस्तिष्क खुला, अन्वेषण की अभिवृत्ति, स्व पहल की आदत, जीवन के संघर्षों और चुनौतियों को झेलने के लिए मानसिक तत्परता।

अत: अध्यापकों को अपनी सूझ से इन व्यूह रचनाओं के साथ अन्य व्यूह रचनाओं को सम्मिलित कर चिंतन की प्रक्रिया को सार्थकता प्रदान करनी होगी।

12.4 समस्या समाधान के चरण:-

समस्या समाधान के कई तरह के चरण होते हैं। मनोवैज्ञानिकों द्वारा इस बिन्दू पर व्यक्त किये गये विचारों में विभिन्नता रही है। फिर भी यदि हम उन तथ्यों को ध्यान में रखें जो सब ने दिये हैं तो यह स्पष्ट होगा कि समस्या समाधान में निम्नांकित पाँच स्पष्ट कदम होते हैं।

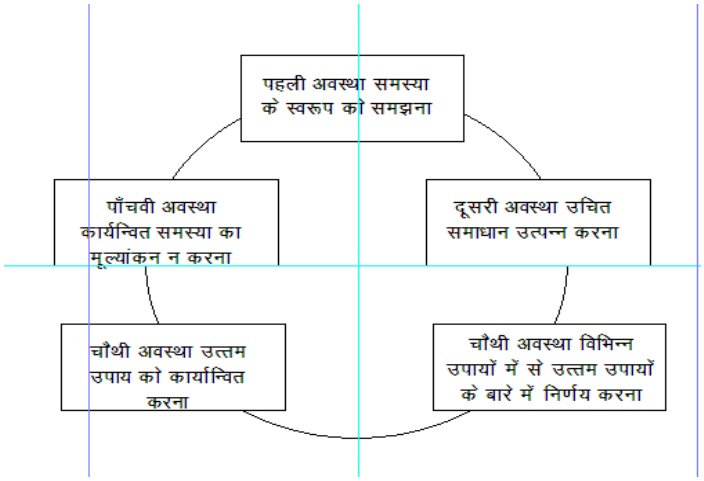

चित्र 1 - समस्या समाधान के प्रमुख चरण

- समस्या के स्वरूप को समझना।
- उचित समाधान उत्पन्न करना।
- समस्या समाधान के विभिन्न उपायों में से उत्तम उपाय के बारे में निर्णय करना।
- उत्तम उपाय को कार्यान्वित करना।
- कार्यान्वित समाधान का मूल्यांकन करना।

मनोवैज्ञानिकों ने समस्या समाधान हेतु इन पदों का उल्लेख किया है -

1. **समस्या के स्वरूप का ज्ञान -** समस्या, समाधान की पहली अवस्था समस्या के स्वरूप का समझने की होती है। इस अवस्था में समस्या को स्पष्ट रूप से परिभाषित किया जाता है। क्योंकि समस्या को ठीक-ठाक समझे बिना उसका समाधान प्राप्त नहीं किया जा सकता।
2. **परिभाषा सत्यापन की अवस्था -** दूसरी अवस्था में परिभाषा का सत्यापन किया जाता है। यदि परिभाषा ही गलत समझी गयी तो सारा समस्या गलत हो जायेगा। इस अवस्था में यह जाँच की जाती है कि परिभाषा को ठीक से समझा गया है या नहीं।
3. **समस्या को अपने स्मरण में रखना -** समस्या समाधान की तीसरी अवस्था में समस्या को सदैव अपनी स्मृति में रखा जाता है।
4. **परिकल्पनाओं का निर्माण -** समस्या समाधान की इस चौथी अवस्था में व्यक्ति परिकल्पनाओं का निर्माण करता है।
5. **मुख्य परिकल्पना का चयन -** निर्मित परिकल्पनाओं में से मुख्य परिकल्पना पर ज्यादा ध्यान केन्द्रित किया जाता है जिससे समस्या का समाधान आसानी से हल हो जाता है।
6. **चुनी गयी परिकल्पना का सत्यापन -** समस्या समाधान की छठवीं अवस्था में व्यक्ति चिंतन करता है कि क्या सभी परिकल्पनाओं जाँच ली गई है व सर्वश्रेष्ठ परिकल्पना का चयन किया गया है।
7. **चुनी गयी सर्वोत्तम परिकल्पना को कार्यान्वित करना -** यह अवस्था समस्या समाधान कर लेने की होती है।
8. **कार्यान्वित समाधान का मूल्यांकन करना -** इस अवस्था में व्यक्ति समस्या समाधान के परिणाम का मूल्यांकन करता है। इस अवस्था में व्यक्ति समस्या में सम्मिलित चरणों के गुण दोष परखता है तथा इन चरणों के महत्वपूर्ण तथ्यों को पुन: प्राप्ति संकेतों के रूप में संचित करके रखता है कि उनका प्रयोग अन्य समस्याओं के समाधान में भविष्य में कर सकें।

स्पष्ट हुआ है कि समस्या समाधान के कई चरण होते हैं। इनका उपयोग व्यक्ति ठीक से करे तो समस्या का समाधान करने में उसे काफी सफलता मिलती है।

12.5 सारांश

समस्या समाधान एक प्रमुख संज्ञानात्मक व्यवहार है। समस्या समाधान का अर्थ होता है बाधाओं को दूर करने तथा लक्ष्यों की ओर पहुँचने के लिए चिंतन प्रक्रियाओं का प्रयोग करना समस्या से तात्पर्य एक ऐसी अवस्था से होता है जिसमें व्यक्ति कुछ (लक्ष्य) चाहता है परन्तु वह आसानी से प्राप्त

नहीं होता है। समस्या समाधान को प्रभावित करने वाले कई कारक हैं। समस्या का समाधान करने के लिए व्यक्ति कई तरह की विधियों का उपयोग करता है। इनमें से दो विधि काफी महत्वपूर्ण है। यादृच्छिक अन्वेषण विधि और पश्चगामी अन्वेषण। समस्या समाधान के लिए मुख्य रूप से सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है ये है - समस्या समाधान का व्यवहारवादी दृष्टिकोण, गेस्टाल्टवादियों का अन्तर्दृष्टि सिद्धान्त और सूचना प्रक्रमण सिद्धान्त। छात्रों को कक्षा में तार्किक चिंतन के विकास के लिए प्रश्नोत्तर विधि, वाद-विवाद प्रतियोगिता की व्यवस्था करनी चाहिए। समस्या समाधान की दृष्टि से अध्यापकों को वैज्ञानिक विधि का प्रशिक्षण देना चाहिए।

12.6 शब्दावली

- अवलोकित - जो देखी गई है।
- अन्तर्दृष्टि - अन्तर्ज्ञान।
- तर्कणा - क्रमबद्ध रूप से चिंतन का तर्क-वितर्क करना।
- पदानुक्रम - क्रमश: अर्थात एक निश्चित क्रम।
- सत्यापन - किसी वस्तु या घटना को सत्य साबित करना।
- अन्वेषण - खोजना
- संग्रहण एकत्रित या इकट्ठा करना।
- संज्ञानात्मक विकास - बौद्धिक विकास अर्थात - चिंतन, तर्क, विश्लेषण इत्यादि की क्षमताओं का विकास।

12.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

नीचे दिये हुए कथनों में जो कथन सही है, उनके आगे (☐) का तथा जो गलत है उनके सामने गलत (☐) का चिन्ह लगाये।

1. चिन्तन प्रारम्भ होने के लिए समस्या आवश्यक है। ( )
2. समस्या समाधान वह प्रतिमान है जिसमें तार्किक चिंतन निहित होता है। ( )
3. समस्या समाधान के लिए व्यक्ति ऐतिहासिक विधि का प्रयोग करता है। ( )
4. समस्या समाधान की विधि का शिक्षा में सर्वाधिक महत्व है। ( )
5. यादृच्छिक अन्वेषण विधि क्रमबद्ध एवं अक्रमबद्ध दो प्रकार की होती है। ( )

उत्तर (1) सही (2) सही (3) गलत (4) सही (5) सही

12.8 निबंधात्मक प्रश्न

1. समस्या समाधान के व्यवहारवादी सिद्धान्त का वर्णन कीजिए।
2. समस्या समाधान के गेस्टालटवादी सिद्धान्त का वर्णन कीजिए।
3. कक्षा में छात्रों को समस्या समाधान हेतु प्रशिक्षित करने के उपायों का वर्णन करे।
4. यादृच्छिक अन्वेषण विधि को समझाइये।
5. समस्या समाधान में प्रयुक्त चरणों का वर्णन कीजिए।

12.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची -

- भारद्वाज, शुभा, एस एवं सिंह, आर.एस. (2012) - मूल मनोवैज्ञानिक प्रक्रियायें, अग्रवाल पब्लिकेशन
- सिंह, अरूण कुमार (2006) - उच्चतर सामान्य मनोविज्ञान, मोतीलाल बनारसीलाल, बंगाली रोड़ दिल्ली
- सिंह, अरूण कुमार (2006) - संज्ञानात्मक मनोविज्ञान
- श्रीवास्तव, रामजी (2003) - संज्ञानात्मक मनोविज्ञान
- शर्मा, अंजना एवं शर्मा, एस.एन. (2007) - आधुनिक सामान्य मनोविज्ञान के आधार |

इकाई-13

अभिप्रेरणा (Motivation)

प्रकृति, प्रकार, आवश्यकता, प्रणोद और प्रोत्साहन, जैविक अभिप्रेरक और सामाजिक अभिप्रेरक, अभिप्रेरणा के सिद्धान्त

(Nature, Kind, Needs, Drives & Incentives, Biogenic and Sociogenic Motives, Theories of Motivation)

इकाई की रूपरेखा

13.1 प्रस्तावना

13.2 उद्देश्य

13.3 अभिप्रेरणा की परिभाषा

13.4 अभिप्रेरणा का स्वरूप

13.5 अभिप्रेरणा के मौलिक सम्प्रत्यय

13.5.1 आवश्यकता

13.5.2 प्रणोद

13.5.3 प्रोत्साहन या लक्ष्य

13.6 अभिप्रेरणा के प्रकार

13.6.1 अभिप्रेरणा के जन्मजात अभिप्रेरक

13.6.2 भूख अभिप्रेरक

13.6.3 प्यास अभिप्रेरक

13.6.4 यौन या काम अभिप्रेरक

13.6.5 नींद अभिप्रेरक

13.6.6 मल-मूत्र त्याग अभिप्रेरक

13.6.7 अभिप्रेरणा के सामाजिक या अर्जित अभिप्रेरक

13.6.8 उपलब्धि की आवश्यकता

13.6.9 संबंधन की आवश्यकता

13.6.10 स्तर एवं सत्ता की आवश्यकता

13.6.11 आक्रामकशीलता की आवश्यकता

13.6.12 अनुमोदन आवश्यकता

13.7 अभिप्रेरणा के सिद्धान्त

13.7.1 मूलप्रवृत्ति सिद्धान्त
13.7.2 प्रणोद सिद्धान्त
13.7.3 प्रोत्साहन सिद्धान्त
13.7.4 विरोधी-प्रक्रिया सिद्धान्त
13.7.5 आदर्श-स्तर सिद्धान्त
13.7.6 आवश्यकता-पदानुक्रम सिद्धान्त
13.7.7 वेक्टर-कर्षण-शक्ति सिद्धान्त
13.7.8 लक्ष्य-निर्धारण सिद्धान्त
13.7.9 आत्म या स्व निर्धारण सिद्धान्त
13.8 सारांश
13.9 बोध प्रश्न
13.10 संदर्भ सूची

13.1 प्रस्तावना

अभिप्रेरणा का मनोविज्ञान एक तरह का गत्यात्मक मनोविज्ञान है। दिन प्रतिदिन की जिंदगी में हम लोग अनेक प्रकार के काम करते हैं। हम इन कार्यों को क्यों करते हैं ? शायद इसलिए करते हैं क्योंकि इसके पीछे कोई न कोई अभिप्रेरणा अवश्यक होता है। अभिप्रेरणा के कार्य क्षेत्र में समय-समय पर कई तरह की विचारधाराएं सम्मिलित की गई। इनमें शारीरिक परिवर्तन जो भूख, प्यास, यौन आदि को सम्मिलित किया गया है। इसमें मानसिक तत्परताएं अभिवृद्धियां जैसे संज्ञानात्मक क्रियाएं भी सम्मिलित हैं।

13.2 उद्देश्य

अभिप्रेरणा एक बल है एक आन्तरिक अवस्था है जो व्यक्ति की क्रियाओं को उत्पन्न करने तथा व्यवहार को एक खास दिशा में निर्देशित करती है जिससे व्यक्ति अपने लक्ष्य को प्राप्त करने में सहायक होता है। किस प्रकार व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं को जानकर उन्हें प्रणोद द्वारा लक्ष्य तक पहुंचाता है। व्यक्ति में जन्मजात तथा अर्जित अभिप्रेरक पाये जाते हैं। इनका कार्य क्या है, इसी को जानने के उद्देश्य से अभिप्रेरणा के विभिन्न सिद्धान्तों का वर्णन आगे किया गया है। इन सबकी जानकारी इस अध्याय में दी जा रही है।

13.3 अभिप्रेरणा की परिभाषा

अभिप्रेरणा से सामान्य अर्थ वैसी अवस्था से होता है जो व्यक्ति को कार्य करने के लिए प्रेरित करता है। अभिप्रेरणा का सही अर्थ समझने के लिए मनोवैज्ञानिकों के विचारों को उपस्थित कर रहे हैं।

मार्गन, किंग, विस्ज तथा स्कोपलर के अनुसार, ''अभिप्रेरणा से तात्पर्य एक प्रेरक तथा कर्षण बल से होता है जो खास लक्ष्य की ओर व्यवहार को निरन्तर ले जाता है।''

सिकारेल्ली तथा मेयर के अनुसार, ''अभिप्रेरणा एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा क्रियाएं प्रारम्भ होती है, निर्देशित होती हैं तथा सतत् चलती रहती हैं, ताकि दैहिक या मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं या इच्छाओं को पूरा की जा सके।''

उपरोक्त मनोवैज्ञानिक के विचारों का निष्कर्ष है कि अभिप्रेरण व्यक्ति की एक ऐसी आन्तरिक अवस्था को कहा जा सकती है जो उसमें कुछ क्रियाएं उत्पन्न करके उसके व्यवहारों को एक खास दिशा में उद्देश्य की प्राप्ति की ओर अग्रसरित करता है।

13.4 अभिप्रेरणा का स्वरूप

1. अभिप्रेरणा व्यक्ति की एक आन्तरिक अवस्था को कहा जाता है। यह आन्तरिक अवस्था काल्पनिक होती है। अतः इसे व्यक्ति के शरीर के भीतर ठोस रूप से देखा नहीं जा सकता है।
2. अभिप्रेरणा में जो आन्तरिक अवस्था होती है उससे व्यक्ति में कुछ क्रियाएं उत्पन्न होती है।
3. अभिप्रेरणा में उत्पन्न क्रियाएं एक निश्चित दिशा में यानी उद्देश्य की प्राप्ति की ओर बढ़ता है। इसका मतलब यह हुआ कि प्रत्येक अभिप्रेरणा में एक निश्चित लक्ष्य होता है जिसकी ओर व्यक्ति का व्यवहार प्रेरित होता है।
4. अभिप्रेरित व्यवहार उत्पन्न होने के बाद उद्देश्य की प्राप्ति तक वह जारी रहता है। एक उदाहरण देकर अभिप्रेरणा के स्वरूप की व्याख्या हम इस प्रकार से कर सकते हैं:-

मान लीजिए कि आपको भूख लगी है और किसी होटल में जाकर भोजन कर अपनी भूख को मिटाते हैं। यहां भूख व्यक्ति की आंतरिक अवस्था है जिसे बाहर से देखा नहीं जा सकता है (पहला कारक)। इसे मनोवैज्ञानिकों ने आवश्यकता की संज्ञा दी है। यह आन्तरिक अवस्था व्यक्ति में कुछ विशेष क्रियाएं जैसे होटल ढूंढना, होटल में जाकर भोजन के बारे में पूछताछ करना आदि उत्पन्न करता है (कारक 2)। इस तनाव एवं क्रियाशीलता की अवस्था को मनोवैज्ञानिकों ने प्रणोद की संज्ञा दी है। व्यक्ति द्वारा किये गये ये सभी क्रियाएं कुछ ऐसी होती हैं जो एक निश्चित दिशा में एक निश्चित लक्ष्य की प्राप्ति की ओर ले जा जाता है (कारक 3)। इस उदाहरण में निश्चित लक्ष्य भोजन की प्राप्ति है। इसे मनोवैज्ञानिकों ने प्रोत्साहन की संज्ञा दी है। व्यक्ति में क्रियाशीलता की अवस्था तब तक पायी जाती है जब तक कि उसे भोजन प्राप्त नहीं हो जाता है। इस तरह से मनोवैज्ञानिकों ने अभिप्रेरणा के स्वरूप की व्याख्या तीन मूल तत्वों द्वारा की है- आवश्यकता, प्रणोद तथा प्रोत्साहन। इसे मनोवैज्ञानिकों ने आवश्यकता-अन्तर्नोद-प्रोत्साहन सूत्र भी कहा है।

13.5 मौलिक अभिप्रेरणात्मक सम्प्रत्यय

मनोवैज्ञानिकों ने अभिप्रेरणात्मक चक्र के सम्प्रत्यय का प्रतिपादन किया है। इस चक्र में मुख्य तीन तत्व है- आवश्यकता, प्रणोद तथा प्रोत्साहन।

13.5.1 आवश्यकता

जब प्राणी के शरीर में किसी चीज की कमी या अति की अवस्था किसी कारण से उत्पन्न हो जाती है, तो इसे हम आवश्यकता की संज्ञा देते हैं। वुडवर्थ तथा स्लौशबर्ग ने आवश्यकता को परिभाषित करते हुए कहा है, ''कमी या अति की शारीरिक अवस्था को आवश्यकता कहा जाता है।'' व्यक्ति

को जब प्यास लगता है तो उसके शरीर की कोशिकाओं में पानी की कमी हो जाती है। अतः यहां प्यास की आवश्यकता पानी की कमी के कारण उत्पन्न हुई। शरीर में कुछ ऐसे पदार्थ अधिक मात्रा में जमा हो जाते हैं, यदि उन्हें बाहर नहीं निकाला जाए, तो इससे प्राणी का जीवन संकट में पड़ सकता है। जैसे पेशाब, पैखाना आदि।

13.5.2 प्रणोद

सार्टेन ने प्रणोद को परिभाषित करते हुए कहा है, ''प्रणोद वैसे तनाव या क्रियाशीलता की अवस्था को कहा जाता है जो किसी आवश्यकता (ऊतक या निष्कासन) द्वारा उत्पन्न होता है।''जब भी व्यक्ति में प्रणोद उत्पन्न होता है। भूख की आवश्यकता से भूख प्रणोद, प्यास की आवश्यकता से प्यास प्रणोद तथा काम की आवश्यकता से काम प्रणोद उत्पन्न होता है। कभी-कभी ऐसा भी देखा गया है कि आवश्यकता तथा प्रणोद को लोग एक-दूसरे के लिए प्रयोग करते हैं। परन्तु ये दोनों पद समानान्तर अवश्य है, परन्तु एक नहीं है।

13.5.3 प्रोत्साहन या लक्ष्य

अभिप्रेरणात्मक चक्र का तीसरा कदम प्रोत्साहन का होता है। लक्ष्य दो तरह के होते हैं - धनात्मक तथा ऋणात्मक। धनात्मक लक्ष्य वैसे लक्ष्य को कहा जाता है जिसे व्यक्ति प्राप्त करना चाहता है क्योंकि उसे प्राप्त करने से ही उसकी आवश्यकता की पूर्ति हो सकती है। भोजन, पानी, लैंगिक क्रिया आदि धनात्मक लक्ष्य के उदाहरण हैं। कुछ लक्ष्य ऐसे होते हैं जिनसे व्यक्ति दूर रहना चाहता है क्योंकि इससे दूर रहने से ही उसकी आवश्यकता की पूर्ति होती है। जैसे-दण्ड, आंखों पर सीधे पड़ने वाले तीव्र रोशनी, अत्यधिक गर्मी तथा अत्यधिक ठंड आदि कुछ ऋणात्मक लक्ष्य के उदाहरण है।

13.6 अभिप्रेरणा के प्रकार

मनोवैज्ञानिकों ने अभिप्रेरक के मुख्य दो प्रकारों का वर्णन किया है-

(अ) जन्मजात अभिप्रेरक

(ब) अर्जित अभिप्रेरक

13.6.1 अभिप्रेरणा के जन्मजात अभिप्रेरक

जन्मजात अभिप्रेरक वैसे अभिप्रेरक को कहा जाता है जो व्यक्ति में जन्म से ही मौजूद होते हैं। इन अभिप्रेरकों के अभाव में प्राणी का जीवित रहना संभव नहीं है। इन अभिप्रेरकों को शारीरिक अभिप्रेरक या जैविक अभिप्रेरक भी कहा जाता है। जैविक अभिप्रेरक की विशेषताएं निम्नांकित चार है:-

I. अभिप्रेरक प्राणी में जैविक मांग अर्थात क्षुब्ध आंतरिक संतुलन के प्रति एक प्रतिक्रिया उत्पन्न करे या करता हो।
II. जैविक मांग अर्थात क्षुब्ध आन्तरिक संतुलन के प्रति की गई प्रतिक्रिया से प्राणी में एक उत्तेजित अवस्था उत्पन्न होता हो।
III. अभिप्रेरणा की अभिव्यक्ति में एक ही प्रजाति के सभी सदस्यों में समरूपता हो।
IV. अभिप्रेरक अर्जित नहीं हो।

13.6.2 भूख अभिप्रेरक

बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में किए गए अध्ययनों से स्पष्ट हो गया था कि भूख की उत्पत्ति अमाशय की मांसपेशियों में संकुचन से होती है। जब अमाशय खाली होता है, तो इसमें संकुचन तेजी से होता है। फलस्वरूप व्यक्ति को पेट में दर्द महसूस होता है और इसके साथ भूख का भी अनुभव होता है। इस तरह के दर्द को भूख-दर्द भी कहा जाता है क्योंकि अमाशय में संकुचन के परिणामस्वरूप भूख-दर्द होता है। इसे मनोवैज्ञानिकों ने भूख का स्थानीय उद्दीपक सिद्धान्त कहा है। परन्तु बाद में मनोवैज्ञानिकों ने भूख के इस स्थानीय उद्दीपक सिद्धान्त को गलत साबित कर दिया है।

भूख में एक महत्वपूर्ण कारक इन्सुलिन अनुक्रिया को माना गया है। इन्सुलिन तथा ग्लूकोन दो ऐसे हारमोन्स हैं, जिनका स्राव पैनक्रियाज द्वारा होता है और इनसे रक्त में चीनी की मात्रा के साथ-ही-साथ वसा, प्रोटीन तथा कार्बोहाइड्रेट का स्तर का नियंत्रण होता है। इन्सुलिन से रक्त में चीनी का स्तर कम हो जाता है जबकि ग्लूकोज से रक्त में चीनी की मात्रा बढ़ जाती है। जब व्यक्ति भोजन करना प्रारंभ कर देता है, तो इन्सुलिन सामान्यतः अधिक मात्रा में निकलता है जिससे व्यक्ति में और अधिक भूख का अनुभव होता है क्योंकि रक्त में चीनी की मात्रा में गिरावट आ जाती है। जिस भोजन में कार्बोहाइड्रेट की मात्रा अधिक होती है उनसे इन्सुलिन की मात्रा और भी बढ़ जाती है क्योंकि इससे बहुत अधिक मात्रा में ग्लूकोज अर्थात रक्त में चीनी की मात्रा उत्पन्न हो जाती है तथा अधिक इन्सुलिन निकलता है जिससे फिर रक्त में चीनी की मात्रा कम हो जाती है, भूख बढ़ जाती है।

13.6.3 प्यास अभिप्रेरक

प्यास अभिप्रेरक में मुंह के भीतर गीलेपन में अत्यधिक कमी, यानी मुंह सुखने से हमें प्यास लगती है। इसे प्यास का स्थानीय सिद्धान्त कहा गया जिसका प्रतिपादन कैन्नन ने किया था। परन्तु बाद में कई मनोवैज्ञानिकों ने जैसे स्टीग्गेरडा, ग्रीगेरसन तथा मौन्टगोमेरी ने अपने-अपने प्रयोगों के आधार पर यह साबित कर दिया है कि मुंह में सूखापन प्यास का कारण नहीं बल्कि मात्र एक प्रारम्भ कारक के रूप में कार्य करता है।

इपस्टीन तथा उनके सहयोगियों ने प्यास की व्याख्या शारीरिक क्रियाओं के रूप में करने के लिए एक विशेष सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है जिसे डब्ल-डिपलेसन सिद्धान्त कहा गया है। इस सिद्धान्त के अनुसार प्यास दो शारीरिक क्रियाओं का परिणाम है- एक है कोशिकाओं में पानी की कमी हो जाना तथा दूसरा है रक्त की मात्रा में कमी हो जाना। जब शरीर से अत्यधिक पानी निकल जाता है या जरूरत के अनुसार उसे पानी नहीं मिलता है, तो शरीर की कोशिकाओं का भीतरी भाग भी सूखने लगता है। ऐसी स्थिति में हाइपोथैलमस में एक विशेष प्रकार की तंत्रिका कोशिका होती है जिसे 'औसमोरिस्पेटर' कहा जाता है, उत्तेजित होकर मस्तिष्क के उच्च केन्द्रों को स्नायु प्रवाह भेजकर इस बात की सूचना देता है कि शरीर में पानी की कमी हो गयी है जिससे व्यक्ति को प्यास का अनुभव होता है। शरीर की कोशिकाओं में पानी की कमी की स्थिति को कोशिकीय निर्जलन की संज्ञा दी जाती है। जब शरीर से पानी अत्यधिक मात्रा में निकल जाता है या किसी कारणवश उसे जरूरत के अनुसार पानी नहीं मिलता है तो वैसी परिस्थिति में शरीर में खून की मात्रा में कमी आ जाती है जिससे रक्त चाप में कमी आ जाती है रक्त चाप मे कमी होने से वृक्क से एक विशेष प्रकार का तरल पदार्थ जिसे रेनिन कहा जाता है, निकलता है जिसके खून में मिलने से एक विशेष पदार्थ जिसे एनगियोटेनसिन-II कहा जाता है, बनता है। एनगियोटेनसिन-II के बनने से व्यक्ति में प्यास का

अनुभव होता है और वह पानी पीना चाहता है। इस तरह से डब्ल-डिपलेसन सिद्धान्त में प्यास का दो शारीरिक आधार बतलाया गया है- कोशिकीय निर्जलन तथा हाईपोभोलोमिया। हमें प्यास का अनुभव इन दोनों कारकों के आधार पर होता है।

13.6.4 यौन या काम अभिप्रेरक

यौन या काम तीसरा प्रमुख जन्मजात या जैविक अभिप्रेरक है। काम अभिप्रेरक की व्याख्या विशेषज्ञों ने दो तरह के शारीरिक आधारों के रूप में किया है -

(क) हार्मोनल कारक तथा

(ख) मस्तिष्क सम्बन्धी कारक।

(क) हार्मोनल कारक - स्त्री के यौन ग्रन्थि को डिम्बग्रन्थि तथा पुरुष के यौन ग्रन्थि को अण्डग्रन्थि कहते हैं। इन यौन ग्रन्थियों तथा एड्रीनल ग्रन्थि से स्त्री हार्मोन्स तथा पुरुष हार्मोन्स निकलते हैं। स्त्री हार्मोन्स में एस्ट्रोजेनस प्रमुख है तथा पुरुष हार्मोन्स में टेस्टोस्ट्रोन मुख्य है। स्त्री हारमोन्स तथा पुरुष हार्मोन्स दोनों ही में अर्थात स्त्री में भी तथा पुरुष में भी पाये जाते हैं। अन्तर सिर्फ मात्रा का होता है। स्त्री में स्त्री हार्मोन्स पुरुष हार्मोन्स की अपेक्षा अधिक पाया जाता है। उसी तरह से पुरुष हार्मोन्स स्त्री हार्मोन्स की अपेक्षा अधिक पाया जाताहै।

(ख) मस्तिष्क सम्बन्धी कारक - यौन अभिप्रेरणा में हाइपोथैलमस की अहम भूमिका बतलायी गयी है। हाइपोथैलमस पीयूष ग्रन्थि को नियंत्रित करता है जिससे एक विशेष तरह का हार्मोन्स का स्राव होता है जिसे गोनाडोट्रोपिन्स कहा जाता है।

13.6.5 नींद अभिप्रेरक

प्राणी के लिए नींद चैथा महत्वपूर्ण जन्मजात अभिप्रेरणा है। नींद दो प्रकार के हैं -

1. तीव्र आंख गतिक नींद
2. अतीव्र गतिक नींद

तीव्र आंख गतिक नींद का पहला अध्ययन एसरीनस्काई तथा क्लिटमैन ने किया। इसमें व्यक्ति को गहरी नींद नहीं आती है और वह प्रायः भिन्न-भिन्न प्रकार के स्वप्न देख करता है। इस तरह की नींद में व्यक्ति आधा सोता है तथा आधा जागता है तथा उसके नेत्र गोलक में तीव्र गति होते पाया जाता है। क्लिटमैन का कहना है कि सामान्य नींद का 20 प्रतिशत नींद ऐसी ही होता है। तीव्र आंख गतिक नींद को स्वप्न नींद भी कहा जाता है।

मनोवैज्ञानिकों ने हाईपोथैलमस, थैलमस तथा रेटिकुलर फारमेशन को नींद का नियंत्रण कक्ष माना है। अनेक अध्ययन से पता चलता है कि मस्तिष्क के इन केन्द्रों में किसी प्रकार की क्षति या घाव होने से व्यक्तियों की नींद में बाधा पहुंचती है। लेफ्रैनकोईस के अनुसार यदि व्यक्ति लम्बे समय तक किसी कारण से नहीं सो पाता है, तो उसमें विभ्रम, बौद्धिक आक्षमता तथा अन्य असामान्य लक्षण दिखाई पड़ने लगते हैं।

13.6.6 मल-मूत्र त्याग अभिप्रेरक

मल-मूत्र त्याग अभिप्रेरणा भी एक जैविक अभिप्रेरक है जिससे प्रेरित होकर व्यक्ति पेशाब या पैखाना करता है। फ्रायड प्रथम ऐसे मनोवैज्ञानिक थे जिन्होंने मल-मूत्र अभिप्रेरक के महत्व को व्यक्तित्व के शीलगुणों के निर्माण में काफी महत्वपूर्ण बतलाया है। इनका कहना था कि जिन बच्चों में मल-मूत्र को रोकने की प्रवृत्ति अधिक होती है, वैसे बच्चों में वयस्क होने पर जिद्दी तथा कंजूसी का गुण अधिक विकसित हो जाता है तथा दूसरी तरफ जिन बच्चों में मल-मूत्र नियमित रूप से करने के लिए माता-पिता द्वारा बाध्य किया जाता है, बड़े होने पर उनमें क्रूरता तथा आक्रमणशीलता का शीलगुण तुलनात्मक रूप से अधिक विकसित होता है।

13.6.7 अर्जित अभिप्रेरक

अर्जित अभिप्रेरक वैसे अभिप्रेरक को कहा जाता है जो व्यक्ति में जन्म से तो मौजूद नहीं होता है परन्तु जिसे व्यक्ति अपने जीवन काल में सामाजिक रूप से अपने को श्रेष्ठ बनाए रखने के लिए सीखता है। इन अभिप्रेरकों को सामाजिक इसलिए कहा जाता है क्योंकि व्यक्ति उन्हें सामाजिक परिस्थितियों जैसे परिवार, पड़ौसियों, स्कूल, कॉलेज के साथियों आदि के बीच रहकर सीखता है। प्रमुख सामाजिक अभिप्रेरक निम्न है-

1. उपलब्धि की आवश्यकता
2. संबंधन की आवश्यकता
3. स्तर एवं सत्ता की आवश्यकता
4. आक्रमणशीलता की आवश्यकता
5. अनुमोदन आवश्यकता

13.6.8 उपलब्धि की आवश्यकता

उपलब्धि की आवश्यकता से तात्पर्य एक ऐसे अभिप्रेरक से होता है जिससे प्रेरित होकर व्यक्ति अपने कार्य को इस ढंग से करता है कि उसे उसमें अधिक-से-अधिक सफलता मिल सके। मन, फर्नाल्ड व फर्नाल्ड ने उपलब्धि अभिप्रेरक को परिभाषित करते हुए कहा है, ''उपलब्धि अभिप्रेरक से तात्पर्य श्रेष्ठता के खास स्तर प्राप्त करने की इच्छा से होता है।'

उपलब्धि अभिप्रेरक का मैकक्लिलैण्ड तथा उनके सहयोगियों द्वारा विस्तृत रूप से अध्ययन किया गया है एवं परिणाम बताए-

I. ऐसे व्यक्ति जिनमें उपलब्धि अभिप्रेरक अधिक होता है, साधारण कठिनाई वाले कार्य को करना अधिक पसंद करते हैं क्योंकि इस पर सफलता निश्चित होती है।
II. ऐसे व्यक्ति जिनमें उपलब्धि अभिप्रेरक अधिक होता है, वैसे कार्यों को करना अधिक पसंद करते हैं जिसके आधार पर उनकी तुलना अन्य व्यक्तियों के साथ आसानी से किया जा सके।
III. अधिक उपलब्धि अभिप्रेरक वाले व्यक्ति वैसे कार्यों को करना अधिक पंसद करते हैं जिनके द्वारा उनके व्यक्तिगत गुणों जैसे बुद्धि आदि की अभिव्यक्ति हो तथा परिणामों पर नियंत्रण हो।

13.6.9 संबंधन की आवश्यकता

संबंधन की आवश्यकता या जिसे सामुदायिकता भी कहा जाता है। समाज में या दूसरों के साथ रहने की प्रवृत्ति को सामुदायिकता की संज्ञा दी गयी है। विटेकर के अनुसार, ''जीवों में अपनी जातियों के साथ समूह में रहने की प्रवृत्ति को सामुदायिकता या संबंधन व्यवहार की संज्ञा दी जाती है।'' अतः संबंधन की आवश्यकता में व्यक्ति या पशु अपने समुदाय के लोगों के साथ रहना चाहता है। इस तरह के आवश्यकता की संतुष्टि होने पर प्राणी का सामाजिक जीवन अधिक मजबूत हो जाता है। इसकी पुष्टि असीदा के अध्ययन द्वारा की गई।

13.6.10 सत्ता की आवश्यकता

सत्ता की आवश्यकता भी व्यक्ति की एक प्रमुख सामाजिक आवश्यकता है जिसके द्वारा व्यक्ति अन्य व्यक्तियों पर अपना प्रभुत्व बनाए रखते हैं। ऐसे व्यक्ति अन्य व्यक्तियों को धमकी देकर या प्रार्थना करके अपनी इच्छानुसार कार्य करवाने में समर्थ हो जाते हैं। फेडमैन के अनुसार, ''दूसरे के व्यवहार को नियंत्रित करने तथा उसे अपने ढंग से मोड़ने की क्षमता को सामाजिक सत्ता कहा जाताहै।

होयोन्गा तथा होयेन्गा ने अपने कई अध्ययनों के आधार पर यह बतलाया कि वैसे लोग जिसमें सत्ता अभिप्रेरक अधिक होता है, वे इस अभिप्रेरक की अभिव्यक्ति निम्नांकित ढंग से करते हैं

I. वे निम्न सामाजिक स्तर के लोगों के प्रति ऐसे लोग अधिक आवेगशील तथा आक्रमणशील व्यवहार दिखलाते हैं।
II. ऐसे लोग किसी संस्थान में ऐसा पद ग्रहण करना चाहते हैं जहां सेवे आसानी से दूसरों पर नियंत्रण रख सके।

13.6.11 आक्रमणशीलता की आवश्यकता

आक्रमणशीलता एक प्रमुख सामाजिक अभिप्रेरक है जिसमें एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को शाब्दिक रूप से या शारीरिक रूप से चोट पहुंचाने की कोशिश करता है। डोलार्ड तथा उनके सहयोगियों ने अपने प्रयोग में बताया कि आक्रमशीलता जन्मजात नहीं बल्कि कुण्ठा से उत्पन्न होती है। इसके अनुसार सभी तरह की कुण्ठा द्वारा आक्रमणशीलता उत्पन्न नहीं होती है। आक्रमणशीलता उत्पन्न करने के लिए कुण्ठा में दो गुणों का होना अनिवार्य है-

1. कुण्ठा की मात्रा तीव्र हो। 2. कुण्ठा अनुचित हो।

कुण्ठा के अलावा आक्रमणशीलता उत्पन्न होने के प्रमुख कारक हैं-

I. बेरोन के अध्ययन के अनुसार वातावरण में उपस्थित अत्यधिक तापक्रम, डौनरस्टीन तथा विलसन के अध्ययन के अनुसार तीव्र आवाज तथा फ्रीडमैन के अध्ययन के अनुसार भीड़-भाड़ से भी व्यक्ति में आक्रामक अभिप्रेरक का जन्म होता है।
II. गीन ने कई अध्ययन ऐसे किए हैं जिनमें बच्चों को दूरदर्शन तथा फिल्मों में आक्रमणशीलता दृश्य दिखलाया गया जिसके बाद देखा गया कि उनमें आक्रमणशीलता की मात्रा बढ़ गयी।

13.6.12 अनुमोदन की आवश्यकता

अनुमोदन की आवश्यकता से तात्पर्य व्यक्ति द्वारा दूसरों से धनात्मक मूल्यांकन यानी, प्रतिष्ठा, प्रशंसा आदि पाने की उम्मीद से होता है। इस तरह का अभिप्रेरक बच्चों तथा किशारों में अधिक होता है।

वयस्क लोगों मे भी इस तरह का अभिप्रेरक पाया जाता है परन्तु वे लोग कुछ हद तक इसे छिपा लेते है। क्राउनी तथा मारलो ने अपने भिन्न-भिन्न अध्ययनों के आधार पर अनुमोदन अभिप्रेरक के बारे में तथ्य प्रस्तुत किया-

I. ऐसे लोग जिनमें अनुमोदन अभिप्रेरक अधिक होता है, वे समूह के नियमों एवं आदर्शों के समरूप व्यवहार अधिक करते हैं।

II. अधिक तीव्र अनुमोदन अभिप्रेरक की उत्पत्ति अपने अन्दर के आत्म-सम्मान के निम्न स्तर को उंचा करने की इच्छा के फलस्वरूप होता है।

13.7 अभिप्रेरक के मुख्य उपागम या सिद्धान्त

मनोवैज्ञानिकों ने अभिप्रेरक की व्याख्या करने के लिए कई सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है। इन सिद्धान्तों में नौ प्रमुख हैं -

1. मूलप्रवृत्ति सिद्धान्त
2. प्रणोद सिद्धान्त
3. प्रोत्साहन सिद्धान्त
4. विरोधी-प्रक्रिया सिद्धान्त
5. आदर्श-स्तर सिद्धान्त
6. आवश्यकता-पदानुक्रम सिद्धान्त
7. वेक्टर-कर्षण-शक्ति सिद्धान्त
8. लक्ष्य-निर्धारण सिद्धान्त
9. आत्म या स्व निर्धारण सिद्धान्त

13.7.1 मूलप्रवृत्ति सिद्धान्त

बीसवीं शताब्दी के प्रारंभिक वर्षों में अभिप्रेरणा के मूलप्रवृत्ति सिद्धान्त का प्रादुर्भाव हुआ। मूलप्रवृत्ति से तात्पर्य प्राणी को उत्तेजित किये जाने पर एक खास ढंग से अनुक्रिया करने की जन्मजात प्रवृत्ति से होता है। विलियम मैकड्युगल ने इस सिद्धान्त में बताया कि तीन तत्व प्रधान होते हैं - सामान्य उत्तेजन पहलू, क्रिया पहलू तथा लक्ष्य निर्देशन पहलू। सिगमंड फ्रायड के अनुसार मूल -प्रवृत्ति के चार मुख्य विशेषताएं होती हैं- स्रोत, उद्देश्य, वस्तु तथा प्रेरक शक्ति। फ्रायड ने दो तरह के मूलप्रवृत्तियां जिनसे व्यक्ति का व्यवहार अभिप्रेरित होता है। वे हैं - जीवन मूलप्रवृत्ति या इरोस तथा मृत्यु मूलप्रवृत्ति या थैनाटोस। जीवन मूलप्रवृत्ति से तात्पर्य उन प्रवृत्तियों से होता है जिसके सहारे, व्यक्ति अपने जीवन में महत्वपूर्ण प्रक्रियाओं को करने के लिए अभिप्रेरित होता है। फ्रायड का यह भी मत था कि अधिकतर मूलप्रवृत्त्यां अचेतन स्तर पर कार्य करती हैं और व्यक्ति के चेतन विचार एवं व्यवहार को अभिप्रेरित करती है तथा उसे प्रभावित करती हैं।

मूलप्रवृत्ति सिद्धान्त की आलोचनाएं की गयी हैं। इन आलोचनाओं में निम्नलिखित प्रमुख हैं - रूथ वेनेडिक्ट तथा मार्गेरेट मीड ने यह साफ-साफ बतला दिया है कि एक संस्कृति से दूसरे संस्कृति में

व्यक्ति के व्यवहरों एवं मूलप्रवृत्तियों में काफी भिन्नता पायी जाती है जिससे मूलप्रवृत्ति के स्वरूप को जन्मजात तथा सार्वत्रिक कहना उचित नहीं होगा।

13.7.2 प्रणोद सिद्धान्त

एक ऐसे आंतरिक प्रणोद के रूप में अभिप्रेरणा के सम्प्रत्यय जिससे व्यवहार का निर्धारण होता है, को सबसे पहले राबर्ट बुडवर्थ में प्रतिपादित किया गया। प्रणोद सिद्धान्त में अभिप्रेरक की व्याख्या एक खास क्रम में की है। इस क्रम में चार कदम होते हैं - 1. एक प्रणोद की अवस्था होती है जो शारीरिक आवश्यकता या बाह्य उद्दीपक से उत्पन्न होती है। 2. प्रणोद अवस्था से व्यक्ति क्रियाशील हो जाता है उसका व्यवहार लक्ष्य की ओर निर्देशित होता है। 3. लक्ष्य-निर्देशित व्यवहार के परिणामस्वरूप, व्यक्ति को उपयुक्त लक्ष्य की प्राप्ति होती है। 4. उपयुक्त लक्ष्य की प्राप्ति से व्यक्ति में प्रणोद की कमी तथा उसे सन्तुष्टि होती है। कुछ समय के बाद प्राणी में फिर से पहली अवस्था उत्पन्न होती है और बाकी तीनों अवस्थाओं की पुनरावृति होती है। अतः प्रणोद सिद्धान्त के अनुसार जब समस्थिति में दैहिक क्षुब्धता होता है, तो इससे व्यक्ति में प्रणोद उत्पन्न होता है।

प्रणोद सिद्धान्त की प्रमुख आलोचनाएं इस प्रकार थीं –इस सिद्धान्त द्वारा सभी तरह के अभिप्रेरणों की व्याख्या नहीं हो पायी है। जैसे, इस सिद्धान्त द्वारा जैविक अभिप्रेरकों की व्याख्या तो कुछ हद तक हो जाती है परन्तु अर्जित अभिप्रेरकों की व्याख्या उतनी संतोषजनक ढंग से स्पष्ट रूप से नहीं हो पाती है। इस आलोचनाओं के कारण इस सिद्धान्त की उपयोगिता काफी कम हो गयी और इसके जगह पर अन्य सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया।

13.7.3प्रोत्साहन सिद्धान्त

प्रोत्साहन सिद्धान्त के अनुसार अभिप्रेरित व्यवहार की उत्पत्ति में व्यक्ति की अवस्था यानी प्रणोद उतना महत्वपूर्ण नहीं होता है जितना कि स्वयं लक्ष्य या प्रोत्साहन। इस सिद्धान्त में अभिप्रेरित व्यवहार की व्याख्या बाह्य उद्दीपकों तथा उनके पुरस्कार प्रदत्त गुणों के रूप में होती है। प्रोत्साहन या लक्ष्य के कुछ खास-खास गुण होते हैं जिसके द्वारा व्यक्ति या पशु में अभिप्रेरक की उत्पत्ति होती है। यहां व्यक्ति का व्यवहार इस प्रत्याशा से निर्देशित होता है कि वह अमुक व्यवहार करके वांछित परिणाम या प्रोत्साहन को प्राप्त कर सकता है। इसलिए इसे प्रत्याशा सिद्धान्त भी कहा जाता है। बॉल्स तथा फाफ्कामैन के अनुसार प्रोत्साहन दो तरह के होते हैं- धनात्मक तथा ऋणात्मक। भोजन तथा पानी धनात्मक प्रोत्साहन के उदाहरण हैं तथा दण्ड तथा बिजली का शॉक ऋणात्मक प्रोत्साहन के उदाहरण हैं।

13.7.4 विरोधी-प्रक्रिया सिद्धान्त

इस सिद्धान्त का प्रतिपादन सोलोमैन तथा कौरविट द्वारा किया गया। बाद में सोलोमैन ने इस सिद्धान्त में महत्वपूर्ण परिवर्तन किया है। यह सिद्धान्त अभिप्रेरक की व्याख्या सुखवादी नियमों के आधार पर करता है। इस सिद्धान्त के अनुसार सुख देने वाले लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए हमलोग अभिप्रेरित रहते हैं तथा इससे हमें अच्छी सांवेगिक अनुभूति या सुख की अनुभूति होती है। तथा वैसे लक्ष्यों को जिनसे हमे अप्रसन्नता होती है, हम दूर रहना चाहते हैं। चूंकि यह सिद्धान्त अभिप्रेरित व्यवहार से उत्पन्न प्रसन्नता या अप्रसन्नता पर बल डालता है, अतः इस सिद्धान्त को संवेग का भी सिद्धान्त माना गया है।

इस सिद्धान्त द्वारा जैविक अभिप्रेरकों की व्याख्या नहीं होती है। कुछ विशेषज्ञों का यह भी मत है कि सभी तरह के सांवेगिक उद्दीपकों से दो तरह की अवस्थाएं जो आपस में एक-दूसरे के विरोधी हो, उत्पन्न हो ही, आवश्यक नहीं है।

13.7.5 आदर्श-स्तर सिद्धान्त या उत्तेजन सिद्धान्त

यह सिद्धान्त अभिप्रेरणा की व्याख्या उत्तेजन के रूप में करता है। उत्तेजन प्राणी के मस्तिष्क स्तंभ के रेटिकुलर फारमेसन की क्रियाशीलता के प्रति सामान्य अनुक्रिया की माप होती है। यह सिद्धान्त भी विरोधी-प्रक्रिया सिद्धान्त के समान सुखवादी नियमों पर आधारित है। जैसा कि फिस्क एवं माड्डी, बर्लिन, डुफ्फी, गीन वीट्टी तथा अर्किन तथा हेब्ब ने कहा है, के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति के सामने क्रियाशीलता या सचेतता का एक ऐसा निश्चित स्तर होता है जिसे आदर्श स्तर कहा जाता है और इस स्तर पर यदि व्यक्ति का व्यवहार होता है, तो इससे उसे काफी प्रसन्नता तथा खुशी होती है। कभी ऐसा होता है कि व्यक्ति का व्यवहार उस आदर्श स्तर से नीचे होता है तो कभी ऐसा भी होता है कि व्यक्ति का व्यवहार उस आदर्श स्तर से काफी ऊपर होता है। इन दोनों परिस्थितियों में उसे अपने व्यवहार से उतनी प्रसन्नता तथा खुशी नहीं मिल पाती है जितना मिलना चाहिए। अतः यदि उसका व्यवहार आदर्श स्तर से अत्यधिक है, तो वह उसे कमकर आदर्श स्तर पर लाने के लिए अभिप्रेरित रहता है। दूसरी तरफ यदि, उसका व्यवहार आदर्श स्तर से नीचे हैं तो वह उसे ऊंचा उठाकर आदर्श स्तर तक लाने के लिए अभिप्रेरित करता है। इसे अभिप्रेरणा का उत्तेजन सिद्धान्त भी कहा जाता है। इस सिद्धान्त की आलोचनाएं इस प्रकार है - जुकरमैन के अनुसार कुछ लोग ऐसे होते हैं जो उच्च उत्तेजन स्तर को आदर्श समझते हैं क्योंकि इन्हें उत्कृष्ट संवेदन प्राप्त करने में आनन्द आता है।

परिणामस्वरूप यद्यपि उत्तेजन स्तर सिद्धान्त की परिसीमाएं अवश्य हैं फिर भी यह सिद्धान्त अभिप्रेरित व्यवहार की उत्पत्ति के स्वरूप पर बहुत हद तक प्रकाश डालने में समर्थ हैं।

13.7.6 आवश्यकता-पदानुक्रम सिद्धान्त

मैसलो प्रथम ऐसे मनोवैज्ञानिक हैं जिन्होनें आत्मसिद्धि को एक महत्वपूर्ण अभिप्रेरक बतलाय तथा इसका वैज्ञानिक अध्ययन कर एक सिद्धान्त का प्रतिपादन किया जिसे आवश्यकता-पदानुक्रम सिद्धान्त कहा जाता है। मैसलो द्वारा प्रतिपादित मानव अभिप्रेरणा के इस सिद्धान्त द्वार तनाव-ह्रास तथा मानव-वृद्धि क्रियाओं की ही तरह की क्रियाओं की व्याख्या होती है। मैसलो ने बतलाया कि मानव आवश्यकताओं या मानव अभिप्रेरकों की व्याख्या का एक अनुक्रम या पीढ़ी के रूप में की जा सकती है। मैसलों के अनुसार मानव आवश्यकताएं प्रमुख रूप से पांच हैं जिन्हें हम एक अनुक्रम या सीढ़ी के रूप में दिखला रहे है मानव की सबसे पहली सीढी एवं प्राथमिकता आवश्यकता शारीरिक आवश्यकता, दूसरी सीढी पर सुरक्षा की आवश्यकता, तीसरी सीढी पर स्नेह पाने की आवश्यकता, चोथी सीढी पर सम्मान की आवश्यकता एवं पांचवीं अंतिम सीढी पर आत्म सिदिध की आवश्यकता बताई गई है।

13.7.7 वेक्टर-कर्षण सिद्धान्त

मानव अभिप्रेरणा के अध्ययन में कर्टलेविन का योगदान सबसे प्रमुख रहता है। वेक्टर से तात्पर्य एक ऐसे बल से होता है जो व्यक्ति पर प्रभाव डालता है और उसे एक निश्चित दिशा में व्यवहार करने के लिए प्रेरित करता है। वेक्टर की दिशा तथा शक्ति लक्ष्य वस्तु के कर्षणशक्ति पर निर्भर करता है। जब

व्यक्ति में एक ही साथ कई तरह से वेक्टर उत्पन्न होते हैं, तो इससे एक मानसिक संघर्ष की स्थिति उत्पन्न होती है।

इस उपागम की दो मुख्य मान्यताएं हैं जो निम्न है -

I. लेविन ने बताया कि जब व्यक्ति की लक्ष्य वस्तु के बीच दूरी बढ़ती है, कर्षणशक्ति की आकर्षकता या धनात्मक कर्षणशक्ति का प्रभाव कमता जाता है। इस तथ्य का प्रायोगिक समर्थन फाजान्स के प्रयोग से मिलता है।

II. इस उपागम की दूसरी मान्यता, जब लक्ष्य वस्तु को प्राप्त करने में व्यक्ति के सामने बाधा या रूकावट उत्पन्न हो जाता है, इससे उस व्यक्ति में लक्ष्य वस्तु के प्रति धनात्मक कर्षणशक्ति में वृद्धि हो जाती है।

वेक्टर-कर्षणशक्ति उपागम की मुख्य परिसीमा यह है कि इसके सम्प्रत्यय जैसे वेक्टर एवं कर्षणशक्ति का वस्तुनिष्ठ मापन एवं व्याख्या अभी भी संदेह के घेरे में है।

13.7.8 लक्ष्य निर्धारण सिद्धान्त

अभिप्रेरणा का इस सिद्धान्त का प्रतिपादन लॉके एवं लाथम के शोधों पर आधारित है। इस सिद्धान्त का केन्द्र बिन्दु यह है कि अभिप्रेरणा लक्ष्य के स्वरूप द्वारा प्रभावित होता है। वुड एवं लॉके के अनुसार विभिन्न तरह के कार्य होने पर व्यक्ति का निष्पादन उस समय उत्तम होता है जब लक्ष्य विशिष्ट होता है। परन्तु यदि लक्ष्य सामान्य है या उसमें विशिष्टता नहीं है, तो व्यक्ति का निष्पादन घटिया हो जाता है क्योंकि ऐसी परिस्थिति में व्यक्ति में अभिप्रेरणा का स्तर कम होता है। लॉके तथा हेन्नी ने लक्ष्य निर्धारण के निम्न मुख्य तथ्य बताए हैं -

I. आसान लक्ष्य की तुलना में कठिन लक्ष्य के होने पर कार्य निष्पाद अधिक होता है।

II. विशिष्ट कठिन लक्ष्य होने पर अस्पष्ट लक्ष्य या लक्ष्यहीनता की तुलना में निष्पादन काफी उच्च होता है।

III. लक्ष्य निर्धारण की प्रक्रिया को सफल होने के लिए पुनर्निवेश या प्रतिपुष्टि आवश्यक है।

IV. निष्पादन को लक्ष्य से प्रभावित होने के लिए यह आवश्यक है कि व्यक्ति में लक्ष्य वचनबद्धता हो।

स्पष्ट हुआ कि लक्ष्य निर्धारण सिद्धान्त भी अभिप्रेरणा का एक प्रमुख सिद्धान्त है जिससे व्यक्ति में निष्पादन तथा अभिप्रेरणा दोनों ही काफी अधिक बढ़ती है।

13.7.9 आत्म या स्व निर्धारण सिद्धान्त

इस सिद्धांत का प्रतिपादन रेयान तथा डेसी द्वारा किया गया जो मैसलो द्वारा प्रतिपादित आवश्यकता-पदानुक्रम सिद्धान्त के ही समान है।

1. **स्वायत्तता** - स्वायत्तता से तात्पर्य अपने व्यवहार तथा लक्ष्यों के नियंत्रण में होने की आवश्यकता से होता है।

2. **सामर्थ्यता** - इससे तात्पर्य अपने वातावरण तथा जिंदगी के चुनौतीपूर्ण कार्यों को निपुणतापूर्वक करने की आवश्यकता से होती है।

3. **सम्बन्धता -** इससे तात्पर्य दूसरों के साथ स्थापित सम्बन्ध में घनिष्ठता, सुरक्षा तथा उनसे वहां होने का भाव से होता है।

रेयान, डेसी तथा उनके सहयोगियों ने इस सिद्धान्त का समर्थन किया।

इस सिद्धान्त की आलोचना करते हुए कहा कि सिद्धान्त में मात्र तीन तरह की आवश्यकता के माध्यम से अभिप्रेरित व्यवहार की व्याख्या करने की कोशिश की गयी है जो अपने-आप में एक आंशिक या अपूर्ण प्रयास दिखता है।

अतः अभिप्रेरणा के सिद्धान्तों एवं उन पर किये गए विभिन्न मनोवैज्ञानिकों के अध्ययन इन सिद्धान्तों में प्रस्तुत किये गये हैं।

13.8 सारांश

इस अध्याय में अभिप्रेरणा का अर्थ, स्वरूप, मौलिक सम्प्रत्यय यानी आवश्यकताओं, प्रणोद एवं प्रोत्साहन या लक्ष्य के बारे में विस्तृत जानकारी दी गई। अभिप्रेरणा के प्रकार, जन्मजात अभिप्रेरक, भूख, प्यास, यौन, नींद एवं मलमूत्र त्याग आदि एवं अर्जित अप्रेरक- उपलब्धि की आवश्यकता, संबंधन की आवश्यकता, सत्ता की आवश्यकता, आक्रमणशीलता की आवश्यकता, अनुमोदन आवश्यकता पर प्रकाश डाला गया है। इसी प्रकार अभिप्रेरणा के सिद्धान्तों के बारे में जानकारी प्रस्तुत की गई है।

13.9 बोध प्रश्न

1 अभिप्रेरणा के स्वरूप को समझाइये।
2 अभिप्रेरणा कितने प्रकार के होते हैं? विस्तार से व्याख्या कीजिए।
3 डबल-डिपलेसन सिद्धान्त को समझाइये।
4 अभिप्रेरणा के सिद्धान्तों का वर्णन कीजिए।
5 अभिप्रेरणा के अर्जित अभिप्रेरक की व्याख्या कीजिए।

13.10 संदर्भ सूची

- Morgan, Clifford T, King, Richard A, Weisz, John R., Schopler, John, Introduction to Psychology, Tata Mcgraw – Hill Edtion.
- श्रीवास्तव, डॉ. डी.एन. एवं वर्मा प्रीति (1986), ''सामान्य मनोविज्ञान" विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा।
- सिंह अरूण कुमार, सिंह आशीष कुमार (2005), ''आधुनिक सामान्य मनोविज्ञान" मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली, द्वितीय संशोधित संस्करण
- सिंह अरूण कुमार, (2014), ''उच्चतर सामान्य मनोविज्ञान", मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, आठवां संशोधित एवं परिवर्द्धित संस्करण,2014.
- जायसवाल, सीताराम (1985), ''सामान्य मनोविज्ञान", आर्य बुक डिपो, नई दिल्ली
- त्रिपाठी, लाल बच्चन (1999), ''आधुनिक प्रयोगात्मक मनोविज्ञान", एच.पी. भार्गव बुक हाउस, आगरा

इकाई – 14

संवेग (Emotion)

प्रकृति, शारीरिक परिवर्तन, जेम्स-लांजे सिद्धान्त, कैनन-वार्ड सिद्धान्त, सक्रियता सिद्धान्त

Nature, Bodily Changes, James Lange, Cannon Bard theory , Activation Theory of Emotion

इकाई की रूपरेखा

14.1 प्रस्तावना

14.2 उद्देश्य

14.3 संवेग की परिभाषा

14.4 संवेग का स्वरूप

14.4.1 संवेग की विशेषताएँ

14.5 संवेग के दैहिक परिवर्तन

14.5.1 संवेग के बाहत शारीरिक परिवर्तन

14.5.2 आनन अभिव्यक्ति में परिवर्तन

14.5.3 शारीरिक मुद्रा में परिवर्तन

14.5.4 स्वर अभिव्यक्ति में परिवर्तन

14.5.5 आन्तरिक शारीरिक परिवर्तन

14.5.6 रक्तचाप में परिवर्तन

14.5.7 रक्त में रासायनिक परिवर्तन

14.5.8 साँस की गति में परिवर्तन

14.5.9 हृदय की गति तथा नाड़ी की गति में परिवर्तन

14.5.10 पाचन क्रिया में परिवर्तन

14.5.11 ग्रन्थीय स्त्राव में परिवर्तन

14.5.12 गैल्वेनिक एवम् अनुक्रिया में परिवर्तन

14.5.13 आँख की पुतली की अनुक्रिया में परिवर्तन

14.5.14 मस्तिष्क तरंगों में परिवर्तन

14.6 अभिप्रेरणा तथा संवेग में सम्बन्ध

14.7 संवेग का सिद्धान्त

14.7.1 जेम्स लांजे सिद्धान्त

14.7.2 केनन-बार्ड सिद्धान्त

14.7.3 लिन्डस्ले का सक्रियण सिद्धान्त

14.8 सारांश

14.9 बोध प्रश्न

14.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची

14.1 प्रस्तावना

मनोविज्ञान क्षेत्रो के पौराणिक विभाजन में संवेग एक है मनोविज्ञान के तीन पौराणिक क्षेत्र है। संज्ञान, संकल्प शक्ति तथा संवेग इनमे से संवेग को क्रिया का मुख्य स्त्रोत माना गयाहै।

संवेग एक ऐसा पद है जिसका अर्थ हम सभी समझते है। क्रोध, भय, खुशी हमारे जीवन के प्रमुख संवेग मेंसे है। मनोवैज्ञानिकों ने संवेग को परिभाषित करने की कोशिश की है। इस अध्याय में संवेग की परिभाषा, स्वरूप, संवेग द्वारा उत्पन्न शारीरिक परिवर्तनों की व्याख्या की जाएगी तथा संवेग के सिद्धान्तों जिसमें प्रमुख रूप से जेम्सलांजे सिद्धान्त, कैनन-बार्ड सिद्धान्त, लिंडस्ले का सक्रियण सिद्धान्त को लिया गया है।

14.2 उद्देश्य

मनुष्य भिन्न-भिन्न तरह के संवेग जैसे डर, क्रोध, व्यथा, प्यार, उदासी, खुशी आदि दिखलाता है। मनुष्य द्वारा दिखलाये गई व्यवहार की इन प्रतिक्रियाओं को समझने के लिए आवश्यक है कि हम संवेग के बारे में जानकारी प्राप्त करें। खुशी व उदासी के व्यवहार में मनुष्य के शरीर में बाह्य व भीतरी अंगों में परिवर्तन होता है जिसका शरीर पर क्या प्रभाव पड़ता है। मनुष्य द्वारा किसी परिस्थिति में किया गया व्यवहार किस प्रकार के संवेग का है खुशी का या उदासी का है क्रोध का है, इन सब की जानकारी प्राप्त करने के लिए आवश्यक है कि हम संवेग के बारे में विस्तृत जानकारी प्राप्त करें इसी उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए आगे संवेग के स्वरूप की संवेग द्वारा उत्पन्न शरिरिक परिवर्तनों की संवेग की उत्पत्ति के कारणों के बारे में जानकारी प्रस्तुत की जा रही है।

14.3 संवेग की परिभाषा

संवेग पद का अंगेजी रूपान्तर " Emotion " हैं। जो लेटिन शब्द " Emovere " से बना है जिसका अर्थ उत्प्रेरित करना होता है। इसी अर्थ में गेल्डार्ड (1963) ने कहा है "संवेग क्रियाओं का उत्तेजक है" लेकिन संवेग में सिर्फ उत्तेजित अवस्था ही नहीं होती है बल्कि कुछ और प्रक्रियाएँ भी होती है। इंगलिश तथा इंगलिश 1958 के अनुसार "संवेग एक जटिल भाव की अवस्था होती है जिसमें कुछ खास-खास शारीरिक एवं ग्रन्थिय क्रियाएँ होती है।" बेरोन वर्न तथा कैन्टोविज (1980) के अनुसार, "संवेग से तात्पर्य एक ऐसे आत्मनिष्ठ भाव की अवस्था से होता है जिसमें कुछ शारीरिक उत्तेजन पैदा होती है फिर जिसमें कुछ खास-खास व्यवहार होते हैं।"

इन परिभाषाओं का सम्मिश्रण है कि संवेग एक जटिल अवस्था है जिसमें कुछ आंगिक क्रियाएँ होती है जिसे दैहिक तत्व कहा जाता हैं ; कुछ अभिव्यंजक व्यवहार जिसे व्यवहार परक तत्व कहा जाता है।

14.4 संवेग का स्वरूप

(1) संवेग एक जटिल अवस्था होती है - इसमें बहुत तरह के शारीरिक परिवर्तन, भाव आदि सम्मिलित होते हैं।

(2) संवेग का दूसरा महत्वपूर्ण पहलू आंगिक प्रतिक्रियाएँ है। प्रत्येक संवेग में कुछ भीतरी प्रतिक्रियाएँ होती है इस अवस्था में शरीर के भीतरी अंगो जैसे हृदय, आंत, फेफड़ा, ग्रन्थियाँ आदि में कुछ विशेष प्रतिक्रियाएँ होती है। जैसे क्रोध संवेग में प्रायः रक्तचाप बढ़ जाता है। भूख प्यास कम हो जाती है, साँस की गति तेजी से चलती है आदि-आदि।

(3) संवेग में कुछ अभिव्यंजन व्यवहार भीहोते हैं। अर्थात शरीर के बाहरी अंगो जैसे हाथ, पैर, चैहरा, आँखों आदि में भी परिवर्तन होते हैं। जिन्हें देखकर हम समझ जाते हैं कि व्यक्ति संवेग की स्थिति मेंहैं।

(4) संवेग में किसी न किसी तरह आत्मनिष्ठ भाव यानि सुखद या दुखद भाव की अनुभूति अवश्य पायी जाती है। भय में दुःखद भाव की अनुभूति तथा खुशी में सुखद भाव की अनुभूति इस बात पर आधारित होती है कि व्यक्ति संवेग उत्पन्न करने वाले उद्दीपक या परिस्थिति का किस ढंग से प्रत्यक्षण करता है। इसे संवेग का संवेगात्मक तत्व कहा जाता है। संवेग एक जटिल अवस्था है जिसके मूलरूप से तीन तत्व है - आंगिक प्रतिक्रियाएँ, अभिव्यंजन व्यवहार तथा सुखद एवं दुःखद भाव जिसमें सुखद या दुःखद भाव का होना सबसे अधिक महत्वपूर्ण माना गया है। क्योंकि इसके अभाव में संवेग, संवेग नहीं रह जाता है।

14.4.1 संवेग की विशेषताएँ

सिल्मरमैन (1978) के अनुसार संवेग की निम्न चार विशेषताएँ है:-

(1) **संवेग विकीर्ण होता है -** संवेग की विकिर्णता का शरीर की क्रियाओं में एक तरह का परिवर्तन या तनाव लाना है। संवेग कई तरह के होते हैं। प्रत्येक संवेग में इस तरह के तनाव की विकीर्णन का स्वरूप अलग-अलग होता है।

(2) **संवेग सतत होता है -** संवेग में निरन्तरता का गुण है जब भी कोई संवेग उत्पन्न होता है, उद्दीपक के हट जाने पर भी कुछ देर तक संवेग व्यक्ति में बना रहता है।

(3) **संवेग संचयी होता है-** संवेग में संचयी का गुण होता है अर्थात कोई संवेग जब एक बार उत्पन्न हो जाता है तो थोड़ी देर के लिए उत्तरोतर वह अपने आप ही बढ़ते ही चला जाता है इसका कारण है कि संवेग व्यक्ति में एक खास प्रकार की मानसिक तत्परता उत्पन्न कर देता है जिससे व्यक्ति उसी दिशा में प्रतिक्रिया और भी अधिक करना चाहता है।

(4) **प्रायः संवेग का स्वरूप अभिप्रेरणात्मक होता है -** संवेग में व्यक्ति कोई न कोई व्यवहार अवश्य ही ऐसा करता है जो किसी खास लक्ष्य की ओर निदेर्शित होता है। संवेग की इस विशेषता पर विटेकर एवं मार्गन, किंग तथा रॉब्निसन ने भी अधिक बल डाला है।

14.5 संवेग का दैहिक परिवर्तन

संवेग की अवस्था में व्यक्ति में महत्वपूर्ण शारीरिक परिवर्तन होते हैं इन शारीरिक परिवर्तनों को दो भांगों में बाँटा गया है।

(1) बाह्य शारीरिक परिवर्तन

(2) आन्तरिक शारीरिक परिवर्तन

14.5.1 बाह्य शारीरिक परिवर्तन

संवेग में होने वाले शारीरिक परिवर्तन से मतलब वैसे परिवर्तन से है जो स्पष्ट रूप से व्यक्ति द्वारा अभिव्यक्त किया जाता है। जिसे हम अपनी आँखों से देख सकते हैं। जैसे - क्रोध की अवस्था में व्यक्ति का चेहरा लाल हो जाता है, होठ काँपने लगता है, आँखे बड़ी-बड़ी कर वह बोलता है, आदि-आदि। इन सभी प्रकार के शारीरिक परिवर्तन को बाह्य शारीरिक परिवर्तन कहते हैं। मनोवैज्ञानिकों ने इस प्रकार के बाह्य परिवर्तन को तीन भाग में बाँटकर अध्ययन किया है।

(1) आनन अभिव्यक्ति में परिवर्तन

(2) शारीरिक मुद्रा मं परिवर्तन

(3) स्वर अभिव्यक्ति में परिवर्तन

14.5.2 आनन अभिव्यक्ति में परिवर्तन

संवेग में व्यक्ति के चेहरे अर्थात मुखाकृति में महत्वपूर्ण परिवर्तन आते है। मनोवैज्ञानिको के अनुसार चेहरे के बहुत संवेदनशील एवं छोटी-छोटी पेशियाँ होती है जो संवेग के उत्पन्न होने पर फैलना सिकुड़ना प्रारम्भ कर देती है। अतः चेहरे में संवेग की स्थित में बहुत जल्द परिवर्तन आता है। इजार्ड (1977, 1990) के अनुसार आनन अभिव्यक्ति द्वारा छः प्रमुख संवेगो की स्पष्ट अभिव्यक्ति होती है - खुशी, उदासी, आश्चर्य, डर, क्रोध एवं घृणा। इस आनन अभिव्यक्ति को कुछ प्रयोगात्मक अध्ययन द्वारा समझाया गया है।

सबसे पहले लेन्डिस (1924) द्वारा आनन अभिव्यक्ति पर अध्ययन किया और पाया कि भिन्न-भिन्न प्रयोज्य एक ही तरह के संवेग उत्पन्न करने वाले कार्य के करने पर अलग-अलग आनन अभिव्यक्ति करते हैं। सेकिम, मुख तथा साऊसी (1978) ने अपने अध्ययन में एक महत्वपूर्ण बात बतलाई कि किसी संवेग की अभिव्यक्ति में चेहरे के दायें भाग का योगदान बायें भाग की अपेक्षा अधिक होता है जिसका प्रधान कारण यह है कि दायें भाग का नियंत्रण मस्तिष्क के बाये गोलार्द्ध (जो बड़ा गोलार्द्ध भी कहलाता है) द्वारा होता है तथा बायें भाग का नियन्त्रण मस्तिष्क के बाये गोलार्द्ध द्वारा होता है।

बेसेन (1992) ने आनन अभिव्यक्ति को संवेग का एक सार्विक भाषा माना है। इसी तरह से 19 वीं शताब्दी में चार्ल्स डार्विन द्वारा कही गयी बात कि आनन अभिव्यक्ति संवेग की एक जन्मजात अभिव्यक्ति है इसे लोगों ने सही ठहराया।

आनन अभिव्यक्ति द्वारा संवेग की सही-सही अध्ययन तीन कारको द्वारा अवरूद्ध हो जाती है पहला, प्रायः लोग संवेग को छिपाना सीख लेते है इसका नतीजा यह होता है कि संवेग की अभिव्यक्ति ऐसे लोग चेहरे द्वारा नहीं कर पाते है जैसे समाज में ऐसे व्यक्ति होते हैं जो क्रोध की अवस्था में भी जिस व्यक्ति से वे क्रोधित है, हँसकर या मीठी मीठी बात करते हैं जिनके आनन अभिव्यक्ति के आधार पर कभी यह पता नहीं चलता है कि वे क्रोधित है। दूसरा व्यक्ति कभी-कभी कई संवेग एक ही साथ दिखलाता है, तीसरा सिर्फ चेहरे की अभिव्यक्ति देखकर संवेग विशेष का निर्णय देना उचित नहीं है जब तक परिस्थिति का ज्ञान नहीं हो जिसमें व्यक्ति ने चेहरे की अमुक अभिव्यक्ति की है, संवेग का सही-सही निर्णय करना कठिन हो जाता है।

14.5.3 शारीरिक मुद्रा में परिवर्तन

प्रत्येक संवेग में शरीर की एक खास मुद्रा होती है प्रायः दुःख के संवेग में व्यक्ति का शरीर कुछ झुका हुआ तथा क्रोध में उसका शरीर कुछ अकड़ा हुआ एवं तना हुआ दिखलाई देता है। लेन्डिस तथ हंट (1937) ने अपने अध्ययन में पाया कि जिसमें बन्दूक के अचानक आवाज होने से उत्पन्न आश्चर्य तथा चैकने के संवेग में होने वाली शारीरिक मुद्रा का विश्लेषण किया गया तथा पाया गया कि इस तरह का संवेग सामान्यतः 15 सेकण्ड तक का होता है। इस संवेग में शामिल शारीरिक मुद्राओं का विश्लेषण करने पर इन लोगों ने बताया कि व्यक्ति की आँख आवाज के 40 मिलीसेकण्ड़ बाद बन्द हो जाती है। 100 मिली सेकण्ड बाद उसका चेहरा विकृत हो जाता है। 140 मिली सेकण्ड बाद सिर कुछ आगे झुक जाता है तथा कंधा भी आगे की ओर झुक जाता है। 345 मिली सेकण्ड के बाद पेट में हल्का सिकुडन आ जाती है तथा ढेहुना थोड़ा मुड जाता है। परन्तु 1.5 सेकण्ड के भीतर ये सभी शारीरिक मुद्राएँ समाप्त हो जी है और व्यक्ति पुनः सामान्य अवस्था में आ जाता है।

कुछ मनोवैज्ञानिक जैसे बेरन, बर्न तथा कैनटोविज (1980) के अनुसार सिर्फ शारीरिक मुद्रा के आधार पर संवेग पहचानने में कठिनाई होती है।

14.5.4 स्वर अभिव्यक्ति में परिवर्तन

संवेग की स्थिति में व्यक्ति की आवाज में भी परिवर्तन आ जाता है जिसे सुनकर हम आसानी से संवेग का अंदाज लगा लेते है जैसे - यदि कोई व्यक्ति थोड़ा दूर पर जोर-जोर से बोलता हुआ सुना जाता है तो प्रायः हम अंदाज लगा लेते है कि व्यक्ति क्रोधित है। व्यक्ति के आवाज की तीव्रता, बोलने का ढंग, स्वर विराम ताकि स्वर आरम्भ आदि के आधार पर हम अभिव्यक्त संवेग का अंदाज लगाते है। डुसेनबेरी तथा नोरर (1939) ने इस संदर्भ में एक महत्वपूर्ण प्रयोग किया जिसमें अ से ज्ञ के अक्षरों को भिन्न-भिन्न संवेगात्मक आवाज में किसी व्यक्ति द्वारा पढ़वाया गया परिणाम में यह पाया कि अधिकतर प्रयोज्य इन अक्षरों द्वारा व्यक्त संवेग की पहचान करने में सफल हुए है।

14.5.5 आन्तरिक शारीरिक परिवर्तन

संवेग की स्थिति में शरीर के बाह्य परिवर्तन के अलावा शरीर के कुछ भीतरी परिवर्तन होते हैं। इन परिवर्तनों का स्वरूप ऐसा होता है जिसे हम अपनी आँख से देख नहीं सकते हैं परन्तु विशेष यन्त्र के सहारे हम उनका अध्ययन कर सकते हैं। प्रमुख आन्तरिक परिवर्तन जिन पर मनोवैज्ञानिक ने प्रकाश डाला वे हैं.....।

14.5.6 रक्तचाप में परिवर्तन

संवेग की अवस्था में प्रायः रक्तचाप के स्तर में परिवर्तन यानी कमी या वृद्धि हो जाती है। जिसका मापन स्फिग्मोमैनोमीटर द्वारा किया जाता है। कुछ संवेग ऐसे होते हैं जिसमें व्यक्ति के रक्तचाप में स्पष्ट रूप से वृद्धि हो जाती है तथा कुछ संवेग ऐसे होते हैं जिसमें रक्तचाप में स्पष्ट कमी हो जाती है। एक्स (1953) ने कॉलेज छात्रों पर अध्ययन में पाया कि क्रोध की अवस्था में रक्तचाप में वृद्धि हो जाती है। वक्फ तथा वल्फ ने अपने प्रयोग में पाया कि क्रोध में स्त्री तथा पुरूष दोनों में ही रक्तचाप बढ़ जाता है परन्तु डर के संवेग में इन दोनो में रक्तचाप में कमी आती है।

14.5.7 रक्त में रासायनिक परिवर्तन

संवेग की अवस्था में रक्त में एड्रिनिन जो एड्रिनल ग्रन्थि का स्त्राव होता है जिसकी मात्रा अधिक हो जाती है जिसके परिणाम स्वरूप व्यक्ति अपने आप में अधिक फुर्तीलापन तथा सक्रियता महसूस करता है। सामान्यतः चीनी की मात्रा खून में बढ़ जाती है जिससे व्यक्ति में अतिरिक्त ऊर्जा मिलती है। रक्त में सिम्पैथिन नामक रासायनिक तत्व की मात्रा भी संवेगावस्था में बढ़ जाती है इसके कारण व्यक्ति में सांवेगिक उद्दीपक हटने के कुछ समय बाद भी व्यक्ति में उत्तेजित अवस्था बनी रहती है।

14.5.8 सांस की गति में परिवर्तन

संवेग की अवस्था में सांस की गति में भी परिवर्तन होता पाया जाता है। सांस लेने तथा छोड़ने के बीच जितना ही कम समय होगा, सांस की गति तीव्र होती है तथा जितना ही अधिक समय होता, सांस की गति धीमी होती है। सांस की गति में हुए परिवर्तन को विशेष उपकरण जैसे न्यूमोग्राफ गैसोमीटर तथा बॉडी प्लेथीसमोग्राफ द्वारा मापा गया है। स्केग्स के अध्ययन द्वारा मानसिक कार्य करते समय सांस की गति तेज हो जाती है। आश्चर्य की स्थिति में सांस की गति तेज परन्तु अनियमित होती है। गिलफार्ड (1952) सिल्वर मैन (1978) ने सांस की गति धीमी दुःख मंदता मानसिक संघर्ष की स्थिति में धीमी होती है।

14.5.9 हृदय की गति तथा नाड़ी की गति में परिवर्तन

हृदय चिकनी मांसपेशियों का बना एक खोखला चेम्बर है जिसका प्रधान कार्य शरीर में खून का दौरा बनाये रखना है। हृदय में दो तरह की गति होती है सिकुडना तथा फैलना। सिकुडने की क्रिया का सिल्टोल गति तथा फैलने की गति को डाइस्टोल गति कहा जाता है। हृदय के सिकुडने व फैलने की क्रिया को एक साथ मिलाकर हृदय गति तथा जब हृदय सिकुड़ता है तो इसका प्रभाव धमनी से स्पष्ट रूप से मालूम हो जाता है जिसे नाड़ी की गति कहते हैं। लेफ्रानकोईस (1983) के अनुसार क्रोध तथा प्यार की अवस्था में हृदय की गति बढ़ जाती है एकमैन (1973) के अनुसार उदासी की अवस्था में हृदय की गति कम हो जाती है। शेपार्ड (1962) के अध्ययन अनुसार चिन्ता की स्थिति में भी हृदय की गति तीव्र हो जाती है।

14.5.10 पाचन क्रिया में परिवर्तन

मनोवैज्ञानिकों ने यह बताया है कि तीव्र संवेग जैसे - भय, क्रोध, चिन्ता में पाचन क्रिया बहुत धीमी जाती है। गिल्फोर्ड (1952) के अनुसार संवेगोत्मक उत्तेजना में मलाशय तथा वृहदान्त्र के कार्यों में भी काफी परिवर्तन आता है। इन अंगों की क्रियाएँ या तो काफी बढ़ जाती है या काफी घट जाती है।

संवेग की तीव्रता के आधार पर व्यक्ति में या तो कब्जियत हो सकती है या पतला पैखाना हो सकता है। यही कारण है कि प्रायः परीक्षा के समय छात्रों में संवेगात्मक उत्तेजना अधिक हो जाती है उनमे अतिसार की शिकायत प्रायः अधिक देखी जाती है।

14.5.11 ग्रन्थिय स्त्राव में परिवर्तन -

संवेग की अवस्था में शरीर के भीतर भिन्न-भिन्न प्रकार की ग्रन्थियाँ है जिनमें से दो ग्रन्थियों से निकलने वाला स्त्राव में महत्वपूर्ण परिवर्तन होते हैं - लार ग्रन्थि रेट्रिनल ग्रन्थि। वेन्गर तथा इलिंगटन (1943) ने अपने अध्ययन में पाया कि तीव्र संवेग की स्थिति में व्यक्ति के लार ग्रन्थि से स्त्राव कम होता है तथा मूँह के भीतर सूजा सूजा अनुभव होता है। संवेग की स्थिति में एड्रिनल ग्रन्थि से एड्रीनीन काफी निकलता है जो रक्त में मिलकर व्यक्ति में महत्वपूर्ण परिवर्तन करता है।

(1) एड्रिनिन के खून में मिलने से शरीर की ऐच्छिक मांसपेशियों में कम्पन्न बढ़ जाता है तथा अनैच्छिक मांसपेशिया आराम की स्थिति में आ जाती है। (2) ऐड्रिनिन के खून में मिलने से थकान कम व देरी से महसूस होती है। (3) खून में ऐड्रिनिन के मिलने से ऐच्छिक माँसपेशियों में खून की आपूर्ति अधिक तथा पाचन संस्थानों में खून की आपूर्ति कम हो जाती है।

14.5.12 गैलवेनिक त्वक् अनुक्रिया में परिवर्तन -

हमारी त्वचा में एक प्रकार का वैद्युत चालकत्व की क्षमता होती है जो संवेग की अवस्था में कम या अधिक हो जाती है। इस तरह का चालकत्व त्वचा के भीतर पसीना ग्रन्थियों के कार्यों पर निर्भर करता है संवेग को गैल्वानोमीटर द्वारा नापा जाता है एक्स (1953) के अनुसार क्रोध में GSR में कमी हो जाती है। कूम्बस (1937) के अनुसार काफी सुखद तथ काफी दुःखद संवेग में GSR लड़कियों में लड़कों की अपेक्षा अधिक होता है।

14.5.13 आँख की पुतली की अनुक्रिया में परिवर्तन -

आँख की पारितारिका स्वायत्त तंत्रिका तन्त्र के नियन्त्रण में होती है। संवेग की अवस्था में आँख की पुतली तथा पारितारिका के कार्यों में कुछ परिवर्तन आता है। वेन्डर के अनुसार तीव्र संवेग में आँख की पारितारिका में फैलाव आता है। एक्स (1953) के अध्ययन के अनुसार दुःख तथा विरक्ति के संवेग में आँख की पारितारिका को सिकुड़न की यद्यपि मापना कठिन है फिर भी इसी ढंग का परिवर्तन होता पाया गया है।

14.5.14 मस्तिष्क तरंगों में परिवर्तन

संवेग की अवस्था में व्यक्ति के मस्तिष्क तरंगों में काफी परिवर्तन होते पाये गये है। लिंडस्ले (1951, 1957) ने अपने प्रयोगों द्वारा बताया कि मस्तिष्क तरंग का मापन एक विशेष उपकरण इलेक्ट्रोनिसफैलोग्राम या EEG कहा जाता है। व्यक्ति को सामान्य अवस्था में मस्तिष्किय तरंग को अल्फा तरंग कहते हैं जबकि व्यक्ति में संवेगात्मक उत्तेजना अवस्था में बीटा तरंगे उत्पन्न होती है जिसकी तरंग ऊँचाई कम होती है तथा बारम्बारता 18 से 30 होती है स्पष्ट है कि बीटा तरंग अल्फा तरंग की अपेक्षा एक तरह का तीव्र बनने वाला तरंग होता है। जबकि व्यक्ति अधिक उत्तेजित होता है तो अल्फा तरंग के जगह पर बीटा तरंग बनाना प्रारम्भ हो जाता है। लिंडस्ले (1951) ने इस

मस्तिष्किय तरंगों का गहन अध्ययन करके संवेग के एक विशेष सिद्धान्त का प्रतिपादन किया जिसे संवेग क्रियाशीलता सिद्धान्त कहा जाता है।

14.6 अभिप्रेरणा तथा संवेग सम्बन्ध

अभिप्रेरणा तथा संवेग दोनों अवस्थाओं में व्यक्ति सक्रिय रहता है क्योंकि इन दोनों अवस्थाओं में व्यक्ति का व्यवहार किसी लक्ष्य की और निर्देशित होता है। इन समानता के बावजूद भी संवेग तथा अभिप्रेरणा एक दूसरे से अलग है।

(1) संवेग में भावपक्ष अधिक महत्त्वपूर्ण होता है परन्तु अभिपे्ररणा में भाव पक्ष गौण होता है।

(2) संवेग में बाह्य उद्दीपक महत्त्वपूर्ण होते हैं जबकि अभिप्रेरणा आन्तरिक उद्दीपक यानी भीतर हुए कुछ परिवर्तन को कहा जाता है की महत्ता है।

(3) संवेग में स्पष्ट शारीरिक परिवर्तन होते हैं लेकिन अभिप्रेरणा में ऐसा नहीं होता है।

14.7 संवेग का सिद्धान्त

संवेग की व्याख्या करने के लिये मनोवैज्ञानिकों ने भिन्न-भिन्न सिद्धान्तों का वर्णन किया है जिसमें निम्नांकित प्रमुख है

I. जेम्स-लांजे सिद्धान्त
II. कैनन-वार्ड सिद्धान्त
III. स्कैक्टर-सिंगर सिद्धान्त
IV. संज्ञानात्मक-मूल्यांकन सिद्धान्त
V. लिडस्ले सक्रियण सिद्धान्त
VI. विरोधी-प्रक्रिया

इनमें से प्रथम दो जैविक या दैहिक सिद्धान्त है तथा तीसरे एवं चौथे सिद्धान्त को संज्ञानात्मक सिद्धान्त भी कहा जाता है। इस अध्याय में तीन सिद्धान्तों का वर्णन नीचे किया जाएगा वे है (I) जेम्स-लांजे सिद्धान्त (II) कैनन-वार्ड सिद्धान्त (III) लिडस्ले सक्रियण सिद्धान्त

14.7.1 जेम्स-लांजे सिद्धान्त

इस सिद्धान्त को दो वैज्ञानिक अर्थात विलियम जेम्स, अमेरिकन मनोवैज्ञानिक तथा कार्ललान्जे ने स्वतंत्र रूप से 1880 में प्रस्तुत किया अतः यह जेम्स-लांजे सिद्धान्त के रूप में मशहूर है।

जेम्स-लांजे सिद्धान्त के अनुसार पहले संवेगात्मक व्यवहार होता है और तब संवेगात्मक अनुभूति होती है, यदि संवेगात्मक व्यवहार नहीं होगा, तो संवेगात्मक अनुभूति भी नहीं होगी। जैसे बाघ या भालू देखते हैं तो डर जाते हैं इसलिये भाग जाते हैं। लेकिन इस सिद्धान्त के अनुसार व्यक्ति बाघ या भालू को देखता है, भाग जाता है, इसलिये डर जाता है। जेम्स-लांजे सिद्धान्त संवेग की व्याख्या तीन चरणों में प्रस्तुत की गई है।

(1) संवेग की प्रक्रिया प्रत्यक्ष पर निर्भर करती है। जब किसी उद्दीपक द्वारा ज्ञानेन्द्रिय या ग्राहक में तन्त्रिका आवेग उत्पन्न होता है, तथा मस्तिष्क में पहुँचता है जिससे व्यक्ति को उद्दीपक

का प्रत्यक्षण होता है। उदाहरणार्थ यहाँ व्यक्ति भालू या बाघ को अपने सामने होने का प्रत्यक्षण करता है।

(2) किसी उद्दीपक (बाध या भालू) का प्रत्यक्षण होने से शरीर के भीतरी अंगों एवं बाह्य अंगों में परिवर्तन हो जाता है जिसके फलस्वरूप व्यक्ति संवेगात्मक व्यवहार करता है। मस्तिष्क में निकलकर शरीर के अन्तरावयव तथा भीतरी अंगों जैसे हृदय, फेफड़ा, ऐड्रिनल गन्थि, वृक्क आदि को उत्तेजित करता है तथा साथ ही साथ शरीर के बाह्य अंगों यानी हाथ-पैर की मांसपेशियों को क्रियाशील कर देता है। उदाहरणार्थ, बाघ या भालू देखने के बाद व्यक्ति के हृदय की गति तीव्र हो जाती है। साँस तेजी से चलने लगता है तथा एड्रिनलिन निकलकर खून में मिलना प्रारम्भ हो जाता है आदि-आदि। इन सबका परिणाम यह है कि व्यक्ति में तीव्र शारीरिक परिवर्तन होता है फलतः वह बाघ या भालू देखकर भाग जाता है यानी संवेगात्मक व्यवहार करता है।

(3) संवेगात्मक व्यवहार के बाद मस्तिष्क को अमुक सांवेगिक व्यवहार से सम्बन्धित परिवर्तनों की सूचना मिलती है।

मनोवैज्ञानिकों ने जेम्स-लांजे सिद्धान्त की आलोचना इस प्रकार की है -

(1) इस सिद्धान्त के अनुसार संवेगात्मक अनुभूति, संवेगात्मक व्यवहार पर निर्भर करती है, परन्तु ऐसी नहीं है

(2) इस सिद्धान्त के अनुसार संवेगात्मक अनुभूति शारीरिक परिवर्तनों पर निर्भर करती है।यदि संवेगात्मक अनुभूति सचमुच में शारीरिक परिवर्तनों पर निर्भर करती है तो जब-जब शारीरिक परिवर्तन व्यक्ति में उत्पन्न होता है तब उसमें संवेग की अनुभूति होती है।

(3) प्रयोगात्मक अध्ययनों में पाया कि संवेगात्मक अनुभूति पहले हो जाती है तथा संवेगात्मक परिवर्तन बाद में होते ही ऐसी परिस्थिति में जेम्स-लांजे का यह विचार कि संवेगात्मक अनुभूति संवेगात्मक परिवर्तन द्वारा ही उत्पन्न होती है, सही नहीं दिख पड़ती है।

(4) जेम्स-लांजे सिद्धान्त के अनुसार यदि शारीरिक परिवर्तन की सूचना मष्तिष्क को न मिले तो संवेगात्मक अनुभूति नहीं होगी यानि व्यक्ति को किसी प्रकार का संवेग नहीं होगा, जबकि ऐसा नहीं है।

निष्कर्ष रूप में कहा जाए तो शारीरिक परिवर्तन या सांवेगिक व्यवहार पर ही संवेगात्मक अनुभूति निर्भर नहीं करती है। अतः जेम्स-लांजे का सिद्धान्त मात्र एक पक्षीय प्राकल्पना है जिसका कोई विशेष प्रयोगात्मक आधार नहीं है।

14.7.2 कैनन-बार्ड सिद्धान्त

इस सिद्धान्त का प्रतिपादन मूलतः बाल्टर कैनन, 1927 द्वारा किया गया। बाद में उनके शिष्य फिलिप बार्ड, 1934 में इसका अपने अध्ययनों एवं शोधो के आधार पर समर्थन किया। अतः इस सिद्धान्त का नाम दोनों मनोवैज्ञानिकों के नाम पर रखा गया जो कैनन-बार्ड सिद्धान्त के नाम से मशहूर है। इस सिद्धान्त के अनुसार संवेग का कारण हाइपोथैलेमस है जिसका स्थान केन्द्रिय तन्त्रिका तन्त्र के भाग में (यानी मस्तिष्क में) प्रमस्तिष्क तथा थैलेमस के नीचे है। संवेग में हाइपोथैलेमस तथा थैलेमस के इस मध्य के कारण ही इस सिद्धान्त का नाम हाइपौथेलामिक सिद्धान्त या थैलामिक सिद्धान्त भी रखा

गया है इसे केन्द्रिय सिद्धान्त भी कहा जाता है क्योंकि इसमें केन्द्रिय तन्त्रिका तन्त्र का अधिक महत्व होता है।

इस सिद्धान्त के अनुसार संवेग उत्पन्न करने वाले उद्दीपक द्वारा ज्ञानेन्द्रियों या ग्राहक के उत्तेजित होने के बाद उसमें तन्त्रिका आवेग उत्पन्न होता है। जो प्रमस्तिष्क में आने के पहले संवेदी तन्त्रिका आवेग थैलेमस तथा हाइपोथैलेमस से होकर गुजरते है। इससे हाइपोथैलेमस में अभी क्रियाएँ पूर्णतः उत्पन्न नहीं होती है क्योंकि इसके ऊपर प्रमस्तिष्क वल्क का नियन्त्रण होता है जब तन्त्रिका आवेग प्रमस्तिष्क वल्क में पहुँच हाइपोथैलेमस की क्रियाओं पर से वल्क के अवरोध को हटाने के लिये तंत्रिका आवेग भेजता है, तो थैलेमस या हाइपोथैलेमस पूर्ण रूप से क्रियाशील हो जाता है। प्रमस्तिष्क वल्क में अपने आप उत्पन्न होने वाले तन्त्रिका आवेग भी हाइपोथैलेमस या थैलेमस में आते है जिसमें वह और भी अधिक तेजी से क्रियाशील हो जाता है। कैनन-बार्ड सिद्धान्त यह कहता है कि संवेग में होनेवाली शारीरिक प्रतिक्रियाएँ एवं अनुभव किया गया संवेग दोनों एक दूसरे से स्वतन्त्र होते हैं और दोनों की उत्पत्ति एक साथ होती है। इस सिद्धान्त द्वारा संवेग उत्पन्न होने के निम्न कदम होते हैं-

(1) संवेग उत्पन्न करने के लिये किसी उद्दीपक द्वारा ज्ञानेन्द्रिय को उत्तेजित होना अनिवार्य है;

(2) ज्ञानेन्द्रिय से तन्त्रिका आवेग हाइपोथैलेमस होता हुआ प्रमस्तिष्क वल्क में पहुँचता है;

(3) प्रमस्तिष्क वल्क हाइपोथैलेमस पर से अपना नियन्त्रण कम कर देता है तथा कुछ विशेष परिस्थिति में ऐसे तन्त्रिका आवेग को भी हाइपोथैलेमस में भेजता है जिसकी उत्पत्ति विकल्प में हुई होती है।

(4) हाइपोथैलेमस के क्रियाशील होने पर तन्त्रिका आवेग दो दिशा में यानी उपर की दिशा में अर्थात प्रमस्तिष्क वल्क की ओर तथा नीचे की दिशा में अर्थात अन्तरांग तथा बाह्य शारीरिक अंगों की माँसपेशियों की ओर एक साथ जाते हैं। तन्त्रिका आवेग को वल्क में पहुँचने पर संवेग का अनुभव होता है तथ अन्तरांग एवं माँसपेशियों में तन्त्रिका आवेग के पहुँचने पर संवेगात्मक व्यवहार या शारीरिक परिवर्तन होता है।

इस सिद्धान्त की आलोचना इस प्रकार है - (1) कैनन-बार्ड सिद्धान्त के अनुसार संवेग का स्थान सिर्फ हाइपोथैलेमस है परन्तु सच्चाई यह है कि संवेग की उत्पत्ति में हाइपोथैलेमस का महत्व विकीर्ण है, स्पष्ट नहीं, मास्सरमैन (1943) ने अपने प्रयोग से साबित किया कि हाइपोथैलेमस तथा थैलेमस के उत्तेजित करने से जो संवेग उत्पन्न होता है, वह अस्पष्ट, विकीर्ण, यान्त्रिक तथा सांवेगिक रूप से अर्थहीन होता है।

(2)¬ मेयर (1958) तथा ब्रेडी (1960) ने प्रयोग में बताया कि मस्तिष्क के अन्य भाग जैसे लिम्बिका तन्त्र ऐमिगडाला तथा सेपटल क्षेत्र आदि को उत्तेजित करने पर व्यक्ति में संवेग होते पाया गया है और इन हिस्सों को घायल कर देने से संवेग में कमी आ जाती है।

इन आलोचनाओं के बावजुद भी कैननबार्ड का सिद्धांत आज एक प्रमुख सिद्धान्त के अनुसार हाइपोथैलेमस तथा थैलेमस संवेग के उद्गम का बिन्दु है जो अधिकतर मनोवैज्ञानिकों को मान्य है।

14.7.3 लिन्डस्ले का सक्रियण सिद्धान्त

इस सिद्धान्त को लिंडस्ले नं 1951 में दिया। इस सिद्धान्त के अनुसार संवेग प्रमस्तिष्क वल्क के सक्रियण स्तर पर निर्भर करता है। लिंडस्ले के अनुसार सक्रियण सतर चार तरह के होते हैं - शून्य स्तर, निम्न स्तर, उच्च स्तर तथा साधारण या मध्य स्तर। सक्रियण का शुन्य स्तर मृत्यु के बाद होता है अतः इस के अध्ययन का कोई प्रश्न नहीं उठता है। निम्न स्तर नींद के दौरान होते पाया गया है। क्रोध डर आदि तीव्र संवेग में व्यक्ति का सक्रियण स्तर उच्च होते हैं। सामान्य क्रियाओं जैसे पढ़ने, लिखने, खाने-पीने आदि के दौरान व्यक्ति का सक्रियण स्तर साधारण होता है। इस तरह लिंडस्ले ने अपने संवेग सिद्धान्त में सक्रियण की व्याख्या काफी संतोषजनक रूप से की है।

लिंडस्ले का यह सिद्धान्त कई प्रयोगों एवं शोधकार्यों पर आधारित है जो एलेक्ट्रोएन्सीफैलोग्राफ से सम्बन्धित है। इन अध्ययनों से यह स्पष्ट हो गया कि प्रमस्तिष्क वल्क के सक्रिय अवस्था में होने से उसमें कुछ विद्युत स्पन्दन पैदा होता रहता है जिसे हम सामान्यतः मस्तिष्क तरंग कहते हैं। इस तरंग को जिस यंत्र द्वारा नापा जाता है उसे एलेक्ट्रोएन्सीफैलोग्राम कहते हैं। सक्रियणता को ध्यान में रखते हुए यह कहा जाता है कि में दो तरह का मस्तिष्क तरंगे बनती है।

(1) अल्फा मस्तिष्क तरंग

(2) बीटा मस्तिष्क तरंग

जब व्यक्ति आराम की अवस्था में होता है अर्थात व्यक्ति का प्रमस्तिष्क वल्क बहुत अधिक सक्रिय नहीं होता है तो उस समय EEG द्वारा जो मस्तिष्क तरंग रिकार्ड किये जाते हैं, उसे अल्फा तरंग कहा जाता है। जिसकी ऊँचाई अधिक एवं नियमित होती है और जो प्रति सेकण्ड 8 से 12 चक्र की दर से उत्पन्न होती है। जबकि व्यक्ति में सक्रियण का स्तर बढ़ता, तो अल्फा तरंग का बनना बन्द हो जाता है और उसकी जगह पर छोटी ऊँचाई की तरंगें जो प्रति सेकण्ड 18 से 30 चक्र तक की होती है, बनना प्रारम्भ हो जाती है। ऐसी तरंगे काफी तीव्रता से बनती है तथा अनियमितता भी होती है।

लिंडस्ले द्वारा संवेग की व्याख्या काफी सरल है, जो इस प्रकार है - जब किसी संवेग उत्पन्न करने वाले उद्दीपक का व्यक्ति प्रत्यक्षण करता है, तो इससे सुषुन्ना होते हुए स्नायु प्रवाह रेटिकुलर फॉरमेशन में पहुँचता है। जिससे वह उत्तेजित हो जाता है इसके फलस्वरूप रेटिकुलर फॉरमेशन स्नायु प्रवाह को थैलेमस तथा हाइपोथैलेमस में भेजता है जिससे फिर से दोनों उत्तेजित हो जाते हैं और वे स्नायु प्रवाह को कार्टेक्स या वल्क में भेज देते है। कार्टेक्स में स्नायु प्रवाह के पहुँचने के बाद व्यक्ति को सांवेगिक उत्तेजना का अनुभव होता है। लिंडस्ले ने संवेग और उससे सम्बन्धित सक्रियता का आधार रेटिकुलर फॉरमेशन को माना है। लिंडस्ले (1957) अपने सिद्धान्त की व्याख्या निम्न पाँच परिकल्पनाओं के रूप में प्रस्तुत कर रहे हैं।

(1) संवेग में एक विशेष सक्रियता पैटर्न को बताया है जिसमें अल्फा तरंगे समाप्त होकर उसकी जगह पर कम ऊँचाई की तेज तरंगे बनती है लिंडस्ले के इस विचार को बर्गर ने अपने प्रयोग के आधार पर पुष्टि किया हैं इन्होंने अपने अध्ययन में पाया कि डर तथा चिन्ता के संवेग में अल्फा तरंगों का बनना समाप्त हो जाता है। और उसकी जगह पर कम ऊँचाई वाली तीव्र तरंगे बनना प्रारम्भ हो जाती है।

(2) EEG में संवेग में होने वाली सक्रियता पैटर्न को मस्तिष्क स्तम्भ के रेटिकुलर फॉरमेशन को उत्तेजित करके प्राप्त किया जा सकता है। इस तथ्य की पुष्टि मॉरोजी तथा मेगॉन ने अपने प्रयोग में की तथा पाया कि बिल्ली में सक्रियता स्तर बढ़ गई और कार्टेक्स में अल्फा तरंगे करीब-2 समाप्त हो गई।

(3) जब प्राणी में डाइन्सेफलॉन जिसमें मूलतः थैलमस तथा हापोथैलमस आते है, को नष्ट कर दिया जाता है, तो प्रमस्तिष्कीय वलय में सक्रियण समाप्त हो जाता है और उसमें अल्फा तरंगे पुनः बनना प्रारम्भ हो जाती है। लिंडस्ले, बोडेन तथा मेगॉन ने इस तथ्य की पुष्टि कुछ प्रयोगात्मक अध्ययनों से हुई है।

(4) प्राणी के हाइपोथैलेमस तथा थैलेमस को नष्ट कर देने पर जो सांवेगिक व्यवहार उत्पन्न होते हैं वे हापोथैलेमस तथा थैलेमस को उत्तेजित करने से उत्पन्न सांवेगिक व्यवहार के ठीक विपरित होते हैं। अर्थात सांवेगिक उदासीनता पायी जाती है। मनोवैज्ञानिक प्रयोग से यह स्पष्ट हो गया कि ऐसी स्थिति में प्राणी में सुस्ती, निद्रता, उदासीनता, स्तब्धि आदि तीव्र हो जाते हैं।

(5) डाइन्सेफलॉन तथा निम्न मस्तिष्क स्तम्भ के रेटिकुलर फॉरमेशन के प्रक्रम EEG के सक्रियता प्रक्रम के या तो समरूप होते हैं या परस्पर काफी होते हैं। रेनसन तथा मेगाऊन ने इस तथ्य की पुष्टि अपने प्रयोगों द्वारा की। इस तरह के प्रयोगात्मक तथ्य से कैनन बार्ड के सिद्धान्त की भी पुष्टि होती है। क्योंकि उसमें भी हाइपोथैलमस से उत्पन्न उन्मोचन की व्याख्या इस प्रकार की गई है।

लिंडस्ले द्वारा प्रतिपादित संवेग का यह सिद्धान्त मनोवैज्ञानिकों के बीच काफी चर्चित है। अतः लोगों ने इस सिद्धान्त के गुण-दोष बतलाये है। तीन गुण प्रमुख है जो निम्न हैं -

(1) इस सिद्धान्त का सबसे महत्वपूर्ण गुण है जैसा कि क्लीग्स ने बतलाया है, यह है कि इसके द्वारा तीव्र तथ मंद संवेग दोनों की व्याख्या सन्तोषजनक रूप से हो जाती है।

(2) इस सिद्धान्त में लिंडस्ले ने संवेगात्मक तथा असंवेगात्मक व्यवहार में सिर्फ सक्रियण-स्तर की मात्रा (अधिक या कम) का अन्तर माना है।

(3) यह सिद्धान्त कैनन-बार्ड सिद्धान्त की अपेक्षा अधिक व्यापक तथा महत्त्वपूर्ण है क्योंकि संवेग की उत्पत्ति में हाइपोथैलमस के अलावा मस्तिष्क के अन्य हिस्सों तथा प्रमस्तिष्क कार्टेक्स के महत्व को स्वीकार किया गया है।

इन गुणों के बावजूद इस सिद्धान्त में कुछ अवगुण है वे निम्न हैं -

(1) इस सिद्धान्त द्वारा तीव्र संवेग तथा मंद संवेग की व्याख्या तो हो जाती है लेकिन बीच के तथा मिश्रित संवेगों को तुलनात्मक रूप से बिना व्याख्या किये ही छोड़ देता है।

(2) लिंडस्ले के सिद्धान्त के संवेग की व्याख्या कम तथा सक्रियण स्तर की व्याख्या अधिक है।

(3) लिंडस्ले सिद्धान्त में कही भी संज्ञानात्मक कारकों जैसे पूर्व अनुभूति, प्रत्यक्षण आदि के महत्त्व को संवेग में नहीं दिखलाया है।

इन आलोचनाओं के बावजूद लिंडस्ले का सक्रियण सिद्धान्त एक महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त है तथा मनोवैज्ञानिकों के बीच इस सिद्धान्त की मान्यता काफी अधिक है।

14.8 सारांश

इस अध्याय में संवेग की परिभाषा, उसके स्वरूप तथा संवेग द्वारा शारीरिक व आन्तरिक परिवर्तनों को समझाया गया है मनुष्य भिन्न-भिन्न तरह के संवेग जैसे डर, क्रोध, व्यथा, प्यार, आदि दिखलाता है | ये सभी संवेग इसमें जन्म से ही मौजूद नहीं होते हैं। व्यक्ति इन संवेगों को विकसित करता है। संवेगों के सिद्धान्तों द्वारा संवेगों की उत्पत्ति के बारे में तथा किस प्रक्रिया से होकर संवेग उत्पन्न होता है इस विषय पर प्रकाश डाला गया है। विभिन्न मनोवैज्ञानिकों द्वारा भिन्न-भिन्न प्रक्रियाओं से संवेग की क्रिया को समझाया गया है। संवेग के जेम्स-लांजे सिद्धान्त में संवेगात्मक अनुभूति संवेगात्मक व्यवहार पर निर्भर करती है। इस बार पर बल दिया गया है। इसी प्रकार कैनन-बार्ड सिद्धान्त में संवेगात्मक व्यवहार व संवेगात्मक अनुभूति स्वतन्त्र रूप से एक साथ होते हैं। इस बात पर जोर दिया गया। इसी प्रकार लिंडस्ले के सक्रियण सिद्धान्त में संवेग की उत्पत्ति का कारण रेटिकुलर फॉरमेशन के उत्तेजित होने से है तथा संवेग की तीव्रता या मन्दता सक्रियण स्तर पर निर्भर करता है।

14.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1 संवेग की परिभाषा एवं स्वरूप की व्याख्या कीजिये।

2 संवेग तथा अभिप्रेरणा के सम्बन्ध को समझाइये।

3 संवेग के शारीरिक परिवर्तनों की व्याख्या कीजिये।

4 लिंडस्ले के सक्रियण सिद्धान्त का मूल्यांकन कीजिए।

14.10 संदर्भ सूची

- Morgan, Clifford T, King, Richard A, Weisz, John R., Schopler, John, Introduction to Psychology, Tata Mcgraw – Hill Edtion.
- श्रीवास्तव, डॉ. डी.एन. एवं वर्मा प्रीति (1986), ''सामान्य मनोविज्ञान" विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा।
- सिंह अरूण कुमार, सिंह आशीष कुमार (2005), ''आधुनिक सामान्य मनोविज्ञान" मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली, द्वितीय संशोधित संस्करण
- सिंह अरूण कुमार, (2014), ''उच्चतर सामान्य मनोविज्ञान", मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, आठवां संशोधित एवं परिवर्द्धित संस्करण,2014.
- जायसवाल, सीताराम (1985), ''सामान्य मनोविज्ञान", आर्य बुक डिपो, नई दिल्ली
- त्रिपाठी, लाल बच्चन (1999), ''आधुनिक प्रयोगात्मक मनोविज्ञान", एच.पी. भार्गव बुक हाउस, आगरा |

इकाई – 15

संवेग में स्वयं-संचालित स्नायु-संस्थान की भूमिका
Role of Autonomy Nervous System in Emotion

इकाई की रुपरेखा

15.1 प्रस्तावना
15.2 उद्देश्य
15.3 संवेग : संप्रत्यय
15.4 संवेग की परिभाषा और प्रकार
15.5 स्नायु-संस्थान: संप्रत्यय
15.6 स्वयं-संचालित स्नायु-संस्थान की संरचना
15.7 स्वयं-संचालित स्नायु-संस्थान के प्रकार
15.8 स्वयं-संचालित स्नायु-संस्थान के कार्य
15.9 संवेग में स्वयं-संचालित स्नायु-संस्थान की भूमिका
15.10 सारांश
15.11 शब्दावाली
15.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
15.13 निबंधात्मक प्रश्न
15.14 संदर्भ ग्रंथ सूची

15.1 प्रस्तावना

मनुष्य अपने जीवनकाल में अनगिनत आन्तरिक भावों की अभिव्यक्ति विवेक प्रक्रिया के नियन्त्रण से मुक्त होकर करता है। ये भाव उसके संवेग होते हैं जिनसे उसे किसी कार्य को करने या न करने की प्रेरणा मिलती है। संवेगों को नियन्त्रित और संचालित करने का कार्य प्राणी के स्नायु-संस्थान द्वारा किया जाता है। प्रस्तुत इकाई में आप संवेग में स्वयं-संचालित स्नायु-संस्थान की भूमिका का विस्तार पूर्वक अध्ययन करेंगे।

15.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्धयन करने के पश्चात आप-

- संवेग का अर्थ समझ सकेंगे और उसे परिभाषित कर सकेंगे।
- स्नायु-संस्थान का अर्थ समझ सकेंगे और उसे परिभाषित कर सकेंगे।

- केन्द्रीय स्नायु-संस्थान के संप्रत्यय को बता सकेंगे।
- स्वयं-संचालित स्नायु-संस्थान की संरचना और प्रकारों को समझसकेंगे।
- स्वयं-संचालित स्नायु-संस्थान के कार्यों को बता सकेंगे।
- संवेग में स्वयं-संचालित स्नायु-संस्थान की भूमिका की व्याख्या कर सकेंगे।

15.3 संवेग का संप्रत्यय(Perspective of Emotion)

प्रत्येक प्राणी अपने जीवनकाल के दौरान विभिन्न परिस्थितियों का सामना करता है और इन परिस्थितियों में समय-समय पर वह सुख-दुःख जैसे-हर्ष, प्रेम, क्रोध एवं भय आदि भावों को अनुभव करता है। ये भाव संवेग के नाम से जाने जाते हैं। संवेगों के द्वारा प्राणी को विभिन्न कार्यों को करने की प्रेरणा शक्ति मिलती है। संवेगों का सम्वन्ध प्राणी के भावात्मक पक्ष से होता है। संवेग वास्तव में प्राणी की वह मानसिक असंतुलन की अवस्था है, जिसमें वह अपनी सामान्य अवस्था में नहीं रह पाता है। वह असामान्य व्यवहार प्रदर्शित करता है। आप प्रतिदिन के व्यवहार में ऐसे बहुत से शब्दों का प्रयोग करते होंगे जो आपकी संवेगात्मक स्थिति को अभिव्यक्त करते हैं। किन्तु अभी-कभी ऐसी संवेगात्मक स्थिति भी उत्पन्न होती होगी कि आप उसे कोई विशिष्ट नाम नहीं दे पाते होंगे और उस संवेग को अभिव्यक्त करने के लिए उपयुक्त नाम देने में स्वयं को असमर्थ पाते होंगे। संवेग में भाव, बाह्य उत्तेजना तथा शारीरिक अवयवों और ग्रन्थियों के परिवर्तन सभी शामिल होते हैं, जबकि भाव एक ऐसा स्वतन्त्र मानसिक अनुभव है जो संवेग के कारण उत्पन्न होता है। अतः संवेग वास्तव में भावों का उद्वेलित होना है।

संवेग को उत्पन्न करने वाली परिस्थितियाँ- संवेग वास्तव में एक ऐसी मिश्रित अनुभूति है, जो विभिन्न परिस्थितियों में उत्पन्न होती है। इसलिए किसी भी संवग के कारणों को स्पष्ट करना अत्यन्त जटिल कार्य है। इसके लिए आपको दैनिक जीवन में घटित होने वाली घटनाओं का अवलोकन करने का अभ्यास होना चाहिए। संवेगों को बाह्य और आन्तरिक दोनों ही कारणों से उत्पन्न किया जा सकता है। जैसे- यदि आपके आत्मसम्मान पर प्रहार किया जाता है या आपको शारीरिक हमले की सम्भावना है तो इस स्थिति में आपके संवेगों का भड़क उठना स्वाभाविक है। इस तरह की घटनाओं से प्रायः निषेधात्मक संवग (Negative Emotion) जैसे- भय, क्रोध, अपमान या शत्रुता आदि की मिश्रित अनुभूति होती है।

विभिन्न संवेगों को अभिव्यक्त करते चेहरे

कुछ ऐसी परिस्थितियाँ भी होती हैं जो संवेगों को उत्पन्न करती हैं तथा आपकी रूचि, आयु, योग्यता और क्षमता में बृद्धि के साथ परिवर्तित होती रहती हैं। एक वस्तु जो आपको प्रसन्न कर सकती है, और वही वस्तु आपके मित्र के लिए दुःख का कारण बन सकती है, अतः किसी वस्तु के प्रति आपकी या आपके मित्र की संवेगात्मक प्रतिक्रिया वस्तु के स्वरूप और आपकी अन्तर्दशा अथवा मनोदशा दोनों पर ही निर्भर करती है। आपके जीवन में घटित होने वाली कोई भी घटना आपके

अन्दर किस संवेग को उत्पन्न करेगी ? यह इस बात पर निर्भर करता है कि आप उस घटना से कितना लाभान्वित होंगे अथवा आपको उससे क्या क्षति उठानी पड़ेगी। वस्तुतः आप जीवनपर्यन्त संवेगों से प्रभावित होते हैं।

15.4 संवेग की परिभाषा और प्रकार (Definitions and Types of Emotion)

यदि आप कुछ दिन पहले जन्में किसी नवजात शिशु का अवलोकन करते हैं, तो आप देखेंगे कि उस शिशु का व्यवहार आपको भिन्न प्रकार का लगेगा – वह शिशु रोता है, मुस्कुराता है, अपने शरीर के अंगों को विभिन्न दिशाओं में संचालित करता है। उसका यह व्यवहार वस्तुतः संवेगात्मक ही है। संवेग भावातिरेक की मानसिक दशा का सूचक होता है जो किसी उद्दीपक या बाह्य उत्तेजना के कारण उत्पन्न होता है। संवेग शब्द अंग्रेजी भाषा के **इमोशन (Emotion)** शब्द का हिन्दी रूपान्तरण है। इसमें **'ई'(E)** से तात्पर्य है अन्दर से और **'मोशन' (Motion)** का अर्थ है गति। इस प्रकार इमोशन शब्द का तात्पर्य आन्तरिक भावों को बाहर की ओर गति देना है। संवेग शब्द का शाब्दिक अर्थ है – वेग से युक्त अर्थात जब व्यक्ति वेग से युक्त होकर कार्य करता है तो उस स्थिति को संवेग कहते हैं। अतः संवेग एक जटिल भावात्मक मानसिक प्रक्रिया है। विभिन्न मनोवैज्ञानिकों ने संवेग को निम्नलिखित प्रकार से परिभाषित किया है-

वुडवर्थ के अनुसार- "संवेग व्यक्ति की गति में या आवेश में आने की स्थिति है।"

पी. टी. यंग के शब्दों में- "संवेग सम्पूर्ण व्यक्ति में तीव्र उपद्रव करने वाला है, जिसकी उत्पत्ति मनोवैज्ञानिक होती है और जिसके फलस्वरूप व्यवहार, चेतन अनुभव और अन्तरंग क्रियायें होती हैं।"

आर्थर टी. जर्सील्ड के मतानुसार- " 'संवेग' शब्द किसी भी प्रकार से आवेश में आने, भड़कने अथवा उत्तेजित होने की दशा को इंगित करता है।"

आर. ए. बरोन के अनुसार- "संवेग का तात्पर्य ऐसी प्रतिक्रियाओं से है, जिसमें आत्मगत संज्ञानात्मक व्यवहार होते हैं।"

संवेग की उपर्युक्त परिभाषाओं के विश्लेषण से इसकी निम्नलिखित बिशेषतायें स्पष्ट होती हैं-

(i) संवेग व्यक्ति की आवेश में आने की स्थिति है।
(ii) संवेग एक तीव्र उपद्रव की अवस्था है जो व्यक्ति में सम्पूर्ण रूप से पाई जाती है।
(iii) संवेग किसी भी प्रकार से उत्तेजित होने की दशा को व्यक्त करता है।
(iv)संवेग की उत्पत्ति के लिए किसी उद्दीपक की उपस्थिति का होना आवश्यक है।
(v) संवेग की अवस्था में बाह्य और आन्तरिक परिवर्तन भी होते हैं।

संवेग के प्रकार- संवेग के कई प्रकार हैं, जिनमें प्रेम, भय, क्रोध. ख़ुशी, घृणा, ईर्ष्या आदि प्रमुख हैं। इन्हें प्राथमिक संवेग (Primary Emotions) या विशिष्ट संवेग (Specific Emotions) कहा जाता है। जन्म के समय बच्चा विशिष्ट संवेग से मुक्त होता है। आयु और अनुभव में बृद्धि होने पर शनैः-शनैः इनका विकास होता है। जिन संवेगों जैसे- प्रेम, स्नेह और प्रशंसा आदि से आपको सुख

मिलता है उन्हें धनात्मक संवेग कहते हैं। जिन संवेगों जैसे-भय, क्रोध और ईर्ष्या आदि से आपको दुःख मिलता है उन्हें नकारात्मक संवेग कहा जाता है।

मैकडूगल (McDougal) ने कुल चौदह संवेगों को वर्गीकृत किया है, जिनमें से प्रत्येक संवेग की एक-एक मूल-प्रवृत्ति (Instinct) भी होती है। इन चौदह संवेगों का उल्लेख उनकी मूल-प्रवृत्तियों सहित निम्नलिखित तालिका में किया गया है।

क्र.सं .	**संवेग (Emotion)**	**मूल-प्रवृत्ति (Instinct)**
.1	भय	पलायन
.2	क्रोध	युयुत्सा
.3	घृणा	निवृत्ति
.4	बात्सल्य	सन्तान कामना
.5	करूणा	शरणागति
.6	कामुकता	काम प्रवृत्ति
.7	आश्चर्य	जिज्ञासा
.8	आत्महीनता	दैन्य
.9	आत्मअभिमान-	आत्मगौरव
.10	एकाकीपन	सामूहिकता
.11	भूख	भोजन तलाश
.12	अधिकार	संग्रहण
.13	कृतिभाव	रचनाधार्मिता
.14	आमोद	हास

अभ्यास प्रश्न :-1

1. संवेग वास्तव में----------का उद्द्वेलित होना है।
2. संवेगों को---------- दोनों ही कारणों से उत्पन्न किया जा सकता है।
3. संवेग की उत्पत्ति के लिए किसी ---------- की उपस्थिति का होना आवश्यक है।
4. जिन संवेगों जैसे- प्रेम, स्नेह और प्रशंसा आदि से आपको सुख मिलता है उन्हें ---------- संवेग कहते हैं।
5. ---------- ने कुल चौदह संवेगों को वर्गीकृत किया है।

15.5 स्नायु-संस्थान: संप्रत्यय (Nervous System Perspective)

सामान्यतः यह कहा जाता है कि 'आप वही होते हैं जो स्नायु-संस्थान आपको करने की अनुमति देता है ।' इसका तात्पर्य यह है कि आपके विचार, भाव, संवेग, संवेदना, इच्छा, रूचि, स्वप्न, सृजनात्मकता, भाषा और स्वयं आपका जीवन सब कुछ विश्व में सर्वाधिक जटिल संरचना- 'मस्तिष्क' द्वारा नियंत्रित होता है। मस्तिष्क की कार्यप्रणाली को समझना बहुत ही कठिन कार्य है, परन्तु असंभव नहीं। यदि आप अपने शरीर की यन्त्र-रचना (Mechanism) का अवलोकन करते हैं तो यह पाएंगे कि यह रचना आपको बौद्धिक रूप से वातावरण से मिले उद्दीपकों के प्रति-प्रतिक्रिया करने के योग्य बनाती है। आपके अन्दर आपका स्नायु-संस्थान ही है जो आपके प्रतिक्रिया सम्बन्धी सभी प्रकार के व्यवहारों को सुसंचालित करता है । आपका प्रतिक्रिया यन्त्र (Response Mechanism) निम्नलिखित तीन अंगों से मिलकर बनता है –

1. ग्राहक (Receptors)
2. स्नायु-संस्थान (Nervous System)
3. प्रभावक (Effectors)

1. **ग्राहक (Receptors)** – आप जिन अंगों के द्वारा अपने चारों ओर के वातावरण में होने वाले परिवर्तनों के प्रति अनुक्रिया करते हैं वे सभी अंग ज्ञानेन्द्रियाँ कहलाते हैं । आपकी सभी ज्ञानेन्द्रियाँ जैसे- आँख, नाक, कान, जीभ और त्वचा आदि ग्राहक होती हैं। ये ज्ञानेन्द्रियाँ बाह्य और आन्तरिक वातावरण से उत्तेजनाएँ ग्रहण करती हैं।
2. **स्नायु-संस्थान (Nervous System)** – जैसा कि आप जानते हैं आपके शरीर में बहुत से अंग और अंग संस्थान पाए जाते हैं जो कि स्वतन्त्र रूप से कार्य करने में असमर्थ होते हैं । जैव स्थिरता के लिए आपके शरीर के विभिन्न अंगों के कार्यों में समन्वय आवश्यक है। इसके द्वारा दो या अधिक अंगों में क्रियाशीलता बढ़ती है और एक-दूसरे अंगों के कार्यों में सहायता मिलती है। आपके शरीर में स्नायु-संस्थान एवं अन्तःस्रावी संस्थान सम्मिलित रूप से अन्य अंगों की क्रियाओं में समन्वय करते हैं औए उन्हें एकीकृत करते हैं, जिससे सभी क्रियाएं एक साथ संचालित होती रहती हैं। स्नायु-संस्थान ऐसा व्यवस्थित जाल तंत्र गठित करता है, जो तीव्र समन्वय हेतु बिंदु दर बिंदु जुड़ा रहता है। स्नायु -संस्थान अति विशिष्ट प्रकार की कोशिकाओं से बनता है जिन्हें स्नायु कोशिका या तंत्रिकोशिका कहते हैं। स्नायु-संस्थान लगभग 100 से 120 अरब स्नायु कोशिकाओं से मिलकर बना होता है। स्नायु-संवेगों के परिवहन का कार्य स्नायु कोशिकाओं के द्वारा किया जाता है। स्नायु कोशिकाओं में एक जीव कोशिका (Body Cell) होती है जिसके एक छोर की ओर एक अक्ष-तन्तु (Axon) होता है, और दूसरी ओर वृक्ष-तन्तु (Dendrite) होता है। इस प्रकार प्रत्येक स्नायु के तीन भाग होते हैं-
   i. वृक्ष-तन्तु (Dendrite)
   ii. जीव कोशिका (Body Cell)
   iii. अक्ष-तन्तु (Axon)

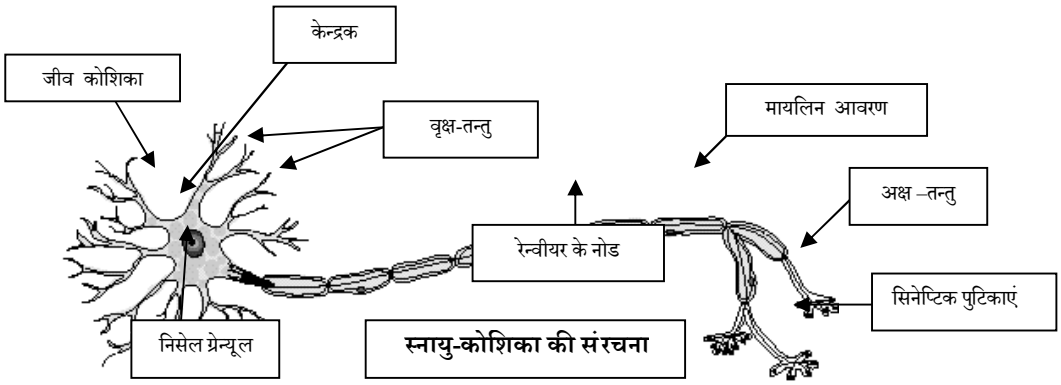

वृक्ष-तन्तु पेड़ की टहनियों की तरह फैला हुआ होता है। ये जीव-कोशिका से प्रवर्धित होकर लगातार विभाजित होते रहते हैं जिनमें निसेल ग्रेन्यूल भी पाए जाते हैं। वृक्ष-तन्तु का प्रमुख कार्य स्नायु-संवेगों या उद्दीपनों को ग्रहण कर जीव-कोशिकाओं में ले जाना है। इसी कारण इसे ग्राही तन्तु (Receptor) भी कहा जाता है।

जीव-कोशिका का कोई निश्चित आकार नहीं होता है, बल्कि यह अण्डाकार, वृत्ताकार और गोलाकार आदि अनेक आकृतियों का हो सकता है। प्रत्येक कोशिका के चारों ओर झिल्लिका (Membrane) रूपी परत पायी जाती है जिसके नीचे तरल पदार्थ साईटोप्लाज्म (Cytoplasm) भरा रहता है। साईटोप्लाज्म के मध्य में केन्द्रक (Nucleus) और केन्द्रक के चारों ओर विशेष दानेदार अंगक निसेल ग्रेन्यूल पाए जाते हैं। केन्द्रक के अन्दर सूक्ष्म न्यूक्लिआई (Nucleoi) उपस्थित रहता है। जीव-कोशिका का मुख्य कार्य वृक्ष-तन्तु द्वारा लाये गये स्नायु-संवेगों को अपने केन्द्रक में ग्रहण करके पुनः उन्हें अक्ष-तन्तु की ओर भेजना है।

जीव-कोशिका के एक सिरे से पतली और छड़ीनुमा संरचना निकलती है जिसे अक्ष-तन्तु कहा जाता है। इसका दूरस्थ भाग शाखित और प्रत्येक शाखित भाग का अंतिम छोर लड़ीनुमा संरचना सिनेप्टिक नोब होता है जिसमें सिनेप्टी पुटिकाएं पायी जाती हैं। इसमें नूरोट्रांसमीटर्स नामक रसायन पाए जाते हैं। अक्ष-तन्तु के एक छोर पर पतली-पतली झाड़नुमा संरचना एण्डब्रश पाए जाते हैं। एक अक्ष-तन्तु का एण्डब्रश दूसरे अक्ष-तन्तु के वृक्ष-तन्तु से जुड़ा रहता है। अक्ष-तन्तु या तंत्रिकाक्ष का कार्य स्नायु-संवेगों को जीव-कोशिका से दूर सिनेप्स पर या तांत्रिकीयपेशी सन्धि पर पहुँचाना है।

स्नायु के कार्य (Functions of Neurons) – किसी उद्दीपक के मिलने से ग्राहक उत्तेजित होते हैं और स्नायु-संवेग उत्पन्न हो जाता है, जैसे- आपके नेत्रों के सम्मुख कोई चित्र आता है तो आपके अन्दर दृष्टि स्नायु-संवेग उत्पन्न हो जाता है। यह स्नायु-संवेग वृक्षतन्तु द्वारा ग्रहण किया जाता है और इसे जीव-कोशिका में भेज दिया जाता है। जहाँ से इसे अक्षतन्तुओं द्वारा मांसपेशियों या स्नायु-संस्थान के किसी केन्द्र विशेष की ओर भेज दिया जाता है।

स्नायु के प्रकार (Kinds of Neurons) – रचना और कार्य के आधार पर स्नायु निम्नलिखित तीन प्रकार के होते हैं-

क्र. .सं	स्नायु के प्रकार	कार्य
1	संवेदी स्नायु (Sensory Neuron)	स्नायुसंवेगों को ग्राहकों से लेकर सुषुम्ना या - मस्तिष्क तक पहुँचाना।
2	कार्यवाहक स्नायु (Motor Neuron)	स्नायुसंवेगों को माँसपेशियों और पिण्डों तक - पहुँचाना।
3	संयोजक स्नायु (Co-Ordinating Neuron)	संवेदी और कार्यवाहक क्षेत्रों को जोड़ना।

स्नायु-सन्धि (Synapse) – स्नायु-सन्धि वह स्थान है जहाँ एक स्नायु का वृक्षतन्तु दूसरे स्नायु के अक्षतन्तु से सम्बन्ध स्थापित करता है। परन्तु यहाँ आपको इस तथ्य पर ध्यान देना चाहिए कि सम्बन्ध स्थापित करने से तात्पर्य भौतिक रूप से वृक्षतन्तु और अक्षतन्तु का मिलना नहीं है वरन् इन दोनों प्रकार के तन्तुओं के मिलने के स्थान पर कुछ दूरी रहती है। यह जो दूरी का स्थान है, वास्तव में यही सन्धि का स्थल कहलाता है। जब एक स्नायु में अक्षतन्तु से स्नायु-संवेग दूसरे स्नायु के वृक्षतन्तु में प्रवेश करने के लिए तैयार होता है तो उसे स्नायु-सन्धि से होकर जाना पड़ता है। इस स्थान पर आकर स्नायु-संवेग की गति धीमी पड़ जाती है और फिर एक छलाँग लगाकर इस सन्धि स्थल को पार कर जाता है। यह क्रिया बिल्कुल उसी प्रकार होती है, जिस प्रकार आप जब अपने कॉलेज जाते हैं तो मार्ग में नाला आने पर आपकी गति धीमी पड़ जाती है और आप उस नाले को छलाँग लगाकर पार करते हैं।

स्नायु-सन्धि की विशेषताएँ (Charactristics of Synapse) – रचना और कार्य के आधार पर स्नायु सन्धि निम्नलिखित विशेषताएँ हैं –

i. स्नायु-सन्धि स्थल को 'एक दिशागामी वाल्व (One-Valve)' कहा जाता है क्योंकि प्रत्येक स्नायु-सन्धि स्थल पर संवेग के जाने की एक ही दिशा हो सकती है।
ii. स्नायुओं के छोर सन्धि स्थल पर मिलते नहीं हैं, वरन् इनमें कुछ दूरी बनी रहती है।
iii. एक ही स्नायु-सन्धि स्थल पर अनेक स्नायु संयुक्त रहते हैं।
iv. एक ही सन्धि-स्थल पर विभिन्न दिशाओं से अनेक स्नायु-संवेग पहुँच सकते हैं। इनमें से जो शक्तिशाली होते हैं, वे कमजोर स्नायु-संवेगों को पीछे छोड़कर स्वयं सन्धिस्थल को पार कर जाते हैं।
v. प्रारम्भ में जब स्नायु संवेग से गुजरता है तो उसके आवागमन में सन्धि-स्थल पर व्यवधान उत्पन्न होता है। इस व्यवधान को अवरोध कहा जाता है परन्तु यदि थोड़ा प्रयास किया जाये तो यह अवरोध बहुत कम किया जा सकता है जिससे स्नायु-संवेग एक निश्चित दिशा में आसानी से चला जाता है। लेकिन सन्धि-स्थल पर सम्पूर्ण अवरोध को दूर नहीं किया जा सकता। यहाँ संवेग के परिवहन में कुछ न कुछ मात्रा में व्यवधान अवश्य बना रहता है।

यही कारण है कि जितना समय सम्पूर्ण स्नायु को पार करने में लगता है, उससे ज्यादा समय सन्धि-स्थल को पार करने में लगता है।

स्नायु-संस्थान के भाग (Parts of Nervous System) - स्नायु-संस्थान को सामान्यतः तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है –

1. केन्द्रीय स्नायु-संस्थान (Central Nervous System)
2. स्वयं संचालित स्नायुसंस्थान (Autonomic Nervous System)
3. संयोजन स्नायु-संस्थान (Peripheral Nervous System)

1. केन्द्रीय स्नायु-संस्थान (Central Nervous System - केन्द्रीय स्नायु-संस्थान ही मानव की उच्च मानसिक क्रियाओं का केन्द्र होता है। इसे दो मुख्य भागों में बाँटा जा सकता है –

i. मस्तिष्क (Brain)
ii. सुषुम्ना नाड़ी (Spinal Cord)

i. मस्तिष्क (Brain) – मस्तिष्क मानव शरीर का केन्द्रीय सूचना प्रसारण अंग है जो खोपड़ी के अन्दर कड़े खोल में सुरक्षित रहता है। इसे आघात से बचाने के लिए खोपड़ी के अन्दर चारों ओर एक तरल पदार्थ कपालीय मेनिंजेज भरा रहता है, जिसकी बाह्य परत ड्यूरा मैटर, बहुत पतली मध्य परत एरेक्नॉयड और एक आन्तरिक परत पाया मैटर कहलाती है। मस्तिष्क में 50 प्रतिशत भूरा पदार्थ (Grey Matter) और 50 प्रतिशत सफ़ेद पदार्थ (White Matter) भरा रहता है। भूरे पदार्थ के अन्दर जीव-कोशिका और सफ़ेद पदार्थ के अन्दर नाड़ी-तन्तु पाए जाते हैं। लगभग 3 पाउण्ड का मानव मस्तिष्क 20 खरब स्नायु-कोशिकाओं से निर्मित होता है। यह 'आदेश और नियन्त्रण तन्त्र' की भाँति कार्य करता है। यह ऐच्छिक गमन शरीर के संतुलन, प्रमुख अनेच्छिक अंगों (फेफड़े, हृदय आदि) के कार्यों, तापमान नियन्त्रण, भूख और प्यास, परिवहन, लय और मानव व्यवहार के साथ ही देखने, सुनने, संवेगों, भावनाओं और विचारों को भी नियन्त्रित करता है।

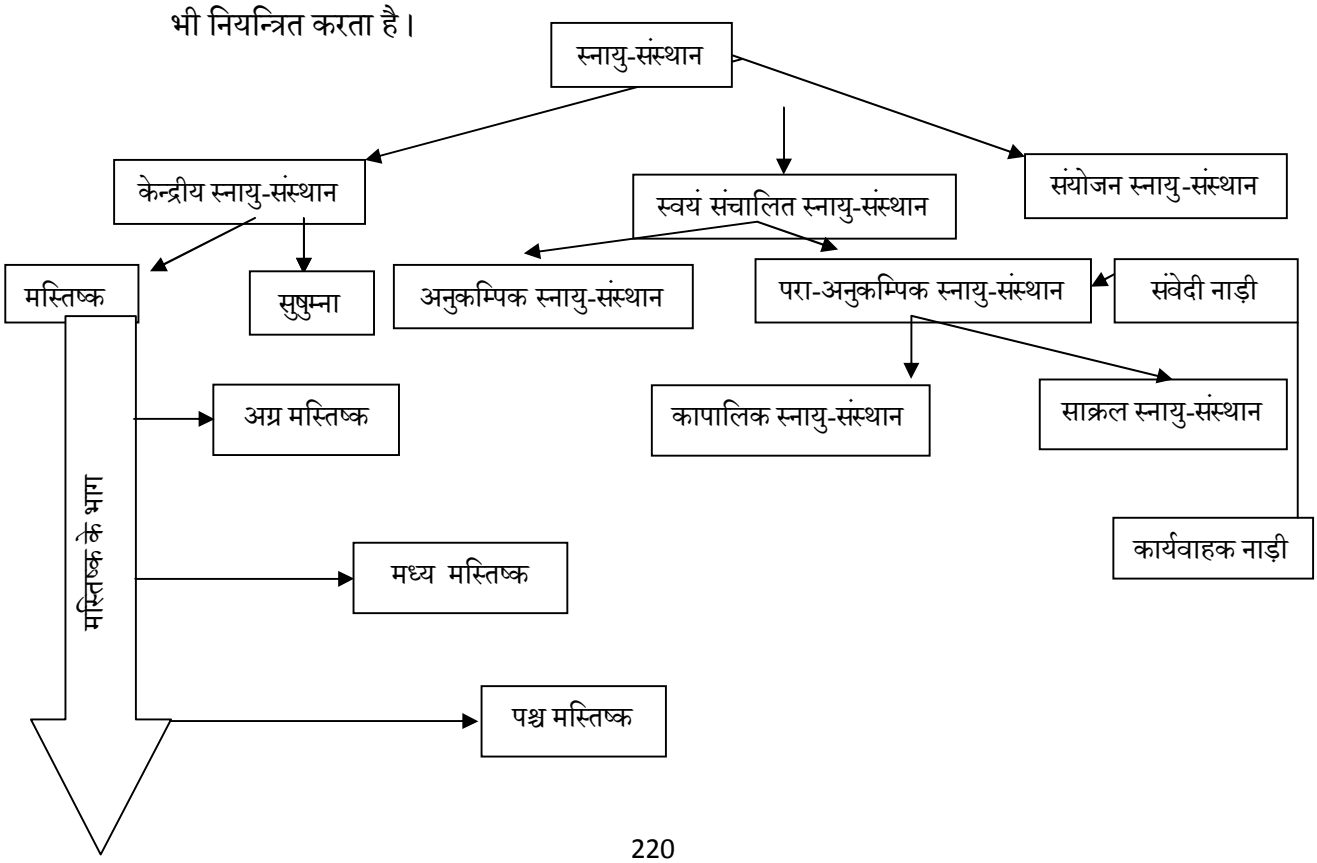

मस्तिष्क के भाग (Parts of Brain) – मानव मस्तिष्क को निम्नलिखित भागों में विभक्त किया जा सकता है –

a) अग्र मस्तिष्क (Posterior Brain)
b) मध्य मस्तिष्क (Mid Brain)
c) पश्च मस्तिष्क (Hind Brain)

a) अग्र मस्तिष्क (Posterior Brain) - अग्र मस्तिष्क आकार में अन्य सभी मस्तिष्क के भागों से बड़ा होता है और सबसे ऊपर स्थित होता है। इसे उच्च मस्तिष्क या वृहत मस्तिष्क भी कहते हैं । यह सेरीब्रम, थैलमस और हाइपोथैलमस के संयुग्मन से निर्मित होता है । सेरीब्रम (प्रमस्तिष्क) मानव मस्तिष्क का एक बड़ा भाग निर्मित करता है । एक गहरी लम्बवत दरार सेरीब्रम को दो भागों दाएं और बाएं प्रमस्तिष्क गोलार्द्धों में बाँटती है । स्नायु तन्तुओं की पट्टी कार्पस कैलोसम इन दोनों गोलार्द्धों को जोड़ती है । ये गोलार्द्ध कोशिकाओं की एक परत प्रमस्तिष्क वल्कुट द्वारा ढके रहते हैं । यह परत निश्चित गर्तों में परिवर्तित हो जाती है । प्रमस्तिष्क-वल्कुट को धूसर द्रव्य या कार्टेक्स (Cortex) भी कहा जाता है क्योंकि इसका रंग धूसर होता है। स्नायु जीव-कोशिका सांद्रित होकर इसे रंगीन बनाती है।

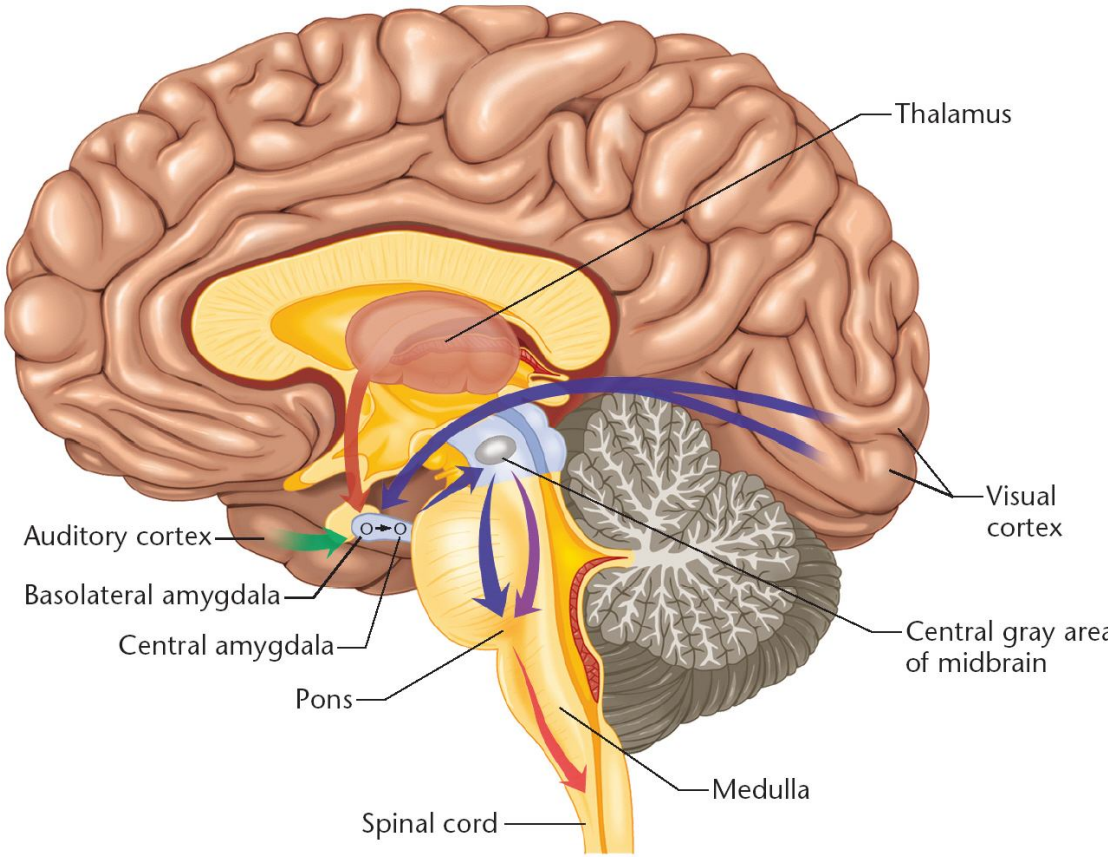

मस्तिष्क की संरचना

प्रमस्तिष्क वल्कुट में सहभागी क्षेत्र होते हैं जो जटिल क्रियाओं जैसे-अन्तर संवेदी सहभागिता, स्मरण और सम्पर्क सूत्र आदि को नियन्त्रित करते हैं। इसके तन्तु माइलिन आच्छद से ढके रहते हैं जो कि प्रमस्तिष्क गोलार्द्ध का आन्तरिक भाग निर्मित करते हैं। ये तन्तु इस परत को सफ़ेद और अपारदर्शी बनाते हैं, जिसे श्वेत द्रव्य कहा जाता है। प्रमस्तिष्क सामान्यतः थैलेमस नामक संरचना को चारों ओर से घेरे रहता है। थैलेमस संवेदी और प्रेरक संकेतों का मुख्य सम्पर्क वाला स्थान है। इसका क्षेत्र मस्तिष्क के गोलार्द्धों को जोड़ने वाले भाग सेतु (Pons) के ठीक ऊपर होता है। थैलेमस का मुख्य कार्य यह है कि जो स्नायु-संवेग विभिन्न ग्राहकों द्वारा यहाँ भेजे जाते हैं, वे थैलेमस के द्वारा कार्टेक्स के विभिन्न क्षेत्रों की ओर अग्रेसित कर दिए जाते हैं। थैलेमस क्षेत्र के नीचे और सेतु के ऊपर के मस्तिष्क के भाग को लघु थैलेमस या हाइपोथैलेमस (Hypothalamus) कहते हैं। इसमें कई केन्द्र होते हैं, जो शरीर के तापमान, खाने और पीने को नियन्त्रित करते हैं। इसमें कई स्नायु स्रावी कोशिकाएं भी पायी जाती हैं, जो हाइपोथैलेमिक हार्मोन का स्रवण करती हैं। प्रमस्तिष्क गोलार्द्ध के अंगों जैसे-एमिगडाला, हिप्पोकैपस आदि सयुंक्त होकर एक जटिल संरचना लिंबिकलोब को निर्मित करते हैं। यह लिंबिकलोब या लिंबिक संस्थान हाइपोथैलेमस के साथ सयुंक्त रूप से लैंगिक व्यवहार,स्वतः संचालित क्रियाओं और संवेगों की अभिव्यक्ति आदि को नियन्त्रित करता है। इसीलिए हाइपोथैलेमस को संवेगों का केन्द्र माना जाता है।

b) **मध्य मस्तिष्क (Mid Brain)** – मध्य मस्तिष्क अग्र मस्तिष्क के थैलेमस और हाइपोथैलेमस तथा पश्च मस्तिष्क के सेतु के मध्य स्थित होता है। प्रमस्तिष्क तरल नलिका मध्य मस्तिष्क से होकर जाती है। इसका ऊपरी भाग चार लोबनुमा उभारों कॉर्पोरा क्वाड्रीजेमीन का बना होता है।

c) **पश्च मस्तिष्क (Hind Brain)** - पश्च मस्तिष्क सेतु (Pons), अनुमस्तिष्क (Cerebellum) और मध्यांश (Medulla Oblongata) के संयुग्मन से बना होता है। पुल के महरावनुमा सफ़ेद रंग का सेतु सुषुम्ना शीर्षक के ठीक ऊपर स्थित होता है जो मस्तिष्क के विभिन्न भागों को आपस में जोड़ता है। यह शरीर तथा वातावरण के मध्य सामंजस्य बनाये रखने में भी सहायता करता है। अनुमस्तिष्क सुषुम्ना शीर्षक के ऊपर और अग्रमस्तिष्क के नीचे की ओर स्थित होता है। छोटा आकार और बल्ब की भाँति होने के कारण इसे लघु मस्तिष्क भी कहते हैं। इसकी सतह विलगित होती है जो तन्तुओं को अतिरिक्त स्थान प्रदान करती है। इसमें दरारें गहरी और क्रमबद्ध होती हैं। केन्द्रीय दरार इसके मध्य से गुजर कर इसे दो भागों में बाँटती है। अनेक स्नायु-तन्तुओं के द्वारा यह जहाँ एक ओर सुषुम्ना शी र्षक से सम्बन्ध रखता है, तो वहीं दूसरी ओर सेतु द्वारा वृहत मस्तिष्क या अग्रमस्तिष्क से भी जुड़ा रहता है। इसका प्रमुख कार्य विभिन्न शारीरिक क्रियाओं के बीच में समन्वय स्थापित करने के साथ ही शारीरिक सन्तुलन बनाये रखना है। यह आदतजन्य क्रियाओं को भी नियन्त्रित करता है। सुषुम्ना नाड़ी का मस्तिष्क की ओर विस्तार ही मध्यांश या मेड्यूला ओबलोंगेटा कहा जाता है। यह पिरामिड की तरह लगभग ढाई सेन्टीमीटर लम्बा होता है। इसका मुख्य कार्य शरीर की प्राण-रक्षा सम्बन्धी सभी क्रियाओं का संचालन और नियन्त्रण करना है। इसके सभी कार्य अचेतन रूप से होते हैं। यह अपने क्षेत्र की सहज-क्रियाओं को नियन्त्रित करता है। यह मस्तिष्क के सुषुम्ना शीर्षक से ऊपर के भाग को सुषुम्ना से जोड़ता है।

i. **सुषुम्ना नाड़ी (Spinal Cord) -** मेरुदण्ड (Backbone) में स्थित सुषुम्ना के अन्दर सुषुम्ना नाड़ी पायी जाती है जो अनुमस्तिष्क से लेकर श्रोणि मेखला तक फैली रहती है। इसमें स्नायु-तन्तुओं के लगभग 31 युग्म निकलते हैं जो सुषुम्ना के दोनों ओर जुड़े रहते हैं और सम्पूर्ण शरीर में फैल जाते हैं। यह सहज क्रियाओं का केन्द्र होती है। यहाँ जो संवेदी नाड़ियों से संवेग आते हैं, वे सीधे ही कार्यवाहक तंत्रिकाओं से मिल जाते हैं। इन्हें मस्तिष्क में जाने की कोई जरुरत नहीं होती है। अतः यह सहज क्रियाओं का स्वयं संचालन करके मस्तिष्क को अतिरिक्त श्रम करने से बचाती है।

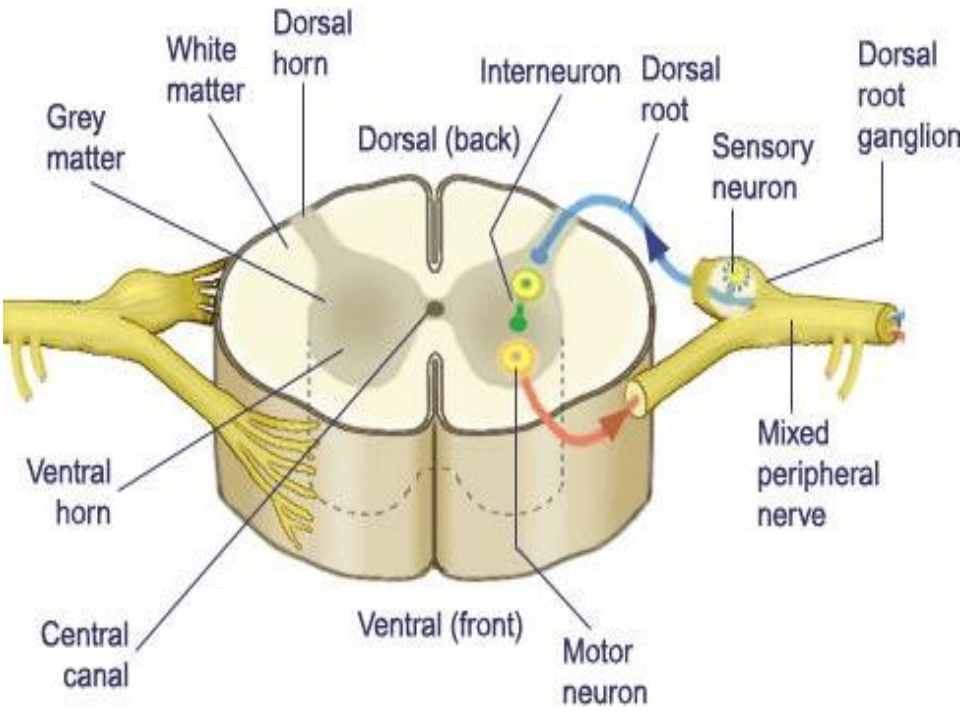

सुषुम्ना (मेरुरज्जु) की संरचना

2. **स्वयं संचालित स्नायु-संस्थान (Autonomic Nervous System)** – स्नायु-संस्थान में कुछ ऐसी स्नायु भी होती हैं,जो केन्द्रीय स्नायु-संस्थान से स्वतन्त्र होकर कार्य करती हैं। इस प्रकार की समस्त स्नायु संयुक्त होकर स्वयं संचालित स्नायु-संस्थान को निर्मित करती हैं। इसके कार्यों में अग्र मस्तिष्क की कोई भूमिका नहीं होती है।
3. **संयोजन स्नायु-संस्थान (Peripheral Nervous System)** – शरीर के बाह्य भाग त्वचा और आन्तरिक भाग मस्तिष्क से सम्वन्ध स्थापित करने का कार्य जिस स्नायु-संस्थान के द्वारा किया जाता है, वह संयोजन स्नायु- संस्थान कहलाता है। इसका कार्य एक सन्देशवाहक की भाँति होता है। जिस प्रकार सन्देशवाहक सन्देश को एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँचाता है।

उसी प्रकार संयोजन स्नायु- संस्थान भी ग्राहकों द्वारा प्राप्त सन्देश को केन्द्रीय स्नायु-संस्थान तक और यहाँ से प्राप्त आदेश को प्रभावक तक पहुँचाने का कार्य करता है।

संयोजन स्नायु-संस्थान के कार्यों को करने के लिए निम्नलिखित दो प्रकार की स्नायु या नाड़ियाँ होती हैं-

i. संवेदी अथवा ज्ञानवाही नाड़ियाँ (Sensory Nerves)
ii. कार्यवाहक नाड़ियाँ (Motor Nerves)

संवेदी नाड़ियों के द्वारा ग्राहकों से सन्देश मस्तिष्क केन्द्र तक भेज दिए जाते हैं। इनमें से कुछ नाड़ियाँ जिन्हें अन्तर्गामी नाड़ियाँ (Incoming Nerves) कहते हैं, सीमावर्ती ग्राहकों के अन्दर तक भी सन्देश को ले जाती हैं।

कार्यवाहक नाड़ियों के द्वारा गत्यात्मक प्रेरणा (Motor Prompting) को मस्तिष्क केन्द्र से बाहर के अंगों और माँसपेशियों आदि तक भेजा जाता है। इन्हें बहिर्गामी नाड़ियाँ (Outgoing Nerves) भी कहते हैं, क्योंकि ये प्राप्त आदेश को प्रभावक तक पहुँचाती हैं।

1. **प्रभावक (Effectors)** – ग्राहक संवेदना को ग्रहण करके तंत्रिकाओं द्वारा मस्तिष्क या सुषुम्ना केन्द्र को भेज देते हैं, जहाँ से प्रतिक्रिया का सन्देश मिल जाता है। यह सन्देश कार्यवाहक तंत्रिकाओं द्वारा माँसपेशियों अथवा ग्रन्थियों तक पहुँचा दिया जाता है, जो उस सन्देश के आधार पर प्रतिक्रिया करते हैं। ये माँसपेशियाँ और ग्रन्थियाँ ही 'प्रभावक' कहलाती हैं। प्रभावकों के द्वारा ही आपके शरीर की सभी ऐच्छिक और अनैच्छिक क्रियाएँ सम्पादित होती हैं।

अभ्यास प्रश्न :-2

सही विकल्प का चयन करें –

1. आपका प्रतिक्रिया यन्त्र तीन/पाँच अंगों से मिलकर बनता है।
2. स्नायु-संस्थान लगभग 200 से 300 अरब/100 से 120 अरब स्नायु कोशिकाओं से मिलकर बना होता है।
3. मस्तिष्क/हृदय मानव शरीर का केन्द्रीय सूचना प्रसारण अंग है।
4. प्रमस्तिष्क-वल्कुट को रंगहीन द्रव्य/धूसर द्रव्य भी कहा जाता है।
5. प्रभावकों/गत्यात्मक नाड़ियों के द्वारा ही आपके शरीर की सभी ऐच्छिक और अनैच्छिक क्रियाएँ सम्पादित होती हैं।

15.6 स्वयं-संचालित स्नायु-संस्थान की संरचना (Structure of Autonomic Nervous System)

स्वयं संचालित स्नायु-संस्थान केन्द्रीय स्नायु-संस्थान से पृथक होकर कार्य करता है। इसका तात्पर्य यह है कि जो कार्य स्वयं संचालित स्नायु-संस्थान जैसे- श्वसनतंत्र, पाचन तंत्र, रक्त परिसंचरण और हृदय-स्पन्दन आदि के द्वारा संपन्न होते हैं, उनमें केन्द्रीय स्नायु-संस्थान को सक्रिय होने की कोई आवश्यकता नहीं होती है। स्वयं संचालित स्नायु-संस्थान के अन्तर्गत किये जाने वाले कार्य सुषुम्ना से संचालित होते हैं और उनमें अग्रमस्तिष्क को कोई कार्य नहीं करना पड़ता है। फलस्वरूप अग्रमस्तिष्क को उच्चस्तरीय कार्यों को करने का समय मिलता रहता है। स्वयं संचालित स्नायु संस्थान को सक्रियता के लिए किसी बाह्य उत्तेजना की आवश्यकता नहीं होती। यह आन्तरिक अंगों से ही क्रियाशील हो जाता है तथा इन अंगों का ही संचालन और नियन्त्रण करता है। यह संस्थान क्रियात्मक कार्य करने के कारण क्रियामण्डल (Motor System) भी कहलता है।

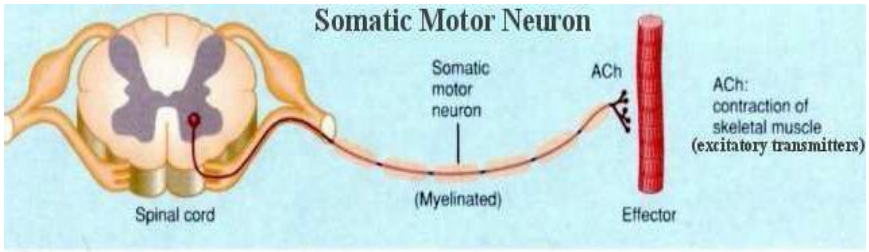

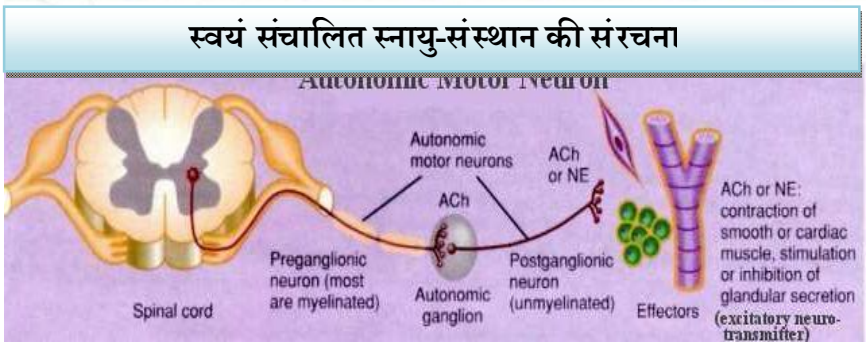

मस्तिष्क से अनेक क्रेनियल नाड़ियाँ (Cranial Nerves) जुड़ी होती हैं और सुषुम्ना से भी बहुत-सी सुषुम्ना नाड़ियाँ (Spinal Nerves) सम्बन्धित रहती हैं। सुषुम्ना वाले भाग को थोरेको लम्बर (Tharco Lumber) कहा जाता है, क्योंकि इस भाग की नाड़ियाँ सुषुम्ना से चलकर थोरेक्स (Thorax) तक पहुँचती हैं। सुषुम्ना का अंतिम भाग साक्रल (Sacral) कहलाता है, जिससे चलकर नाड़ियाँ स्वयं संचालित स्नायु-कोशिका समूह (Autonomic Gangila), स्वयं संचलित स्नायु (Autonomic Nerves) और शरीर के विभिन्न आन्तरिक अंगों तक पहुँचती हैं। स्वयं संचालित स्नायु का विस्तार - नेत्र, हृदय, फेफड़े, यकृत, मूत्राशय और जननेन्द्रियों आदि तक होता है।

15.7 स्वयं-संचालित स्नायु-संस्थान के प्रकार (Types of Autonomic Nervous System)

स्वयं संचालित स्नायुसंस्थान को सामान्यतः दो भागों में बाँटा गया है–

1. अनुकम्पिक स्नायु-संस्थान (Sympathetic Nervous System)
2. परा-अनुकम्पिक स्नायु-संस्थान (Para Sympathetic Nervous System)

i. कापालिक (Crasial)

ii. साक्रल (Sacral)

कापालिक स्वयं संचालित स्नायु-संस्थान का सम्बन्ध उन क्रियाओं से होता है, जो शरीर के उच्च केन्दों जैसे- नेत्र, हृदय और कान आदि में सम्पन्न होती हैं। जबकि साक्रल स्वयं संचालित स्नायु-संस्थान का सम्बन्ध उन क्रियाओं से होता है, जो शरीर के निचले केन्द्रों जैसे- मूत्राशय, अवस्कर द्वार और जननेन्द्रियों आदि में सम्पन्न होती हैं।

अभ्यास प्रश्न :-3

1. स्वयं संचालित स्नायु-संस्थान के अन्तर्गत किये जाने वाले कार्य ---------- से संचालित होते हैं।
2. ---------- को उच्चस्तरीय कार्यों को करने का समय मिलता रहता है।
3. सुषुम्ना वाले भाग को ---------- कहा जाता है।
4. सुषुम्ना का अंतिम भाग ---------- कहलाता है।
5. ---------- का विस्तार - नेत्र, हृदय, फेफड़े, यकृत, मूत्राशय और जननेन्द्रियों आदि तक होता है।

15.8 स्वयं-संचालित स्नायु-संस्थान के कार्य (Functions of Autonomic Nervous System)

प्रकार के आधार पर स्वयं संचालित स्नायु-संस्थान के कार्य निम्नलिखित हैं–

1. **अनुकम्पिक स्नायु-संस्थान के कार्य (Functions of Sympathetic Nervous System)-** अनुकम्पिक स्नायु-संस्थान का प्रमुख कार्य शरीर को बाहरी आघातों से बचने के लिए तैयारी करना है। यह शरीर को सामान्य रूप से क्रियाशील बनाता है। आपके शरीर के विभिन्न बाह्य और आन्तरिक अंगों में इसी के द्वारा गति उत्पन्न होती है। यह संस्थान संवेग की स्थिति में अधिक महत्वपूर्ण कार्य करता है। जब किसी जोखिम का आभास होता है, तब यह संस्थान सक्रिय हो जाता है। इसक सक्रिय होने पर आपके शरीर में कुछ परिवर्तन आते हैं जैसे- नेत्रों की पुतलियों का फैल जाना, माँसपेशियों और मस्तिष्क में रक्त का प्रवाह अधिक होना आदि। माँसपेशियों और मस्तिष्क में रक्त का प्रवाह अधिक होने के फलस्वरूप आमाशय में इसका संचार कम हो जाता है जिससे आपकी पाचन-क्रिया प्रभावित होती है। मुँह और गला सूख जाता है, क्योंकि आमाशय में कम रक्त संचार के कारण लार ग्रन्थियों से टायलिन नाम के एंजाइम का स्राव रुक जाता है। हृदय की गति में भी बृद्धि हो जाती है। इस प्रकार अनुकम्पिक स्नायु-संस्थान की सक्रियता के कारण आप अपने शरीर में अधिक बल और ताज़गी का अनुभव करने लगते हैं तथा आपका शरीर भावी खतरे के समय अपनी रक्षा करने के लिए तैयार हो जाता है।
2. **परा-अनुकम्पिक स्नायु-संस्थान के कार्य (Functions of Para Sympathetic Nervous System) -** अनुकम्पिक स्नायु-संस्थान के विपरीत परा-अनुकम्पिक स्नायु-संस्थान आपके शरीर के विभिन्न बाह्य और आन्तरिक अंगों की सक्रियता को न्यून करके शक्ति को क्षीण होने से बचाता है। इसके क्रियाशील होने से हृदयस्पन्दन और रक्तचाप कम हो जाता है।

जीभ में स्थित लार ग्रन्थियों की सक्रियता में वृद्धि होने से टायलिन का अधिक स्राव होता है। आमाशय में भी जठर ग्रन्थियों की क्रियाशीलता बढ़ने से पाचन शक्ति ठीक हो जाती है। नेत्रों की पुतलियाँ संतुलित रहती हैं जिससे जरुरी प्रकाश की मात्रा ही आँखों में जाती है। इस प्रकार अनुकम्पिक स्नायु-संस्थान और परा-अनुकम्पिक स्नायु-संस्थान दोनों परस्पर मिलकर शरीर के संतुलन ले लिए कार्य करते हैं तथा आपके शरीर को भावी कष्टों से रक्षा करने के लिए तैयार करते हैं।

15.9 संवेग में स्वयं-संचालित स्नायु-संस्थान की भूमिका (Role of Autonomic Nervous System in Emotion)

आपके संवेग जैसे- प्रेम, स्नेह और प्रशंसा आदि के नियन्त्रण और संचालन में स्वयं संचालित स्नायु-संस्थान सक्रिय भागेदारी करता है। श्वसनतंत्र, पाचन तंत्र, रक्त परिसंचरण और हृदयस्पन्दन आदि से सम्बन्धित सभी कार्य सीधे ही इसके द्वारा सम्पादित होते हैं। इसके दोनों भाग अनुकम्पिक स्नायु-संस्थान और परा-अनुकम्पिक स्नायु-संस्थान सयुंक्त रूप से आपके शरीर को बाह्य और आन्तरिक खतरों से रक्षा हेतु तैयार करते हैं। अनुकम्पिक स्नायु-संस्थान का एक सिरा सुषुम्ना नाड़ी (Spinal Cord) से सम्बन्ध रखता है। शीघ्र और अनवरत रूप से क्रिया करने के लिए यह तनाव की आपात स्थिति में सन्देश को माँसपेशियों तथा ग्रन्थियों तक पहुँचाता है। परा-अनुकम्पिक स्नायु-संस्थान का सम्बन्ध मस्तिष्क और सुषुम्ना नाड़ी के निचले भाग से रहता है। जब आपका शरीर शान्त और शिथिल होता है, तब यह सक्रिय हो जाता है। आपात स्थिति समाप्त हो जाने पर तथा अंगों को सामान्य अवस्था में लाने के लिए यह सन्देश को स्नायु तन्तुओं के माध्यम से यहाँ तक पहुँचाता है। संवेगात्मक व्यवहार विशेष रूप से भय और क्रोध के समय यह निर्णायक भूमिका प्रदर्शित करके संवेगों को प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से नियन्त्रित करता है। स्वयं संचालित स्नायु-संस्थान के ये दोनों भाग आपके शरीर में साम्यावस्था की स्थिति को बनाये रखते हैं जिससे आपका संवेगात्मक विकास प्रभावित होता है।

अभ्यास प्रश्न :-4

1. ---------- का प्रमुख कार्य शरीर को बाहरी आघातों से बचने के लिए तैयारी करना है।
2. आमाशय में कम ---------- के कारण लार ग्रन्थियों से टायलिन नाम के एंजाइम का स्राव रुक जाता है।
3. इसके क्रियाशील होने से ---------- और ---------- कम हो जाता है।
4. अनुकम्पिक स्नायु-संस्थान का एक सिरा ---------- से सम्बन्ध रखता है।
5. यह तनाव की आपात स्थिति में सन्देश को---------- तथा ---------- तक पहुँचाता है।

15.10 सारांश (Summery)

आप प्रतिदिन प्रातःकाल से लेकर रात्रि शयन से पूर्व अनेक भावों की अभिव्यक्ति करते हैं। ये भाव संवेग के नाम से जाने जाते हैं। संवेग में भाव, बाह्य उत्तेजना तथा शारीरिक अवयवों और ग्रन्थियों के

परिवर्तन सभी शामिल होते हैं, जबकि भाव एक ऐसा स्वतन्त्र मानसिक अनुभव है जो संवेग के कारण उत्पन्न होता है। संवेगों को बाह्य और आन्तरिक दोनों ही कारणों से उत्पन्न किया जा सकता है। आपके जीवन में घटित होने वाली कोई भी घटना आपके अन्दर किस संवेग को उत्पन्न करेगी ? यह इस बात पर निर्भर करता है कि आप उस घटना से कितना लाभान्वित होंगे अथवा आपको उससे क्या क्षति उठानी पड़ेगी।

संवेग शब्द अंग्रेजी भाषा के **इमोशन (Emotion)** शब्द का हिन्दी रूपान्तरण है। इसमें **'ई'(E)** से तात्पर्य है अन्दर से और **'मोशन' (Motion)** का अर्थ है गति। इस प्रकार इमोशन शब्द का तात्पर्य आन्तरिक भावों को बाहर की ओर गति देना है। संवेग शब्द का शाब्दिक अर्थ है – वेग से युक्त अर्थात जब व्यक्ति वेग से युक्त होकर कार्य करता है तो उस स्थिति को संवेग कहते हैं। **वुडवर्थ** के अनुसार- "संवेग व्यक्ति की गति में या आवेश में आने की स्थिति है।" जिन संवेगों जैसे- प्रेम, स्नेह और प्रशंसा आदि से आपको सुख मिलता है उन्हें धनात्मक संवेग कहते हैं। जिन संवेगों जैसे-भय, क्रोध और ईर्ष्या आदि से आपको दुःख मिलता है उन्हें नकारात्मक संवेग कहा जाता है। **मैकडूगल (McDougal)** ने कुल चौदह संवेगों को वर्गीकृत किया है, जिनमें से प्रत्येक संवेग की एक-एक मूल-प्रवृत्ति (Instinct) भी होती है। आपके अन्दर आपका स्नायु-संस्थान ही है जो आपके प्रतिक्रिया सम्बन्धी सभी प्रकार के व्यवहारों को सुसंचालित करता है। प्रतिक्रिया यन्त्र (Response Mechanism) निम्नलिखित तीन अंगों से मिलकर बनता है – 1. स्नायु-संस्थान (Nervous System) 2. ग्राहक (Receptors) 3. प्रभावक (Effectors)।

आपकी सभी ज्ञानेन्द्रियाँ जैसे- आँख, नाक, कान, जीभ और त्वचा आदि ग्राहक होती हैं। स्नायु-संस्थान ऐसा व्यवस्थित जाल तंत्र गठित करता है, जो तीव्र समन्वय हेतु बिंदु दर बिंदु जुड़ा रहता है। यह लगभग 100 से 120 अरब स्नायु कोशिकाओं से मिलकर बना होता है। प्रत्येक स्नायु के तीन भाग होते हैं- i. वृक्ष-तन्तु (Dendrite) ii. जीव कोशिका (Body Cell) iii. अक्ष-तन्तु (Axon)। वृक्ष-तन्तु का प्रमुख कार्य स्नायु-संवेगों या उद्दीपनों को ग्रहण कर जीव-कोशिकाओं में ले जाना है। जीव-कोशिका का मुख्य कार्य वृक्ष-तन्तु द्वारा लाये गये स्नायु-संवेगों को अपने केन्द्रक में ग्रहण करके पुनः उन्हें अक्ष-तन्तु की ओर भेजना है। अक्ष-तन्तु या तंत्रिकाक्ष का कार्य स्नायु-संवेगों को जीव-कोशिका से दूर सिनेप्स पर या तांत्रिकीय पेशी सन्धि पर पहुँचाना है। स्नायु-सन्धि वह स्थान है जहाँ एक स्नायु का वृक्षतन्तु दूसरे स्नायु के अक्षतन्तु से सम्बन्ध स्था पित करता है। जब एक स्नायु में अक्षतन्तु से स्नायु-संवेग दूसरे स्नायु के वृक्षतन्तु में प्रवेश करने के लिए तैयार होता है तो उसे स्नायु-सन्धि से होकर जाना पड़ता है। स्नायु-सन्धि स्थल को 'एक दिशागामी वाल्व (One-Valve)' कहा जाता है क्योंकि प्रत्येक स्नायु-सन्धि स्थल पर संवेग के जाने की एक ही दिशा हो सकती है।

स्नायु-संस्थान मानसिक क्रियाओं की आधारशिला है। इसको सामान्यतः तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है–1. केन्द्रीय स्नायु-संस्थान (Central Nervous System) 2. स्वयं संचालित स्नायु-संस्थान (Autonomic Nervous System) 3. संयोजन स्नायु-संस्थान (Peripheral Nervous System)। वास्तव में केन्द्रीय स्नायु-संस्थान ही मानव की उच्च मानसिक क्रियाओं का केन्द्र होता है। इसे दो मुख्य भागों में बाँटा जा सकता है – i. मस्तिष्क (Brain) ii. सुषुम्ना नाड़ी (Spinal Cord)। मस्तिष्क मानव शरीर का केन्द्रीय सूचना प्रसारण अंग है जो खोपड़ी के अन्दर कड़े खोल में सुरक्षित रहता है। लगभग 3 पाउण्ड का मानव मस्तिष्क 20 खरब स्नायु कोशिकाओं से निर्मित होता है। यह 'आदेश और नियन्त्रण तन्त्र' की भाँति कार्य करता है। मानव मस्तिष्क को

निम्नलिखित भागों में विभक्त किया जा सकता है– a. अग्र मस्तिष्क (Posterior Brain) b. मध्य मस्तिष्क (Mid Brain) c. पश्च मस्तिष्क (Hind Brain)।

अग्र मस्तिष्क आकार में अन्य सभी मस्तिष्क के भागों से बड़ा होता है और सबसे ऊपर स्थित होता है। यह सेरीब्रम, थैलमस और हाइपोथैलमस के संयुग्मन से निर्मित होता है। सेरीब्रम (प्रमस्तिष्क) मानव मस्तिष्क का एक बड़ा भाग निर्मित करता है। एक गहरी लम्बवत दरार सेरीब्रम को दो भागों दाएं और बाएं प्रमस्तिष्क गोलार्द्धों में बाँटती है। प्रमस्तिष्क सामान्यतः थैलेमस नामक संरचना को चारों ओर से घेरे रहता है। थैलेमस का मुख्य कार्य यह है कि जो स्नायु-संवेग विभिन्न ग्राहकों द्वारा यहाँ भेजे जाते हैं, वे थैलेमस के द्वारा कार्टेक्स के विभिन्न क्षेत्रों की ओर अग्रेसित कर दिए जाते हैं। थैलेमस क्षेत्र के नीचे और सेतु के ऊपर के मस्तिष्क के भाग को लघु थैलेमस या हाइपोथैलेमस (Hypothalamus) कहते हैं। इसमें कई केन्द्र होते हैं, जो शरीर के तापमान, खाने और पीने को नियन्त्रित करते हैं। इसीलिए हाइपोथैलेमस को संवेगों का केन्द्र माना जाता है।

मध्य मस्तिष्क अग्र मस्तिष्क के थैलेमस और हाइपोथैलेमस तथा पश्च मस्तिष्क के सेतु के मध्य स्थित होता है। इसका ऊपरी भाग चार लोबनुमा उभारों कॉर्पोरा क्वाड्रीजेमीन का बना होता है।

पश्च मस्तिष्क सेतु (Pons), अनुमस्तिष्क (Cerebellum) और मध्यांश (Medulla Oblongata) के संयुग्मन से बना होता है। अनुमस्तिष्क सुषुम्ना शीर्षक के ऊपर और अग्रमस्तिष्क के नीचे की ओर स्थित होता है। इसका प्रमुख कार्य विभिन्न शारीरिक क्रियाओं के बीच में समन्वय स्थापित करने के साथ ही शारीरिक सन्तुलन बनाये रखना है। सुषुम्ना नाड़ी का मस्तिष्क की ओर विस्तार ही मध्यांश या मेड्यूला ओबलोंगेटा कहा जाता है। इसका मुख्य कार्य शरीर की प्राण-रक्षा सम्बन्धी सभी क्रियाओं का संचालन और नियन्त्रण करना है।

मेरुदण्ड (Backbone) में स्थित सुषुम्ना के अन्दर सुषुम्ना नाड़ी पायी जाती है जो अनुमस्तिष्क से लेकर श्रोणि मेखला तक फैली रहती है।

स्नायु-संस्थान में कुछ ऐसी स्नायु भी होती हैं,जो केन्द्रीय स्नायु-संस्थान से स्वतन्त्र होकर कार्य करती हैं। इसके कार्यों में अग्र मस्तिष्क की कोई भूमिका नहीं होती है।

शरीर के बाह्य भाग त्वचा और आन्तरिक भाग मस्तिष्क से सम्वन्ध स्थापित करने का कार्य जिस स्नायु-संस्थान के द्वारा किया जाता है, वह संयोजन स्नायु- संस्थान कहलाता है। इसका कार्य एक सन्देशवाहक की भाँति होता है।

ग्राहक संवेदना को ग्रहण करके तंत्रिकाओं द्वारा मस्तिष्क या सुषुम्ना केन्द्र को भेज देते हैं, जहाँ से प्रतिक्रिया का सन्देश मिल जाता है। यह सन्देश कार्यवाहक तंत्रिकाओं द्वारा माँसपेशियों अथवा ग्रन्थियों तक पहुँचा दिया जाता है, जो उस सन्देश के आधार पर प्रतिक्रिया करते हैं। ये माँसपेशियाँ और ग्रन्थियाँ ही 'प्रभावक' कहलाती हैं।

स्वयं संचालित स्नायुसंस्थान के अन्तर्गत किये जाने वाले कार्य सुषुम्ना से संचालित होते हैं और उनमें अग्रमस्तिष्क को कोई कार्य नहीं करना पड़ता है। फलस्वरूप अग्रमस्तिष्क को उच्चस्तरीय कार्यों को करने का समय मिलता रहता है। स्वयं संचालित स्नायु का विस्तार - नेत्र, हृदय, फेफड़े, यकृत, मूत्राशय और जननेन्द्रियों आदि तक होता है। इस संस्थान को सामान्यतः दो भागों में बाँटा गया है – 1. अनुकम्पिक स्नायु-संस्थान (Sympathetic Nervous System) 2. परा-अनुकम्पिक

स्नायु-संस्थान (Para Sympathetic Nervous System)। अनुकम्पिक स्नायु-संस्थान का प्रमुख कार्य शरीर को बाहरी आघातों से बचने के लिए तैयारी करना है। यह शरीर को सामान्य रूप से क्रियाशील बनाता है। परा-अनुकम्पिक स्नायु-संस्थान आपके शरीर के विभिन्न बाह्य और आन्तरिक अंगों की सक्रियता को न्यून करके शक्ति को क्षीण होने से बचाता है।

अनुकम्पिक स्नायु-संस्थान का एक सिरा सुषुम्ना नाड़ी (Spinal Cord) से सम्बन्ध रखता है। शीघ्र और अनवरत रूप से क्रिया करने के लिए यह तनाव की आपात स्थिति में सन्देश को माँसपेशियों तथा ग्रन्थियों तक पहुँचाता है। परा-अनुकम्पिक स्नायु-संस्थान का सम्बन्ध मस्तिष्क और सुषुम्ना नाड़ी के निचले भाग से रहता है। जब आपका शरीर शान्त और शिथिल होता है, तब यह सक्रिय हो जाता है।

15.11 शब्दावली (Vocabulary)

- **वृक्षतन्तु** –स्नायु कोशिका का वह भाग जो संवेगों को जीव कोशिका में ले जाता है।
- **संवेग** - एक जटिल भावात्मक परिस्थिति जो विशेष व्यावहारिक और शारीरिक क्रियाओं के साथ होती है।
- **ज्ञानेन्द्रियाँ-** शरीर के वे अंग जो उतेज्कों की क्रियाओं के प्रति संवेदनशील होते हैं।
- **अवरोध** - सामान्य उत्तेजक की उपस्थिति होने पर भी एक प्रतिक्रिया को रोक लेना।
- **ग्राहक** - वे विशिष्ट संरचनाएँ जो स्नायु संवेगों की पहल करके उत्तेजना का प्रत्युत्तर देती हैं।
- **स्नायु-सन्धि -** वह स्थान जो एक स्नायु के अक्षतन्तु और दूसरे स्नायु के वृक्षतन्तु के मध्य में रिक्त तहता है।
- **थैलमस -** अग्र मस्तिष्क के नीचे और पश्च मस्तिष्क के सामने की ओर स्थित संरचना जो स्नायु संवेगों को अग्र मस्तिष्क को भेजती है।
- **सुषुम्ना**– स्नायु तन्तुओं से निर्मित और मेरुदण्ड के मध्य में स्थित संरचना।
- **टायलिन** – जीभ में स्थित ग्रन्थियों से निकलने वाला स्राव।
- **अनुकम्पिक-** स्नायु संस्थान का वह भाग जो शरीर को खतरों से बचने के लिए तैयार करता है।

15.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answers of Exercise Questions):

अभ्यास प्रश्न -1

1. भावों 2. बाह्य और आन्तरिक 3. उद्दीपक 4. धनात्मक 5. मैकडूगल (McDougal)

अभ्यास प्रश्न -2

1. तीन 2. 100 से 120 अरब 3. मस्तिष्क 4. धूसर द्रव्य 5. प्रभावकों

अभ्यास प्रश्न -3

1. सुषुम्ना 2. अग्रमस्तिष्क 3. थोरेको लम्बर (Tharco Lumber) 4. साक्रल (Sacral)

5. स्वयं संचालित स्नायु

अभ्यास प्रश्न -4

1. अनुकम्पिक स्नायु-संस्थान 2. रक्त संचार 3. हृदयस्पन्दन, रक्तचाप

4. सुषुम्ना नाड़ी (Spinal Cord) 5. माँसपेशियों, ग्रन्थियों

15.13 निबंधात्मक प्रश्न (Long Question)

1. "संवेग व्यक्ति की गति में या आवेश में आने की स्थिति है।" यह कथन किस विद्वान का है ? स्पष्ट कीजिए।
2. संवेग किसे केहते हैं ? ये किन परिस्थितियों में उत्पन्न होते हैं ? वर्णन कीजिए।
3. संवेग कितने प्रकार के होते हैं ? उचित उदाहरणों द्वारा समझाइए।
4. स्नायु किसे कहते हैं ? स्नायु-संस्थान के संप्रत्यय को स्पष्ट कीजिए।
5. केन्द्रीय स्नायु संस्थान से आप क्या समझते हैं ? इसमें भाग लेने वाले प्रमुख अंगों की संरचना और कार्यों को पर प्रकाश डालिए।
6. 'स्वयं संचालित स्नायुसंस्थान की संवेग में भूमिका' विषय पर एक आलेख लिखिए।

15.14 सन्दर्भ ग्रंथ सूची (References List)

1. गुप्ता, एस. पी. (2003), *उच्चतर शिक्षा मनोविज्ञान,* इलाहाबाद: शारदा पुस्तक भवन।

2. माथुर, एस.एस. (2009). *सामान्य मनोविज्ञान*, आगरा: विनोद पुस्तक मन्दिर।

3. मंगल, एस. के. (2009). *जनरल सायकोलोजी*, नई दिल्ली: स्टर्लिंग पब्लिशर्स प्राईवेट लिमिटेड।

4. शर्मा, आर. एन. एवं शर्मा, रचना (2004). *एडवांसड एप्प्लायड सायकोलोजी*, नई दिल्ली: अटलांटिक पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स।

5. शर्मा, जी. आर. एवं शर्मा, एच. (2013). *अधिगम-शिक्षण और विकास के मनोसामाजिक आधार*, जयपुर: राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी।

6. सिंह, ए. के. (2007). *सरल सामान्य मनोविज्ञान*, नई दिल्ली: मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशर्स।

7. सुलेमान,एम. एवं तरन्नुम, रिज़वाना (2007). *मनोविज्ञान में प्रयोग एवं परीक्षण,* नई दिल्ली: मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशर्स।

इकाई- 16

बुद्धि की परिभाषा, स्वरुप और सिद्धांत
Definition, Nature &Theories of Intelligence

इकाई की रूपरेखा

16.0 प्रस्तावना

16.1 उद्देश्य

16.2 परिभाषाएं

16.3 बुद्धि के सिद्धान्त

16.4 बुद्धि के प्रकार

16.5 सांवेगिक बुद्धि

16.6 संवेगात्मक बुद्धि की आवश्यकता

16.7 बहु बुद्धि

16.8 सारांश

16.9 बोध प्रश्न

16.10 संदर्भग्रंथ

16.0 प्रस्तावना

बुद्धि (Intelligence) वह मानसिक शक्ति है जो वस्तुओं एवं तथ्यों को समझने, उनमें आपसी सम्बन्ध खोजने तथा तर्कपूर्ण ज्ञान प्राप्त करने में सहायक होती है । यह 'भावना और अंत: प्रज्ञा (Intuition/इंट्युसन) से अलग है। बुद्धि ही मनुष्य को नवीन परिस्थितियों को ठीक से समझने और उसके साथ अनुकूलित (adapt) होने में सहायता करती है । बुद्धि को 'सूचना के प्रसंस्करण की योग्यता' की तरह भी समझा जा सकता है। बुद्धि एक ऐसा सामान्य शब्द है जिसका उपयोग हम कई रूपों में करते हैं अच्छी स्मरण शक्ति, जल्दी सीखने समझने की क्षमता, तार्किक चिन्तन इन सभी को बुद्धि के रूप में जानते है । बुद्धि वह प्राथमिक मानसिक क्षमता है जो प्रत्येक कार्य के लिए आवश्यक है बुद्धि ही वह क्षमता है जो हमें अन्य जीवों से अलग कर सभी प्राणियों में सर्वश्रेष्ठ स्थान प्रदान करती है। बुद्धि अनेक गुणों का समूह है, बुद्धि को प्रत्यक्ष रूप से देखा नहीं जा सकता परन्तु बुद्धि के प्रभावों को प्ररोक्ष रूप में प्रखर बुद्धि व मंद बुद्धि बालकों के मध्य अन्तर के रूप में स्पष्ट रूप से महसूस किया जा सकता है। मनोवैज्ञानिकों के अनुसार बुद्धि वंशानुक्रम द्वारा निर्धारित होती है परन्तु वंशानुक्रम केवल बुद्धि के प्रसार व उसकी सीमाओं को निर्धारित करता है । इस क्षमता का

कितना विकास होगा इसका निर्धारण वातावरण द्वारा किया जाता है। प्राचीन काल से ही बुद्धि ज्ञानात्मक क्रियाओं में चर्चा का विषय रहा है। कहा जाता है कि, 'बुद्धिर्यस्य बलंतस्य' अर्थात जिसमें बुद्धि है वही बलवान है। बुद्धि के कारण ही मानव अन्य प्राणियों से श्रेष्ठ माना जाता है। मनोविज्ञान के क्षेत्र में भी बुद्धि चर्चा का विषय रहा है। हजारों वर्ष पूर्व से ही व्यक्तियों को बुद्धि के आधार पर अलग-अलग वर्गों में बांटा गया। कुछ व्यक्ति बुद्धिमान कहलाते हैं, कुछ कम बुद्धि के, कुछ मूढ बुद्धि के तो कुछ जड़ बुद्धि कहलाते हैं। परन्तु बुद्धि के स्वरूप को समझना बड़ा कठिन है। प्रस्तुत इकाई में हम बुद्धि के बारे में विस्तार से पढेगें | सबसे पहले बुद्धि क्या हैं अर्थात इसकी विभिन्न परिभाषाओं को समझेगें |

16.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप -

- बुद्धि की परिभाषा, संप्रत्यय एवं अर्थ के बारे में जान सकेंगे |
- बुद्धि के सिद्धान्त के बारे में जान सकेंगे |
- बुद्धि परीक्षण के प्रकार बता सकेंगे |
- बुद्धि लब्धि (IQ) का अर्थ समझ पाएंगे |
- बुद्धि का वर्गीकरण के आधार को स्पष्ट कर सकेंगे |
- बुद्धि के प्रकार के बारे में जान सकेंगे |

16.2 परिभाषाएं (Definitions)

बुद्धि के स्वरूप पर प्राचीन काल से ही मतभेद चले आ रहे हैं तथा आज भी मनोवैज्ञानिकों तथा शिक्षाविदों के लिए भी बुद्धि वाद-विवाद का विषय बना हुआ है। 19वीं सदी के उत्तरार्द्ध से भी बुद्धि के स्वरूप को समझने हेतु मनोवैज्ञानिकों ने प्रयास प्रारम्भ किए परन्तु वे भी इसमें सफल नहीं हुए तथा बुद्धि की सर्वसम्मत परिभाषा न दे सके। वर्तमान में भी बुद्धि के स्वरूप के सम्बंध में मनोवैज्ञानिकों के विचारों में असमानता है। अलग-अलग मनोवैज्ञानिकों ने बुद्धि के स्वरूप को अलग-अलग ढंग से पारिभाषित किया।

1. बुद्धि सामान्य योग्यता है।
2. बुद्धि दो या तीन योग्यताओं का योग है।
3. बुद्धि समस्त विशिष्ट योग्यताओं का योग है।

इन तीन वर्गों के अन्तर्गत बुद्धि को जिस तरह पारिभाषित किया गया उनका उल्लेख इस प्रकार है-

बुद्धि सामान्य योग्यता

इस प्रकार की विचारधारा को मानने वाले मनोवैज्ञानिक टर्मन, एम्बिगास, स्टाऊट, बर्ट गॉल्टन स्टर्न आदि हैं। इन मनोवैज्ञानिकों के अनुसार बुद्धि व्यक्ति की सामान्य योग्यता है, जो उसकी हर क्रिया में पायी जाती है। इन मनोवैज्ञानिकों ने बुद्धि की परिभाषा इस प्रकार प्रस्तुत की है-

- टर्मन (Termn) के अनुसार *अमूर्त वस्तुओं के सम्बंध में विचार करने की योग्यता ही बुद्धि है।*
  (Intelligence is the ability to carry out abstract thinking)
- अतः टर्मन के अनुसार बुद्धि समस्या को हल करने की योग्यता है।
- एबिंगहास (Ebbinghous) के अनुसार, *बुद्धि विभिन्न भागों को मिलाने की शक्ति है।*
  (Intelligence is the power of combining parts.)
- गाल्टन (Galton) के अनुसार, *बुद्धि विभेद करने एवं चयन करने की शक्ति है।*
  (Intelligence is the power of discrimination and sellection.)
- स्टर्न (Stern) के मतानुसार, *नवीन परिस्थितियों के साथ समायोजन करने की योग्यता ही बुद्धि है।*
  (Intelligence is the ability to adjust oneself to a new situation.)

बुद्धि दो या तीन योग्यताओं का योग है

इस प्रकार की विचारधारा को मानने वालों में स्टेनफोर्ड बिने का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। बिने (Binet) के अनुसार, *बुद्धि तर्क, निर्णय एवं आत्म आलोचन की योग्यता एवं क्षमताहै।*

(Intelligence is the ability and capacity to reason well to judge well and to be self-critical.)

बुद्धि समस्त विशिष्ट योग्यताओं का योग है

बुद्धि के इस वर्ग की परिभाषाओं के अन्तर्गत मनोवैज्ञानिकों ने विभिन्न प्रकार की विशिष्ट योग्यताओं के योग को बुद्धि की संज्ञा दी है। इन विचारों को मानने वाले थार्नडाइक, थर्स्टन, थॉमसन, वेस्लर तथा स्टोडार्ड हैं।

- थोर्नडाइक (Thorndike) महोदय के अनुसार, *उत्तम क्रिया करने तथा नई परिस्थितियों के साथ समायोजन करने की योग्यता को बुद्धि कहते हैं।*

(Intelligence is the ability to make good responses and is demonstrated by the capacity to deal affectivity with new situations.)

- स्टोडार्ड (Stoddard) के मतानुसार, *बुद्धि (क) कठिनता (ख) जटिलता (ग) अमूर्तता (घ) आर्थिकता (ङ) उद्देश्य प्राप्यता (च) सामाजिक मूल्य तथा (छ) मौलिकता से सम्बंधित समस्याओं को समझने की योग्यता है।*

(Intelligence is the ability to understand problems that are characterised by (a) difficulty (b) complexity (c) abstractness (d)economy (e) adaptations to a goal (f) social value and (g) commergence of originals under such conditions that demand a concentration of energy and resistance to emotional forces.)

इसके अतिरिक्त बुद्धि की परिभाषा निम्नलिखित आधार पर और आधिक स्पष्ट रूप से समझी जा सकती है |

(1) **सीखने की क्षमता के रूप में -** जो व्यक्ति जितनी जल्दी सीख लेता है जिसमें सीखने की क्षमता जितनी अधिक होगी वह उतना ही तीव्र बुद्धि वाला समझा जाता है।

(2) **अमूर्त चिन्तन करने की क्षमता करने के रूप में -** जिस व्यक्ति में अमूर्त चिन्तन की क्षमता अर्थात शब्दों, संकेतो, चिन्हों, गणितीय अंको के मध्य संबधों को समझने व उनकी व्याख्या करने की जीतनी क्षमता होती है वे उतने ही अधिक बुद्धिमान मानें जायेंगे।

(3) **वातावरण के साथ समायोजन क्षमता के आधार पर -** जो व्यक्ति जितनी जल्दी अपने आस-पास के वातावरण को आवश्यकताओं की समझ उन परिस्थितियों के अनुसार अपने आप को जितनी जल्दी डाल देते है उतने ही बुद्धिमान समझे जाते हैं।

टरमैन के अनुसार - एक व्यक्ति उसी अनुपात में बुद्धिमान होता है जितना वह अमूर्त चिन्तन की क्षमता रखता है।

वुडरे - बुद्धि ग्रहण करने की क्षमता है |

पिटनर बुद्धि नई परिस्थितियों के साथ समायोजन करने की योग्यता हैं।

क्रूज - 'बुद्धि नयी व विभिन्न परिस्थितियों में अच्छी प्रकार से समायोजन की योग्यता है।'

बंकिधम - 'बुद्धि सीखने की योग्यता है।'

डियरबोर्न - 'बुद्धि सीखने या अनुभव से लाभ उठाने की योग्यता है।'

इन परिस्थितियों से स्पष्ट है कि ये बुद्धि सभी बुद्धि की सीमीत व्याख्या करती है बुद्धि मात्र एक तरह की क्षमता ना होकर अनेक तरह की क्षमताओं का समूह है इसलिये बाद में मनोवैज्ञानिको ने बुद्धि की अनेक उन्नत परिभाषाएं दी जो निम्न है -

वैश्लर (Wechsler) - ने 1939 में बुद्धि की सर्वश्रेष्ठ परिभाषा दी जो सर्वमान्य है – 'बुद्धि एक समुच्चय या सार्वजनिक क्षमता है जिसके सहारे व्यक्ति उद्दश्यपूर्ण क्रिया करता है, विवेकशील चिन्तन करता है तथा वातावरण के साथ प्रभावकारी ढंग से समायोजन करता है।'

बुद्धि के निर्धारक -

(1) **आनुवंशिकता (Heridity)** - से तात्पर्य जीन के माध्यम से बच्चों को माता-पिता से मिलन वाली सभी गुणों से है। बुद्धि भी आनुवंशिकता से प्राप्त गुण है अनेक शोध ये प्रमाणित करते हैं कि आनुवंशिकता, बुद्धि को प्रभावित करते हैं।

(2) **वातावरण -:** हमारी बुद्धि की सीमाएं आनुवंशिकता निर्धारित करती है परन्तु आनुवंशिकता से प्राप्त बुद्धि का विकास वातावरण द्वारा निर्धारित होता है आनुवंशिकता बीज है जिसमें पौधा बनने की क्षमता है पर उस बीज से पौध निकलने के बाद उसका अधिकतम विकास वातावरण द्वारा निर्धारित होता है वातावरण आनुवंशिकता से प्राप्त सीमाओं के पार नहीं जा सकता पर अच्छा वातावरण का प्राप्त होना क्षमताओं का पूर्ण विकास सुनिश्चत कर सकता है। कितना भी अच्छा गुणवता वाला बीज हो, पर्याप्त पोषण के अभाव में अच्छे से विकसित नहीं हो पाएगा पर अच्छी गुणवता के बीज को अच्छा वातावरण भी मिलें तो अधिकतम बुद्धि विकास सुनिश्चित है।

(3) **जन्म कर्म व बुद्धिमता -** अध्ययन बताते है कि प्रथम जन्म कर्म वाले बालक में बुद्धिमता का स्तर बाद में जन्में बालको की अपेक्षा अधिक होता है।

(4) **परिवार का आकार व बुद्धिमता** - अध्ययन प्रमाणित करते हैं कि परिवार का आकार बढने के साथ में बुद्धिमता का स्तर कम होता है इसके संभावित कारण यह है कि बडे परिवारों में बालकों पूर्ण सुविधाऐं नहीं मिल पाती है छोटे परिवारों की तुलना मे, माता-पिता का ध्यान बालकों पर से कम हो जाता है व अधिक बच्चे होने पर, बच्चों के मध्य जन्म समय में अन्तर कम होने पर माता का कमजोर स्वास्थ्य, बच्चों की बुद्धिमता के स्तर को प्रभावित करता है।

(5) **सामाजिक आर्थिक स्तर व बुद्धिमता** - बेले का अध्ययन प्रमाणित करता है कि उच्च सामाजिक आथिक स्तर वाले परिवारों मे जन्मे बालको का बुद्धि स्तर निम्न सामाजिक आर्थिक परिवारों में जन्में बालकों से अधिक होता है। रामे व कैम्पबैल (1979) ने अपने अध्ययन में पाया कि जिन बालको का पालन पोषण प्रेरणात्मक व धनाढ्य परिवारों में होता है उनकी बुद्धि में अप्रेरणात्मक व गरीब परिवारों में पले बच्चों की तुलना में सार्थक अन्तर देखने को मिलता है। अध्ययनो से प्रमाणित है कि गरीबी के कारण परिवारों में अव्यवस्था, शौर-गुल, साधनों का अभाव, सीखने के लिए कम प्रेरणात्मक वातावरण होता है जो बुद्धि विकास को नकारात्मक रूप से प्रभावित करता है।

(6) **अभिभावकों की आयु व बुद्धिमता -** अभिभावकों की आयु, उनके स्वास्थ्य का बच्चों के बुद्धि विकास पर प्रभाव पडता है अधिक आयु में बालक का जन्म, माता-पिता का कमजोर स्वास्थ्य, बच्चे का समय से पूर्व जन्म, बच्चे का कमजोर स्वास्थ्य ये सभी कारक भी बुद्धिमता के विकास को नकारात्मक रूप से प्रभावित करते हैं।

इस प्रकार स्पष्ट है कि वातावरण बुद्धि के विकास का महत्वपूर्ण निर्धारक है अच्छा खान-पान, अच्छा स्वास्थ्य, सीखने के लिए अच्छा प्रेरणात्मक वातावरण, सीखने प्रोत्साहन व पुरस्कार, सीखने के अवसर युक्त विविधतापूर्ण वातावरण आनुवंशिकता के साथ बुद्धि के निर्धारण में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है।

बुद्धि की अभि वृद्धि

बुद्धि परीक्षण से यह सिद्ध हो चुका है की आयु के साथ व्यक्ति की बुद्धि में अभिवृद्धि होती रहती है , किन्तु अभिवृद्धि सदैव नहीं बनी रहती । बुद्धि की अभिवृद्धि किस आयु पर जाकर रूक जाती हैं, यह सुनिश्चित करना कठिन सा है । विभिन्न मनोवैज्ञानिकों का भिन्न-भिन्न मत है । बर्ट का मत है कि बुद्धि 14 वर्ष की आयु तक ही बढ़ती है। टरमन के अनुसार 16 वर्ष के बाद बुद्धि की अभिवृद्धि नहीं होती है, जो अभिवृद्धि प्रतीत होती है वह अनुभव के क्षेत्र में होती है । स्पीयरमैन ने इसकी 'पूर्ण अभिवृद्धि की. आयु व 4 से 16 वर्ष मानी है । जोन्स का' मत है कि बुद्धि की अभिवृद्धि 16 तक होती रहती है, माइल्स के अनुसार 18 वर्ष तक बुद्धि की अभिवृद्धि होती रहती है । थार्नडाइक भी मानता है कि बुद्धि का विकास व 8 वर्ष तक होता रहता है किन्तु उन्नीसवें वर्ष में भी यह विकास कुछ न कुछ होता रहता है। पिन्टर का मत है कि 14 से 22 वर्ष के मध्य बुद्धि का विकास कभी भी रूक जाता है।

बुद्धि की अभिवृद्धि के चरम बिन्दु तक पहुंचने का तात्पर्य यह नहीं लगाया जाना चाहिए कि इसके उपरान्त व्यक्ति में किसी प्रकार का ज्ञानात्मक विकास नहीं होगा। वस्तुत: यह 30 वर्ष या उसके पहले तक चालू रह सकता है। किन्तु अधिकांश मनोवैज्ञानिकों का मत है कि व्यक्ति का ज्ञानात्मक विकास चाहे लगातार होता भी रहे किन्तु बुद्धि की अभिवृद्धि किशोरावस्था में ही पूर्ण हो जाती है। वस्तुत: बाद में बुद्धि नहीं बढ़ती है ज्ञान बढ़ता है। ज्ञान अर्जित की गई शक्ति है जबकि बुद्धि प्राय: जन्मजात शक्ति के रूप में मानी गई है।

बुद्धि और ज्ञान में अंतर(Difference between Intelligence & Knowledge)

- बुद्धि जन्मजात होती है - जबकि ज्ञान पर्यावरण द्वारा प्राप्त किया जाता है।
- बुद्धि की प्रकृति स्थिर होती है, अर्थात उसमें परिवर्तन बहुत कम होता है जबकि ज्ञान में प्रयास कर वृद्धि की जा सकती है।
- केवल जानकारी प्राप्त करना ज्ञान है, जबकि उसे व्यावहारिक जीवन में उपयोग करना बुद्धि है।
- बुद्धि के द्वारा ज्ञान का विकास किया जा सकता है, किन्तु जान द्वारा बुद्धि का विकास नहीं किया जा सकता है।

बुद्धि का स्वरुप

बुद्धि का स्वरूप बुद्धि के विषय के बारे में विचार प्रकट करते हैं और उसके कार्यों पर प्रकाश डालते हैं।

गत शताब्दी के प्रथम दशक से ही विभिन्न देशों के मनोवैज्ञानिकों में इस बात की रूचि बढ़ी की बुद्धि की संरचना कैसी है तथा इसमें किन-किन कारकों का समावेश है। इन्हीं प्रश्नों के परिणाम स्वरूप विभिन्न कारकों के आधार पर बुद्धि की संरचना की व्याख्या होने लगी। अमेरिका के थार्सटन,

थार्नडाईक, थॉमसन आदि मनोवैज्ञानिकों ने कारकों (factors) के आधार पर 'बुद्धि के स्वरूप' विषय में अपने-अपने विचार व्यक्त किये। इसी तरह फ्रांस में अल्फ्रेड बिने, ब्रिटेन में स्पीयरमेन ने भी बुद्धि के स्वरूप के बारे में अपने विचार प्रस्तुत किये।

(1) बुद्धि विभिन्न क्षमताओं का योग है अर्थात बुद्धि एक क्षमता न होकर अनेक क्षमताओं का योग है इसी अनेक क्षमताओं के योग को बुद्धि कहते हैं।

(2) बुद्धि के सहारे ही व्यक्ति उद्देश्यपूर्ण क्रियाएं करता है जो व्यक्ति जितनी अधिक उद्देश्यपूर्ण व सार्थक क्रियाएं करता है वह उतना ही बुद्धिमान होता है।

(3) बुद्धि के सहारे ही व्यक्ति वातावरण के साथ प्रभावकारी ढंग से समायोजन करता है।

(4) बुद्धि के सहारे व्यक्ति विवेकशील चिन्तन अर्थात तर्कपूर्ण व युक्ति संगत चिन्तन कर पाता है।

(5) बुद्धि के कारण ही व्यक्ति गत अनुभूतियों द्वारा अर्जित अनुभव का लाभ उठा पाता है।

(6) बुद्धि के द्वारा ही व्यक्ति जटिलतम समस्याओं को समझ उनका तर्कपूर्ण, युक्तिसंगत, मौखिक समाधान कर पाता है।

16.3 बुद्धि के सिद्धान्त

बुद्धि के सिद्धान्त द्वारा हमे बुद्धि की संरचना का ज्ञान होता है जिससे हम जान पाते है कि बुद्धि किन-किन तत्वों या घटकों से मिलकर बनी है वह किस प्रकार कार्य करती है प्रमुख सिद्धान्तों का वर्णन निम्नानुसार हैं।

(1) बुद्धि का एककारकीय सिद्धान्त - इस सिद्धान्त का प्रतिपादन 20वीं शताब्दी के प्रारम्भ में हुआ। इस सिद्धान्त के प्रमुख प्रवर्तक बिने थे इस सिद्धान्त के अनुसार मानव मस्तिष्क में अनेक शक्तियां ना होकर एक ही शक्ति होती है और यही एक शक्ति व्यक्ति के समस्त मानसिक कार्यों को प्रभावित करती है यह शक्ति ही बुद्धि है। बुद्धि विभिन्न खण्ड ना होकर एक अविभाज्य इकाई है एक पूर्ण खण्ड।

इस प्रकार इस सिद्धान्त से स्पष्ट हैकि अगर कोई व्यक्ति एक क्षेत्र में निपुर्ण है तो वह अन्य क्षेत्रों मे भी निपुर्ण होगा। बुद्धि का व्यक्ति के सम्पूर्ण व्यवहार पर एक छत्रीय राज है अर्थात बुद्धि ही वह सर्वशक्ति है जो मानव के सम्पूर्ण व्यवहार को नियंत्रित करती है। इस कारण इस सिद्धांत को बुद्धि का राजकीय सिद्धान्त (Monarchic theory of intelligency) भी कहा जाता है।

(2) बुद्धि का द्विकारकीय सिद्धान्त (Two factor theory) - स्पीयरमैन ने 1904 में बुद्धि के एककारकीय सिद्धान्त के विरोध में, बुद्धि द्विकारकीय सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। उनके अनुसार बुद्धि का निर्माण दों कारकों से मिलकर हुआ है - (i) सामान्य कारक (General factor या 'G' कारक) ((ii) विशिष्ट कारक (Specific factor or 'f' कारक)

जिसे स्पीयरमैन ने सांकेतिक रूप से क्रमश:' कारक' तथा 'S कारक' के रूप में व्यक्त किया।

स्पीयरमैन के अनुसार G कारक अर्थात सामान्य कार्य करने की योग्यता व्यक्ति को जन्म से प्राप्त होती है इसकी मात्रा भिन्न-2 व्यक्तियों में भिन्न-2 होती हैं जिस व्यक्ति में यह योग्यता जितनी अधिक होगी वह उतने ही अधिक मानसिक कार्यों मे प्रवीण होगा। इस सामान्य कार्य करने की योग्यता को अनुभूति, प्रशिक्षण शिक्षण द्वारा बढाया नहीं जा सकता है।

प्रत्येक मानसिक कार्य एक दुसरे से कुछ ना कुछ भिन्नता रखते है स्पीयरमैन ने इस भिन्न कारक को विशिष्ट कारक (S कारक) कहा। वह विभिन्न विशिष्ट योग्यताओं का समूह है (S1S2S3.....Sn) यह विशिष्ट योग्यताएं अर्जित होती है तथा विभिन्न विशिष्ट कार्यों को करने के लिए उतरदायी होती है विशिष्ट कारक की मात्रा भिन्न-2 कार्यों के लिए अलग होती है व भिन्न-2 कार्यों के लिए एक विशेष प्रकार की विशिष्ट कारक की आवश्यकता होती है। विशिष्ट कारक को अनुभूति, प्रशिक्षण, शिक्षण द्वारा बढाया जा सकता है।

ये सामान्य कारक व विशिष्ट कारक स्वतंत्र नहीं होते हैं। सभी प्रकार की विशिष्ट योग्यता कारकों में सामान्य योग्यता कारकों की कम या अधिक मात्रा अवश्य विद्यमान होती है।

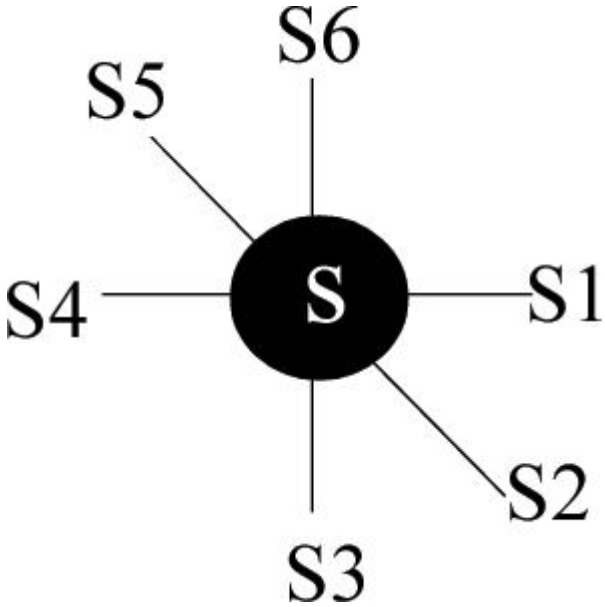

इस प्रकार संक्षेप कहा जा सकता है कि बुद्धि में G कारक तथा S कारक दोनो विद्यमान होते हैं ये दोनो कारक मिलकर किसी मानसिक कार्य करने की योग्यता प्रदान करते हैं परन्तु इनमे G कारक अधिक महत्वपूर्ण है इसलिए इस सिद्धान्त को G कारक सिद्धान्त भी कहते हैं।

3) त्रिकारक बुद्धि सिद्धान्त (Three factors theory of Intelligence)

स्पीयरमेन ने सन् 1911 में अपने पूर्व बुद्धि के द्विकारक सिद्धान्त में संशोधन करते हुए एक कारक और जोड़कर बुद्धि के त्रिकारक सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। बुद्धि के जिस तीसरे कारक को उन्होंने

अपने सिद्धान्त में जोड़ा उसे उन्होंने 'समूह कारक' (ग्रुप फेक्टर) कहा। अतः बुद्धि के इस सिद्धान्त में तीन कारक-

1. सामान्य कारक (General Factors)
2. विशिष्ट कारक (Specific Factors)
3. समूह कारक (Group Factors)

सम्मिलित किये गये हैं।

स्पीयरमैन के विचार में सामान्य तथा विशिष्ट कारकों के अतिरिक्त समूह कारक भी समस्त मानसिक क्रियाओं में साथ रहता है। कुछ विशेष योग्यताएं जैसे यांत्रिक योग्यता, आंकिक योग्यता, शाब्दिक योग्यता, संगीत योग्यता, स्मृति योग्यता, तार्किक योग्यता तथा बौद्धिक योग्यता आदि के संचालन में समूह कारक भी विशेष भूमिका निभाते हैं। समूह कारक स्वयं अपने आप में कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं रखता बल्कि विभिन्न विशिष्ट कारकों तथा सामान्य कारक के मिश्रण से यह अपना समूह बनाता है। इसीलिए इसे समूह कारक कहा गया है। मनोवैज्ञानिकों के अनुसार इस सिद्धान्त में किसी प्रकार की नवीनता नहीं है। थार्नडाइक जैसे मनोवैज्ञानिकों ने इस सिद्धान्त की आलोचना करते हुए कहा है कि समूह कारक कोई नवीन कारक नहीं है अपितु यह सामान्य एवं विशिष्ट कारकों का मिश्रण मात्र है।

(4) **बुद्धि का समूह कारक सिद्धान्त** - यह सिद्धान्त एल. एल. थर्स्टन ने 1937 में प्रस्तुत किया। उनके अनुसार बुद्धि न तो मुख्य रूप से सामान्य कारक (G कारक) द्वारा निर्धारित होती है। और न ही विशिष्ट योग्यता कारको (S कारक) के द्वारा। उनके अनुसार मानसिक प्रक्रियाओं का एक सामान्य प्राथमिक कारक होता है जो सभी मानसिक प्रक्रियाओं को एक सूत्र मे बांधे रखता है तथा एक प्रकार की मानसिक क्रियाओं को अन्य मानसिक प्रक्रियाओं से अलग रखता हैं। ऐसी सभी मानसिक क्रियाएं जिनका एक सामान्य प्राथमिक कारक होता है आपस में सहसंबधित होती है तथा मिलकर एक समूह का निर्माण करती है इस समूह का प्रतिनिधित्व करने वाले कारक को प्राथमिक कारक कहते हैं। उन्होने अपने समूह कारक सिद्धान्त में 7 प्राथमिक कारकों का वर्णन किया व साथ ही इन सात प्राथमिक कारकों को मापने के लिए एक परीक्षण माला तैयार की जिसे ßप्राथमिक मानसिक परीक्षण् कहा जाता है

ये 7 प्राथमिक मानसिक कारक निम्नलिखित हैं -

(1) शाब्दिक योग्यता (verbel ability) - शब्दों, वाक्यो का अर्थ समझने की योग्यता

(2) आंकिक योग्यता (Numerical ability) - तीव्रता व परिशु(ता के साथ आंकिक गणना करने की योग्यता

(3) शब्द प्रवाह योग्यता (word flow ability) - शब्दो का तीव्रता से उपयोग करने की क्षमता

(4) स्थानिक योग्यता (spatial ability) - स्थान में वस्तुओं का परिचालन करने की योग्यता

(5) तर्क क्षमता (reasoning ability) - छिपे हुए अर्थो को समझने की योग्यता

(6) स्मृति क्षमता (memory ability) - दी गई सामग्री को शीघ्र ही याद करने की योग्यता

(7) प्रत्यक्षीकरण योग्यता (perceptual ability) - किसी वस्तु का तेजी से छोटे से छोटे गुणों के साथ प्रत्यक्षीयकरण करने की क्षमता।

थर्स्टन के अनुसार ये सभी योग्यताएं एक-दुसरे से स्वतंत्र होती है। इस प्रकार उन्होने 'G कारक' के महत्व को अस्वीकार कर दिया पर ये पूर्णत: स्वतंत्र नहीं होती है बल्कि ये बहुत हद तक सहंसबधित होती है आलोचनाओं के बावजूद थर्स्टन का सिद्धान्त काफी लोकप्रिय हुआ।

(5) **बुद्धि का बहुकारकीय सिद्धान्त (multi-factor theory of intelligence) -** इस सिद्धान्त का प्रतिपादन प्रमुख अमेरिका मनोवैज्ञानिक प्रो. ई. एल. थॉर्नडाइक (E. L. Thorndike) ने किया।

उनके अनुसार बुद्धि में सामान्य योग्यता जैसा कोइ तत्व नहीं होता है बुद्धि कई विशेष मानसिक क्षमताओं को एक योग है। बुद्धि का निर्माण अनेक छोटे-2 कारकों के मिलने से हुआ है प्रत्येक कारक एक विशिष्ट मानसिक क्षमता का धोतक हेव एक दुसरें से स्वतंत्र है ये सभी कारक मिलाकर बुद्धि का निर्माण करते हैं जैसे ईटें मिलकर भवन का निर्माण करती है।

उनके अनुसार भिन्न-2 मानसिक प्रक्रियाओं बीच सहसंबध 'G' कारक की वजह से नहीं वरन मानसिक प्रक्रियायों उपस्थित कई उभयनिष्ठ तत्वों के कारण होता है। अगर हम सैद्धान्तिक रूप से देखे तो स्पीयरमैन व थॉर्नडाइक का सिद्धान्त समान है, अब ये मान्य नहीं है।

(6) **कैटेल का सिद्धान्त** - प्रमुख अमेरीकी मनोवैज्ञानिक आर. बी. (R. B. Cattel) ने 1963 में बुद्धि के एक नये सिद्धान्त का प्रतिपादन नहीं। कैटेल ने बुद्धि को भागों में बांटा -

(1) तरल बुद्धि (fluid intelligence)

(2) ठोस बुद्धि (crystallized intelligence)

तरल बुद्धि से तात्पर्य प्रत्यक्षीकरण की योग्यता से है जिससे व्यक्ति दो वस्तुओं के बीच संबधो का प्रत्यक्षीकरण व पुर्नगठन करता है। तरल बुद्धि का निर्धारण आनुवांशिक कारकों से होता हैं। तरल बुद्धि नई परिस्थितियों के अनुसार अनुकूलन करने में सहायता प्रदान करती है।

ठोस बुद्धि - से तात्पर्य अर्जित तथ्यात्मक ज्ञान से होता है जो व्यक्ति तरल बुद्धि का उपयोग कर अपनी जिंदगी के अनुभवों अनुभवों से अर्जित करता है इसका निर्धारण पर्यावरणीय एवं सामाजिक

कारको के द्वारा होता है । ठोस बुद्धि का विकास निरन्तर चलता रहता है व व्यक्ति इसमें अपने अनुभव, प्रशिक्षण, अधिगम के परिणामस्वरूप परिमार्जन करता रहता है।

यह ठोस बुद्धि आनुवंशिकता की क्रिया के फलस्वरूप अगली पीढी मे हस्तांतरित हो जाती है जिससे पीढी दर पीढी बौद्धिक क्षमता का विकास होता रहता हैं।

परन्तु अधिकतर मनोवैज्ञानिक बुद्धि के इस वर्गीकरण व तरल बुद्धि को नहीं मानते हैं।

(7) गिलफर्ड द्वारा प्रतिपादित बुद्धि का सिद्धान्त (Guilford's Theory of Intelligence)

थर्सटन ने बुद्धि कोसमझने के लिए प्राथमिक मानसिक योग्यताओं की जो संकल्पना की, उसी को आधार बनाते हुए गिलफर्ड तथा उसके सहयोगियों ने बुद्धि संबंधी एक नवीन सिद्धान्त को प्रतिपादित किया,. उसके अनुसार बुद्धि कुछ प्राथमिक बौद्धिक योग्यताओं (Primary Intellectual Abilities) की संचरना (Structure) है.। उसका मत है कि प्रत्येक' बौद्धिक योग्यता का मापन अलग-अलग करना श्रेयस्कर होता है। किन्तु विभिन्न बौद्धिक योग्यताओं में कुछ समानता होती है इसी कारण उसने इन्हें तीन सामान्य श्रेणियों में विभाजित किया है -

(अ) प्रक्रिया (Process or Operation)

(ब) विषयवस्तु (Material or content)

(स) परिणाम (Product)

(अ) प्रक्रिया के अन्तर्गत पाँच प्रमुख मानसिक योग्यताएं निहित है-

(i) संज्ञान**(Cognition)**इस योग्यता के आधार पर व्यक्ति किसी वस्तु को पहचान पाताहै।

(ii) स्मृति**(Memory)**संज्ञान के कारण विगत अनुभवों को याद करता है।

(iii) अपसारी चिंतन (**Divergent Thinking)**विभिन्न दिशाओं में सोचने की योग्यता जो सृजनात्मकता **(Creativity)**के बहुत निकट होती है।

(iv) अभिसारी चिंतन**(Convergent Thinking)**यांत्रिक चिंतन जिसका परिणाम सही या उत्तम उत्तर होता है।

(v) मूल्यांकन**(Evaluation**) यह योग्यता जिसके द्वारा व्यक्ति जांच पड़ताल के बाद उपयुक्त निर्णय पर पहुंचता है।

(ब) विषय वस्तु के अन्तर्गत गिलफर्ड ने चार प्रभागों का उल्लेख किया है-

(i) आकृति विषय वस्तु (Figural Content)यह वह विषय वस्तु जो' ज्ञानेन्द्रियों द्वारा समझी जाती है।

(ii) प्रतीकात्मक विषय वस्तु (Symbolic Content)वह विषय वस्तु जो शब्दों, अंकों या प्रतीकों से बनी होती हैं।

(iii) भाषा संबंधी विषय वस्तु (Semantic Content)वह विषय वस्तु जो विचारों या मौखिक अर्थों का रूप से लेती है।

(iv) व्यवहार संबंधी विषय वस्तु(Behavioural Content) वह विषय वस्तु जो सामाजिक बुद्धि या ज्ञान एवं दूसरों के साथ संबंधों को समझने का संकेत देती है।

(स) परिणाम के अन्तर्गत गिलफर्ड ने छ: प्रकार की मानसिक योग्यताएं सम्मिलित की है-

(i) इकाइयां (Unit)इसके द्वारा श्रव्य-दृश्य एवं प्रतीकात्मक इकाइयों का अवबोध तथा प्रत्यक्षीकरण होता है।

(ii) श्रेणियां या प्रकार (Classes or Categories)विभिन्न विचारों को श्रेणीबद्ध करने की योग्यता।

(iii) संबंध(Relationship)विभिन्न वस्तुओं के बीच संबंधों को समझने की योग्यता अर्थों का रूप से लेती है।

(iv) व्यवस्थाएं (System)विचार अथवा समस्या को व्यवस्थित करने तथा उनके समाधान अथवा निहितार्थ को समझने की योग्यता।

(v) रूपान्तरण (Transformation)अपेक्षित रूपांतरण हेतु सुझाव देने की योग्यता अथवा प्रस्तुत दशाओं में परिवर्तन हेतु सुझाव देने की योग्यता।

(vi) निहितार्थ (Implication)निहित भावों को समझने अथवा वर्तमान सूचना को भविष्य में उपयोगी बनाने की योग्यता।

गिलफर्ड ने 5 प्रक्रियाएं, 4 विषय वस्तु एवं छ परिणाम संबंधी सभी बौद्धिक योग्यताओं को एक दूसरे से संबंधित माना है । अत: उसने 5x 4x 6x= 120 बौद्धिक आयामों **(IntellectualDimension)** की बात कही है, जिसे एक धनात्मक प्रतिमान के रूप में नीचे दिया जा रहा है-

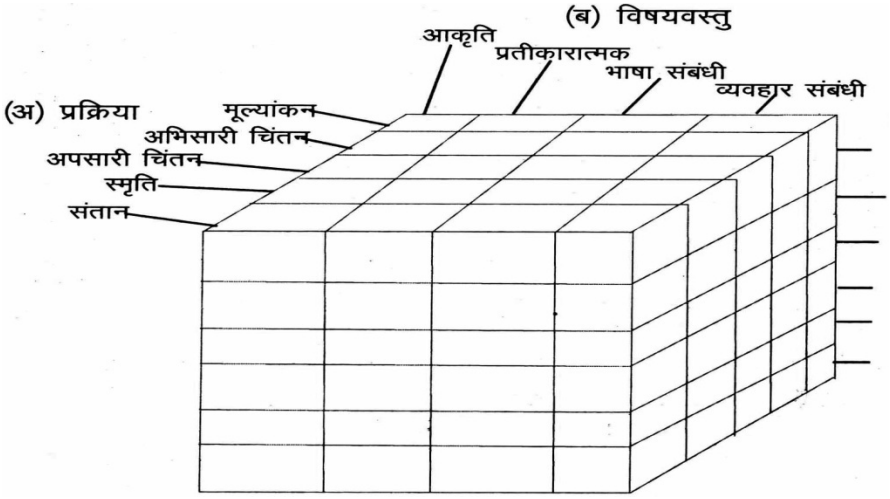

Principal Dimensions of Intelligence as propagated by Guilford

गिलफर्ड इस बात पर बल देता है कि उपरोक्त चित्र में प्रदर्शित प्रत्येक कोष्ठ (खाना) एक बौद्धिक आयाम को बताता है, क्योंकि यह तीन विभिन्नताओं (प्रक्रिया, विषयवस्तु एवं परिणाम) के योग से बनता है। कुल 120 बौद्धिक आयामों में से 98 खानों के साथ संबंधित बौद्धिक योग्यता का पता लग चुका है। 32 कोष्ठ (खाने) अभी खाली है। यद्यपि यह सिद्धान्त सबसे व्यापक माना जाता है, फिर भी गिलफर्ड इसे पूर्ण नहीं मानता और भविष्य में अनुसंधान की आवश्यकता पर बल देता है। उसका मानना है कि बौद्धिक आयमों का यह प्रतिमान नितांत सैद्धान्तिक है तथा इसमें परिवर्तन संभव है। वस्तुत: यह भविष्य में किए जाने वाले अनुसंधानों का मार्ग प्रशस्त करता है

(8) पदानुक्रमिक सिद्धान्त (Hierarchiol theory) - बर्ट 1949 तथा वर्नन 1960 ने स्पीयरमैन के G- कारक सिद्धान्त, थर्स्टन के समूह कारक सिद्धान्त तथा बहुकारक सिद्धान्त को मिला कर पदानुक्रमित सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। इसमें बुद्धि के भिन्न कारकों को एक पदानुक्रम में रखा गया है। पहले पदानुक्रम में सबसे ऊपर स्पीयरमैन के 'G कारक' को रखा गया है, दूसरे स्तर पर थर्स्टन के समूह कारकों जिनकों दो भागों में वर्गीकृत किया गया है एक शाब्दिक कारक तथा दूसरा व्यावाहारिक यान्त्रिक कारक फिर तीसरे स्तर पर समूह कारकों को गिलफोर्ड के बहुकारक के समान छोटे छोटे समूह कारकों को बांट कर रखा गया है | शाब्दिक शैक्षणिक कारक को शाब्दिक कारक तथा संख्या कारक में बांटा गया है तथा व्यावाहारिक यांत्रिक कारक को यांत्रिक कारक स्थानीक कारक तथा मैन्युअल कारक में बांटा गया है फिर इन कारकों भी अनेक छोटे-2 उपकारकों में बांटा गया है। पदानुक्रम में सबसे नीचे स्पीयरमैन के 'S कारक' रखा गया है।

इस प्रकार यह सिद्धान्त वंश वृक्ष जैसा लगता है।

बर्ट तथा बनर्न का पदानुक्रम सिद्धान्त

सामान्य योग्यता कारक

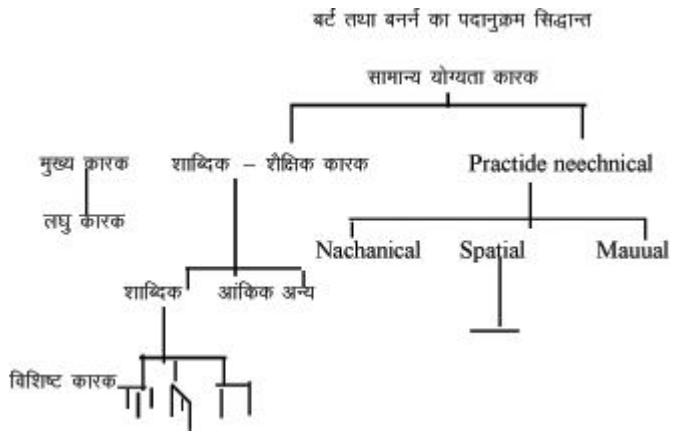

16.4 बुद्धि के प्रकार

ई.एल. थार्नडाइक ने बुद्धि के तीन प्रकार बतलाएं है -

1. मूर्त बुद्धि (Concrete Intelligence)
2. अमूर्त बुद्धि (Absstract Intelligence)
3. सामजिक बुद्धि (Concrete Intelligence)

1. **मूर्त बुद्धि :-** मुर्त बुद्धि से तात्पर्य उस मानसिक क्षमता से है जिसके सहारे ठोस वस्तुओं के महत्व को समझ भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में उनका परीचालन करना सीखता है ऐसी बुद्धि वाले व्यक्ति अच्छे व्यापारी बन सकते हैं।
2. **अमूर्त बुद्धि** :- ऐसी मानसिक क्षमता जिसके सहारे व्यक्ति शाब्दिक तथा गणितीय संकेतो एवं चिन्हों के संबधो को आसानी से समा उनकी उचित व्याख्या तथा उपयोग करता है। ऐसी बुद्धि जिन लोगों में अधिक होती है वे कलाकार, गणितज्ञ व अच्छे अभियंता बन सकते हैं।

3. **सामाजिक बुद्धि** :- ऐसी मानसिक क्षमता है जिसके सहारे व्यक्ति अन्य व्यक्तियों को ठीक ढ़ंग से समझ उनके अनुरूप व्यवहार करता है ऐसे लोग अत्यधिक व्यवहार कुशल होते हैं इनके सामाजिक संबंध बहुत अच्छे है ये समाज ने काफी प्रतिष्ठा प्राप्त करते हैं। इस बुद्धि की प्रधानता युक्त व्यक्ति अच्छे नेता, सामाजिक कार्यकर्ता बन सकते हैं।

16.5 सांवेगिक बुद्धि

सेलोभी व मेयर ने सर्वप्रथम EQ का सप्रत्यय दिया परन्तु इसे प्रसिद्धी गोलमेन के प्रयासो से 2005 मे मिली। गोलमेन के अनुसार सामान्य बुद्धिलब्धि जिसे बुद्धिलब्धि कहते हैं के अलावा भी अन्य प्रकार की बुद्धि जो हमारी सफलता में सामान्य बुद्धिलब्धि से अधिक महत्वपूर्ण होते हैं उन्होने इस दुसरी तरह की बुद्धि को संवेगात्मक बुद्धि Emotional Intelligence or EQ कहा। उनके अनुसार इस संवेगात्मक बुद्धि के मुख्य रूप से पाँच भाग है।

1. स्वयं के संवेगों को जानना *(Knowing our own emotions)*
2. स्वयं के संवेगों को प्रबधंन *(Managing our emotions)*
3. स्वयं को अभिप्रेरित करना *(Motivating ourselves)*
4. दूसरे के संवेगों को जानना *(Recogniging the emotions of others)*
5. सम्बन्धों को बनाए रखना *(Handling relalionships)*

1. **स्वयं के संवेगों को जानना *(Knowing our own emotions)***:- कुछ लोग स्वयं के संवेगों की समझ अन्य लोगों की तुलना में ज्यादा रखते हैं, इससे ऐसे व्यक्ति अपने भावों, इच्छाओं, आवश्यकताओं के अनुरूप अच्छे से निर्णय लेने की क्षमता भी रखते है जिससे इनका जीवन इनके अनुरूप व अच्छा होता है क्योंकि हमारा जीवन सर्वाधिक हमारे चुनावो, निर्णयों से ही प्रभावित होता है। इसके विपरीत जो व्यक्ति स्वयं के भावों संवेगो, इच्छाओं, आवश्यकताओं को भली प्रकार नहीं समझ पाते है उनकी निर्णय लेने की क्षमता भी प्रभावित होती है साथ ही ऐसे व्यक्ति क्योंकि स्वयं को अच्छे से समझ नहीं पाते है तो खुद के भावों को भली प्रकार प्रकट भी नहीं कर पाते है, जिनसे दूसरे भी उनको भली प्रकार नहीं समझ पाते हैं इससे ऐसे व्यक्तियों के सामाजिक संबंध प्रभावित होते हैं इस प्रकार सांवेगिक बुद्धि का यह प्रथम भाव अत्यन्त महत्वपूर्ण है।
2. **स्वयं के संवेगों को प्रबधंन *(Managing our emotions)***:- अपने संवेगो, मनोभावों पर नियंत्रण हमारे अपने मानसिक स्वास्थ्य तथा दूसरों के साथ प्रभावशाली ढंग से अंतक्रिया करने के लिए हमें अपने संवेगों की प्रकृति, तीव्रता व अभिव्यक्ति पर नियंत्रण अत्यन्त आवश्यक है उदाहरणार्थ अगर हमें अपने बॉस पर किसी बात पर गुस्सा आए उसकी कोई बात बुरी लगे तो अगर हम वहीं खुद को नियंत्रित किये बीना बॉस पर अपना गुस्सा निकाल दें तो वह हमारी नौकरी, कार्यालय के माहौल, हमारी प्रगति व सम्मान पर

नकारात्मक प्रभाव डाल सकता है इसके विपरीत अगर हम उस समय अपने गुस्से के मनोभावों को नियंत्रित कर सही समय पर सही तरीके से अपनी बात बॉस के समक्ष रख अपनी सांवेगिक परिपक्वता का परिचय भी दे सकते हैं। ये हमारे स्वयं के सम्मान व प्रगति दोनों के लिए ज्यादा प्रभावशाली कदम है।

3. **स्वयं को अभिप्रेरित करना *(Motiroting ourselves)***:- हमारी सफलता के लिए हमारा स्वयं को लम्बी अवधी तक बिना थके, कठिन परीक्षण के लिए प्रेरित करना, अंतिम परीणाम के लिए, उत्साही व आशावादी रहना, दुरगामी लक्ष्यों व फायदो को ध्यान में रखते हुए अभी के छोटे-छोटे लालचव लाभ को त्यागना भी अत्यन्त आवश्यक है । एवं सांवेगिक बुद्धिमता युक्त व्यक्ति हमेशाउत्साहित रहता है व मेहनत कर सफलता अर्जित करता है।

4. **दूसरे के संवेगों को जानना *(Recoqniging the emotions of others)*:**- गोलमेन के अनुसार सांवेगिक बुद्धि का महत्वपूर्ण भाग दूसरों के मनोभावों को भली प्रकार से समझना भी है, क्योंकि अगर हम दूसरों के मनोभावों को भली प्रकार जान ले तो उनसे अपना काम आसानी से करवा सकते हैं हम पहले सही जान लेते है कि अभी अमुक व्यक्ति से बात करनी है कि नहीं करनी है तो अगर करनी है तो कब व कैसे ताकी हमें उससे हमारे इच्छित परिणाम की प्राप्ति हो सके। दूसरे लोगों के संवेगों को जानने के साथ ही अगर कोई व्यक्ति दुसरे लोगों में तीव्र भाव उत्पन्न करने की क्षमता रखते है वे भी जीवन में अत्यधिक सफल हो सकते हैं विशेषकर व्यापार व राजनीति के क्षेत्र में।

5. **सम्बन्धों को बनाए रखना *(Handling relalionships)***:- कुछ लोगों में दूसरे लोगों के साथ रहने की तीव्र इच्छा होती है ऐसे लोग सदा समुह में रहते हैं, इनके आस-पास के लोग इन्हें अत्यधिक पंसन्द करते हैं इसलिये इन लोगों के बहुत सारे मित्र होते हैं व ये अपने व्यवसाय या नौकरी में उच्च कोटी की सफलता प्राप्त करते हैं इसके विपरीत कुछ लोगों के पारिवारिक, व्यक्तिगत व व्यवसायिक रिश्ते कभी अच्छे नहीं होते हैं। गोलमेन के अनुसार - ये अन्तर संवेगात्मक बुद्धि में अंतर के कारण देखने का मिलता है।

   उच्च संवेगात्मक बुद्धि से युक्त लोगों के रिश्ते अत्यन्त अच्छे होते हैं क्योंकि उनमें ये क्षमता होती है कि वे बहुत सारे लोगों को अपने साथ लेकर चल सके, जटिल समस्याओं का हल निकाल सके, लोगों को इस प्रकार जवाब दे सके कि उन्हे बुरा ना लगे आदि।

   इस प्रकार ये क्षमताएं उन्हे एक अच्छा सामाजिक व्यक्ति बनाती है जो परीक्षा में अच्छे अंक लाने से भिन्न है । इस प्रकार संवेगात्मक क्षमता हमारी जिन्दगी में हमारी सफलता में महत्वपूर्ण योगदान देती है।

16.6 संवेगात्मक बुद्धि की आवश्यकता

संवेगात्मक बुद्धि की आवश्यकता निम्न कारणों से है -

1. हमारी सफलता में IQ केवल 10 से20 प्रतिशत योगदान देती है शेष 80 से 90 प्रतिशत योगदान हमारी EQ (संवेगात्मक बुद्धि लब्धि) का होता है।
2. सांवेगिक बुद्धि कार्यस्थल पर सफल होने के लिये अत्यन्त आवश्यक है क्योंकि अधिक IQ की वजह से हमें कार्य मिल सकता है पर उस कार्य में उन्नति हम सांवेगिक बुद्धि के द्वारा ही कर सकते हैं।
3. तनाव, अवसाद की समस्या आधुनिक समाज में बड़ती जा रही है EQ हमें इससे बचा सकता है।
4. सांवेगिक समस्याएँ जैसे- गुस्सा, चिन्ता, नशा, अकामक्रता आज बढ़ती जा रही है, सही सांवेगिक बुद्धि की क्षमता द्वारा इन संवेगों को नियंत्रित किया जा सकता है।
5. हम EQ के द्वारा हममें तनाव पैदा करने वाले कारणों को समझ इन्हें दुर कर सकते हैं।
6. EQ के द्वारा हम अपने रिश्तों को बेहतर बना सकते हैं।
7. EQ के द्वारा हम स्वयं को बेहतर तरीके से समझ अपने निर्णयों, अभिव्यक्ति को बेहतर बना सकते हैं।

पहचान संकेत (Indicators of Identification)

अधिक संवेगात्मक बुद्धियुक्त व्यक्तियों के लक्षण

- ☐ अपनी भावनाओं व संवेगो को स्पष्ट व सीधे अभिव्यक्त करते हैं।
- ☐ अपनी सोच व भावनाओं को मिलाते नहीं हैं।
- ☐ अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति से डरते नहीं है।
- ☐ नकारात्मक संवेगों से चालित नहीं होते हैं।
- ☐ अभाषायी संवाद समझ जाते हैं।
- ☐ अपनी भावनाओं को तर्क, व वास्तविकता द्वारा संतुलित कर लेते है।
- ☐ अपनी इच्छा से कार्य करते हैं ना कि मजबूरी या कर्तव्य के कारण आशावादी होते हैं।
- ☐ दूसरे लोगों की भावनाओं के प्रति संवेदनशील होते हैं।
- ☐ भावनाओं के बारे में बात करते समय सहज महसुस करते हैं।
- ☐ एक साथ बहुत सारी भावनाओ, संवेगो को समझ पाते है।
- ☐ स्वतंत्राप्रियता व नैतिक मूल्यों से युक्त होते हैं।

कम संवेगात्मक बुद्धियुक्त व्यक्तियों के लक्षण

- ☐ अपने संवेगो की स्वयं जिम्मेदारी नहीं लेते, दूसरो पर दोषरोपण करते हैं।

- दूसरों को बीच में टोकते है, उनकी गलतियां निकालते है।
- छोटी-2 बातों पर भी बहुत तीव्रता से प्रतिक्रिया करते हैं।
- इन्हें अपनी गलतियों को स्वीकारने में कठिनाई होते हैं।
- दूसरों की भावनाओं के बारे में असंवेदनशील होते हैं।
- सुनने की क्षमता कम होती है।
- दूसरों से बहुत षिकायते होती है।

EQ को उन्नत करने के सुझाव

1. अपनी भावनाओं के प्रति जागरूक हो।
2. अपनी सोच व भावनाओं में अन्तर समझ।
3. अपनी भावनाओं की सही पहचान कर उन्हें सही नाम देकर।
4. अपनी सोच, भावनाओं व कार्यों के मध्य सम्बन्ध को समझ।
5. अपने संवेगों को सामाजिक रूप से अनुमोदित व्यवहार द्वारा प्रदर्शित करना सीख कर।
6. सकारात्मक द्वारा वार्तालाप।
7. अपने गुस्से, दु:ख को नियंत्रित करने की प्रविधियां सीख।
8. अपने संवेगो की जिम्मेदारियों स्वंय लेकर।
9. दूसरे व्यक्ति की भावनाओं, उसके संवेगो को समझ कर।
10. व्यक्तिगत भिन्नता का सम्मान करना सीखकर।
11. दूसरे लोगों सुनकर, समझकर, उनके संदर्भ प्रतिक्रिया करना समझकर।
12. दूसरों का सम्मान करना सीख, साथ ही इस बात की परवाह कर कि हमारा व्यवहार कार्य उनकों किस प्रकार प्रभावित करता है।
13. जब नकारात्मक महसूस करें उसका सकारात्मक पहलू देखे।

विद्यालय में सांवेगिक बुद्धि का विकास करने के प्रयास

* सृजनात्मक को बढावा देकर
* सामाजिक व सांवेगिक अधिगम को बढावा देकर
* **आत्म-विश्वास**
* उत्सुकता
* स्वं-अनुशासन
* सह-सम्बन्धता
* सहयोग
* वार्तालाप
* स्वजिम्मेदारियों को बल देकर
* भिन्नता का सम्मान कर

16.7 बहुबुद्धि

हावर्ड गार्डनर, प्रोफेसर हावर्ड विश्वविद्यालय ने बहु 1993 में **बहुबुद्धि** का सप्रत्य दिया। हम सामान्यत: जो बुद्धिमता परिक्षण उपयोग करते हैं वे भाषायी व गणितीय यही दो प्रकार की बुद्धिमता को मापते है। गार्डनर के अनुसार बुद्धि का स्वरूप एकाकी ना होकर बहुकारकीय होता है, उन्होने 8 प्रकार की बुद्धि बताई। हर व्यक्ति में कुछ मात्रा में ये आणें प्रकार की बुद्धि पायी जाती है पर कुछ अन्य की अपेक्षा अधिक होती है इस सिद्धान्त के अनुसार हर व्यक्ति बुद्धिमान है पर अलग-अलग प्रकार से ये बुद्धि है-

1. भाषायी बुद्धि *(Verbal/Linguistic)*
2. तार्किक गणितीय बुद्धि *(Mathematical/Logical)*
3. स्थानिक बुद्धि *(Visual/Spatial)*
4. संगीतीय बुद्धि *(Musical/Rhyihmatic)*
5. प्राकृतिक बुद्धि *(Naturalistic)*
6. शारीरिक गतिक बुद्धि *(Bodily/Kinesthetic)*
7. व्यक्तिगत अन्यबुद्धि *(Interpersonal)*
8. व्यक्तिगत आत्मनबुद्धि *(Intrapersonal)*

1. **भाषायी बुद्धि** :- से तात्पर्य वाक्यों या शब्दों की बोध क्षमता, "शब्दावली, शब्दों के क्रमों के बीच के संबंधोको, शब्दों पहचानने की क्षमता से है। ऐसे बच्चे जो भाषायी बुद्धि में उच्च होते हैं उनका शब्दों का भाषा का अच्छा ज्ञान होता है वे सोचने में भी शब्दों का इस्तेमाल ज्यादा करते हे बजाय तस्वीरों के इन्हें कहानी सुनना, कविता लिखता अच्छा लगता है ये अच्छे कलाकार व अच्छे वक्ता बनते है। ये बच्चे शब्दों को सुनकर, देखकर, बोलकर अच्छा सीखते है। इस प्रकार की बुद्धि लगभग सभी मनुश्यो में पायी जाती है।
2. **अभाषायी बुद्धि:**- से तात्पर्य तर्क करने की क्षमता, गणितिय समस्याओं का समाधान, सादृश्यता, अंको के क्रम में व्याप्त संबंधोको पहचाने की क्षमता से है। उच्च अभाषायी बुद्धि से युक्त बालकों की गणितीय व तार्किक क्षमता अच्छी है इन बच्चो को ऐसी पहेली व खेल अच्छे लगते है जिसमें तर्कणा शक्ति की आवश्यकता होती है ये बच्चे लगातार अपने आस-पास के वातावरण के बारे में प्रश्न पुछते रहते हैं पजलस में प्रयोग करने में अच्छे होते हैं।
3. **स्थानिक बुद्धि** :- स्थानिक बुद्धि से तात्पर्य स्थानिक चित्रों को मानसिक रूप से परिवर्तित करने की क्षमता, स्थानिक कल्पना शक्ति करने की क्षमता से है, इस बुद्धि में उच्च बालक त्री-विमीय चित्रों के माध्यम से सोचते है ये अपने आस-पास के भौतिक वातावरण के प्रति बहुत संवेदनशील होते हैं इन्हें पता होता है कक्षा में कौनसी चीज कहां है। इनकी देखने,

याद करने व फिर से उस वस्तु को बनाने की क्षमता अच्छी होती है, इन्हें कुछ नया बनाना खोजना अच्छा लगता है इनकी कल्पनाशक्ति बहुत अच्छी होती है। इन्हें कलात्मक कार्य करना अच्छा लगता है इन्हें चित्र, व्यक्ति, रास्ते, नक्शे, आसानी से समझ आते है व याद रहते हैं।

4. **संगीतीय बुद्धि :-** इन बच्चो की लय, ताल, धुन, आवाज की विभिन्नता, तीव्रता की समझ बहुत अच्छी होती है इन्हीं एक बार में कविताएं गानों की धुन आसानी से याद हो जाते हैं। कार्य करते समय अक्सर अंगुलियां पैर या पेंसिल को थपथपा आवाजे नीकालते रहते हैं। संगीत बहुत पसंद होता है वातावरण से भी संगीत आसानी से सुन लेते हैं जैसे - पक्षीयों का गाना। ये अक्सर कोई वाद्य बनाते हैं या उसे बजाते हैं व गाने में बहुत रूचि होती है। इनमें शीघ्र ही संगीतिक सामर्थ्य व निपुणता विकसित कर लेने की क्षमता होती है जैसे- लता मंगेशकर|

5 **शरीर गतिक बुद्धि :-** ऐसी बुद्धि में उच्च बच्चों को शारीरिक क्रियाओं की अच्छी समझ होती है व जटिल शारीरिक मुद्राएं को भी आसानी से कर पाते है। अन्य लोगो की तुलना में शारीरिक क्रियाशीलता बहुत अधिक होती है अगर इस ऊर्जा का खपत का मौका ना मिले तो ऐसे बच्चे अत्यधिक क्रियाशील कहलाते हैं। ये अच्छे नृत्यकार एथलीट, कलाकार होते हैं। ये शारीरिक संवेदना के द्वारा ज्ञान प्राप्त करते हैं ये खेलों में बहुत अच्छे होते हैं हाथों से चीजें बनाना जैसे - लकड़ी का काम, क्ले से भी कार्य करने में अच्छे होते हैं साथ ही ये दूसरो की भावभगिमा की नकल करते हैं। इनका अपने शरीर की गति व मात्रा पर जबरदस्त नियत्रंण होता है।

6. **व्यक्तिगत - आत्मन् बुद्धि -** ऐसे बच्चे अपने भाव, सोच, स्वप्न, भावनाओं के बारे में विशेष रूप से संवेदनशील व सचेत होते हैं व इस जानकारी का उपयोग वे अपनी जिंदगी के लिये लक्ष्य निर्मित करने में इस्तेमाल करते हैं दृढ़ व्यक्तित्व के मालिक होते हैं खुद के साथ काम करना पंसद करते हैं भीड़ं से थोड़ा दूर रहना पंसद करते हे। अपने लिए व दूसरों के लिये भी न्याय की भावना बहुत प्रबल होती है, इनकी हर चीज पर अपनी दृढ़ व्यक्तिगत राय, सोच होती है। इनका अपना अलग कपड़े पहनने का तरीका होता है। इनमें अपने भावो, संवेगों को मोनीटर कर, उनमें विभेद कर, मानव व्यवहार के निर्देशन में उन सूचनाओं का उपयोग करने की जबरदस्त क्षमता होती है।

7. **व्यक्तिगत अन्य-बुद्धि :-** ये बच्चे दूसरों के बारे मे बहुत सचेत होते हैं ये लोगो के साथ समूह के साथ बहुत अच्छे होते हैं ये दूसरों के भावो, जरूरतो को शीघ्र की समझ जाते हैं। इसलिये इनके बहुत सारे दोस्त होते हैं। समूह में रहते हैं अक्सर कक्षा मॉनीटर या अपने समूह के नेता होते हैं। इनकी दूसरे व्यक्तियों की इच्छओं, प्रेरणाओं, आवश्यकताओं का

समझ, उनकी मनोदशा की समझ, उसके अनुरूप व्यवहार करने, उनके व्यवहार के बारे में पूर्णकथन की क्षमता जबरदस्त होती है।

8. **प्राकृतिक बुद्धि :-** अपने प्राकृतिक वातावरण के प्रति बहुत सजग होते हैं इन्हें अपने आस-पास के प्राकृति संसार की विशेषताओं को जानना सीखना अच्छा लगता है पेड़-पौधों व जन्तुओं की अच्छी पहचान होती है इन्हें बाहर प्राकृतिक वातावरण में कार्य करना अच्छा लगता है। प्रकृतिवाद, प्राणियों से जुड़े कार्यकर्ता इसी श्रेणी में आते है इनमे प्रकृति व प्राकृतिक जीवों के प्रती तीव्र संवेदना व प्रेम होता है।

गार्डनर के अनुसार प्रत्येक प्राणी में उपर्युक्त सभी प्रकार की बुद्धि होती है परन्तु कुछ कारणों जैसे आनुवांशिकता, वातावरण, प्रशिक्षण के कारण किसी व्यक्ति में कुछ बुद्धि अन्य की तुलना में अधिक विकसित हो जाती है ये सभी आठो प्रकार की बुद्धि आपस में अन्त: क्रिया करती है परन्तु फिर भी प्रत्येक बुद्धि एक अर्द्ध स्वायत तंत्र के रूप में कार्य करती है।

एक परामर्शदाता को इन आठों प्रकार की बुद्धि का ज्ञान, उसके मापन व विश्लेषण का ज्ञान आवश्यक है। क्योंकि इनका ज्ञान होने पर परामर्शदाता, परामर्शग्राही को अच्छे से समझ उसे परामर्श प्रदान कर सकता है व अधिगम को बढ़ाने में, सही व्यावसाय व शैक्षिक विषय के चुनाव में सहायता प्रदान कर सकते हैं।

16.8 सारांश

बुद्धि के स्वरूप के संबंध में विद्वान एक मत नहीं हैं किन्तु सार रूप यह कहा जा सकता है। कि बुद्धि मानसिक योग्यताओं का वह समन्वित रूप है। जो व्यक्ति को उद्देश्यपूर्ण ढंग से कार्य करने, तर्क पूर्ण ढंग से विचार करने तथा प्रभाव पूर्ण ढंग से अपने पर्यावरण के प्रति व्यवहार करने की क्षमता प्रदान करता है ताकि व्यक्ति जीवन मे सफल हो सकें। बुद्धि एक समुच्चय या सार्वजनिक क्षमता है जिसके सहारे व्यक्ति उद्देश्यपूर्ण क्रियाएं करता है, विवेकशील चिन्तन करता है तथा वातावरण के साथ प्रभावकारी ढंग से समायोजन करता है। यह बुद्धि की सम्पूर्ण जीवों में मनुष्य की श्रेष्ठता का आधार है ये बुद्धि मूर्त, अमूर्त, सामाजिक अनेक प्रकार की होती है।

बुद्धि के स्वरूप को स्पष्ट करने हेतु जिन प्रमुख सिद्धान्तों का वर्णन पूर्व में किया गया है उनका विकास थोड़े समय पूर्व ही हुआ है, अत: यह सुनिश्चित करना कठिन सा है कि वह कितने सही तथा उपयोगी हैं। मेरा मानना। कि भविष्य में किए जाने वाले अनुसंधान ही इन सिद्धान्तों की विश्वसनीयता तथा सम्पन्नता सिद्ध कर सकेंगें। इस स्थल पर बुद्धि के स्वरूप की विभिन्न सिद्धान्तों के माध्यम से व्याख्या करना मात्र उद्देश्य है ताकि इनके द्वारा शिक्षार्थियों की विभिन्न बौद्धिक योग्यताओं की जानकारी प्राप्त की जा सकें तथा उसके अनुरूप समुचित शिक्षा व्यवस्था बनाई जा सकें।

बुद्धि के मापन के लिए अनेक बुद्धि परीक्षणों उपलब्ध है। जिनके आधार पर व्यक्ति की बुद्धिलब्धा को ज्ञान कर उसे वर्गीकृत किया जा सकता है। बुद्धि वातावरण, आनुवांशिकता दोनों की अंतक्रिया का परिणाम है।

16.9 बोध प्रश्न

1. बुद्धि से आप क्या समझते हैं ? यह कितने प्रकार की होती है ?

2. बहुबुद्धि क्या है ? कितने प्रकार की होती है। प्रत्येक प्रकार को विस्तार से समझाइए।

3. उच्च व निम्न सांवेगिक बुद्धि युक्त व्यक्तियों की पहचान के लक्षण स्पष्ट कीजिए।

4. सांवेगिक बुद्धि को किस प्रकार बढ़ाया जा सकता है।

5. थर्सटन द्वारा प्रतिपादित बहु-खण्ड सिद्धांत की विवेचना प्रस्तुत कीजिए।

6. गिलफर्ड द्वारा प्रतिपादित प्राथमिक बौद्धिक योग्यताओं का वर्णन कीजिए।

7. क्या बुद्धि के स्वरूप को विभिन्न सिद्धांत पूर्ण: पष्ट कर पाते हैं ? स्पष्ट करें | इन सिद्धांतों को कितना सही तथा उपयोगी माना जा सकता है?

16.10 संदर्भ ग्रंथ

- सिंह,अरुण कुमार (2004), सामान्य मनोविज्ञान, मोतीलाल बनारसीदास |
- भार्गव, ऊषा (1987) "किशोर मनोविज्ञान" हिन्दी ग्रंथ अकादमी,जयपुर
- चौबे, एस0पी0 (1990) "शिक्षा मनोविज्ञान" आगरा, विनाद पुस्तक मंदिर
- चौहान, एस०एस0 (1987) "एडवान्स एजुकेशन साइकोलाजी विकास पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली
- फ्री मैन, एस (1970) "थ्योरी एण्ड प्रैक्टिकल ऑफ साइकोलॉजिक टेस्टिंग' आक्सफोर्ड एण्ड आई.बी.एच पब्लिशिंग कम्पनी, नई दिल्ली
- जॉन, सीको (1977) "द साइकोलाजी ऑफ लर्निंग एण्ड इन्सट्मान", प्रेंटिस हाल प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली
- माथुर, एस०एस0 (1986) "शिक्षा मनोविज्ञान' विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा
- स्पियरमैन, सी.ई (1939) "द ऐबिलिटीज आफ मैन" - देयर नेचर एण्ड मेजरमेन्ट" न्यूयार्क, मैकमिलन
- श्रीवास्तव, जी.एल. (1939) "शिक्षा मनोविज्ञान" प्रकाशन केन्द्र, न्यूबिल्डिग अमीनाबाद, लखनऊ (9) थर्सटन एलएल. (1943) "द शिकागो टेस्ट आफ प्राइमरी मेन्टल ऐबिलिटीज मैनुअल ऑफ इन्सट्मान" शिकागो एस.आ

इकाई- 17

बुद्धि का मापन, बुद्धि परिक्षण की उपयोगिता
Measurement of Intelligence, Uses of Intelligence Test

इकाई की रूपरेखा

17.0 प्रस्तावना

17.1 उद्देश्य

17.2 बुद्धि परीक्षणों का अर्थ

17.3 बुद्धि परीक्षणों का इतिहास

17.4 मानसिक आयु व बुद्धि लब्धि

17.5 बुद्धि परीक्षण के प्रकार

17.6 वैयक्तिक व सामूहिक परीक्षणों की तुलना

17.7 बुद्धि परीक्षणों का मूल्यांकन और उपयोगिता

17.8 बुद्धि परीक्षणों के प्रयोग से होने वाली हानियां

17.9 सारांश

17.10 शब्दावली

17.11 बोध प्रश्न

17.12 संदर्भ ग्रंथ सूची

17.0 प्रस्तावना

जैसे आपने इकाई 16 में पढ़ा होगा। बुद्धि की कई प्रकार की परिभाषाएँ दी गयी है | इसके अतिरिक्त इसका अर्थ व संप्रत्यय को आपने समझा | बुद्धि के सिद्धांतों को मुख्यत: दो वर्गो, कारक सिद्धान्तों (Factor Theories) तथा प्रक्रिया उन्मुख सिद्धान्तों (Process Oriented Theories) में रखा जा सकता है | परन्तु सबसे उत्तम तथा सबसे अधिक प्रचलित बुद्धि परीक्षा किसी विशेष बुद्धि के सिद्धान्त पर अंतरंग रूप से आश्रित नहीं है परन्तु वह निश्चित रूप से ऐसी उप-परीक्षणों का प्रयोग करती हैं और एक समग्र सारांश अंक (जैसे I.Q. इत्यादि), जो कारक सिद्धान्तों से सम्बद्ध है, प्रदान करती है | जिस के आधार पर आप मानसिक योग्यताओं के स्तर को समझकर उनको समुचित निर्देशन, परामर्श और यदि आवश्यक हो तो उपचार भी दे सकते हैं |

17.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप–

- बुद्धि परीक्षणों का अर्थ समझ सकेंगे |
- बुद्धि परीक्षणों का इतिहास और भारत में बुद्धि परीक्षणों का विकास को समझ सकेंगे |
- मानसिक आयु व बुद्धि लब्धि का अर्थ समझ सकेंगे |
- बुद्धि परीक्षण के विभिन्न प्रकारों को समझ सकेंगे |
- वैयक्तिक व सामूहिक परीक्षणों की तुलना कर सकेंगे |
- बुद्धि परीक्षणों का मूल्यांकन और उपयोगिता को समझ सकेंगे |
- बुद्धि परीक्षणों के प्रयोग से होने वाली हानियां को समझ सकेंगे |

17.2 बुद्धि परीक्षणों का अर्थ

बुद्धि को लेकर विद्वानों में अनेक मतभेद हैं । कुछ इसे सामान्य योग्यता मानते हैं तो कुछ नवीन परिस्तिथियों में समायोजन | जब भी वैयक्तिक भिन्नताओं के मापन पर विचार किया जाता है तो बुद्धि भी उसी संदर्भ में देखी परखी जाती है । प्रत्येक व्यक्ति में बौद्धिक या मानसिक योग्यता भिन्न होती है । शिक्षा तथा समाज के अन्य क्षेत्रों में बुद्धि मापन को अत्यधिक महत्वपूर्ण माना जाता रहा है।

आधुनिक मनोविज्ञान की एक सबसे महत्वपूर्ण देन है बुद्धि का मापन करने के लिए बुद्धि परीक्षायें । बुद्धि का मापन का अर्थ है बालक की मानसिक योग्यता का माप करना या यह ज्ञात करना कि उसमें कौन कौन सी मानसिक योग्यताएं है और कितनी ? प्रत्येक बालक में इस प्रकार की कुछ जन्मजात योग्यताएं होती हैं । बुद्धि परीक्षण द्वारा उसकी इन्हीं योग्यताओं या उसके मानसिक विकास का अनुमान लगाया जाता है । ड्रेवर के शब्दों में हम कह सकते हैं - बुद्धि परीक्षण किसी प्रकार का कार्य या समस्या होती है, जिसकी सहायता से एक व्यक्ति के मानसिक विकास के स्तर का अनुमान लगाया जा सकता है, या मापन किया जा सकता है ।

17.3 बुद्धि परीक्षणों का इतिहास

बी.सी. सामन्त के अनुसार - भारत के लिए बुद्धि परीक्षण कोई नई बात नहीं है । वेदों और पुराणों में जहां तहां बुद्धि परीक्षणों के उल्लेख मिलते हैं । यक्ष और युधिष्ठिर का संवाद,, बुद्धि परीक्षण का प्रत्यक्ष उदाहरण है । छात्रो की बुद्धि परीक्षण के लिए जटिल प्रश्नों, पहलियों, समस्याओं आदि का प्रयोग किया जाता था । तक्षशिला और नालन्दा विश्वविद्यालयों की अध्ययन विधियां में बुद्धि परीक्षणों का महत्वपूर्ण स्थान था ।

यूरोप में बुद्धि परीक्षण की दिशा में 18वीं शताब्दी में कार्य प्रारंभ किया गया । सर्वप्रथम भारत के समान वंहा भी शारीरिक लक्षणों की बुद्धि के माप का आधार बनाया गया । इसी प्रकार स्विट्जलैण्ड के प्रसिद्ध विद्वान् लैवेटर ने 1772 में विभिन्न शारीरिक लक्षणों को बुद्धि का आधार घोषित किया । उस समय से बुद्धि के मापन का कार्य किसी न किसी रूप में यूरोप में चलता रहा ।

1879 में विलियम वुण्ट ने जर्मनी के लीपजिंग नामक नगर में प्रथम मनोवैज्ञानिक प्रयोगशाला स्थापित करके बुद्धि मापन के कार्य को वैज्ञानिक आधार प्रदान किया। इस प्रयोगशाला में बुद्धि का माप, यंत्रों की सहायता से किया जाता था।

वुण्ट के कार्य से प्रोत्साहित होकर अन्य देशों के वैज्ञानिकों ने भी बुद्धि परीक्षण का कार्य आरंभ किया। इनमें उल्लेखनीय है फ्रांस में बिने, इंग्लैण्ड में विच, जर्मनी में मैनमान और अमेरिका में थॉर्नडाइक एवं टर्मन। इन मनोवैज्ञानिकों में सबसे अधिक सफलता प्राप्त हुई - बिने को, जिसने साइमन की सहायता से बिने साइमन बुद्धि मापक्रम का निर्माण किया।

टरमन ने उसमें संशोधन करके उसे स्टैफोर्ड बिने माप क्रम का नाम दिया।

भारत में बुद्धि परीक्षणों का विकास

बुद्धि परीक्षण के क्षेत्र में विश्व के सभी उन्नत देशों में असंख्य परीक्षण बनाये गये है। भारत में राज्यों की मनोविज्ञान शालाओं, विश्वविद्यालय, राष्ट्रीय शिक्षक प्रशिक्षण अनुसंधान परिषद् तथा अन्य अनेक निजी एवं सार्वजनिक संस्थान इस दिशा में संक्रिय है।

सन् 1922 में भारत में सर्वप्रथम बुद्धि परीक्षण का निर्माण एफ. जी. कॉलेज, लाहौर के प्राचार्य डॉ॰ सी. एच. राईस (Dr. C. H. Rice) ने किया। इन्होंने बिने की मापनी का भारतीय अनुकूलन किया। इस परीक्षण का नाम था 'हिन्दुस्तानी बिने परफोरमेंस पाइन्ट स्केल' (Hindustan Binet Peromance Point Scale)।

इसके पश्चात् 1927 में जे. मनरी ने हिंदी, उर्दू एवं अंग्रेजी भाषा में शाब्दिक समूह बुद्धि परीक्षण (Verbal Group Intelligence Test) का निर्माण किया। डॉ॰ लज्जाशंकर झा (1933) ने सामूहिक बुद्धि परीक्षण का निर्माण किया जो 10 से 18 वर्षों के बालकों के लिए उपयोगी है। सन् 1943 में सोहनलाल ने 11 वर्ष तथा इससे अधिक आयु वाले बालकों के लिए सामूहिक बुद्धि परीक्षण का निर्माण किया। पंजाब विश्वविद्यालय के प्रोफेसर डॉ॰ जलोटा (1951) ने एक सामूहिक परीक्षण का निर्माण किया। यह परीक्षण हिन्दी, उर्दू एवं आंग्ल भाषा में तथा विद्यालीय छात्रों के लिए था। सन् 1953 में प्रोफेसर सी. एम. भाटिया ने एक निष्पादन बुद्धि परीक्षण (Performance Intelligence Test) का निर्माण किया। इसमें पांच प्रमुख बौद्धिक उप परीक्षण हैं तथा यह 'भाटिया बैट्री ऑफ परफोरमेंस टेस्ट ऑफ इन्टेलीजेन्स' कहलाता है। इस तरह उपरोक्त परीक्षण भारतीय अनुकूलन के प्रमुख बुद्धि परीक्षण हैं और इनका विकास समयानुसार हुआ। इन परीक्षणों के अतिरिक्त कई भारतीय मनोवैज्ञानिकों ने शाब्दिक एवं अशाब्दिक तथा वैयक्तिक एवं सामूहिक बुद्धि परीक्षणों का निर्माण किया। उपरोक्त परीक्षणों के निर्माण में जिन मनोवैज्ञानिकों ने अपना योगदान दिया उनके अतिरिक्त कई और भी मनोवैज्ञानिक हैं जिन्होंने बुद्धि परीक्षण निर्माण में इसी प्रकार का अपना योगदान दिया है। जिनमें से कुछ प्रमुख मनोवैज्ञानिकों के नाम इस प्रकार हैं - शाब्दिक बुद्धि परीक्षणों के निर्माण में बडोंदा के डॉ॰ बी. एल. शाह, बम्बई के डॉ॰ सेठना, एन. एन. शुक्ला, ऐ.जे. जोशी तथा दवे, अहमदाबाद के डॉ॰ देसाई, बूच एवं भट्ट के नाम प्रमुख हैं। इनके अतिरिक्त देश के कई मनोवैज्ञानिक जैसे डॉ॰ शाह, झा, माहसिन, मनरी, सोहनलाल, जलोटा, प्रो॰ एम. सी. जोशी, प्रयाग मेहता, टण्डन, कपूर, शैरी, रायचौधरी, मलहोत्रा, ओझा एवं लाभसिंह ने भी बुद्धि परीक्षणों के निर्माण में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया।

अशाब्दिक परीक्षणों के निर्माण में जिन मनोवैज्ञानिकों ने योगदान दिया उसमें प्रमुख हैं- अहमदाबाद के प्रो॰ पटेल, प्रो॰ शाह, बड़ौदा के प्रोमिला पाठक, बंगाल के विकरी एण्ड ड्रेपर, कलकत्ता विश्वविद्यालय के रामनाथ कुन्दू, बलिया के ए.एन. मिश्र तथा कलकत्ता के एस. चटर्जी तथा मंजुला मुकर्जी।

निष्पादन बुद्धि परीक्षण (Performance Intelligence Tests) के निर्माण में अहमदाबाद के डॉ॰ पटेल ,बड़ौदा के एम. के पानवाल, उदयपुर के पी. एन. श्रीमाली, कलकत्ता के मजूमदार, नागपुर के चन्द्रमोहन भाटिया का योगदान महत्वपूर्ण है । इनके अतिरिक्त प्रभारामलिंगास्वामी (1975), मुरादाबाद के टंडन, इम्फाल के चक्रवर्ती, मैसूर के भारतरात, चंडीगढ़ के वर्मा तथा द्वारकाप्रसाद ने इन परीक्षणों के निर्माण में अपना अमूल्य योगदान दिया।

17.4 मानसिक आयु व बुद्धि लब्धि

बुद्धि परीक्षण का आधार मानसिक एवं शारीरिक आयु के मध्य का संबंध है । बुद्धि परीक्षण के परिणाम बुद्धि लब्धि के द्वारा दिखाये जाते हैं। बुद्धि लब्धि मानसिक आयु के अभाव में मापी नहीं जा सकती। अत: मानसिक आयु व बुद्धि लब्धि की अवधारणा को जानना भी आवश्यक है।

मानसिक आयु का अर्थ - मानसिक आयु बालक या व्यक्ति को सामान्य योग्यता बताती है। गेट्स एवं अन्य के अनुसार, मानसिक आयु हमें किसी व्यक्ति की बुद्धि परीक्षण के समय बुद्धि परीक्षण हमें ज्ञाने वाली सामान्य मानसिक योग्यता के बारे में बताती है।

बुद्धि लब्धि का अर्थ - बुद्धि लब्धि बालक या व्यक्ति की सामान्य योग्यता के विकास की गति बताती है। कोल एवं ब्रूस के शब्दों में बुद्धि लब्धि यह बताती है कि मानसिक योग्यता में किस गति से विकास हो रहा है।

बुद्धि लब्धि निकालने की विधि - मानसिक आयु का विचार आरंभ करने का श्रेय बिने को प्राप्त है। (इसको आधिक समझने के लिए अआप बिने समुदाय बुद्धि स्केल को देख सकते हैं) टर्मन ने उसके विचार को स्वीकार किया, पर अपने परीक्षणों के आधार पर वह इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि मानसिक आयु बालक के मानसिक विकास की बुद्धि के बारे में नहीं बता सकती, क्योंकि विभिन्न बालकों में मानसिक विकास की गति विभिन्न होती है। इस गति को मालूम करने के लिए उसने बुद्धि लब्धि के विचार को जन्म दिया। बुद्धि लब्धि का सूत्र है -

$$\text{बुद्धि लब्धि} = \frac{\text{मानसिक आयु}}{\text{जीवन या वास्तविक आयु}} \times 100$$

$$\text{I.Q.} = \frac{\textit{Mental Age}}{\textit{Chronological or Real Age}} \times 100$$

उदाहरणार्थ, यदि बालक की मानसिक आयु 10 वर्ष और जीवन या वास्तविक आयु 8 वर्ष है तो उसकी बुद्धि लब्धि 125 होगी, जैसे

$$\text{बुद्धि लब्धि (I.Q.)} = \frac{10}{8} \times 100 = 125$$

बुद्धि लब्धि का वर्गीकरण - टर्मन ने बुद्धि का वर्गीकरण निम्न प्रकार से किया है -

बुद्धि लब्धि	बुद्धि के प्रकार
140 से अधिक	प्रभावशाली बुद्धि
120 से 140	अति श्रेष्ठ बुद्धि
110 से 120	श्रेष्ठ बुद्धि
90 से 110	सामान्य बुद्धि
80 से 90	मन्द बुद्धि
70 से 80	क्षीण बुद्धि
70 से कम	निश्चित क्षीण बुद्धि
50 से 70	अल्प बुद्धि
20 या 25 से 50	मूर्ख बुद्धि
20 या 25 से कम	महामूर्ख

17.5 बुद्धि परीक्षण के प्रकार

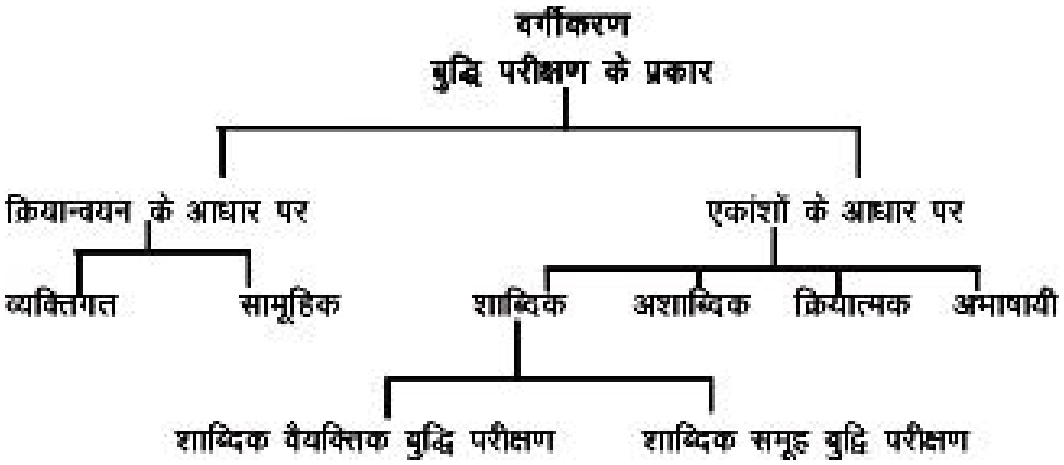

(1) **क्रियान्वयन के आधार पर** :बुद्धि परिक्षण दो प्रकार के होते हैं -

1. व्यक्तिगत बुद्धि परीक्षण
2. समूह बुद्धि परीक्षण

1. व्यक्तिगत बुद्धि परीक्षण :- ऐसे परीक्षण जिनका क्रियान्वयन एक समय में एक ही व्यक्ति पर किया जा सकता है , व्यक्तिगत बुद्धि परीक्षण कहलाते है | इन्हें करने में समय अधिक लगता है क्योंकि एक-एक व्यक्ति पर अलग-2 करना पड़ता है | प्रथम वैयक्तिक बुद्धि परीक्षण की निर्माण 1905 में बिने तथा साइमन ने किया, जिसे बिने-साइमन परीक्षण कहते हैं कोह ब्लॉक डिजाइन परीक्षण, धन रचना, पास अलाग परीक्षण वैयक्तिक बुद्धि परीक्षण के उदाहरण है।

2. सामूहिक बुद्धि परीक्षण :- ऐसे परीक्षण जिनका क्रियान्वयन एक दो बार में एक से अधिक व्यक्तियों या समूहो में किया जा सकता है, सामूहिक बुद्धि परीक्षण

कहलाते है | इन्हें करने में समय व धन की बचत होती है क्योंकि इन्हें एक साथ बहुत पहले सामूहिक बुद्धि परीक्षण विश्व युद्ध के दौरान अमेरिका में बनाए गए जो आर्मी अल्फा परीक्षण व आर्मी बांटा परीक्षण के नाम से जाने जाते हैं।

(2) **एंकाशों के आधार पर बुद्धि-** परिक्षणों को एंकाशों (items) के आधार पर निम्न चार भागों में बांटा गया है।

1. शब्दिक बुद्धि परीक्षण
2. अशाब्दिक बुद्धि परीक्षण
3. क्रियात्मक बुद्धि परीक्षण
4. अभाषाई बुद्धि परीक्षण

1. शाब्दिक बुद्धि परीक्षण :- उन परीक्षणों को कहते हैं जिसमें लिखित शब्दों अर्थात भाषा का उपयोग निर्देश देने तथा परीक्षण के एंकाशों या प्रश्नों में किया जाता है। इस तरह के बुद्धि परीक्षण के क्रियान्वयन के लिए व्यक्ति का पढ़ा-लिखा होना आवश्यक है शाब्दिक बुद्धि परीक्षणों को दो भागों में बांटा गया है -

(i) शाब्दिक वैयक्तिक बुद्धि परीक्षण

(ii) शाब्दिक सामूहिक बुद्धि परीक्षण

(i) शाब्दिक वैयक्तिक बुद्धि परीक्षण :- इस परीक्षण में लिखित शब्दों एवं वाक्यों का प्रयोग एंकाशों व निर्देशों में होता है , साथ ही इन परीक्षणों का स्वरूप ऐसा होता है कि इन्हें एक समय पर सिर्फ एक ही व्यक्ति पर क्रियान्वियत किया जा सकता है | बिने साइमन द्वारा 1905 में बनाया गया परीक्षण शाब्दिक वैयक्तिक बद्धि परीक्षण ही था। इस प्रकार के परीक्षण में क्रियान्वयन के लिये व्यक्ति का पढ़ा-लिखा होना आवश्यक है साथ ही इनको करने में समय अधिक लगता है कयोंकि एक बार में एक ही व्यक्ति पर क्रियान्वियत किये जा सकते हैं इसलिए अगर बहुत सारे लोगों ही बुद्धि का मापन करना हो तो इनका उपयोग कठिन हो जाता है।

(ii) शाब्दिक समूह बुद्धि परीक्षण:- ऐसे परीक्षण को कहते हैं जिसमें शब्द, वाक्य, भाषा आदि का प्रयोग एंकाशों तथा निर्देशों में होता है तथा इन्हें एक समय पर एक से अधिक शक्तियों या समूह पर क्रियान्वियत किया जा सकता है। इन्हें करने में समय की बचत होती है।

शाब्दिक बुद्धि परीक्षणों को पेपर-पेसिंल परीक्षण भी कहते हैं क्योंकि इनमें एंकाशों का उतर देने में पेंसिल तथा पेपर का उपयोग होता है।

2. अशाब्दिक बुद्धि परीक्षण:- ऐसे परीक्षण को कहा जाता है जिसमें भाषा का प्रयोग निर्देश देने में अवश्य होता है परन्तु एंकाशों में भाषा का उपयोग नहीं होता है। इसमें वस्तुओं का मानसिक परिचालन होता है वास्तविक नहीं। इसमें एंकाशों में भाषा का इस्तेमाल ना होने के कारण बच्चो, कम पढ़े लिखे व्यक्तियों पर भी इनका उपयोग किया जा सकता है जैसे रैवन प्रोग्रेसिव मेट्रिसीज।

3. **क्रियात्मक बुद्धि परीक्षण:-** इसमें व्यक्ति के सामने कुछ वस्तुएं वास्तविक रूप में उपस्थित की जाती है जिनका परिचालन या जोड़ तोड़ कर परीक्षणर्थी को सही करना होता है। इन परीक्षणों में निर्देश देने में भाषा का इस्तेमाल हो भी सकता है और नहीं भी। निर्देशन चित्राभिनय हाव-भाव द्वारा भी दिये जा सकते हैं | इन परीक्षणों की सबसे विशेष बात ये है कि इसमें एंकाशों में भाषा का प्रयोग बिल्कुल भी नहीं होता है।

सबसे पहले क्रियात्मक बुद्धि परीक्षण का निर्माण 1866 में सेगुइन ने किया, जिसे सेगुइन फोम बोर्ड परीक्षण कहते हैं। इसका प्रयोग मानसिक रूप से विमंदित बच्चों की बुद्धि मापन के लिए किया जाता है।

ये परीक्षण अशाब्दिक बुद्धि परीक्षण से अलग होते हैं अशाब्दिक बुद्धि परीक्षण में व्यक्ति वस्तुओं का मानसिक परिचालन करता है क्योंकि वस्तुएं व्यक्ति के सामने वास्तविक रूप में नहीं चित्रों के माध्यम से उसके सामने प्रस्तुत की जाती है जबकि क्रियात्मक बुद्धि परीक्षण में वस्तुओं को वास्तविक रूप से परीक्षणर्थी के सामने प्रस्तुत किया जाता है जिनका को वास्तविक रूप से परिचालन या तोड़-फोड़ करता है।

कोह ब्लॉक डिजाइन परीक्षण, पास अलाग परिक्षण, धनरचना परीक्षण इसके उदाहरण है। इस तरह के परीक्षणों में एक समय में केवल एक ही व्यक्ति की बुद्धि का मापन किया जा सकता है।

4. **अभाषाई बुद्धि परीक्षण:-** जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है ये परीक्षण भाषा के बंधन से पूर्णत होते हैं इसमें भाषा का प्रयोग न एंकाशों में होता है ना ही निर्देशों में। निर्देश चित्रामिनय, हाव-भाव द्वारा दिये जाते हैं इन परीक्षणों को संस्कृति मुक्त परीक्षण भी कहते हैं क्योंकि भाषा का प्रयोग ना होने के कारण में संस्कृति के प्रभाव के बंधनो से पूर्णत मुक्त होने है गुडएन हॉफ ड्रा. ए. मैन परीक्षण, केटेल संस्कृति मुक्त बुद्धि परीक्षण इसके प्रमुख उदाहरण है।

5 **बुद्धि लब्धि** (IQ):-

बुद्धि लब्धि के सप्रत्यय का जन्म 1916 में बिन साइमन परीक्षण में संशोधन के परिणामस्वरूप हुआ। इस संशोधन का श्रेय टरमेन को जाता है इससे पहले बुद्धि का मापन मानसिक आयु के रूप में किया जाता था पर अब मानसिक आयु की जगह पर बुद्धि लब्धि (IQ) का उपयोग होने लगा।

बुद्धि लब्धि (IQ) , मानसिक आयु (Mental age) तथा तैथक आयु का ऐसा अनुपात जिसे 100 से गुणा कर प्राप्त किया जाता है इस अनुपात को ही बुद्धि लब्धि (IQ) कहते हैं।

$$\text{बुद्धि लब्धि} = \frac{\text{मानसिक आयु}}{\text{तैथिक आयु}} \times 100$$

बुद्धि लब्धि को समझने के लिए हमें पहले तैथिक आयु व मानसिक आयु के सप्रत्ययों को समझना होगा -

मानसिक आयु :- का प्रयोग मनोवैज्ञानिको ने बुद्धि मापन के लिए किया है मानसिक आयु का सप्रत्यय बिने तथ साईमन द्वारा दिया गया है | टरमैन (1975) ने मानिसक आयु

का परिभाषित करते हुए कहा है कि मानसिक आयु एक ऐसा प्राप्तांक है जिसका निर्धारण अपने ही उम्र या अपने से कम या अधिक उम्र के बच्चों के औसत निष्पादन के साथ कि तुलना करके किया जाता है। उदाहरणार्थ - एक बालक जिसकी तैथिक आयु या वास्तविक आयु 10 वर्ष है यदि वह 10 वर्ष के लिए बने बुद्धि परीक्षण पर इस उम्र के लिए निर्धारित समस्या के समाधान में सफल हो जाता है तो उसकी मानसिक आयु भी 10 वर्ष होगी परन्तु यदि 10 वर्ष का बालक 12 वर्ष के बालको के लिए बने परीक्षण पर सफल होता है तो उसकी मानसिक आयु 12 वर्ष होगी जबकि तैथिक आयु 10 वर्ष है। इसी प्रकार यह भी संभव है कि एक 10 वर्ष का बालक 8 वर्ष की आयु के लिए बने परिक्षणों पर ही सफल हो तब तैथिक आयु 10 वर्ष होते हुए की बालक की मानसिक आयु 8 वर्ष होगी।

स्पष्ट है मानसिक आयु तैथिक आयु से कम या अधिक हो सकती है जब व्यक्ति को मानसिक आयु व तैथिक आयु समान होती है तो उसे सामान्य बुद्धि का समझा जाता है मानसिक आयु तैथिक से अधिक होने पर तीव्र बुद्धि व कम होने पर मंद बुद्धि समझा जाता है।

तैथिक आयु :- व्यक्ति की वास्तविक आयु होती है अर्थात जन्म से लेकर जिस समय गणना की जा सकती है तब तक के समय से होता है। जैसे यदि आज किसी व्यक्ति को तैथिक आयु 12 वर्ष 2 महिने है तो यह उसकी तैथिक आयु कहलाती है।

उदारहणर्थ यदि एक 15 साल के बालक की मानसिक आयु 14 वर्ष है तो उसकी बुद्धि लब्धि 93 होगी

$$\text{बुद्धि लब्धि} = \frac{\text{मानसिक आयु}}{\text{तैथिक आयु}} \times 100$$

$$IQ = \frac{14}{15} \times 100 = 93$$

आईये एन परीक्षणों को हम विस्तार से पढ़ते हैं-

1. व्यैक्तिक और 2. सामूहिक

1. व्यैक्तिक बुद्धि परीक्षण -

यह परीक्षण एक समय में एक व्यक्ति की ली जाती है। इसका आरंभ बिने ने किया। बिने द्वारा निर्मित परीक्षण का संशोधन साइमन ने किया। इसलिये इस परीक्षण को बिने साइमन परीक्षण भी कहा जाता है।

2. सामूहिक बुद्धि परीक्षण

यह परीक्षण एक समय में अनेक व्यक्तियों की ली जाती है। इसका आरंभ प्रथम विश्वयुद्ध (1914-18) के समय अमरिका में हुआ। कारण यह था कि वहां की सरकार मनुष्यों की मानसिक योग्यताओं के अनुसार ही उनको सेना में सैनिकों, अफसरों और अन्य कर्मचारियों के पदो पर नियुक्त करना चाहती थी।

वैयक्तिक और सामूहिक - दोनों प्रकार की परीक्षणों के दो रूप हो सकते हैं -

1. भाषात्मक
2. क्रियात्मक

1. भाषात्मक परीक्षण - क्रो एवं क्रो के अनुसार, इस परीक्षण में भाषा का प्रयोग किया जाता है और इसके द्वारा अमूर्त बुद्धि की परीक्षण ली जाती है। इसका मुख्य उद्देश्य यह ज्ञात करना होता है कि व्यक्ति को लिखने पढ़ने का कितना ज्ञात है। उसे प्रश्नों के उत्तर लिखकर, उनके सामने गोला या गुणा का चिन्ह बनाकर या रेखांकित करके देने पड़ते है।
इस परीक्षण में आगे लिखे प्रकार के प्रश्न पूछे जाते हैं - अंकगणित के प्रश्न 2 निर्देश के अनुसार प्रश्नों के उत्तर 3 व्यावहारिक ज्ञान के संबंध में प्रश्न 4 दिये हुए शब्दों के समानार्थ या विलोम शब्द लिखना, 5 वाक्य के बेतरतीब लिखे हुए शब्दों को तरतीब में लिखना इत्यादि।
2. क्रियात्मक परीक्षण - क्रो एवं क्रो के अनुसार , इस परीक्षण का प्रयोग उन व्यक्तियों के लिए किया जाता है जिनको भाषा का ज्ञान कम होता है या जो लिखना पड़ना नहीं जानते है। इसके द्वारा मूर्त बुद्धि की परीक्षण ली जाती है। इस परीक्षण विधि में वास्तविक वस्तुओं का प्रयोग किया जाता है और परीक्षणर्थियों से कुछ समस्यापूर्ण कार्य करने के लिए कहा जाता है, जैसे 1 चित्रों के बिखरे हुए टुकड़ों को क्रम से लगाकर चित्रों को पूरा करना, 2 किसी दिए हुए चित्र में असंभव को बताना ,3 तिकोनी, चौकारे और गोल वस्तुओं के टुकड़ों को रखकर आकृति को पूरा करना, 4 भूलभूलैया में से होकर बाहर जाने का मार्ग बताना इत्यादि।
हम कुछ प्रसिद्ध बुद्धि परीक्षणों का वर्णन कर रहे हैं।

1- वैयक्तिक भाषात्मक परीक्षण

1) बिने साइमन बुद्धि स्केल -

वैयक्तिक बुद्धि परीक्षण के सर्वप्रथम सफल प्रयास का श्रेय एल्फ्रेड बिने को है। यह पेरिस विश्वविद्यालय का प्रोफेसर था। 1890 के लगभग उस नगर के प्रारंभिक विद्यालयों के प्रबंधकों ने उससे ऐसे बालकों का पता लगाने में सहायता मांगी, जो मन्द बुद्धि थे, ताकि उनको शिक्षा प्राप्त करने के लिए विशिष्ट विद्यालयों में भेजा जा सके। इस कार्य में अपने सहयोगी मनोवैज्ञानिक, थियोडोर साइमन से सहायता ली। दोनों मनोवैज्ञानिकों ने अनेक परीक्षणों के बाद 1905 में अपनी परीक्षण विधि प्रकाशित की, जिसे बिने साइमन बुद्धि मानक्रम कहा जाता है। उन्होंने इसको 1908 से और फिर 1911 में परिवर्तित और संशोधित करके पूर्ण बनाने का प्रयास किया।
बिने साइमन की बुद्धि परीक्षण विधि 3 से 15 वर्ष तक के बालकों के लिए थी। प्रत्येक वर्ष के बालकों के लिए 5 प्रश्न या कार्य थे, पर 4 वर्ष के बालकों के लिए केवल 4 प्रश्न थे और 11 एवं 13 वर्ष के बालकों के लिए कोई प्रश्न नहीं थे। इस प्रकार 1911 के स्केल में प्रश्नों की कुल संख्या 54 थी। ये प्रश्न इस प्रकार बनाये गये थे कि कम आयु के बालक अधिक आयु वाले बालकों के प्रश्नों के उत्तर नहीं दे सकते थे। हम 3 और 4 वर्ष की आयु के बालकों के प्रश्नों के उदाहरण दे रहे हैं –

1. तीन वर्ष की आयु के लिए -

1- अपना नाम बताना
2- अपने मुंह, नाक और कान की उंगली से बताना
3- किसी चित्र को देखकर उसकी मुख्य बातें बताना

4- छ: शब्दों के सरल वाक्य को दोहराना
5- दो अंकों को एक बार सुनकर दोहराना, जैसे 2,5,3,7 6-8 आदि।

2. चार वर्ष की आयु के लिए

1- अपने को बालक या बालिका बताना
2- दो रेखाओं में छोटी और बड़ी की पहचानना
3- चाबी , चाकू और पैन को देखकर उसका नाम बताना ।
4- तीन अंकों को एक बार सुनकर दोहराना, जैसे 2, 5 7, 4 4 9 आदि।

यदि बालक अपनी आयु के लिए निर्धारित सब प्रश्नों के उत्तर दे देता था तो उसे साधारण बुद्धि वाला माना जाता था। यदि वह अपनी आयु से अधिक आयु वाले बालकों के प्रश्नों के उत्तर दे देता था तो उसकी मानसिक आयु को उसकी जीवन आयु से अधिक समझा जाता था और उसे श्रेष्ठ वाला बालक माना जाता था। यदि वह अपी आयु के लिए निर्धारित प्रश्नों के उत्तर नहीं दे पाता था, तो उसकी मानसिक आयु को उसकी जीवन आयु से कम समझा जाता था और उसे मन्द बुद्धि का माना जाता था।

उदाहरणार्थ यदि 8 वर्ष की आयु का बालक अपनी आयु के सब प्रश्नों के उत्तर दे देता था, तो उसकी मानसिक आयु 8 वर्ष मानी जाती थी। यदि वह केवल 7 वर्ष वाले बालकों के प्रश्नों के उत्तर दे पाता था, तो उसकी मानसिक आयु 7 वर्ष समझी जाती थी, यादि वह अपने और 10 वर्ष की आयु के बालकों के प्रश्नों के भी उत्तर दे देता था, तो उसकी मानसिक आयु 10 वर्ष मानी जाती थी। यदि वह 9 वर्ष वाले बालक के केवल 3 प्रश्नों का और 10 वर्ष वाले बालकों के केवल 1 प्रश्न का उत्तर दे पाता था, तो उसकी मानसिक आयु में प्रत्येक प्रश्न के लिए 1/2 वर्ष जोड़ दिया जाता था -

$8+\frac{3}{5}+\frac{1}{5}=8\frac{4}{5}$ वर्ष की मानसिक आयु ।

बिने स्केल का सबसे मुख्य दोष यह है की यदि किसी आयु का बालक अपनी आयु के लिए निर्धारित प्रश्नों के उत्तर नहीं दे पाता था, तो उसकी मानसिक आयु उसकी जीवन आयु से कम मानी जाती थी । रॉस का कथन है - ''बिने स्केल की एक उपयुक्त आलोचना यह है कि या तो बालक सब का उत्तर देकर सफल हो या एक भी प्रश्न का उत्तर न दें सकने के कारण असफल हो।''

"A more pertinent criticism is that the Binet scale is largely an all or none pass or fail business."

2. स्टैनफोर्ड बिने स्केल

अपने दोषों के बावजूद भी बुद्धि का अनुमान लगाने की समस्या पर बिने के अद्वितीय कार्य ने शिक्षा संसार में हनचल मचा दी और कई देशों के उत्साही मनोवैज्ञानिकों का ध्यान उसकी ओर गया । क्योंकि उसका मानक्रम पेरिस की गलियों के उपेक्षित बालकों के लिए बनाया गया था, इसलिए उनमें सुधार आवश्यक समझा गया । इस दिशा में लन्दन में डॉ. सिरिल बर्ट और अमरीका में स्टेनफोर्ड विश्वविद्यालय के मनोविज्ञान के मनोविज्ञान के प्रोफेसर लेविस एम. टरमैन ने अभिनन्दनीय कार्य किया। टरमैन ने बिने के मानक्रम के अनेक दोषों को दूर करके 1916 में उसे एक नया रूप प्रदान

किया, जो स्टैनफोर्ड बिने मानक्रम के नाम से प्रसिद्ध हुआ। उसने 1937 में और फिर 1961 में अपने सहयोगी मोड ए. मैरिल की सहायता से उसे पूर्णतया निर्दोष बना दिया।

यह स्केल 2 से 14 वर्ष तक के बालकों के लिए है। इसमें कुल 90 प्रश्नावलियां है, जो इस प्रकार है 1) 3 से 10 वर्ष तक के बालाके के लिए 6, 2) 12 वर्ष के बालकों के लिए 8, 3) 14 वर्ष के आलकों के लिए 6, 4) सामान्य वयस्कों के लिए 6, 5) श्रेष्ठ व्यवस्कों के लिए 6, 6) अन्य प्रश्नावलियों से केवल 19 प्रश्न लिये गये हैं। 3 वर्ष के बालकों के लिए निम्नांकित प्रश्न हैं -

2 से 5 वर्ष तक प्रत्येक 6 माह के बाद परीक्षण ली जाती है। (अर्थात 2, 2 1/2, 3 वर्ष) पांच वर्ष के बाद वर्ष में केवल एक परीक्षण ली जाती है। प्रत्येक आयु के बालकों की प्रश्नावली के दो भाग हं - L और M। प्रत्येक भाग में 6 कार्य या प्रश्न हैं। 2 से 5 वर्ष तक के बालकों को वे इस प्रकार करने पड़ते हैं - 1) 2 वर्ष के बालकों के लिए Lभाग के 6 प्रश्न 2) 21/2 वर्ष के बालकों के लिए M भाग के 6 प्रश्न। परीक्षणएं इसी क्रम में 5 वर्ष की आयु तक होती हैं। उसके बाद बालकों को Lऔर M दोनों के प्रश्न एक साथ करने पड़ते हैं।

विभिन्न आयु के बालकों के लिए प्रत्येक प्रश्न के लिए मानसिक आयु निश्चित है। उदाहरणार्थ 3 से 10 वर्ष तक के बालकों के लिए प्रत्येक प्रश्न के लिए 2 माह की मानसिक आयु 12 वर्ष वालों के लिए 3 माह की 14 वर्ष वालों के 4 माह की। यदि 12 वर्ष की आयु का बालक 10 वर्ष की आयु के बालकों के सब प्रश्नों का 12 वर्ष की आयु के बालकों के 5 प्रश्नों की और 14 वर्ष वालों के 2 प्रश्नों का उत्तर देता है, तो उसकी मानसिक आयु होती है

10 वर्ष + 15 माह + 8 माह = 11 वर्ष और 11 माह

2. वैयक्तिक क्रियात्मक परीक्षणएं

1. पोरटियस भूलभुलैयां टेस्ट - यह परीक्षण 3 से 14 वर्ष तक के बालकों के लिए है। भुलभुलैयां का निर्माण इस प्रकार किया गया है कि वे आयु की वृद्धि के साथ साथ क्रमश: जटिलतर होती जाती है। जिस बालक की परीक्षण ली जाती हैं, उसे एक पेंसिल और कागज पर बना हुआ भूलभुलैयां का एक चित्र दे दिया जाता है। बालक को पेंसिल से उसमें से बाहर निकालने का निशान लगाकर मार्ग अंकित करना पड़ता है। ऐा करने के लिए 3 से 11 वर्ष तक के बालको को दो अवसर और 12 से 14 वर्ष तक के बालकों को चार अवसर दिये जाते हैं। यदि वे अपने प्रयास में असफल होते हैं, तो उनकी बुद्धि का विकास उनकी आयु के अनुपात से कम समण जाता है। इस परीक्षणक के संबंधमें गैरेट हुआ है। इससे न केवल बालक की मानसिक योग्यता का, वरन् उसकी नियोजन की योग्यता का भी ज्ञात प्राप्त होता है।

2. वेश्लर - बैल्यूब टेस्ट - इस परीक्षण का निर्माण 1944 में 10 से 60 वर्ष की आयु के व्यक्तियों की बुद्धि परीक्षण लेने किया गया था। 1955 में इसे संशोधित करके 16 से 24 वर्ष तक के वयस्कों के लिए कर दिया गया। इसमें विभिन्न आयु के व्यक्जितयों के लिए 5 मौखिक और 5 क्रियात्मक परीक्षण अग्रलिखित प्रकार के हैं - 1 ज्ञान और सूचना संबंधीप्रश्न 2 गणित के प्रश्न 3 शब्दावली 4 चित्र के भागों को तरतीब से लगाकर चित्र को पूरा करना। 5 विभिन्न वस्तुओं के टुकड़ों को विधिपूर्वक रखकर उनकी आकृतियों को पूर्ण करना।

इस परीक्षण के प्रयोग में साधारणत: एक घण्टे से कुछ अधिक समय लगता है। वयस्कों की बुद्धि परीक्षण लेने के लिए इसका बहुत प्रचलन है। इसमें मानसिक आयु के दोष को दूर कर दिया गया है।

3. सामूहिक भाषात्मक परीक्षण

1. आर्मी ऐल्फा टेस्ट - इसका निर्माण अमरीका में प्रथम विश्वयुद्ध के समय सैनिकों और सेना के अन्य कर्मचारियों एवं पदधिकारियों का चुनाव करने के लिए किया गया था। इसका प्रयोग केवल शिक्षित मनुष्यों के लिये किया जा सकता था। इसकी परीक्षण सामग्री बहुत कुछ स्टेनफोर्ड बिने स्केल की सामग्री से मिलती जुलती थी। कोल एवं ब्रूस के अनुसार इस टेस्ट का प्रयोग करके लगभग 2,00,000 सैनिकों की बुद्धि परीक्षण ली गई।

2. सेना सामान्य वर्गीकरण टेस्ट - इसका निर्माण अमरीका में द्वितीय विश्वयुद्ध के समय सेना के विभिन्न विभागों के सैनिकों का वर्गीकण करने के लिए किया गया था। इस परीक्षण में सैनिकों को तीन प्रकार की समस्याओं का समाधान करना पड़ता था। शब्दावली, गणित और वस्तु गणना संबंधी समस्याएं। गैरेट के अनुसार इस टेस्ट का प्रयोग लगभग 12 लाख सैनिकों की बुद्धि परीक्षण लेने के लिए किया गया।

4. सामूहिक क्रियात्मक परीक्षण

1) आर्मी बीटा टेस्ट - इस परीक्षण का निर्माण अमरीका में प्रथम विश्वयुद्ध के समय सेना के विभिन्न पदों और विभागों में कार्य करने वाले मनुष्यों का चुनाव करने के लिए किया गया था। इसका प्रयोग उन मनुष्यों के लिए किया गया था, जो अशिक्षित थे, या अंग्रेजी भाषा नहीं जानते थे। वस्तुओं की गणना, अंकित चित्र में विभिन्न वस्तुओं में एक दूसरे से संबंधबताना, चित्र की उन वस्तुओं पर चिन्ह लगाना, जिनका किसी से किसी प्रकार का संबंधनहीं है, आदि समस्याएं इस परीक्षण में रखी गयीं।

2) शिकागो क्रियात्मक टेस्ट - यह टेस्ट 6 वर्ष की आयु के बालकों से लेकर वयस्कों तक के लिए है। यह 13 वर्ष की आयु के बालकों की बुद्धि परीक्षण लेने के लिए विशेष रूप से उपयोगी सिद्ध हुआ है। इसमें अंग्राकित प्रकार की क्रियाएं हैं - विभिन्न प्रकार की आकृतियों में समानता और असमानता की बातें बताना। चित्र के टुकड़ों को व्यवस्थित करके उसे पूर्ण करना, लकड़ी के टुकड़ों की सहायता से गणना करना, अनेक प्रकार की वस्तुओं में से समान वस्तुओं को छांटकर अलग अलग वर्गों में रखना।

17.6 वैयक्तिक व सामूहिक परीक्षणों की तुलना

डगलस एवं हालैण्ड ने वैयक्तिक और सामूहिक परीक्षणों के अग्रलिखित गुण और दोष बताकर उनकी तुलना की है:-

वैयक्तिक परीक्षण	समूहिक परीक्षण
1- यह परीक्षण केवल अनुभवी या प्रशिक्षित व्यक्ति ले सकता है। 2- यह परीक्षण छोटे बालकों के लिये अधिक उपयुक्त है। 3- इस परीक्षण मे परीक्षण और परीक्षणर्थी का निकट संबंधहोता है। 4- इस परीक्षण में परीक्षक, परीक्षणर्थी के गुण, दोष का पूर्ण अध्ययन कर सकता है। 5- इस परीक्षण से परीक्षक, परीक्षणर्थी की असफलता के कारणों का पता लगा सकता है। 6- इस परीक्षण से परीक्षणर्थी अपने कार्य के प्रति सतर्क रहता है। 7- इस परीक्षण में परीक्षणर्थी की भाषा और व्यवहार का पूर्ण ज्ञान हो जाता है। 8- इस परीक्षण में प्रश्नों को बनाने के लिये काफी परिश्रम और योग्यता की आवश्यकता है। 9- इस परीक्षण के निष्कर्ष बहुत प्रामाणिक और विश्वसनीय होते हैं। 10-इस परीक्षण के लिये बहत धन और समय की आवश्यकता है।	1- यह परीक्षण सामान्य योग्यता का व्यक्ति ले सकता है। 2- यह परीक्षण बड़े बालकों और वयस्कों के लिये अधिक उपयुक्त है। 3- इस परीक्षण में परीक्षण और परीक्षणर्थी का दूर का संबंधहोता है। 4- इस परीक्षण में वह केवल सामान्य अध्ययन कर सकता है। 5- इस परीक्षण मे वह कारणों का पता नहीं लगा सकता है। 6- इस परीक्षण में वह उदासीन रह सकता है। 7- इस परीक्षण में परीक्षणर्थी की भाषा और व्यवहार से केवल आंशिक ज्ञान होता है। 8- इस परीक्षण के प्रश्नों को कम परिश्रम और योग्यता से भी बनाया जा सकता है। 9- इस परीक्षण के निष्कर्ष कम प्रामाणिक और विश्वसनीय होते हैं। 10-इस परीक्षण के लिये कम धन और समय की आवश्यकता है।

उपयुक्त विवेचन के आधार पर यह कहना असंगत न होगा कि सामूहिक परीक्षणों की तुलना में वैयक्तिक परीक्षणएं श्रेष्ठतर हैं। प्रशिक्षित परीक्षक, अधिक धन और समय की आवश्यकता के कारण इन परीक्षणों का सामान्य रूप से व्यवहार में लाया जाना संभव नहीं है। यही कारण है कि सामूहिक परीक्षणों की लोकप्रियता में निरन्तर वृद्धि होती चली जाती है।

क्रियात्मक परीक्षणों की आवश्यकता एवं महत्व

आधुनिक समय में क्रियात्मक बुद्धि परीक्षणओ के प्रयोग का प्रबल समर्थन किया जा रहा है। इसका मुख्य कारण हैं - उनकी आवश्यकता और उपयोगिता। इस संबंधमें निम्नलिखित तथ्य अवलोकनीय हैं -

1- ये परीक्षणएं लिखित परीक्षणों को पूरक होने के कारण बुद्धि के माप को अधिक विश्वसनीय बनाती है।
2- इन परीक्षणों को सहायता से मूर्त बुद्धि का सफलता से अनुमान लगया जा सकता है।
3- इन परीक्षणों को गूंगे, बहरे, मंद बुद्धि और अन्य प्रकार से अशक्त बालकों के लिए व्यवहार में लाया जा सकता है।
4- इन परीक्षणों को विभिन्न भाषाओं और संस्कृतियों के व्यक्तियों को मानसिक योग्यताओं की तुलना करने के लिए प्रयोग किया जा सकता है।
5- इन परीक्षणों को निरक्षर और कम पढ़े लिखे व्यक्तियों एवं अल्प आयु के बालकों के लिए जिनको भाषा का कम ज्ञान है, सफलतापूर्वक प्रयोग में लाया जा सकता है।
6- क्रो एवं क्रो का कथन है ''कुछ मनोवैज्ञानिकों का दावा है कि भाषात्मक परीक्षणों की अपेक्षा क्रियात्मक परीक्षणएं मानसिक योग्यताओं का संभवत: अधिक उत्तम मापन कर सकती है।

17.7 बुद्धि परीक्षणों का मूल्यांकन और उपयोगिता

वर्तमान समय में बुद्धि परीक्षण बहुत ही आवश्यक हो गया है। दिन प्रतिदिन बदल रही कार्यों की प्रकृति को देखते हुण् औद्योगिक क्षेत्रों में इसका विशेष महत्व है। इसके अलावा यह विद्यालय में, सेना, उपचार में, मानयिक पिछड़ेपन की पहिचान में एवं अन्य क्षेत्रों में विशेष उपयोगी है। बुद्धि परीक्षणों में अनेक कमियां हैं एवं इनका प्रयोग त्रुटियों से रहित नहीं है। यहां पर बुद्धि परीक्षणों का प्रयोग एवं परिसीमाओं को स्पष्ट किया गया है|

गेट्स के कथन के अनुसार , बुद्धि परीक्षणएं व्यक्ति की संपूर्ण योग्यता का माप नहीं करती हैं। पर वे उसके एक अति महत्वपूर्ण पहलू का अनुमान कराती है, जिसका शैक्षिक सफलता से और कुछ मात्रा में अधिकांश अन्य क्षेत्रों से निश्चित संबंधहै। यही कारण है कि बुद्धि परीक्षणएं शिक्षा की महत्वपूर्ण साधन बन गई है। शिक्षा में इनका प्रयोग अनेक व्यावहारिक कार्यों के लिए किया जाता है, यथा

1- **सर्वोत्तम बालक का चुनाव -** बुद्धि परीक्षणों की सहायता से विद्यालय प्रवेश, छात्रवृत्तियों, वाद विवाद और इसी प्रकार की अन्य प्रतियोगिताओं के लिए सर्वोत्तम बालकों का चुनाव किया जा सकता है।
2- **पिछड़ हुए बालकों का चुनाव -** बुद्धि परीक्षणों का प्रयोग करके पिछड़े हुए और मानसिक एवं शारीरिक दोषों वाले बालकों का सफलता से चुलान किया जा सकता है। चुनाव किए जाने के बाद उनको शिक्षा प्राप्त करने के लिए विशिष्ट विद्यालयां में भेजा जा सकता है।
3- **अपराधी व समस्यात्मक बालकों का सुधार -** बुद्धि परीक्षणों द्वारा यह मालूम करने का प्रयास किया जाता है कि बालक अपराधी, असंतुलित और समस्यात्मक क्यों? वे ऐसे बुद्धि वाले की कमी के कारण है या किसी अन्य कारण से? कारण ज्ञात हो जाने पर उनका उपचार करके उनमें सुधार किया जा सकता है।
4- **बालकों का वर्गीकरण -** बुद्धि परीक्षणों के आधार पर कक्षा के बालकों को तीव्र बुद्धि मन्द बुद्धि और सधारण बुद्धि वाले बालकों में विभक्त करके, उनको अलग अलग शिक्षा दी सकती है। इंग्लैण्ड में बालकों का वर्गीकरा इसी प्रकार किया जाता है। इसलिए वहां प्रत्येक कक्षा में तीन सेक्शन है।

5- **बालकों की क्षमता के अनुसार कार्य -** गेट्स एवं अन्य के अनुसार बुद्धि परीक्षणों द्वारा बालकों की सामान्य योग्यता और मानसिक आयु को ज्ञात करके यह अनुमान लगाया जा सकता है कि उनमें कार्य करने की कितनी क्षमता है। अत: उनकी क्षमता के अनुसार कार्य दिया जा सकता है।

6- **बालकों की विशिष्ट योग्यताओं का ज्ञान -** बुद्धि परीक्षणों की सहायता से बालकों की विशिष्ट योग्यताओं का जानकारी प्राप्त करके, उनका उचित शैक्षिक निर्देशन दिया जा सकता ह। अत: वे अधिक प्रगति कर सकते हैं।

7- **बालकों की व्यावसायिक योग्यता का ज्ञान -** बुद्धि परीक्षणों का सतर्कता से प्रयोग करके, बालकों की व्यावसायिक योग्यताओं का अनुमान लगाया जा सकता है । अत: उल्हें अपनी योग्यता के अनुसार व्यवसायों का चयन करने के लिए परामर्श दिया जा सकता है।

8- **बालकों को भावी सफलता का ज्ञान -** डगल का कथन है बुद्धि परीक्षणएं, छात्रों की भावी सफलताओं की भविष्यवाणी करती है। इस भविष्यवाणी से बालकों का महान हित हो सकता। उनके माता पिता उनके भावी सफल कार्यों को ध्यान में रखकर उनके लिए शिक्षा को उपयुक्त व्यवस्था कर सकते हैं। फलस्वरूप बालनक अपने भावी जीवन में सफल हो सकते हैं।

9- **अपव्यय का निवारण -** सब बालकों में सब विद्यालय विषयों के लिए समान योग्यता नहीं होती है। फलस्वरूप अनेक बालक परीक्षणों में अनुत्तीर्ण होने के कारण विद्याध्ययन स्थगित कर देते हें। इस अपव्यय का निवारण करने के लिए बुद्धि परीक्षणों द्वारा बालकों की योग्यताओं का ज्ञात कर लिया जाता है ओर इन योग्यताओं के अनुसार उनको पाठ्य विषयों का चुनाव करने का निर्देशन दिया जाता है।

10- **राष्ट्र के बालकों की बुद्धि का ज्ञान -** बुद्धि परीक्षओं द्वारा राष्ट्र के किसी वय वर्ग के बालकों की बौद्धिक योग्यता को ज्ञात किया जा सकता है। इससे यह जानकारी प्राप्त की जा सकती है कि एक राष्ट्र के बालकों का बौद्धिक स्तर दूसरे राष्ट्रों के बालकों से कितना कम या अधिक है। इसी उद्देश्य से स्कॉटलैंड में 1932 में 11 वर्ष के बालको की सामूहिक बुद्धि परीक्षण ली गई थी।

विभिन्न कार्यों में परीक्षणों का उपयोग

1. विद्यालयों में बुद्धि परीक्षणों का उपयोग

विद्यालयों में परीक्षणों का उपयोग विभिन्न उद्देश्यों को पूरा करने के लिए किया जाता है। जैसे परीक्षणर्थी की योग्यता, उसकी क्षमता, आवश्यकताओं, अभियोग्यता आदि के बारे मे सूचना प्राप्त करके उसकी अभियोजन क्षमता बढ़ाने योग्यता के अनुसार उनका वर्गीकरण करने, शैक्षिक तथा व्यावसायिक संदर्शन के बारे में तथ्य एकत्र करने तथा विशिष्ट कठिनाइयों से ग्रसित व्यक्तियों की पहिचान करने के लिए। परीक्षणों से प्राप्त निष्कर्षों के आधार पर बच्चों की प्रशंसा एवं निन्दा की जाती है। उसे किस प्रकार प्रदान की जाए यह बहुत कुछ परीक्षण परिणामों को ध्यान में रखकर किया जाता है। आजकल शिक्षा क्षेत्र में व्यापक रूप से परीक्षणों का उपयोग होता है। अमेरिका में शैक्षिक अनुसंधान समीक्षा पत्रिका में शिक्षा में किये गये अनुसंधानों का ब्यौरा प्रकाशित होता रहात है। शिक्षा के अध्ययन की राष्ट्रीय संस्था द्वारा प्रकाशित वार्षिक पुस्तकों में भी शिक्षा संबंधीपरीक्षणों के विषय में महत्वपूर्ण तथ्य दिये रहते हैं।

प्राय: विद्यालयों एवं कालेजों में परीक्षण के उपयोग का कोई निश्चित उद्देश्य निर्धारित नहीं होता है अथवा उद्देश्य निर्धारित होते हैं भी तो वे इतने सीमित तथा संकीर्ण होते हैं कि परीक्षणों के परिणामें का उचित उपयोग नहीं हो पता। यह धारणा भी हानिकारक सिद्ध होती है कि परीक्षणों का निर्माण करने वाले अध्यापकों के लिए किसी विशिष्ट प्रशिक्षण की आवश्यकता नहीं है । इन गलत धारणाओं के कभी कभी भयंकर परिणाम निकलते हैं । विद्यालयों में प्रयुक्त होने वाले परीक्षणों के निर्माण एवं प्रशासन में काफी सावधानी से काम लेना चाहिए एवं परिणामों के उचित निर्वाचन की व्यवस्था होनी चाहिए।

2. विभिन्न वर्गों के अध्ययन में बुद्धि परीक्षणों का उपयोग

मनोवैज्ञानिक अनुसंधान में विभिन्न आधारों पर वर्गीकृत सामूहिक इकाइयों के बौद्धिक एवं व्यक्तित्व एवं व्यक्तित्व विभेदों का विश्लेषण करना अत्यधिक उपयोगी होता है, परन्तु ऐसे विश्लेषणों में शोधकर्ता अपनी इच्छानुसार किसी सामूहिक इकाई के किसी विशिष्ट गुण में परिवर्तन नहीं कर सकता। जैसे यह ज्ञात करने के लिए कि विभिनन धर्मावलम्बियों के धार्मिक विश्वासों का अन्य क्षेत्रों मे उनकी अभिवृत्तियों के साथ क्या संबंधहै, यह नहीं किया जा सकता है कि बच्चों को ऐसे धार्मिक परिवेश में रखा जाय और कुछ अन्य प्रकार के धार्मिक परिवेश में। इसी तरह रोगों का मानसिक क्षमता पर क्या प्रभाव पड़ता है, यह जानने के लिए कुछ व्यक्तियों को जान बूझकर इस रोग से पीड़ित नहीं किया जा सकता और न लिंग भेद का ही किसी विशिष्ट गुण से संबंधज्ञात करने के लिए किन्हीं व्यक्तियों का लिंग परिवर्तन ही किया जा सकता है । इस प्रकार के अध्ययन करने के लिए तो मनोवैज्ञानिक को पहले से ही उपलब्ध उचित व्यक्तियों को प्रयोज्य स्वरूप लेना होगा। यदि ऐसे अध्ययन करना संभव हो और उनके परिणामों का ठीक से निर्वाचन किया जा सके तो विभिन्न समूहों के व्यवहार पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है । मन्द एवं उत्कृष्ट बुद्धि वाले बालकों, लिंग भेद एवं राष्ट्रीय तथा जातीय विभेदों पर प्रकाश निम्नलिखित बिन्दुओं के अन्तर्गत डाला जा रहा है -

1- **लिंग भेदों का अध्ययन -** इनका अध्ययन प्रमुख रूप से दो प्रकारसे किया जाता है प्रथम यह ज्ञात करना कि पुरूष तथा स्त्रियों में किस सीमा तक तथा किस प्रकार की मनोवैज्ञानिक विभिन्नता है तथा दूसरा अध्ययन यह कि लैंगिक विभिन्नता के कारण शारीरिक, मानसिक तथा व्यक्तित्व गुणों में किसी सीमा तक समानता या अन्तर पाया जाता है । अनेक पुरूषों में स्त्रियोंचित गुण पाये जाते हैं एवं अनेक स्त्रियों में पुरूषोचित। अनेक व्यक्तित्व परीक्षणों से स्त्रीत्व एवं पुरूषत्व का मापन होता है । टरमैन, माइल्स तथा गुडएनफ ने इस प्रकार के परीक्षण बनाये हैं। इनके निष्कर्ष बताते हैं कि तलांक प्राप्त स्त्रियों में पुरूषोचित गुण अधिक पाये जाते हैं ।

2- मन्द एवं उत्कृष्ट बुद्धि के बालकों में विभेद - बौद्धिक एवं मानसिक परीक्षणों से यह स्पष्ट हुआ है कि इन दोनों प्रकार के बालकों की तुलना स्वस्थ एवं शारीरिक शक्ति में श्रेष्ठ होते हैं , न कि उसकी अपेक्षा ठिकने एवं अवस्था तथा क्षीणकारय, जैसा कि प्राय: विश्वास किया जाता है । यद्यपि इसके व्यक्तिगत सामाजिक गुणों में पर्याप्त विभेद मिलता है, पर उत्कृष्ट बुद्धि बालक अपनी आयु के अन्य बालकों की अपेक्षा अधिक लोकप्रिय बर्हिमुखी एवं विनम्र होते हैं । कॉक्स के 1925 के अध्ययन में एवं स्टेनफोर्ड विश्वविद्यालय में टरमैन के 4 ग्रंथों में छपे विवरण (1921-45) में इस संबंध में विस्तृत निष्कर्ष प्रकाशित हुए है । मन्द एवं उत्कृष्ट बुद्धि वाले बालकों को तुलनात्मक अध्ययन करते समय दो प्रमुख समस्याएं परीलक्षित होती है, जिसे निम्न बिन्दुओं से स्पष्ट किया जा सकता है –

- **प्रतिभा की पहिचान एवं इसकी व्याख्या -** विभिन्न बौद्धिक परीक्षणों से स्पष्ट हुआ है कि परीक्षण में सबसे उच्च अंक पाना प्रतिभाशाली से संबंधित है । टरमैन ने जिस प्रतिभाशाली बालकों का अध्ययन किया, उन्हें तीन श्रेणियों मं बांटा गया। ज्ञात हुआ है कि प्रथम श्रेणी के उत्कृष्ट बालकों की बुद्धि लब्धि निस्सन्देह ही अधिक थी। आयु के बढ़ने के साथ साथ उत्कृष्ट बुद्धि बालकों के समूह का अन्य बालकों की बुद्धि से अन्तर बढ़ता ही गया। अत्यधिक योग्य व्यक्तियों का मानसिक विकास भी अधिक शिक्षित होते हैं इनके भाई बहिनों की बुद्धि लब्धि भी अधिक होती है । प्रतिभाशाली बालकों में मन्द बुद्धि बालकों की अपेक्षा जीवन के प्रति अधिक उत्साह रहता है । ये अधिक पुस्तकें पढ़ते है । इनका ज्ञान भण्डार अधिक होता है । नेतृत्व करने की सामथ्र्य एवं समाजोन्मुख प्रवृत्ति के कारण ये लोग अधिक लोकप्रिय होते हैं । पर केवल बौद्धिक क्षमता के आधार पर प्रतिभा की व्याख्या नहीं की जा सकती है और बुद्धि परीक्षण से ही प्रतिभा का मापन नहीं हो सकता।
- **बाल्यकाल की श्रेष्ठता एवं प्रौढ़ावस्था के उपार्जन में संबंध -** इस संबंधमें कॉक्स ने श्रेष्ठ बालकों की बाल्यावस्था के व्यवहार के बारे में जो विश्लेषण किया है उसका निष्कर्ष काफी महत्वपूर्ण है । क्रॉक्स के 1450 से लेकर 1849 तक चार शताब्दियों के बीच उत्पन्न हुए 300 विख्यात महापुरूषों का अध्ययन किया, जिनके बारे में फ्रेंच, जर्मन तथा अंग्रेजी भाषा के जीवन साहित्स उपलब्ध था और जो अपनी स्वयं की क्षमता के कारण महान बने थे न कि वंश परम्परा के कारणं इनमे 14 विभिन्न राष्ट्रीयताओं के व्यक्ति थे। इस अध्ययन से पता चलता है कि बाल्यावस्था की रूचियों, सामान्य व्यवहार आदि का बाद की अवस्था के उपार्जन से काफी संबंध है । टरमैन के अध्ययन से भी यही निष्कर्ष निकला है । टरमैन के प्रयोज्य अधिकांश अमरीकन थे और उनमें से 70 प्रतिशत किसी न किसी अच्छे व्यवसाय में लगे हुए थे। इनकी आयु सामान्य व्यक्तियों की आयु से अधिक थी। इनमें से अधिकांश की कला, साहित्य, विज्ञान या अन्य किसी न किसी क्षेत्र में प्रमुख सफलता माना जाता है ।

उपचार करने के लिए बुद्धि परीक्षणों का उपयोग

उपचार जगत में कब और कहां किस परीक्षण का प्रयोग करना उपयुक्त है । यह उपचार करने वाले मनोविशेषज्ञ के सिद्धान्त एवं व्यवहार पर निर्धारित करता है । अस्पताल सिद्धान्त के समर्थक रोगी के संपूर्ण व्यवहार का अध्ययन करना चाहेंगे, न कि यह कि वे व्यवहार के अलग अलग घटकों का परीक्षणों से मापन करें। इस हेतु वे प्रक्षेपण विधि को प्रयुक्त करेंगे। मापन योग्य गुणों का अलग अलग समापन संभव है, इस सिद्धान्त के समर्थक मुरेनों की समाज निर्देशांक विधि का प्रयोग करेंगे। विश्लेषणात्मक दृष्टिकोण रखने वाले स्वभाव, योग्यताओं एवं अभिवृत्तियों की रचना को मापन करने के लिए साधनों का निर्माण करेंगे। परीक्षणों का चयन रोगियो एवं परीक्षणो का प्रयोग करने वाली संस्था पर भी निर्भर करेगा। मानसिक चिकित्सालयों व मनोविश्लेषणात्मक निदान करने वाले प्रक्षेपण एवं व्यक्तित्व परीक्षणों एवं कुछ सीमा तक सामान्य योग्यता एवं व्यवसायिक अभियोग्यता के परीक्षणों का प्रयोग करेंगे।

बड़ी उम्र के बालकों एवं प्रौढ़ों हेतु प्रमुख तीन उद्देश्यों को पूरा करने के लिए परीक्षणों का उपयोग किया जाता है, जो निम्न है -

1. निदान एवं वर्गीकरण, 2. पूर्व सूचना, एवं 3. उपचार की प्रगति क्या है, यह ज्ञात करना। शारीरिक रूप से अपंग या अपाहिज बालकों में मां बाप और क्षमताओं तथा उसके प्रति माता पिता की अभिवृत्तियों का पता चल सके।

वर्तमान दौर में वास्तविक रूप से उपचार जगत में मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का प्रयोग बड़े पैमाने पर किया जा रहा है। परेशान अभिभावक जब यह अनुभव करते हैं कि उनका बालक सामान्य गति से प्रगति नहीं कर रहा है तो वे मनोवैज्ञानिक की शरण लेते है। अमरीकन एवं ब्रिटेन में तथा भारत के बड़े शहरों में सम्पन्न घराने के परिवारों में यह प्रवृति बढ़ रही है। अनेक आधुनिक चिकित्सालयों में अब मनोवैज्ञानिक विभाग खोल दिये गये हैं। अनेक प्रशिक्षित मनोवैज्ञानिक इन चिकित्सालयों के स्टॉफ पर है। इन मनोवैज्ञानिक विभागों का काम केवल परीक्षणों का काम करना ही नहीं है, इनमें केवल बौद्धिक योग्यता एवं अन्य मानसिक क्षमताओं का पता ही नहीं लगाया जाता, वरन यह ज्ञात करने का प्रयास किया जाता है कि रोग प्रारंभ होने से पहले रोगी की मानसिक क्षमता क्या रही होगी। रोगग्रस्त हो जाने से उसकी मानसिक क्षमता में क्या ह्रास हुआ, इसक भी पता लगाया जाता है। रोग प्रारंभ हो जाने पहले की मानसिक क्षमता ज्ञात करने के लिए अन्य स्रोतों से भी तथ्य एकत्र करना आवश्यक होता है। अत: मनोवैज्ञानिक चिकित्सक सदैव निदान में सहायक तथ्यों की खोज में रहता है। उसका मुख्य कार्य प्रयोगात्मक एवं अनुसंधानात्मक है। जीर्ण रोगों से ग्रसित रोगियों की मनोवृत्ति एवं मन: शक्ति के बारे में सूचना प्राप्त करने के लिए बाहरी संसार के प्रति उनकी अभिवृत्तियों, चिन्ताओं, क्रोध तथा उनके अनेक संवेगात्मक पक्षों का ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक हो जाता है। व्यक्तित्व प्रश्नावलियों, साक्षात्कार विधि, संदर्शन रूचि एवं व्यावसायिक अभियोग्यता परीक्षणों का इस दृष्टि से उपयोग है।

औद्योगिक क्षेत्र में बुद्धि परीक्षणों का उपयोग

औद्योगिक जगत में विभिन्न प्रकार उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए परीक्षणों को उपयोग में लाया जाता है। इस संदर्भ में हम नीचे के शीर्षकों पर प्रकाश डालेंगे –

- **औद्योगिक चयन में -** परीक्षणों का उपयोग सबसे पहले कर्मचारियों के चुनाव में किया गया था। उसके प्रमुख कार्यों को करने के लिए उत्तम प्रत्याशियों का चुना जाना संभव हो सकता, विशेषकर उस समय जबकि उपलब्ध सेवाओं या कार्यों की अपेक्षा कर्मचारियों की संख्या कहीं अधिक थी। श्रमिक की कमी के समय चयन की प्रक्रिया पर अधिक बल नहीं दिया जा सकता, क्योंकि जिस किसी व्यक्ति को भी काम पर रखना आवश्यक हो जाता है। ऐसे अवसर पर परीक्षणों का प्रयोग यह जानने के लिए किया जाता है कि नियुक्त व्यक्तियों में कौन व्यक्ति किस कार्य के योग्य है।
- **ठीक कार्य न मिलने से असन्तुष्ट कर्मचारियों का पता लगाना -** संस्था का मैनेजर परीक्षणो के द्वारा यह ज्ञात कर सकता है कि कौन कर्मचारी किस कार्य को अधिक संतोषजनक रूप से कर सकेगा। इससे कार्य के प्रति अनभियोजित एवं शरारत करने वाले या काम बिगाड़ने वाले कर्मचारियों का पता लगाने में सुविधा रहेगी। उन कर्मचारियों का निदान करना सरल हो जायेगा, जो अपनी व्यक्तिगत कठिनाइयों में सार्वजनिक समस्याएं उत्पन्न करते हैं। बाद में मनोविश्लेषणात्मक तथा अन्य विधियों से इन समस्याओं का समाधान भी बड़ी सरलता से किया जा सकता है।

- **परीक्षण के लिये उपयुक्त कर्मचारियों का पता लगाना** - विशेषकर श्रमिकों की कमी के समय यह आवश्यक हो जाता है कि अनुभवी एवं निपुण कर्मचारियों को पर्याप्त संख्या में छांटा एवं उन्हें प्रशिक्षण देकर स्वयं औद्योगिक संस्थान में उनकी पदोन्नति की जाए। परीक्षणों मे ऐसे कर्मचारियों का पता चल सकता है।

अनुसंधानकार्य में बुद्धि परीक्षणों का उपयोग

मानव व्यक्तित्व का विश्लेषण एवं उसके संदर्भ में पूर्व कथन ही लगभग समस्त सामाजिक विशेषज्ञों का प्रमुख उद्देश्य होता है। समस्त विज्ञान सिद्धान्तों एवं नियमों को बनाते हैं। ताकि व्यक्ति के संबंध में प्राप्त निष्कर्षों को एक निश्चित विधि से संक्षिप्त रूप से व्यक्त किया जा सके। मानसिक मापन भी यही कार्य करता है। मानसिक परीक्षण की सहायता से अब जैविक विज्ञान समाज विज्ञानों के निकट आ गये हैं। उदाहरणार्थ, पशु के व्यवहार का अध्ययन जीवशास्त्र एवं मनोविज्ञान दोनों के अन्तर्गत आता है। व्यवहार के अध्ययन के मानसिक परीक्षण जैसे बुद्धि, व्यक्तित्व एवं अभिवृत्ति परीक्षणों का महत्वपूर्ण योगदान है। पशु के सीखने की प्रक्रिया के अध्ययन ने निस्संदेह मनुष्य के सीखने की प्रक्रिया पर प्रकाश डाला है, क्योंकि पशु एवं मनुष्य के सीखने की प्रक्रिया एवं इनकी बुद्धि में काफी समानता है। अब भी पशु व मनुष्य के सीखने की प्रक्रिया के अध्ययन में पथ जाल का प्रयोग होता है। इसी प्रकार सामान्य तथा असामान्य प्रयोज्यों के व्यवहार के अन्तर का मापन करने के लिए परीक्षण अत्यन्त उपयोगी है। चूंकि सभी परिस्थितियों में मनुष्य को प्रयोज्य बनाकर परीक्षण एवं प्रयोग नहीं किये जा सकते, अत: पशुओं परीक्षण एवं प्रयोग करना एवं तत्पश्चात प्राप्त निष्कर्षों को मनुष्यों पर आरोपित करना आवश्यक हो जाता है। मानसिक परीक्षण केवल व्यवहार का ही मान नहीं करते, उसके कारण पर भी प्रकाश डालते है, उदाहरणार्थ यदि किन्हीं दो समूहों की भाषा-रचना की जटिलता में पर्याप्त अन्तर है। तो उसका कारण भौतिक वातावरण हो सकता है। या मौलिक मानसिक क्षमता। मानसिक मापन की सहायता से यह स्पष्ट हो जाता है कि कौन सा कारण सही है या गलत।

बालकों की आपराधिक प्रवृत्ति को रोकने में बुद्धि परीक्षण का उपयोग

विभिन्न शोध अध्ययों से स्पष्ट हुआ है कि जो बाल अपराधी होते हैं वे भी बुद्धि परीक्षण पर अंक प्राप्त करते हैं। ग्ल्यूक तथा ग्लयूक ने 1934 यसे 1979 बाल अपराधियों तथा मैसाचुसैट्स राज्य के स्कूलों से पढ़ने वाले 3000 सामान्य बालकों पर 1916 का स्टनेफोर्ड बुद्धि परीक्षण प्रयुक्त किया। उन्हें पता चला कि 30 प्रतिशत बाल अपराधियों और केवल 7 प्रतिशत सामान्य बालकों की बुद्धि लब्धि 80 से कम थी। सन् 1947 के मैरिल परीक्षणों से भी इन निष्कर्षों से भी इन निष्कर्षों की पुष्टि होती है। उसने कैलीफोनिया राज्य के स्कूल जाने वाले बालकों पर नवीन स्टेनफोर्ड बिने परीक्षण प्रयुक्त किया। ज्ञात हुआ कि बाल अपराधियों में 25 प्रतिशत से भी अधिक बालकों की बुद्धि लब्धि 80 से कम थी, जबकि सामान्य बालकों में केवल 8.2 प्रतिशत की। बट के अनुसार 80 प्रतिशत से अधिक अपराधी बालकों की बुद्धि लब्धि सामान्य बालकों की बुद्धि लब्धि से कम होती है। अन्य कई आधुनिक बालकों की बुद्धि लब्धि सामान्य बालकों की बुद्धि लब्धि से कम होती है। अन्य कई आधुनिक अनुसंधानों से इसी प्रकार कुछ प्रमुख तथ्य सामने उभर कर आये है। इससे स्पष्ट होता है कि अल्प बुद्धि एवं अपराध वृत्ति से संबंधहै। अत: परीक्षणों से उनका पता लगाया जा सकता है। अधिकांश बाल अपराध बाल अपराध वृति से संबंधहै। अत: परीक्षणों से उनका पता लगाया जा सकता है। अधिकांश बाल अपराधी 12 एवं 16 वर्ष की आयु के बीच होते हैं। मैरिल ने जिन

बालकों का अध्ययन किया, उनमें 90 प्रतिशत इसी प्रकार के क्षेत्र में आते हैं एवं केवल 70 प्रतिशत बालक 14 तथा 17 वर्ष की आयु के बीच। मैरिल ने कुछ अन्य मनोवैज्ञानिकों के सहयोग से अपराधी बालकों पर परीक्षण किये और उन की पारिवारिक पृष्ठभूमि विद्यालय में उनका पूर्ववत् उनकी रूचियों, साथियों आदि के बारे में तथ्य एकत्र किये। अधिक बालकों की पृष्ठभूमिक में उन्हें परिवार, प्रतिकूल पारिवारिक वातावरण, माता पिता का कटु व्यवहार हानिकारक शिक्षा तथा अन्य कारण मिले। अब तो मनोवैज्ञानिकों के पास अपराध प्रवृति के कारण समाधान के विभिन्न माध्यम प्राप्त है।

17.8 बुद्धि परीक्षणों के प्रयोग से होने वाली हानियां

विश्व के अधिकांश देशों में प्रमुख रूप से अमेरिका में छात्रों का चुनाव एवं कक्षा की उन्नति बुद्धि परीक्षणो के नतीजों पर निर्धारित करती है। इसी के अनुसार छात्रों का विद्यालय जीवन एवं प्रगति निर्भर है। कम बुद्धि लब्धि वाले बालकों को मन्द कहकर उसकी उपेक्षा की जाती है। कुछ अन्य को औसत मानकर शिक्षा दी जाती है एवं बुहत ही कम भाग्यशाली व्यक्तियों को, जो तथाकथित बुद्धि परीक्षणों में उच्च अंक प्राप्त करते हैं। 'श्रेष्ठ समझा जाता है। परीक्षण उद्योग अपने विकास पर है। अपने राज्यों की सरकारें परीक्षणो के विकास पर व्यय कर रही है। व्यक्तियों के बारे में महत्वपूर्ण निर्णय करते समय परीक्षणों की सहायता ली जाती है। इन परीक्षणों की विभिन्न परिसीमाएं है। जिसमें से कुछ प्रमुख परिसीमाओं को निम्नलिखित पंक्तियों से स्पष्ट किया जा सकता है –

1- बुद्धि परीक्षण चाहे जितनी सावधानी से किया जाये, परन्तु यह जन्म जात दक्षता एवं योग्यता स्तर का मापन करने सफलता नहीं पाते हैं। वे संस्कृति से प्रभावित होते हैं, संस्कृति मुक्त नहीं होते। धनी एवं सुशिक्षित परिवारों के बालकों को इनमें लाभ रहता है, इन परीक्षणों में से अधिकांश शाब्दिक योजना पर आश्रित रहते हैं पर दावा यह किया जाता है कि परीक्षण वातावरण के प्रभाव से मुक्त है। परिणामस्वरूप अनेक बालक, जिनके वातावरण में पुस्तकों, वाद विवाद सांस्कृतिक वस्तुओं का अभाव रहता है, अच्छे अंक प्राप्त नहीं करते। इसके अतिरिक्त बुद्धि परीक्षण परम्परावादियों के अधिक अनुकूल पड़ते है, न कि रचनात्मक मानसिक वृत्ति वाले व्यक्तियों के।

2- बुद्धि परीक्षणों, विशेषकर सामूहिक परीक्षणों में, कक्षा के अनेक व्यक्तियों पर एक साथ परीक्षण प्रयुक्त होते हैं। ये अत्यन्त संक्षिप्त होते हैं, कभी कभी आधा घण्टा से भी कम एवं इनमें प्रश्नों या पदों की एक सीमित संख्या दी हुई होती है। बुद्धि जैसी जटिल वस्तु का मापन करने की निस्संदेह यह एक अत्यन्त अपरिष्कृत विधि है।

3- परीक्षणों के आधार पर निम्न, औसत, उच्च आदि समूहों में व्यक्तियों का वर्गीकरण कर दिया जाता है। उच्च श्रेणी के बालक पर अध्यापक विशेष ध्यान देते हैं। उनके जीवन एवं प्रगति में उनकी अधिक रूचि होती है, पर औसत में वर्गीकरण किये जाने पर बालक में यह भावना बलवती हो सकती है कि वह होनहार नहीं है और फिर यह तदनुसार कार्य करता है निम्न में श्रेणीकृत किये जाने पर तो बालक अपने गुणों का विकास के अवसरों से बिल्कुल ही वंचित रह जाता है।

4- बुद्धि या अन्य फलांक उतने यथार्थ नहीं है, जितना की समझा जाता है अनेक बारे देखा गया है कि किसी निश्चित बुद्धि फलांक जैसे 85 का वास्तविक अर्थ 85 नहीं है, वरन् इसका अर्थ 60 या

100 के बीच कुछ भी या इससे भी कम या अधिक हो सकता है। इन सबके बावजूद भी शैक्षिक तथा व्यावसायिक संदर्शन एवं कर्मचारियों के चबन में इन फलांकों का उपयोग होता है।

5- बुद्धि परीक्षण विश्वसनीय नहीं है। वे योग्यता या क्षमता का बिल्कुल सही मापन नहीं करते। एक ही परीक्षण विभिन्न अवसों पर विभिन्न बुद्धि फलांक देता है। यह अन्तर 40 एवं अधिक बिन्दु तक देखा गया है। इसी प्रकार अलग अलग परीक्षणें से अलग अलग बुद्धि फलांक आते है।

17.9 सारांश

शिक्षण-अधिगम को छात्रों की व्यक्तिगत क्षमताओं को ध्यान में रखकर अधिक प्रभावशाली बनाने के लिए विभिन्न प्रकार की मानसिक परीक्षणों का प्रयोग किया जाता है। इनमें बुद्धि परीक्षणों का प्रमुख स्थान है।

इन परीक्षणों को मुख्यत: दो प्रमुख वर्गो में विभाजित किया जा सकता है : व्यक्तिगत निष्पत्ति परीक्षण तथा सामूहिक (शाब्दिक, अशाब्दिक एवं मिश्रित परीक्षण) | जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में इन परीक्षणों की सहायता से बौद्धिक स्तर को मापा जा सकता है | परन्तु लाभ के साथ साथ इनकी हनिया भी होती है |

17.10 शब्दावली (Glossary)

- **बुद्धि परीक्षण** -बुद्धि परीक्षण किसी प्रकार का कार्य या समस्या होती है, जिसकी सहायता से एक व्यक्ति के मानसिक विकास के स्तर का अनुमान लगाया जा सकता है, या मापन किया जा सकता है।
- **मानसिक आयु का अर्थ** - मानसिक आयु बालक या व्यक्ति को सामान्य योग्यता बताती है।
- **बुद्धि लब्धि** - बुद्धि लब्धि बालक या व्यक्ति की सामान्य योग्यता के विकास की गति बताती है।
- **सामूहिक परीक्षण** - जो एक समय में पूरे समूह को दिये जा सकते हैं।
- **व्यक्तिगत परीक्षण** - जिन्हें एक समय में केवल एक व्यक्ति को दिया जा सकता है।
- **निष्पत्ति परीक्षण** - जिसमें उत्तर लिखने के स्थान पर मौखिक आदान-प्रदान का या कुछ करने को कहा जाता है।
- **शाब्दिक परीक्षण** - इसमें भाषा के माध्यम से प्रश्न उत्तर होते हैं।
- **अशाब्दिक परीक्षण** - इसमें भाषा की जगह आकृतियों का प्रयोग होता है।
- **टेस्ट अनुशीलन** - इसमें मूल टेस्ट (जो विदेशी भाषा में होता है) को जिस स्थिति में उसको प्रयोग करना है उसके अनुकूल बनाया जाता है। प्रश्नों को नये परिपेक्ष में रखा जाता है तथा मानक भी उस स्थिति के अनुसार बनाये जाते हैं।
  - बद्धि लब्ध (I.Q.)= $\frac{\text{मानसिक आयु}}{\text{वास्तविक आयु}} \times 100$

विचलन बुद्धिलब्ध (Deviation I.Q.)

$$=100+\frac{X-M}{U}\times 15$$

'G'- समान बुद्धि (General Intelligence)

- **Matrices Tests-** इसके ऊपर एक डिजाइन दी हुई होती है जिसका एक टुकड़ा कटा होता है। वह नीचे की डिजाइनों में से होता है। सही टुकड़ा ढूंढना ही उत्तर होगा।
- **Career Counselling-** किसी जीविका वृत्त के लिये चुनाव में परामर्श देना।

17.11 बोध प्रश्न

1. बुद्धि परीक्षण का अर्थ बताइये। बुद्धि के वैयक्तिक और सामूहिक परीक्षणों का तुलनात्मक विवेचन कीजिए।
2. अग्रलिखित पर टिप्पणियां लिखिये – 1. भाषात्मक बुद्धि परीक्षण 2. क्रियात्मक बुद्धि परीक्षण 3 मानसिक आयु 4. बुद्धि लब्धि 5. बुद्धि परीक्षओं की उपयोगिता
3. बुद्धि क्या है? बुद्धि लब्धि किसे कहते हैं ? बुद्धि परीक्षण का क्या अभिप्राय है? कक्षा में छात्रों के हित में बुद्धि परीक्षण का किस प्रकार उपयोग किया जा सकता है।
4. व्यक्तिगत बुद्धि परीक्षणों की अच्छाइयां एवं कमियाँ बताइये।
5. वेक्सलर तथा स्टेनफोर्ड बिने में से आप किसको अधिक प्रभावी समझते हैं।
6. I.Q.तथा deviation I.Q. को परिभाषित करते हुए उनमें सम्बन्ध तथा भिन्नता बताइये।
7. शिक्षक के रूप में आपके छात्रों के बुद्धिलब्ध उनके बक्तिगत शिक्षण में किस प्रकार सहायक हो सकते हैं?
7. जीविका वृत्त निर्देशन में बुद्धि स्तर का ज्ञान किस प्रकार सहायक हो सकता है? उदाहरण देकर स्पष्ट करें।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1 बुद्धि परीक्षणों का जन्म कहा जाता है -

(अ) थार्नडाइक को (ब) साइमन को
(स) बिने को (द) स्पीयरमैन को

2. बुद्धि के क्रमिक विकास के सिद्धान्त के जनक हैं -

(अ) थॉमसन (ब) थर्सटन
(स) थार्नडाइक (द) बर्ट एवं वर्नन

3. एलफ्रेड बिने किस देश के निवासी थे ?

(अ) इंग्लैण्ड (ब) अमेरिका
(स) फ्रांस (द) रूस

4. मानसिक आयु का प्रत्यय दिया -

(अ) बिने साइमन से (ब) स्टर्न नेसाइमन को
(स)सिरिल बर्ट ने (द) टरमन ने

5. 25 से कम बुद्धि लब्धि वाले बालक कहलाते हैं -

(अ) निर्बल बुद्धि (ब) जड़
(स) मुर्ख (द) मूढ़

6. बिने साइमन स्केल 1908 हैं -

(अ) व्यक्तिगत बुद्धि परीक्षण (ब) सामूहिक बुद्धि परीक्षण
(स) निष्पादन बुद्धि परीक्षण (द) यह सभी
उत्तरमाला (1 स, 2 द, 3 स, 4 अ, 5 ब, 6 अ)

17. 12 संदर्भग्रंथ

- Bigge, M.L.and Hunt, M.P. (1986): Psychological Foundation of Education (Sec.Ed.),Harper and Row, New York.
- Raizada, B. S. शिक्षा में अनुसंधान के आवश्यक तत्व ।
- श्रीवास्तव, अखिलेश., मनोवैज्ञानिक परिक्षण, मापन और मूल्यांकन (2013),अर्जुन पब्लिशिंग हाउस , दिल्ली |
- पाठक,पी.डी., शिक्षा मनोविज्ञान (2013), श्री विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा |
- शर्मा, आर.ए. (2000), अधिगम एव विकास के मनोवैज्ञानिक आधार, आर0 लाल बुक डिपो, मेरठ।
- पाण्डेय, राम शकल (1998), शिक्षा मनोविज्ञान, आर0 लाल बुक डिपो, मेरठ।
- भटनागर, ए0बी0, भटनागर, एम0 एवं भटनागर, ए0, डेवलेपमेन्ट ऑफ लर्नर एवं टीचिंग लर्निग प्रोसिस, आर0 लाल बुक डिपो, मेरठ।
- सिंह, रामपाल, सिंह, एसण्डी0 एवं शर्मा, देवदत्त, व्यवहार मनोविज्ञान, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा।
- Chauhan, S.S. (2001), Advance Educational Psychology, Vikas Publishing House, Pvt. Ltd., New Delhi.
- मंगल, ए.के.एवं मंगल, शुभ्रा (2005), विद्यार्थी विकास एवं शिक्षण अधिगम प्रक्रिया, लॉयल बुक डिपो, मेरठ।
- Woolfolk, Anita, (2006), Educational Psychology, Ninth Edition, Pearson Education, Delhi.
- पाण्डेय, कल्पलता एवं श्रीवास्तव, एस.एस. (2007), शिक्षा मनोविज्ञान भारतीय एवं पाश्चात्य दृष्टि, टाटा मैकग्रॉ हिल्स पब्लिकेशन, नई दिल्ली।

इकाई – 18

व्यक्तित्व (Personality)

प्रकृति, प्रकार, निर्धारक, शीलगुण और व्यक्तित्व का मापन

Nature, Kind, Determinants, Traits & Measurement of Personality

इकाई की रुपरेखा

18.0 प्रस्तावना

18.1 उद्देश्य

18.2 व्यक्तित्व के प्रकार

18. 3 मनोवैज्ञानिक गुणों के आधार पर (on the basis of psychological characteristics)

18.4 व्यक्तित्व के शीलगुण सिद्धान्त

अ) आलपोर्ट का शीलगुण सिद्धान्त

ब) कैटल का शीलगुण सिद्धान्त

18.5 व्यक्तित्व के निर्धारक (प्रभावित करने वाले कारक)

18.5.1 व्यक्तित्व विकास के आनुवंशिक निर्धारक (Hereditary Determinants of personality) –

18. 5.2 व्यक्तित्व के सामाजिक निर्धारक (Social Determinants of Personality)

18.5.3 व्यक्तित्व पर संस्कृति का प्रभाव (Effects of Culture on Personality)-

18.6 व्यक्तित्व का मापन

18.7 सारांश

18.8 शब्दावली

18.9 स्वमूल्यांकन प्रश्न

18.10 संदर्भ ग्रंथ सूची

18.0 प्रस्तावना

समाज में 'व्यक्तित्व' एक अति प्रचलित शब्द है। यह ऐसा शब्द है जिसके स्वरूप के बारे में अनेकानेक दृष्टिकोण उपलब्ध है। विद्वानों ने उसे अपनी-अपनी दृष्टि से परिभाषित भी किया है। इस सम्प्रत्यय का अर्थ काफी व्यापक है। परन्तु इसके रूप के बारे में विद्वानों का विचार प्राय: संकीर्ण रहा है। इसलिए व्यक्तित्व बड़ा आकर्षक या खराब है। इससे वास्तव में व्यक्तित्व का सही चित्रण नहीं हो पाता है क्योंकि एक आकर्षक व्यक्ति का व्यक्तित्व खराब और एक अनाकर्षक व्यक्ति का व्यक्तित्व अच्छा भी हो सकता है। इसमें बाह्य एवं आन्तरिक दोनों ही प्रकार की विशेषताएँ पाई जाती है। इनमें समुचित समन्वय को व्यक्तित्व कहा जा सकता है। अत: व्यक्तित्व की विभिन्न

अवधारणाओं, व्यक्तित्व विकास की अवस्थाओं और व्यक्तित्व विकास को प्रभावित करने वाले कारकों का अध्ययन करने की महत्ती आवश्यकता है।

18.2 व्यक्तित्व के प्रकार

शरीर-द्रव्यों के आधार पर व्यक्तित्व के प्रकार

सबसे पहला प्रकार सिद्धान्त (Type theory) हिपोक्रेट्स (Hippocrates) ने 400 बी.सी. में प्रतिपादित किया था। इन्होंने शरीर-द्रव्यों के आधार पर व्यक्तित्व के चार प्रकार बताएं है। इनके अनुसार हमारे शरीर में चार मुख्य द्रव (humors) पाये जाते हैं - पीला पित्त (yellow bile), काला पित्त (black bile), रक्त (blood) तथा कफ या श्लेष्मा (phlegm)। प्रत्येक व्यक्ति में इन चारों द्रवों में कोई एक द्रव अधिक प्रधान होता है। और व्यक्ति का स्वभाव या चित्तप्रकृति (temperament) इसी की प्रधानता से निर्धारित होता है। जिस व्यक्ति में पीले पित्त की प्रधानता होती है, उस व्यक्ति की चित्तप्रकृति या स्वभाव चिड़चिड़ा (irritable) होता है और व्यक्ति प्राय: बेचैन (restless) दिखाई पड़ता है। ऐसे व्यक्ति तुनकमिजाजी (hot-blooded) भी होते हैं। इस तरह के 'प्रकार' (Type) को हिपोक्रेटस ने 'गुस्सैल' (choleric) कहा है। जब व्यक्ति में काले पित्त की प्रधानता होती है, तो वह प्राय: उदास तथा मंदित (depressed) नजर आता है। इस तरह के प्रकार को 'विषादी' या 'निराशावादी' (melancholic) कहा गया है। जिस व्यक्ति में अन्य द्रवों की अपेक्षा रक्त (blood) की प्रधानता होती है, वह प्रसन्न (cheerful) तथा खुशमिजाज होता है। इस तरह के व्यक्तित्व के 'प्रकार' को 'उत्साही' या 'आशावादी' (sanguine) कहा गया है। जिस व्यक्ति में कम या श्लेष्मा जैस द्रव की प्रधानता होती है, वह शांत (calm) स्वभाव का होता है तथा उसमें निष्क्रियता (inactiveness) अधिक पायी जाती है। इसमें भावशून्यता के गुण भी पाये जाते हैं। इस तरह के व्यक्तित्व के 'प्रकार' को विरक्त कहा गया है।

यद्यपि हिपोक्रेट्स का यह प्रकार सिद्धान्त अपने समय का एक काफी महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त था, फिर भी आज के मनोवैज्ञानिकों द्वारा इसे पूर्णत: अस्वीकृत (reject) कर दिया गया है। इसका प्रधान कारण यह है कि व्यक्ति के शीलगुणों तथा उसकी चित्तप्रकृति का संबंध शारीरिक द्रवों (bodily fluids) से होने का कोई सीधा एवं वैज्ञानिक प्रमाण नहीं मिलता। इन मनोवैज्ञानिकों का यह भी कहना है कि हिपोक्रेट्स द्वारा बताये गये शारीरिक द्रव सचमुच व्यक्ति में होते हैं या नहीं इसका भी कोई प्रमाण (evidence) नहीं मिलता है।

1- **शारीरिक गुणों (Bodily Characterstics) के आधार पर व्यक्तित्व के प्रकार** - शारीरिक गुणों के आधार पर प्रतिपादित प्रकार सिद्धान्त को शरीरगठन सिद्धान्त (constitutional type) कहा गया है। शारीरिक गुणों के आधार पर दो वैज्ञानिकों अर्थात क्रेश्मर (Kretshmer) तथा शेल्डन (Sheldon) द्वारा किया गया व्यक्तित्व का वर्गीकरण काफी महत्त्वपूर्ण है। क्रेश्मर जो एक जर्मन मनोचिकित्सक थे, शारीरिक गुणों के आधार पर व्यक्तित्व के चार प्रकार बताए हैं। प्रत्येक प्रकार से संबंधित कुछ खास-खास शीलगुण भी हैं जिनसे संबंधित स्वभाव या चित्तप्रकृति का पता चलता है।

क्रेश्मर का वर्गीकरण

क्रेश्मर ने इस सिद्धान्त का प्रतिपादन दो तरह के मानसिक रोग यानि मनोविदालिता एवं उत्साह विषाद से ग्रसित व्यक्तियों के प्रेक्षण के आधार पर किया था। वे चार प्रकार निम्नांकित हैं-

(i) पिकनिक प्रकार (Pyknic type) - ऐसे व्यक्ति का कद छोटा होता है तथा शरीर भारी एवं गोलाकार होता है। ऐसे लोगों की गर्दन छोटी एवं मोटी होती है। इस तरह के व्यक्ति के स्वभाव की कुछ खास-खास विशेषता होती है जैसे -ऐसे व्यक्ति सामाजिक (social) होते हैं, खाने पीने तथा सोने में काफी मजा लेते है तथा खुशमिजाज होते हैं। इस तरह के स्वभाव या चित्तप्रकृति (temperament) को क्रेश्मर ने साइक्लाआड (cyeloid) की संज्ञा दी है। ऐसे व्यक्तियों में मानसिक रोग उत्पन्न होने पर उत्साह-विषाद (manic depression) के लक्षण विकसित होने की संभावना अधिक होती है।

(ii) एस्थेनिक प्रकार (Asthenic type) - इस तरह के व्यक्ति का कद लम्बा होता है, परन्तु वे दुबले-पतले शरीर के होते हैं। ऐसे व्यक्तियों के शरीर की मांसपेशियाँ विकसित नहीं होती है और शरीर का वजन उम्र के अनुसार होने वाले सामान्य वजन से कम होता है। ऐसे लोगों का स्वभाव कुछ चिड़चिड़ा होता है, सामाजिक उत्तरदायित्व से इनमें दूर रहने की प्रवृत्ति अधिक देखी जाती है, ऐसे व्यक्ति में दिवास्वप्न अधिक होता है तथा काल्पनिक दुनिया में भ्रमण करने की आदत इनमें अधिक तीव्र होती है। मानसिक रोग होने पर इनमें मनोविदालिता (schizophrenia) होने की संभावना तीव्र होती है। इस तरह की चित्तप्रकृति या स्वभाव को क्रेश्मर ने 'सिजोआड' (schizoid) की संज्ञा दी है।

(iii) एथलेटिक प्रकार (Athletic type) - इस प्रकार के व्यक्ति के शरीर की मांसपेशियां काफी विकसित एवं गठी होती हैं तथा शारीरिक कद न तो अधिक लम्बा और न तो अधिक छोटा ही होता है। इनका पूरा शरीर सुडोल एवं हर तरह से संतुलित दिखाई देता है। ऐसे व्यक्ति के स्वभाव में न तो अधिक चंचलापन और न अधिक मंदन (depression) ही होता है। ऐसे व्यक्ति बदलती हुई परिस्थिति के साथ आसानी से समायोजन (adjustment) कर लेते हैं। अत:, इन्हें सामाजिक प्रतिष्ठा (social prestige) काफी मिलती है।

(iv) डाइस्पलास्टिक प्रकार (Dysplastic type) - इस श्रेणी में उन व्यक्तियों को रखा जाता है जिनमें ऊपर के तीन प्रकारों में किसी एक प्रकार का स्पष्ट गुण नहीं मिलता है बल्कि इन तीनों प्रकारों का गुण मिला-जुला होता है।

परन्तु बाद में क्रेश्मर के इस वर्गीकरण को कुछ मनोवैज्ञानिकों ने जैसे शेल्डन ने अपने अध्ययन के आधार पर बहुत वैज्ञानिक नहीं पाया और इसमें विधि (methodology) से संबंधितकई दोष पाए। इन्होंने यह भी कहा कि क्रेश्मर का यह वर्गीकरण मानसिक रोग से ग्रसित व्यक्तियों की व्याख्या करने में भले ही समर्थ हो, परन्तु सामान्य व्यक्तियों की व्याख्या करने में असमर्थ है। फलस्वरूप उन्होंने एक दूसरा सिद्धान्त बनाया जिसे सोमैटोटाइप (Somatotype) कहा जाता है।

शेल्डन का वर्गीकरण

शेल्डन ने 1940 में शरीरगठन (physique) के ही आधार पर एक दूसरा सिद्धान्त बनाया जिसे सोमैटोटाइप सिद्धान्त कहा गया। इन्होंने शारीरिक गठन के आधार पर व्यक्तित्व का वर्गीकरण करने के लिए 4000 कालेज छात्रों की नग्न तस्वीर (nacked pictures) का विश्लेषण कर यह बताया है कि व्यक्तित्व को मूलत: तीन प्रकार में बाँटा जा सकता है और प्रत्येक प्रकार के कुछ खास शीलगुण (traits) होते हैं जिनसे उसका स्वभाव या चित्तप्रकृति का पता चलता है। प्रत्येक प्रकार तथा उससे

संबंधितशीलगुणों के बीच का सहसंबंध0.78 से अधिक था जो अपने आपमें इस बात का सबूत है कि प्रत्येक शारीरिक प्रकार तथा उससे संबंधितगुण आपस में काफी मजबूत हैं। शेल्डन द्वारा बताये वे तीन प्रकार तथा उससे संबंधितचित्तप्रकृति संबंधीगुण निम्नांकित हैं-

(i) **एण्ड्रोमार्फी (Endromorphy) -** इस प्रकार के व्यक्ति मोटे एवं नाटे होते हैं और इनका शरीर गोलाकार दिखता है। स्पष्ट है कि शेल्डन का यह 'प्रकार' क्रेश्मर के 'पिकनिक प्रकार' से मिलता-जुलता है। शेल्डन ने यह बताया कि इस तरह के शारीरिक गठनवाले व्यक्ति आरामपसंद, खुशमिजाज, सामाजिक तथा खाने-पीने की चीजों में अधिक अभिरूचि दिखाने वाले होते हैं। ऐसे स्वभाव को शेल्डन ने 'भिसरोटोनिया' (Viscerotonia) कहा है।

(ii) **मेसोमार्फी (Mesomorphy) -** इस प्रकार के व्यक्ति के शरीर की हड्डियाँ एवं मांसपेशियाँ काफी विकसित होती है तथा शारीरिक गठन काफी सुडौल होता है। ऐसे व्यक्ति के स्वभाव को सोमैटोटोनिया (Somatotonia) कहा गया है जिसमें जोखिम तथा बहादुरी का कार्य करने की तीव्र प्रवृत्ति, दृढ़कथन, आक्रामकता आदि के गुण पाये जाते हैं। ऐसे लोग अन्य लोगों को आदेश देने में अधिक आनन्द उठाते हैं। ऊपर के विवरण से स्पष्ट है कि मेसामार्फी बहुत कुछ क्रेश्मर का एथेलेटिक प्रकार से मिलता-जुलता है।

(iii) **एक्टोमार्फी (Ectomorphy)-** इस प्रकार के व्यक्ति का कद लम्बा होता है, परन्तु ऐसे व्यक्ति दुबले पतले होते हैं। इनके शरीर की मांसपेशियां अविकसित होती है और इनका पूरा गठन एकहरा होता है। इस प्रकार के व्यक्ति की चित्तप्रकृति को सेरीब्रोटिनिया कहा जाता है। ऐसे व्यक्ति को अकेला रहना तथा लोगों से कम मिलना-जुलना अधिक पसन्द आता है। ऐसे लोग संकोचशील और लज्जालू भी होते हैं। इनमें नींद संबंधीशिकायत भी पाई जाती है।

शेल्डन ने यद्यपि शारीरिक गठन को तीन प्रकारों में बांटा है, फिर भी इसे उन्होंने एक सतत् प्रक्रिया माना है। इसका मतलब यह हुआ कि इन तीनों तरह के शारीरिक गठन एवं उससे संबंधितशीलगुण आपस में बिल्कुल ही अलग-अलग नहीं होते। फलत: उन्होंने प्रत्येक शारीरिक गठन का मापन 1 से 7 तक की श्रेणियों में बाँटकर किया। दूसरे शब्दों में 4000 व्यक्तियों में प्रत्येक व्यक्ति के शारीरिक गठन का तीनों श्रेणियों में (1 से 7 तक में) श्रेणिकरण किया। यहां 1 श्रेणी से तात्पर्य 'सबसे कम- तथा 7 श्रेणी से तात्पर्य 'सबसे अधिक' से है। जैसे जो व्यक्ति नाटा कद का है, परन्तु काफी मोटा तथा गोलाकार गठन का है, उसे एण्डोमार्फी पर 7 तथा अन्य दोनों श्रेणियों जैसे मेसामार्फी तथा एक्टोमार्फी पर 1-1 का श्रेणी दिया जाएगा। अत: इस तरह के व्यक्ति को शेल्डन ने 7-1-1 कहा है। उसी तरह संभव है कि कोई व्यक्ति को एक्टोमार्फी में 7 दिया जाए। स्वभावत: तब ऐसे व्यक्ति को मेसोमार्फी तथा एण्डोमार्फी में 1-1 दिया जाएगा। अत: इस तरह के व्यक्ति को 1-1-7 कहा जाएगा। शेल्डन ने 7-1-1 श्रेणी प्राप्त करने वाले व्यक्ति को प्रबल एण्डोमार्फ, 1-7-1 वाले व्यक्ति को प्रबल एक्टोमार्फ कहा है। शेल्डन ने बताया कि सबसे संतुलित व्यक्तित्व वाले व्यक्ति उन्हें कहा जाता है जिन्हें तीनों प्रकारों में बीच की श्रेणी यानी 4 प्राप्त होती है। अत:, शेल्डन के अनुसार संतुलित व्यक्तित्व वह है जिसका श्रेणीकरण 4-4-4 होता है।

18.3 मनोवैज्ञानिक गुणों के आधार पर (On the basis of Psychological Characteristics)

कुछ मनोवैज्ञानिकों ने व्यक्तित्व का वर्गीकरण मनोवैज्ञानिक गुणों के आधार पर किया है। इनमें युंग (Jung), आईजेन्क (Iysenck) तथा गिलफोर्ड(Guillford) का नाम अधिक मशहूर है।

a) युंग का वर्गीकरण

युंग ने व्यक्तित्व के निम्नांकित दो प्रकार बताए हैं -

(i) बहिर्मुखी (Extrovert) - इस तरह के व्यक्ति की अभिरूचि समाज के कार्यों की ओर विशेष होता है। यह अन्य लोगों से मिलना-जुलना पसंद करता है तथा प्राय: खुशमिजाज होता है। ऐसे व्यक्ति आशावादी (optimistic) होते हैं तथा अपना संबंध यथार्थता (realism) से अधिक और आदर्शवाद से कम रखते हैं। ऐसे लोगों को खाने-पीने की ओर भी अभिरूचि अधिक होती है। ऐसे लोग समाज के लिए काफी उपयोगी होते हैं।

(ii) अन्तर्मुखी (Introvert) - ऐसे व्यक्ति में बहिर्मुखी के विपरीत गुण पाये जाते हैं। इस तरह के व्यक्ति बहुत लोगों से मिलना-जुलना पसंद नहीं करते और उनकी दोस्ती कुछ ही लोगों तक सीमित होती है। इनमें आत्मकेन्द्रिता का गुण अधिक पाया जाता है। इन व्यक्तियों को अकेलापन अधिक पसंद होता है तथा ऐसे लोग रूढ़िवादी (conservative) होते हैं तथा पुराने रीति-रिवाजों एवं नियमों का आदर करते हैं।

आधुनिक मनोवैज्ञानिकों द्वारा युंग के इन दो प्रकारों की आलोचना की गई है ओर इनलोगों ने कहा कि सभी लोग इन दोनों में किसी एक श्रेणी में आए ही, यह जरूरी नहीं है। कुछ लोगों में इन दोनों श्रेणियों के गुण पाए जाते हैं। फलस्वरूप, एक परिस्थिति में वे बहिर्मुखी के रूप में व्यवहार करते हैं। ऐसे व्यक्तियों को आधुनिक मनोवैज्ञानिको ने उभयमुखी (ambivert) की संज्ञा दी है।

b) आईजेन्क का वर्गीकरण

आईजेन्क (Eysenck, 1947) ने भी मनोवैज्ञानिक गुणों (psychological characteristics) के आधार पर व्यक्तित्व के तीन प्रकार बताए हैं। इन्होंने युंग के अन्तर्मुखी-बहिर्मुखी सिद्धान्त की सत्यता की जांच करने के लिए 10000 सामान्य (normal) एवं तंत्रिका रोगियों (neuroties) पर अध्ययन किया और विशेष सांख्यिकीय विश्लेषण (statistical analysis) कर यह बताया कि व्यक्तित्व के निम्नांकित तीन प्रकार होते हैं जो द्विध्रुवीय हैं -

(i) अन्तर्मुखता-बहिर्मुखता - आइजेन्क ने युंग की अन्तर्मुखता तथा बहिर्मुखता के सिद्धान्त को तो स्वीकार किया, परन्तु युंग के समान उन्होंने इसे व्यक्तित्व का दो अलग-अलग प्रकार नहीं माना। उनका कहना था कि चूँकि ये दोनों प्रकार एक-दूसरे के विपरीत हैं, अत: इन्हें एक साथ मिलाकर रखा जा सकता है तथा एक ही मापनी बनाकर अध्ययन किया जा सकता है। चूँकि ऐसा नहीं होता है कि ये दोनों तरह के गुण एक व्यक्ति में अधिक या कम हों, अत: इसे आइजेन्क ने व्यक्ति का एक ही प्रकार या बिम्ब माना है जो द्विध्रुवीय है। जैसे किसी व्यक्ति में सामाजिकता अधिक है तथा वह लोगों से मिलना-जुलना अधिक पसंद करता है, तो यह कहा जाता है कि व्यक्ति इस बिम्ब की बहिर्मुखता पक्ष में ऊंचा है। दूसरी

तरफ, यदि व्यक्ति अकेले रहना अधिक पसंद करता है, लज्जालु तथा संकोचशील भी है तो ऐसा कहा जाता है कि ऐसा व्यक्ति इा बिम्ब की अन्तर्मुखता पद में अधिक ऊँचा है।

(ii) **स्नायुविकृति/स्थिरता (Neuroticism/Stability)** - आइजेन्क के अनुसार व्यक्तित्व का यह दूसरा प्रमुख प्रकार है। इस तरह के व्यक्ति में सांवेगिक नियंत्रण कम होता है तथा उनकी इच्छाशक्ति कमजोर होती है। इनके विचारों एवं क्रियाओं में मंदता पाई जाती है इनमें अन्य व्यक्तियों के सुझाव को चुपचाप स्वीकार कर लेने की प्रवृति अधिक होती है तथा इनमें सामाजिकता का अभाव पाया जाता है। ऐसे व्यक्तियों द्वारा प्राय: अपनी इच्छाओं का दमन किया जाता है। स्नायुविकृति के दूसरे छोर पर स्थिरता होती है जिसकी ओर बढ़ने पर उक्त व्यवहारों या लक्षणों की मात्रा घटती जाती है और व्यक्ति में स्थिरता की मात्रा बढ़ती है।

(iii) **मनोविकृति/सुपर ईगो की क्रियाएँ (Psychoticism/Super ego function)** - आइजेन्क ने व्यक्तित्व के इस प्रकार को बाद में किए गए शोध के आधार पर जोड़ा है। आइजेन्क ने इस प्रकार की व्याख्या करते हुए कहा कि व्यक्तित्व क यह प्रकार मानसिक रोग की एक विशेष श्रेणी जिसे मनोविक्षिप्त रोग से पीड़ित व्यक्ति में मनोविकृति के गुण अधिक होंगे। आइजेन्क के अनुसार मनोविकृति वाले व्यक्तित्व के प्रकार में क्षीण एकाग्रता क्षीण स्मृति तथा क्रूरता का गुण अधिक होता है। इसके अलावा ऐसे व्यक्ति में असंवेदनशीलता, दूसरों के प्रति न के बराबर खयाल रखना, किसी प्रकार के खतरा के प्रति असतर्कता, सर्जनात्मकता की कमी आदि गुण पाये जाते हैं। मनोविकृति के दूसरे छोर पर सुपर ईगो की क्रियाएँ होती हैं। जैसे-जैसे इस छोर की ओर हम बढ़ते हैं, उक्त लक्षणों या व्यवहारों की मात्रा घटती जाती है तथा व्यक्ति में आदर्शत्व तथा नैतिकता की मात्रा बढ़ती जाती है।

इस तरह हम देखते हैं कि आइजेन्क के तीनों 'प्रकार' द्विध्रुवीय है जिसका मतलब यह कदापि नहीं है कि अधिकतर व्यक्ति को दो छोरों में किसी एक छोर पर रखा जा सकता है। सच्चाई यह है कि प्रत्येक 'प्रकार' या बिम्ब के बीच में ही अधिकतर व्यक्तियों को रखा जाता है।

18.4 व्यक्तित्व के शीलगुण सिद्धान्त (Traits Theory of Personality)

अ) आलपोर्ट का शीलगुण सिद्धान्त (Trait Theory of Allport)

जी.डब्ल्यू. आलपोर्ट का व्यक्तित्व के शीलगुण सिद्धान्त के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण योगदान है। उसने शीलगुणों को दो भागों में सामान्य शीलगुण तथा व्यक्तिगत शीलगुण में विभक्त किया। सामान्य शीलगुण से तात्पर्य उन शीलगुणों से है जो किसी समाज /संस्कृति के अधिकांश व्यक्तियों में पाये जाते हैं। इसके विपरीत व्यक्तिगत शीलगुण वे शीलगुण हैं जो बहुत कम व्यक्तियों में पाये जाते हैं। व्यक्तिगत शीलगुणो का अध्ययन करना बहुत कठिन होता है जबकि सामान्य शीलगुणों को सहसम्बन्धात्मक विधियों से सरलता से ज्ञात किया जा सकता है। परन्तु आलपोर्ट ने सामान्य शीलगुणों की अपेक्षा व्यक्तिगत शीलगुणों के अध्ययन पर अधिक बल दिया। उसने व्यक्तिगत शीलगुणों की तीन प्रवृत्तियों - प्रमुख प्रवृत्ति, केन्द्रीय प्रवृत्ति तथा गौण प्रवृत्ति बताई है। प्रमुख प्रवृत्ति

वाले शीलगुण से तात्पर्य व्यक्तित्व के उन प्रमुख व प्रबल शीलगुणों से है जो छिपाये नहीं जा सकते हैं एवं जो व्यक्ति के प्रत्येक व्यवहार से परिलक्षित होते हैं। जैसे सत्य व अहिंसा में अटूट विश्वास नि:सन्देह महात्मा गांधी के व्यक्तित्व की प्रमुख प्रवृत्ति थी जबकि अधिनायकवाद हिटलर तथा नैपोलियन के व्यक्तित्व की प्रमुख प्रवृत्ति थी। केन्द्रीय प्रवृत्ति वाले शीलगुणों से तात्पर्य उन शीलगुणों से है जो व्यक्ति में अधिक सक्रिय रहते हैं एवं व्यक्ति के अधिकांश व्यवहारों में कमोवेश परिलक्षित होते हैं। प्रत्येक व्यक्ति में प्राय: ऐसे शीलगुण होते हैं। वास्तव में ये शीलगुण ही उसके व्यक्तित्व की रचना करते हैं। आत्मविश्वास, सामाजिकता, उत्साह, व्यवहार, कुशलता आदि किसी व्यक्ति के केन्द्रीय प्रवृत्ति वाले शीलगुण हो सकते हैं। गौण प्रवृत्ति वाले शीलगुणों से अभिप्राय: उन शीलगुणों से है जो अपेक्षाकृत कम महत्त्वपूर्ण तथा कम संगत होते हैं। ये शीलगुण व्यक्ति के समान प्रकार के व्यवहार में परिलक्षित हो जाते हैं तथा कभी परिलक्षित नहीं भी होते हैं। इनकी सहायता से व्यक्तित्व की व्याख्या करना प्राय: संभव नहीं हो पाता है। यहां पर स्पष्ट करना उचित ही होगा कि शीलगुण किसी व्यक्ति के लिए केन्द्रीय प्रवृत्ति वाला हो सकता है तथा दूसरे व्यक्ति के लिए गौण प्रवृत्ति वाला हो सकता है। जैसे बहिर्मुखी व्यक्तित्व के लिए सामाजिकता एक केन्द्रीय प्रवृत्ति वाला शीलगुण है जबकि अन्तर्मुखी व्यक्तित्व के लिए सामाजिकता गौण प्रवृत्ति वाला शीलगुण हो सकता है।

आलपोर्ट के अनुसार व्यक्तित्व असंबंधित शीलगुणों का झुंड मात्र नहीं है वरन् इसमें शीलगुणों के समन्वय तथा संगतता का भाव निहित रहता है। इसे उसने अपनापन कहा। प्रोप्रियम एक लैटिन शब्द से बना है। जिसका अर्थ अपना है। आलपोर्ट के लिए अपनापन से तात्पर्य व्यक्तित्व के उन सभी पक्षों से है जो एकीकरण व संगतता के साथ व्यक्ति के अनोखे अपनेपन को दर्शाता है। उसने शैशवावस्था से किशोरावस्था तक फैली सात अवस्थाओं में प्रोप्रियम के विकास की बात कही है। प्रथम तीन अवस्थायें अर्थात शारीरिक स्व स्व पहचान तथा स्वमान का विकास प्रथम तीन वर्षों में होता है। इसमें वाद की दी अवस्थाएं अर्थात स्व विस्तार तथा स्व प्रतिमा का विकास 4 से 6 वर्ष की आयु में होता है। तार्किक अनुकूलन का विकास 6 से 12 वर्ष की आयु के बीच होता है जबकि उपयुक्त प्रयास का विकास किशोरावस्था में होता है। किशोरावस्था में जाकर प्रोप्रियम का विकास पूर्ण हो जाता है तथा इसमें ये सातों पक्ष समाहित रहते हैं।

आलपोर्ट के अनुसार परिपक्व वयस्क में कार्यात्मक स्वायत्तता होती है अर्थात वह गत अनुभूतियों से प्रभावित न होकर स्वतंत्र रूप से कार्य करता है। जैसे यदि धन कमाने के लिए गरीब व्यक्ति कठोर श्रम करता है तथा धनी व्यक्ति बन जाने पर भी वह आदतवश कठोर श्रम करना पहले लक्ष्य प्राप्ति (धनार्जन) का एक साधन था जो जब एक लक्ष्य बन गया है। वस्तुत: वह अब निर्धनता की अनुभूति से स्वतंत्र होकर कठोर श्रम कर रहा है। कार्यात्मक स्वायत्तता का प्रत्यय व्यक्ति के व्यवहार के पीछे अभिप्रेरणा को समझने में महत्त्वपर्ण सहायता करता है। आलपोर्ट के अनुसार व्यक्तित्व जन्मजात न होकर परिस्थितियों से प्रभावित होकर विकसित होता है। सकारात्मक परिस्थितियों में ही स्वस्थ व्यक्तित्व का विकास हो पाता है जबकि विषम परिस्थितियों में पले बालकों के व्यक्तित्व में नकारात्मक शीलगुण अधिक प्रभावी हो जाते हैं।

ब) कैटल का शीलगुण सिद्धान्त (Trait theory of Cattel)

व्यक्तित्व के एक अन्य शीलगुण सिद्धान्त का प्रतिपादन कैटल ने किया। उसने लगभग 4500 शीलगुण शब्दों की सूची में से समानार्थक तथा दुर्लभ विशेषताओं को अलग करके पहले 171

वर्णनात्मक पदों का चयन किया एवं फिर इन 171 पदों के बीच संबंधों का अध्ययन करके इन्हें शीलगुणों के 35 वर्गों में अवकलित कर दिया। तत्पश्चात् कैटल ने कारक विश्लेषण (Factor Analysis) नाम की सांख्यिकीय प्रविधि (Statistical Method) का उपयोग करके व्यक्तित्व को अभिव्यक्त करने वाले 12 मूलभूत कारकों को ज्ञात किया तथा इन्हें व्यक्तित्व शीलगुण के नाम से संबोधित किया। कैटल के द्वारा किये गये इन बारह प्राथमिक शीलगुणों को सारणी में प्रस्तुत किया गया है । स्पष्ट है कि कैटल के द्वारा बताये कुछ शीलगुण - धनात्मक चरित्र, व्यवहार कुशलता, संवेगात्मक स्थिरता, दृढ़ता, संवेदनशीलता, बुद्धि, सामाजिकता, सौम्यता, आत्मविश्वास इत्यादि हैं ।

कैटल ने व्यक्तित्व की व्याख्या करते हुए कहा कि किसी व्यक्ति का व्यक्तित्व वह विशेषता है जिसके आधार पर यह अनुमान लगाया जा सके कि किसी दी गयी परिस्थिति में वह व्यक्ति किस प्रकार का व्यवहार करेगा। उसके अनुसार व्यक्तित्व विशेषक मानसिक संरचनाएं हैं तथा इन्हें व्यक्ति की व्यवहार प्रक्रिया की निरन्तरता तथा नियमितता के द्वारा जाना जा सकता है । कैटल का विश्वास था कि कुछ सामान्य शीलगुण होते हैं जो सभी व्यक्तियों में कुछ न कुछ मात्रा में पाये जाते हैं तथा कुछ विशिष्ट शीलगुण होत हैं, जो कुछ विशेष व्यक्तियों में उपस्थित होते हैं । कैटल ने शीलगुणों को दो प्रकार (1) सतही शीलगुण तथा (2) स्त्रोत शीलगुण का बताया है । (1) सतही शीलगुण व्यक्ति के द्वारा अभिव्यक्त किये जा रहे व्यवहार से परिलक्षित होते हैं तथा व्यक्ति के व्यवहार को प्रत्यक्षत: प्रभावित करते हैं । प्रसन्नता, परोपकारिता, सत्यनिष्ठा सतही शीलगुणों के कुछ उदाहरण हैं । इसके विपरीत (2) स्त्रोत शीलगुण व्यक्ति के व्यवहार के पीछे छिपे रहते हैं तथा अभिव्यक्त को प्रत्यक्ष रूप से नियंत्रित व निर्धारित करते हैं । स्पष्टत:

सारणी

व्यक्तित्व के प्राथमिक शीलगुण

(Primary Traits of personality)

I .	Cyclothymia	Vs.	Schizothymia
	Outgoing		Withdrawn
	Good-natured		Surly
	Adaptable		Inflexible
II	Intelligence	Vs.	Mental defect
	Intelligent		Stupid
	Conscientious		Slipshod
	Thoughtful		Unreflective
III.	Emotionally mature	Vs.	Demoralised emotionality
	Realistic		Subjective
	Stable		Uncontrolled
	Patient		Exeitable
IV.	Dominance	Vs.	Submissiveness
	Boastful		Modest
	Egotistic		Self-effacing
	Tough		Sensitive

V.	Surgency	Vs.	Melancholic desurgency
	Cheerful		Unhappy
	Optimistic		Pressimistic
	Sociable		Aloof
VI.	Sensitive, imaginative	Vs.	Rigid, lough, poised
	Idealistic		Cynical
	Intuitive		Logical
	Friendly		Hardhearted
VII.	Trained, Socialised	Vs.	Boorish
	Thoughtful		Narrow
	Sophisticated		Simple
	Aesthetic		Coarse
VIII.	Positive intergration	Vs.	Immature, dependent
	Independent		Dependent
	Presevering		Slipshod
	Practical		Unrealistic
IX.	Charitable, adventurous	Vs.	Obstructive,withdrawn
	Kindly		Cynical
	Cooperative		Obstructive
	Frank		Secretive
X.	Neurasthenia	Vs.	Vigorous character
	Languid		Alert
	Quitting		Painstaking
	Incoherent		Strong-willed
XI.	Hypersensitive, Infantile	Vs.	Frustration tolerance
	Infantile		Adjusting
	Restless		Calm
	Impatient		Phlegmatic
XII.	Sergent eyelothymia	Vs.	Paranoia
	Enthusiastic		Frustrated
	Friendly		Hostile
	Trustful		Suspicious

स्रोत शीलगुणों का महत्व सतही शीलगुण से अधिक होता है । स्रोत शीलगुण का एक उदाहरण मित्रता है । मित्रता शीलगुण व्यक्ति में सामाजिकता, नि:स्वार्थता व हास-परिहास जैसे सतही शीलगुण आ सकते हैं । जैसा कि बताया जा चुका है, इन शीलगुणों की जानकारी के लिए कैटल ने कारक विशेषण नामक सांख्यिकीय प्रविधि का उपयोग किया था। कैटल के अनुसार विभिन्न

शीलगुण के परस्पर आन्तरिक संबंध अत्यंत जटिल होते हैं तथा उनकी परस्पर अन्तर्क्रिया ही व्यक्तित्व को निर्धारित करती है। व्यक्ति के तात्कालिक उद्देश्यों से संबंधित शीलगुण उसके मुख्य तथा अंतिम उद्देश्यों से संबंधितशीलगुण के अधीन रह कर कार्य करते हैं।

कैटल के द्वारा बनाये गये प्रसिद्ध व्यक्तित्व मापन उपकरण 16 पी एफ प्रश्नावली में व्यक्तित्व के सोलह द्विध्रुवीय कारकों को सम्मिलित किया गया है। व्यक्तित्व के इन सोलह कारकों को पाठकों के अवलोनार्थ सारणी में प्रस्तुत किया गया है।

सारणी

कैटल के द्वारा सोलह पी.एफ. प्रश्नावली में प्रयुक्त व्यक्तित्व कारक

(Personality Factors used by Cattell in his 16 PF questionnaire)

क्र. स.	कारक	कारकों के दो विपरीत ध्रुव	
1	ए A	उत्साही (Outgoing)	एकांकी (Reserved)
2	बी B	अधिक बुद्धिमान (More Intelligent)	कम बुद्धिमान (Less Intelligent)
3	सी C	स्थिर (Stable)	संवेगात्मक (Emotional)
4	ई E	दृढ़ (Assertive)	नम्र (Humble)
5	एफ F	हंसमुख (Happy-go-lucky)	सौम्य (Sober)
6	जी G	आध्यात्मिक (Conscientious)	संसारिक (Expedient)
7	एच H	सामाजिक (Venturesome)	संकोची (Shy)
8	आईI	संवेदनशील (Tender Minded)	निष्ठुर (tough-minded)
9	एल L	शंकालु (Suspicious)	विश्वस्त (Trusting)
10	एम M	कल्पनावादी (Imaginative)	यथार्थवादी (Practical)
11	एन N	व्यवहारकुशल (Shrewd)	सामान्य (Forthright)
12	ओ O	चिन्तित (Apprehensive)	आत्मविश्वासी (Placid)
13	क्यू 1Q1	आधुनिक (Experimenting)	रूढ़िवादी (Conservative)
14	क्यू 2Q2	स्व-आधारित (Self-sufficent)	समूह नियंत्रित (Group-tied)
15	क्यू 3Q3	नियंत्रित (Controlled)	अन्तर्द्वन्दी (Casual)
16	क्यू 4Q4	तनावयुक्त (Tense)	तनावमुक्त (Relaxed)

18.5 व्यक्तित्व के निर्धारक (प्रभावित करने वाले कारक)

व्यक्तित्व पर अनेकानेक कारकों का प्रभाव पड़ता है। इनका वर्णन वर्गवार किया जा सकता है, जैसे - आनुवंशिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक कारक।

18.5.1 व्यक्तित्व विकास के आनुवंशिक निर्धारक (Hereditary Determinants of Personality) - व्यक्तित्व के विकास पर निम्नांकित आनुवंशिक कारकों का प्रभाव अपेक्षाकृत अधिक पड़ता है। इन्हें वैयक्तिक कारक भी कहा जाता है।

1- **शारीरिक गठन (Physique) -** शेल्डन (1940) के अनुसार, शारीरिक संरचना व्यक्तित्व को प्रभावित करती है। मोटे, माँसल या दुर्बल लोगों के व्यक्तित्व में अन्तर उनकी शारीरिक संरचना के कारण प्रदर्शित होता है। अधिक मोटा या दुर्बल होना बच्चे कुरूपता में लेते हैं। इसका उनके ऊपर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। (Lerner etc. 1975, Lester, 1974)। कभी कभी अन्य बच्चे या प्रौढ़ भी बच्चों का उनकी संरचना के आधार पर नामकरण कर देते हैं। यदि नाम प्रतिकूल भावना व्यक्त करते हैं (जैसे - मल्लू, झबरा, गदहा) तो इससे उनमें हीनता भाव के विकसित होने की आशंका पैदा हो जाती है।

2- **बुद्धि (Intelligence) -** व्यक्तित्व के विकास में बुद्धि का महत्त्वपूर्ण योगदान होता है, क्योंकि बुद्धि समायोजन, उपलब्धि तथा सर्जनशीलता जैसे सभी उपयोगी व्यवहारों को निर्धारित करती है। प्रखर बालकों में श्रेष्ठता जबकि मन्द बालकों में हीनता विकसित हा सकती है। इसका उसके व्यक्तित्व पर घातक प्रभाव पड़ता है। प्रखर बुद्धि के बालकों के प्रति माता-पिता, मित्रों एवं शिक्षकों की धारणा अनुकूल हो जाती है। इससे उनमें आत्म विश्वास बढ़ता है (Hilgard etc., 1975)। बालकों में बौद्धिक स्तर का मापन करके उनकी मानसिक योग्यता के अनुसार प्रशिक्षण की व्यवस्था की जाये, तो कम बुद्धि के बालकों के व्यक्तित्व के विकास को भी काफी सीमा तक सन्तोषजनक बनाया जा सकता है। मानसिक मन्दता से प्रभावित बच्चे प्राय: बौने होते हैं। उनमें मंगोलियन (Mangolion), लघुशीर्षता (Microeephaly) एवं जलशीर्षता (Hydrocphaly) की भी विशेषताएं पाई जाती है। इनका व्यक्तित्व पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। वैसे, चूँकि मन्द बच्चे स्वयं के बारे में कम सोच पाते हैं। अत: योग्यता की कमी से उत्पन्न प्रतिकूल धारणाओं की वे अनुभूति नहीं कर पाते (Gottleb, 1975)।

3- **आकर्षकता (Attractiveness) -** बालक का सुन्दर या कुरूप् दिखना भी आनुवंशिक प्रतिफल है। इसका उनके व्यक्तित्व तथा उनके प्रति लोगों की धारणा पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। (Clifford and Walster, 1973,1973 Kleck et.al. 1974)। ऐसा भी देखा जाता है कि माता-पिता की भाँति शिक्षक भी आकर्षक बच्चों को अच्छा मान बैठतें हैं और उन्हें उच्च प्राप्तांक प्रदान करते हैं। इसका उनके आत्म विश्वास पर अनुकूल प्रभाव पड़ता है। इसके विपरीत अनाकर्षक बच्चे लोगों के अपनत्व तथा स्नेह की कमी के कारण स्वयं में प्रत्यक्षित करने लगते हैं। इससे उनमें हीनता बढ़ती है और आत्म विश्वास कम होने लगता है।

4- **शारीरिक दशाएँ (Physical Conditions)** - व्यक्तित्व के विकास पर शारीरिक दशाओं का भी प्रभाव पड़ता है। इस दृष्टि से सामान्य स्वास्थ्य एवं शारीरिक दोष महत्त्वपूर्ण है। प्राय: स्वस्थ एवं दोषविहीन बालकों के प्रति परिवार वालों का दृष्टिकोण अनुकूल और अस्वस्थ तथा दोषयुक्त बच्चों के प्रति अनानुकूल हो जाता है। मैट्टसन (Mattson, 1972) ने लिखा है कि इससे अस्वस्थ तथा दोषयुक्त बच्चों में हीनता का भाव विकसित हो जाता है। खराब स्वास्थ के कई दुष्परिणाम सामने आते हैं - 1. थकान जल्दी आती है इससे बच्चे स्वभाव से चिड़चिड़े हो जाते हैं। अत: उनके प्रति प्रतिकूल प्रतिक्रियाएँ की जाती है। 2. कुपोषण के कारण शारीरिक ऊर्जा कम हो जाती है। उनमें संकोच, झुँझलाहट, ग्लानि तथा असामाजिक व्यवहार में वृद्धि होने लगती है। 3. चिरिकालिक रोग (यथा एक्जीमा, मधुमेह आदि) हो जाने से संवेगात्मक अस्थिरता बढ़ती है, प्रबल नकारात्मक संवेग उत्पन्न होते हैं ओर परिवार पर आश्रितता बढ़ती है। 4. अन्त:स्रावी ग्रन्थियों, विशेषकर थायरायड के अधिक स्राव से घबराहट, उत्तेजना,

अशान्ति तथा अतिसक्रियता और इससे कम स्राव से सुस्ती, ग्लानि तथा निष्क्रियता की समस्या पैदा होती है।

जहाँ तक शारीरिक दोषों का प्रश्न है, वे दो रूपों में व्यक्तित्व को प्रभावित करते हैं। प्रथम - वे किस प्रकार की क्रियाओं में भाग ले पाते हैं और द्वितीय - लोगों की उनके प्रति धारणा कैसी है। किसी बालक में दोष तथा समानता जितनी अधिक होगी, उनमें हीनता भाव उतना ही अधिक व्याप्त हो जाएगा(Rapier et,al.1972)।

5- **यौन की भूमिका (Role of Sex) -** व्यक्तित्व के विकास तथा संगठन पर लैंगिक भिन्नता का भी महत्व प्राप्त किया गया है। लैंगिक भिन्नता के कारण समाज में बालक बालिकाओं की भूमिका अलग अलग निर्धारित होती है। भूमिकाओं में अन्तर और जैविक -संरचना में अन्तर के कारण उनके व्यवहार में भी अन्तर होता है जो व्यक्तित्व के विकास तथा संरचना को प्रभावित करता है। माक्रस (1976) के अनुसार, अनेक अध्ययनों से यह प्रमाणित हुआ है कि लैंगिक भिन्नता के कारण व्यक्तित्व की संरचना में अन्तर प्राप्त होता है। उदाहरणार्थ, पुरुषों की तुलना में महिलाओं में क्षेत्र आश्रितता की विशेषता अधिक पायी जाती है और क्षेत्र अनाश्रितता की विशेषता कम पाई जाती है। कुछ अन्य विद्वानों का निष्कर्ष है कि लड़कों की तुलना में लडकियाँ मदान्धता एवं असुरक्षा की भावना अधिक प्रदर्शित करती हैं|

6- **जन्म क्रम (Birth order)-** व्यक्तित्व के विकास तथा संरचना पर बालकों के जन्मक्रम का प्रभाव पड़ता है। हरलाक (1975) के अनुसार, प्रथम सन्तान में परिपक्वता शीघ्र आती है, पारिवारिक समायोजन अच्छा होता है परन्तु उसमें असुरक्षा (Insecurity)की भावना अधिक होती है और वह लोगों का अधिक से अधिक होती है, उत्तदायित्व की भावना कम होती है परन्तु सामाजिक समायोजन अच्छा होता है (माक्रस, 1976)। प्रथम सन्तानों में बौद्धिक क्षमता अधिक होती है परन्तु उसके साथीगण उसे कम पसन्द कर सकते हैं क्योंकि प्रथम सन्तानों का सामाजिक समायोजन कम होता है। फ्रायड, एडलर तथा रैंक ने भी जन्मक्रम को महत्त्वपूर्ण माना है। कुछ अन्य लोगों का भी निष्कर्ष हैं कि बाद में जन्में बच्चों का व्यवहार अधिक स्वभाविक होता है।

7- **अन्त:स्रावी ग्रन्थियों का प्रभाव (Effects of Endocrine Glands) - व्य**क्तित्व तथा व्यवहार के विकास पर अन्त:स्रावी ग्रन्थियों का भी प्रभाव पड़ता है। ये ग्रन्थियाँ नलिकाविहीन होती हैं और अपने रसद्रवों को रक्त में प्रवाहित करती हैं। किसी भी ग्रन्थि से यदि असन्तुलित (आवश्यकता से कम या अधिक) स्राव होता है, तो उसका विकास पर अवरोधक प्रभाव पड़ता है। विभिन्न अन्त:स्रावी ग्रन्थियों के प्रमुख रसद्रवों तथा उनके प्रभावों को निम्न तालिका में प्रदर्शित किया गया है।

तालिका : अन्त:स्रावी ग्रन्थियों के रसद्रव तथा उनके प्रभाव

ग्रन्थियों के नाम	प्रमुख रसद्रव	विकास व्यवहार पर प्रभाव
अग्न्याशयी (Pancreas)	Insulin	कम स्राव की दशा में मधुमेह की बीमारी, चिड़चिड़ापन एवं कमजोरी
अबटू (Thyroid)	Thyroxin	कमी होने पर बौनापन, मानसिक दुर्बलता एवं अधिक स्राव की दशा में लम्बाई में अत्यधिक वृद्धि, अस्थिरता, चिड़चिड़ापन बढ़ता है।
उप अबटू (parathyroid)	Paratharmone	स्राव कम होने पर शरीर में ऐंठन, हॉि्यों में कमजोरी बढ़ती है।
अधिवृक्क (Adrenal)	Adrenalin	कमी होने पर रक्त संचार मंद पड़ता है, थकान एवं चिड़चिड़ापन बढ़ता है।
	Pituirine	रक्त स्राव कम होने पर पेशियों तथा हृदय गति में शिथिलता बढ़ती है। अन्य ग्रन्थियों के नियंत्रण में कमी आती है। यह Master gland है
	Androgens and Estrogens	कमी होने पर यौन अंगों का विकास तथा गौण लैंगिक लक्षणों का विकास अवरूद्ध होता है।

18.5.2 व्यक्तित्व के सामाजिक निर्धारक (Social Determinants of Personality) - व्यक्तित्व के विकास में सामाजिक या पर्यावरणीय कारकों की भी महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। इस दृष्टि से निम्नांकित कारक महत्त्वपूर्ण हैं -

1- **प्रारम्भिक सामाजिक अनुभव (Early Social Experiences) –**
2- **सामाजिक वंचन (Social Deprivations)** –
3- **सामाजिक स्वीकृति (Social Acceptance)-**
4- **प्रास्थिति प्रतीक (Status Symobl)-**
5- **परिवार क प्रभाव (Influence of Family) –**
6- **समूह का प्रभाव (Influence of group) –**
7- **विद्यालय का प्रभाव (Influence of the school)**

हरलॉक (1978,84) ने व्यक्तित्व पर पड़ने वाले पारिवारिक परिवेश के प्रभाव को निम्नवत रेखांकित किया है -

1- परिवेश आलोचनात्मक होने पर निन्दात्मक प्रवृति पैदा होती है।
2- शत्रुता का परिवेश होने पर झगड़ालू स्वभाव बढ़ता है।
3- भय का परिवेश आशंका को जन्म देता है।

4- अनावश्यक दया से हीनता आती है।
5- सहिष्णु परिवेश धैर्य बढ़ाता है।
6- ईर्ष्यात्मक परिवेश अपराध बोध की भावना बढ़ाता है।
7- निदा किये जाने से व्यक्ति लज्जालु हो जाता है।
8- पारिवारिक प्रोत्साहन से आत्मविश्वास बढ़ता है।
9- प्रशंसा प्राप्त होने पर स्वस्थ व्यक्तित्व विकसित होता है।
10- पारिवारिक स्वीकृति प्राप्त हाने पर स्नेह विकसित होता है।
11- पारिवारिक मान्यता मिलते रहने से लक्ष्य चयन सरल हो जाता है।
12- ईमानदारी का परिवेश सत्य के प्रति निष्ठा विकसित करता है।
13- सुरक्षा का परिवेश होने पर स्वयं में तथा अन्य लोगों में भी उसकी आस्था बढ़ती है।
14- पारिवारिक अनुमोदन से स्वयं के प्रति अच्छी धारणा बनती है।

विद्यालय जीवन से सम्बन्धित निम्नांकित पक्षों का बालकों के स्व तथा उसके व्यक्तित्व पर विशेष प्रभाव पड़ता है -

i. कक्षा का संवेगात्मक परिवेश (Emotional climate of class room) -
ii. शिक्षक (Teachers) -
iii. अनुशासन (Discipline)
iv. सांस्कृतिक मूल्यों का प्रसार –
v. पक्षपात -
vi. शैक्षिक उपलब्धि -
vii. सामाजिक उपलब्धि
viii. संवेग (Emotions)-
ix. नाम (Names) –
x. सफलता तथा असफलता -

व्यक्तित्व पर सफलता के प्रभाव -

1- बालक गर्व एवं सन्तुष्टि अनुभव करता है।
2- यदि सफलता सहजता से बार-बार प्राप्त होती है, तो घमण्डी एवं अहंकारी हो जाते हैं, और प्रेरणा में कमी आ जाती है।
3- उपलब्धियों के साथ सन्तुष्टि तथा भविष्य के लिए प्रेरणा।
4- नवीन चुनौतियों का सामना करने हेतु तत्परता तथा डींग मारना।
5- अनाश्रितता एवं आत्मविश्वास की भावना में वृद्धि।
6- प्रसन्नता में वृद्धि।,

व्यक्तित्व पर असफलता के प्रभाव -

1- आकांक्षा स्तर का गिरना तथा अपनी क्षमता के बारे में अनिश्चितता।
2- असफलता की पुनरावृत्ति से अनुपयुक्तता एवं हीनता की भावना और असफलता ग्रन्थि का प्रादुर्भाव।
3- स्व-चेतना तथा व्याकुलता में वृद्धि

4- दूसरों से सहायता की इच्छा में वृद्धि और भविष्य की चुनौतियों से विमुखता।
5- अभिप्रेरणा में कमी तथा दूसरों पर असफलता के लिए दोषारोपण।
6- क्रोध का प्रदर्शन, तोड़फोड़ करना, उदास एवं अप्रसन्न रहना।

18.5.3 व्यक्तित्व पर संस्कृति का प्रभाव (Effects of Culture on Personality)-

व्यक्तित्व पर संस्कृति का प्रभाव (Effects of Culture on Personaity) - व्यक्तित्व के विभिन्न निर्धारकों में संस्कृति की बहुत ही महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है । प्रत्येक समाज की अपनी अपनी सांस्कृतिक मान्यताएं, विश्वास, मानक तथा रीति-रिवाज होते हैं । इनकी व्यक्तित्व पर अमिट छाप पड़ती है । संस्कृति के प्रभावों की निम्नवत् समीक्षा की जा सकती है :

1- सामाजिक मानक एवं व्यक्तित्व (Social Norms and Personality) -
2- सामाजिक भूमिकाएँ एवं व्यक्तित्व (Social Roles and Personality) -
3- पालन पोषण की विधियाँ तथा व्यक्तित्व (Child Rearing method and personalit
4- स्वालम्बन बनाम पराश्रितता (Independence Vs Dependence) -
5- धार्मिक पृष्ठभूमि तथा व्यक्तित्व (Cultural Background and Personality)-

18.6 व्यक्तित्व का मापन

18.6.1 व्यक्तित्व मापन का अर्थ (Measurment of Personality) -

व्यक्तित्व की माप से तात्पर्य व्यक्तित्व के शीलगुणों के बारे में पता लगाकर यह निश्चित करना होता है कि कहाँ तक वे संगठित (organised) हैं या विसंगठित (disorganised) हैं । किसी भी व्यक्ति के भिन्न भिन्न शीलगुण जब आपस में संगठित होते हैं, तो इससे व्यक्ति का व्यवहार सामान्य होता है । परन्तु, यदि उसके शीलगुण विसंगठित होते हैं तो व्यक्ति का व्यवहार असामान्य (abnormal) हो जाता है ।

18.6.2 व्यक्तित्व को मापने की विधियाँ-

व्यक्तित्व की विषेशताओं को मापने की तीन विधियाँ हैं । वे इस प्रकार हैं-(1) व्यक्तिगत विधि (2) वस्तुनिष्ठ (3) प्रक्षेपी प्रविधि।

1- व्यक्तिगत विधि :-

इस प्रकार की विधि में हम व्यक्ति सम्बन्धी सूचना या तो व्यक्ति से ही स्वयं लेते हैं या उसके मित्रों या सम्बन्धियों से भी प्राप्त करते हैं इसको क्रियान्वित करने के चार ढंग हैं :

(अ) जीवन-कथा या उसका स्वयं का इतिहास।
(ब) व्यक्तिगत इतिहास।
(स) साक्षात्कार विधि।
(द) अभिज्ञापक प्रश्नावली ।

(अ) जीवन-कथा या उसका स्वयं का इतिहास :-

इस विधि के अनुसार जिस व्यक्ति के व्यक्तित्व का अध्ययन करना होता है, मनौवैज्ञानिक कुछ मोटी बातों के आधार पर व्यक्तित्व को कुछ शीर्षक में बाँट देता है और फिर उस व्यक्ति से अपना

व्यक्तित्व-इतिहास लिखने को कहता है। इसी सूची के आधार पर वह व्यक्ति के व्यक्तित्व के बारे में कुछ निश्चित निष्कर्ष निकालता है।

इस विधि में यह कठिनाई है कि भूलने के कारण व्यक्ति अपनी कुछ मुख्य घटनाओं को भूल जाता है और उनको सविस्तार एवं सही-सही लिख नहीं पाता। इस विधि के द्वारा कुछ अचेतनावस्था में पड़ी हुई इच्छा या आवश्यकताओं का भी हम अनुमान नहीं लगा सकते हैं। इसके अतिरिक्त व्यक्ति के व्यवहार या रूझान आदि का भी सत्य रूप में कोई अनुमान नहीं लगाया जा सकता। इस विधि को हम अन्य विधियों का पूरक कह सकते हैं। यह अकेली विधि व्यक्तित्व के बारे में हमें कोई निश्चित या सत्य तथ्य नहीं दे सकती।

(ब) व्यक्तिगत इतिहास :-

इस विधि के अन्दर हम बाल्य वातावरण के उन तत्वों तथा वंशानुगत तत्वों का अध्ययन करते हैं जो व्यक्ति के जीवन पर प्रभाव डालते हैं। व्यक्ति की मानसिक रचना को हम उसके परिवार के इतिहास, रीति-रिवाज, धारणाएँ, जन्म लेने का क्रम आदि का सहारा लेकर समझने का प्रयत्न करते हैं।

इस विधि को प्राय: मानसिक चिकित्सक अपनाते हैं। मुख्य रूप में साधारणतया जन्म से सम्बन्धित, जन्म से पूर्व की परिस्थितियों, माता-पिता का बालक के प्रति व्यवहार, व्यक्ति की बीमारी की घटनाओं का इतिहास आदि का सहारा मानसिक चिकित्सा के लिए देते हैं।

(स) साक्षात्कार विधि :-

जिन मुख्य बातों को हम व्यक्ति के इतिहास से पता नहीं लगा पाते उनका इस विधि के द्वारा साक्षात्कार करयने वाला एक योग्य व्यक्ति है तो साक्षात्कार के साथ-साथ वह अनिवार्य सूचनाओं को लिख देता है। यह व्यक्ति के अन्दर पहले अपने प्रति विश्वास उत्पन्न करता है और उसे प्राप्त करने का प्रयत्न करता है। यह व्यक्ति की समस्याओं को समझने में सहयोग प्रकट करता है, साथ ही साथ उसके उत्तर दायित्व को भी समझने का प्रयत्न करता है। इस प्रकार जितनी भी सूचनाएँ वह प्राप्त करता है, वे व्यक्ति की व्यक्तित्व-सम्बन्धी विषेशताओं को समझने तथा निर्णय करने में सहायक होती है।

साक्षात् करने में साक्षात्कार करने वाले को कभी भी निर्णय नहीं देना चाहिए। उसे व्यक्ति सम्बन्धी अपनी पूर्व-धारणा के आधार पर कोई विचार नहीं बनाना चाहिए, क्योंकि इन विचारों से कभी-कभी बहुत भारी त्रुटि हो जाती है। अपना निर्णय देने से पहले उस व्यक्ति को पूर्ण अवसर देना चाहिए, जिससे वह अपने इतिहास को पुन: दोहरा सके। यों तो साक्षात्कार बड़ी ही अच्छी विधि है, किन्तु यह बहुत ही व्ययपूर्ण है। साथ ही इसमें सबसे बड़ी कमी यह है कि यह व्यक्तिगत विधि है, इसलिए हम इस पर अधिक विश्वास नहीं कर सकते।

(द) अभिज्ञापक प्रश्नावली :-

इस विधि को हम प्रश्नों की एक प्रश्नावली बनाते हैं और व्यक्ति से स्वयं इसे भरने का अनुरोध करते हैं। यह प्रश्नावली विभिन्न प्रकार की होती है। यह प्रश्नावली उनको दे देते हैं जिनके व्यक्तित्व का अध्ययन करना है।

प्रश्न - प्रश्नावली में साधारणतया प्रश्नों एक सूची होती है, जिसका व्यक्ति को लिखित या हाँ या 'न' में उत्तर देना होता है। यह प्रश्न इस प्रकार तैयार किये जाते हैं कि उनसे इच्छित जानकारी प्राप्त हो जाती है। व्यक्ति की आरम्भ की परीक्षणों में वुडवर्थ की 'साइकोन्यूरेटिव इन्वेन्टरी'है। इसमें 115 प्रश्न व्यक्तियों के जीवन से सम्बन्धित उन विभिन्न अनुभवों के हैं जिन्हें व्यक्ति जब वह दूसरे के साथ

होता है, प्रत्युत्तरस्वरूप करता है। साथ ही साथ उसके अनुभव भी उसमें सम्मिलित रहते हैं। विभिन्न व्यक्तित्व-प्रश्नावली में दिए हुए प्रश्न निम्न प्रकार के होते हैं :

1- क्या आप अपने परिवार के सदस्यों से झगड़ा करते हैं? (हाँ, नहीं)

2- क्या आप अक्सर रात को जागते हैं ? (हाँ, नहीं)

3- क्या आप चिन्ता करते हैं? (अक्सर, कभी-कभी, कदाचित)

या दूसरे प्रकार के प्रश्न होते हैं: जैसे-

4- क्या आप अपने वैवाहिक सम्बन्ध से संतुष्ट हैं? (पूर्णरूप से, थोड़े रूप में, बिलकुल नहीं) विषयी से उस एकांश को चिन्ह लगाने के लिए कहा जाता है जो करीब-करीब ठीक हो।

प्रश्नावली बहुत-से व्यक्तित्व गुणों: जैसे - दुख, प्रभुत्व, सामजिकता, अन्तर्मुखी, बहिर्मुखी आदि मालूम करने या उनकी परीक्षण करने के लिए बनायी जाती है। इन परीक्षणों द्वारा व्यक्ति की रूचि की सीमा भी मालूम हो सकती है, यह प्रश्नावली में इस प्रकार के विभिन्न प्रश्नों को सम्मिलित कर दिया जाय जो व्यक्ति की रूचि या अरूचि के सम्बन्ध में हों। इस प्रकार व्यवसाय आदि के चुनने या उसके बारे में रूचि जानने में भी यह प्रश्नावली सहायक होती है। यह प्रश्नावली विधि के अनुसार हम व्यक्ति के धार्मिक, आर्थिक, सामाजिक या मौलिक विचारों आदि का भी पता लगाने में सफल हो सकते हैं।

यह ढंग बड़ा ही उपयोगी है और दु:ख आदि जानने वाली प्रश्नावली आदि में पर्याप्त मात्रा में विश्वसनीयता है, किन्तु इसकी वैधता कम होती है। उच्च विश्वसनीयता से हमारा तात्पर्य है कि किसी दूसरी परीक्षण में भी वे ही या उसी प्रकार के उत्तर प्राप्त हों। ऐसी कुछ विशेष प्रकार की प्रश्नावलियों में पाया जाता है, परन्तु इस प्रश्नावली विधि द्वारा सदैव व्यक्ति से सत्य उत्तर प्राप्त नहीं किये जा सके। अक्सर व्यक्ति सत्यता को छिपा लेते है या झूठ उत्तर दे देते है: अत: उनकी वैधता निम्न होती है।

वैधता और विश्वसनीयता से हमारा क्या तात्पर्य है?

विश्वसनीयता और वैधता के बारे में थोड़ा-सा वर्णन हम पहले कर चुके हैं। ज्ञान-वर्धन हेतु शेष तथ्य निम्न भाँति हैं :

1- मापने का यन्त्र तभी वैध कहा जाता है, जबकि प्राप्त सूचनाएँ सत्य हों।

2- मापने का यन्त्र विश्वसनीय तभी हो सकता है, यदि प्राप्त सूचनाएँ उसी प्रकार की किसी दूसरी परीक्षण से भी प्राप्त हों या उसी प्रकार की हों।

इसका तात्पर्य यह है कि प्रश्नावली आदि के समान किसी विधि की मान्यता तभी हो सकती है जबकि वह उन सभी गुणों की सत्य सूचना दे जिसके लिए उसको तैयार किया है: उदाहरण के लिए, यदि प्रश्न संख्या-पत्र का उद्देश्य यह मापन करना है कि व्यक्ति आत्म-केन्द्रित, चिन्तित या उत्सुक हैं तो यदि यह इसको सत्य रूप में मापता है, अर्थात व्यक्ति के अन्दर, उतनी ही मात्रा में चिन्ता है जितनी कि प्रश्नावली द्वारा पता चलती है, तो हम कह सकते हैं कि यह प्रश्नावली मानवीय है। एक विश्वसनीय यन्त्र से तात्पर्य यह है कि एक अवसर पर प्रश्नावली मे दिए गए उत्तरएक दूसरी दी गई प्रश्नावली या उस प्रकार की प्रश्नावली में दूसरी अवसर पर दिये गये उत्तर भी समान हों।उदाहरण के लिए यदि एक व्यक्ति कहता है कि वह अक्सर चिन्तित रहता है और उसी प्रकार के प्रश्नों में उसी प्रकार के उत्तर दूसरे अवसर पर भी देता है तो इस प्रकार का यन्त्र विश्वसनीय कहा जायेगा।

2 वस्तुनिष्ठ विधियाँ:-

वस्तुनिष्ठ विधियाँ व्यक्ति के बाह्य व्यवहार पर आश्रित होती हैं। ये व्यक्ति के स्वयं वर्णन पर मुख्य रूप से आधारित नहीं होती हैं, वैज्ञानिक होती हैं और इनमें वस्तुनिष्ठता होती है। वस्तुनिष्ठ विधियाँ में (I) नियन्त्रित निरीक्षण, (II) व्यक्तिगत गुणों का मूल्य निर्धारण या अन्य के द्वारा, अनुमानांकन मापदण्ड द्वारा व्यक्ति के व्यवहारों का निराकरण या व्यवहार के लिए अन्य पूर्व-कारणों की स्मृति, (III) शारीरिक परिवर्तन, जो व्यक्तित्व की ओर संकेत करते हैं,और (पअ) मौखिक व्यवहार द्वारा व्यक्तित्व अध्ययन आतें हैं। ये सब विधियाँ पूर्णरूप् से वस्तुनिष्ठ नहीं होती जैसे- निर्धारण मापनी को कभी-कभी हमे व्यक्तिगत विधियों में भी सम्मिलित कर लेते हैं, किन्तु उचित सावधानी बरतने से उनमें वस्तुनिष्ठता भी आ जाती है। अत: इस विवाद के आधार पर यहाँ हम उन्हें वस्तुनिष्ठ परीक्षणों में सम्मिलित करते हैं।

अब हमें इन परीक्षणों पर क्रमानुसार विचार करना चाहिए :

(i) नियन्त्रित निरीक्षण

इस विधि का सफल प्रयोग मनोवैज्ञानिक प्रयोगशाला में हो सकता है। इस विधि में प्रयोगशाला की नियन्त्रित परिस्थितियों के मध्य एक कुशल मनोवैज्ञानिक व्यक्ति के व्यवहारों का अध्ययन करता है।

इस विधि को भी पूर्णरूप से विश्वसनीय नहीं कह सकते, क्योंकि बहुत-सी कठिनाइयाँ हैं जो विश्वसनीयता पर प्रभाव डालती हैं। उनमें से कुछ इस प्रकार हैं - (प) निरीक्षण के समय की लम्बाई, (पप) निरीक्षण की संख्या, (पपप) उस सीमा का ज्ञान जिस तक परीक्षक व्यक्तित्व के उस गुण का स्पष्ट ज्ञान प्राप्त कर सके, (पअ) परिस्थिति में बाह्य तत्व बीच में बाधा डालते हैं, (ट) यह सत्य है कि निरीक्षण एक परिस्थिति में एक विशेष गुण की कार्यशीलता को स्पष्ट करता है।

(ii) निर्धारण मापनी :-

वास्तविक रूप् से यह व्यक्तित्व मापन का वस्तुनिष्ठ ढंग नहीं है। निर्धारण-मापनी वह विधि है जो व्यक्तित्व के गुणों का अनुमान लगाने के लिए है, जो साधारण मापन से अधिक सही परिणाम प्रस्तुत करती है।

लगभग सभी व्यक्तित्व की विशेषताएँ निर्धारण-मापनी द्वारा पता लगाई जा सकती हैं, किन्तु इनमें गुणों को प्रदर्शित करने की एक सीमा भी हो सकती है, जिसके इस मापनी की विश्वसनीयता में अन्तर न पड सके।

सबसे अधिक साधारण रूप से मापना हों, नहीं के उत्तरों के रूप् में होता है जैसे-ये प्रश्न हैं-क्या आप उसे कंजूस समझते हैं? क्या वह अपने मित्रों को प्यार करता है?''

इस मापनी पर प्राप्तांकों को हम प्रतिशत में प्रकट कर सकते हैं। सबसे अधिक प्रसन्नता वाले व्यक्ति 100 प्रतिशत प्रसत्र कहे जाते हैं। साधारण व्यक्ति 50 प्रतिशत, निम्न 0 प्रतिशत। अकिधतर जिस मापनी को हम व्यक्तित्व के गुणों को मालूम करने के लिए प्रयोग करते हैं, उसमें 5 से 10 तक खण्ड होते हैं। इसका तात्पर्य है कि यह मापनी एक विशेष गुण को 5 खण्डों में 0 से 5 या 9 दशाओं का वर्णन करते हैं। 1 और 4 निम्न या उच्च, 2 उसके लिए जो औसत से कम और 3 जो औसत से ऊपर हैं।

इस प्रकार की निर्धारण-मापनी का एक उदाहरण नीचे दिया गया है :

उत्तम	औसत से अधिक	औसत	औसत से कम	बहुत कम	अपने मूल्यकरण को इस इस वर्ग में रखिए।
(बहुत ईमानदार)	(ईमानदार)	(समय पर ईमानदार)		(बेईमान)	(बिलकुल बेईमान)

दूसरे प्रकार का मापन जो अधिक उपयोगी होता है और सुविधाजनक भी है, वह रेखाचित्र द्वारा प्रदर्शित मापन होता है। परीक्षण रेखा द्वारा बिन्दु या निशान उस जगह के रिक्त स्थान लगा देता है जो मापन में उस गुण के लिए छोड़ा जाता है। कभी-कभी रेखा को हम विभिन्न इकाइयों में बाँट देते हैं और मूल्य का निर्धारण वर्णन के अनुसार करते हैं और तब उसी के अनुसार रेखा में निशान लगाते हैं, एक उदाहरण दिया जा रहा है जो कार्य करने वाले कर्ता की कार्य-शक्ति के सम्बन्ध में है।

मन्द	रूचि रहित	औसत	रूचिपूर्ण	परिश्रमी

औसत व्यक्ति, किसी भी गुण में रेखा के मध्य पर होता है। कभी-कभी मापनी निर्धारक अपनी उदारता की त्रुटि के कारण या परिचायक सम्बन्ध के कारण औसत में ही व्यक्तियों को रखने पसन्द करते हैं। कभी-कभी एक मापन निर्धारक दूसरे से अधिक उदार होता है तब और भी अधिक समस्या हो जाती है। किन्तु इस त्रुटि को दूर करने के लिए हम सांख्यिकी के नियमों का प्रयोग कर सकते हैं।

दूसरे त्रुटि को हम परिवेश प्रभाव कहते हैं। यदि कोई व्यक्ति अपनी तीव्र बुद्धि के कारण एक गुण प्रदर्शित करने में निर्धारण-मापन को प्रभावित कर लेता हैं तो वह उसे बिना सोचे ही दूसरे गुण में सबसे उच्च स्थान देने का प्रयत्न करेगा। यदि उसने एक समय में अनुचित कृपा प्राप्त की है तो उस प्रभाव को दूर करना निर्धारण-मापन के लिए कठिन हो जाता है, जबकि वह दूसरे गुणों को निर्धारण कर रहा हो।

इस प्रकार के मापदण्ड के प्रयोग से लाभ यह है कि हम व्यक्ति के गुणों के माध्यमिक को अधिक अच्छी प्रकार प्रदर्शित कर सकते हैं जितना कि शब्दों द्वारा नहीं हो सकता हैं। साथ साथ दो या दो से अधिक मापन-निर्धारकों के नियमों का हम औसत भी निकाल सकते हैं। कोई विशेष निर्धारक ईर्ष्यालु भी हो सकता है, या एकपक्षीय हो सकता है, किन्तु विभिन्न निर्धारकों की ईर्ष्याएँ विभिन्न दशाओं में हो सकती हैं और यह एक-दूसरे को नष्ट कर देती हैं और इस प्रकार केवल उचित रूप निष्पक्ष और ईर्ष्या-रहित औसत निर्धारक माप हमें मिल जाता है।

इन विधियों की वैधता हम सरलता से पता नहीं लगा सकते। निरीक्षक का पक्षपात, ईर्ष्या अन्तिम निष्कर्ष में अनुचित प्रभाव डालती है। निरीक्षण अपने ही व्यक्तिव के आधार पर दूसरे व्यक्तिव को देखने का प्रयत्न करता है। यदि हम विभिन्न निरीक्षकों के मत को एक साथ संगठित है, जो वास्तव में एक-दूसरे से स्वतन्त्र हों, तों हमें हमारे निष्कर्षों में अधिक वैधता प्राप्त हो सकती है।

निर्धारकों की विश्वसनीयता को भी हम विभिन्न निरीक्षकों के स्वतन्त्र कार्य को देखकर निर्धारित कर सकते हैं। विश्वसनीयता को प्राप्त करने के लिए हमें निर्धारक-मापदण्ड को बड़ी सावधानी से तैयार करना चाहिए। साथ ही साथ निर्धारकों तथा निर्णायकों को पूर्ण शिक्षित तथा उसके के ज्ञान आदि में पूर्ण कुशल होना चाहिए।

(iii) शारीरिक परिवर्तन: व्यक्तित्व के संकेतक के रूप में

व्यक्तित्व की कुछ विशेषताओं को हम अप्रत्यक्ष रूप से व्यक्ति के व्यवहार को देखकर अध्ययन कर सकते हैं। व्यक्तित्व का अध्ययन करने के लिए मुख्य तत्त्व 'संवेग' है। संवेग को प्रदर्शित करने से मुख्य शारीरिक संकेत-हृदय की गति और रचना, रक्त-परिमाण, रक्त-भार श्वसन के परिवर्तन, से विद्युत अनुक्रिया और व्यक्तिगत परिवर्तन आदि हैं। इन शारीरिक पविर्तनों की माप के द्वारा हम सीमा के अन्दर झूठे या धोखे की माप एक व्यक्ति के अन्दर करने में सफल होते हैं।

मौखिक व्यवहार व्यक्तित्व अध्ययन

व्यक्तित्व की विशेषताओं का लिखित या मौखिक प्रत्युत्तरों के द्वारा अध्ययन करने में यह समझा जाता है कि यह व्यक्तित्व के मुख्य गुणों का संकेतक है। बहुत-सी व्यक्तित्व परीक्षणएँ मौखिक व्यवहारों का प्रयोग करती हैं। इनमें से मुख्य साहचर्य परीक्षण, प्रक्षेपी प्रविधि, प्रश्न-उत्तर परीक्षण अभिवृद्धि मापनी तथा ज्ञान की परीक्षणएँ और सामाजिक तथा नैतिक मूल्यों की परीक्षणएँ हैं।

सहचर्य परीक्षणएँ विभिन्न प्रकार की होती है। स्वतन्त्र साहचर्य परीक्षणएँ वे हैं, जिनमें परीक्षय लगातार बोलता रहता है उस समय तक, जय आगे बोलने में असमर्थ हो जाता है। इसका प्रयोग विश्लेषक किसी भावना का पता लगाने के लिए करते हैं।

दूसरे प्रकार की साहचर्य परीक्षण में हम विषयी को एक उतेजक शब्द देते हैं और इसके प्रत्युत्तर में विषयी के मस्तिष्क में जो भी आता है, वह बोलता है। इन परीक्षणों को हम विषयी की वेगात्मक कठिनाइयों का पता लगाने के लिए प्रयोग करते हैं। इन साहचर्य परीक्षणों को हम संवेगात्मक ग्रन्थियों के रूप में प्रयोग करते हैं। यह हमें अपराध, मानसिक अवस्था, रूचि आदि के बारे में भी बताती हैं।

प्रक्षेपी विधि :-

तीसरे प्रकार की विधि, जिसे हम व्यक्तित्व को मापने के लिए उपयोग करते हैं, प्रक्षेपी प्रविधि है। व्यक्तित्व का वस्तुनिष्ठ परीक्षणों की सबसे बड़ी कमी यह है कि यह व्यक्ति के अचेतन का अध्ययन नहीं करतीं। प्रत्येक व्यक्ति में प्रेरणाएँ, इच्छाएँ, रूचि, संवेग, विश्वास आदि होते हैं जो वास्तव में दूसरों को दिखाई नहीं देते, किन्तु वह उस व्यक्ति के ही अंग होते हैं। व्यक्ति स्वयं भी इनके बारे में चेतन नहीं होता। इस प्रकार बिना इन अचेतन प्रेरणाओं, को विचार में रखते हुए हम व्यक्तित्व को पूर्णरूप से व्यक्त नहीं कर सकते, अन्यथा हमें व्यक्तित्व का एकांगी चरित्र

3 प्रक्षेपण विधि (Projection Method)

प्रोजेक्ट का अर्थ है - प्रक्षेपण करना या फेंकना। सिनेमा हाल के किसी भाग में बैठा हुआ व्यक्ति प्रोजेक्टर की सहायता से फिल्म के चित्रों को पर्दे पर 'प्रोजेक्ट' करता है या फेंकता है। वहाँ बैठे हुए दर्शकगण उन चित्रों को विभिन्न दृष्टिकोणों से देखते हैं। उदाहरणार्थ अभिनेत्री के नृत्य के समय कलाकार उसके शरीर की गतियों को, नवयुवक उसके सौन्दर्य को, तरूण बालिका उसके श्रृंगार को और सामान्य मनुष्य उसकी विभिन्न मुद्राओं को विशेष रूप से देखता है। इसका अभिप्राय यह है कि सब लोग एक व्यक्ति या वस्तु को समान रूप से न देखकर अपने व्यक्तित्व के गुणों या मानसिक अवस्थाओं के अनुसार देखते हैं। मानव स्वभाव की इस विशिष्टता से लाभ उठाकर मनोवैज्ञानिकों ने व्यक्तित्व मापन के लिए प्रक्षेपण विधि का निर्माण किया। इस विधि का अर्थ थार्प व शमलर ने लिखा

है - '' प्रक्षेपण विधि, उद्दीपकों के प्रति व्यक्ति की प्रतिक्रियाओं के आधार पर उसके व्यक्तित्व के स्वरूप का वर्णन करने का साधन है।''

प्रक्षेपण विधि में व्यक्ति को एक चित्र दिखाया जाता है और उसके आधार पर उससे किसी कहानी की रचना करने के लिए कहा जाता है। व्यक्ति उसकी रचना अपने स्वयं के विचारों, संवेगों, अनुभवों और आकांक्षाओं के अनुसार करता है। परीक्षक उसकी कहानी से उसकी मानसिक दशा और व्यक्तित्व के गुणों के सम्बन्ध में अपने निष्कर्ष निकालता है। इस प्रकार, इस विधि का प्रयोग करके वह व्यक्ति के कुछ विशिष्ट गुणों का नहीं, वरन् उसके सम्पूर्ण व्यक्तित्व का ज्ञान प्राप्त करता है। यही कारण है कि व्यक्तित्व मापन की इस नवीनतम विधि का सबसे अधिक प्रचलन है और मनोविश्लेषक इसका प्रयोग विभिन्न परेशानियों में उलझे हुए लोगों की मानसिक चिकित्सा करने के लिए करते हैं। प्रक्षेपण विधि के आधार पर अनेक व्यक्तित्व परीक्षणों का निर्माण किया गया है, जिनमें निम्नांकित दो सबसे अधिक प्रचलित हैं -

(i) रोर्शा का स्याही धब्बा परीक्षण Rorschach Ink BlotTest

(ii) प्रासंगिक अन्तर्बोध परीक्षण -Thematic Apperception Test (TAT)

(i) रोर्शा का स्याही धब्बा परीक्षण (Rorschach Ink Blot Test)

(अ) परीक्षण सामग्री - रोर्शा का स्याही धब्बा परीक्षण सबसे अधिक प्रयोग किया जाने वाला व्यक्तित्व परीक्षण है। इसका निर्माण स्विटरलैंड के विख्यात मनोरोग चिकित्सक हरमन रोर्शा ने 1921 में किया था। इस परीक्षण में स्याही धब्बों के 10 कार्डो का प्रयाग किया जाता है। (इस प्रकार के एक धब्बे का चित्र आपके अवलोकन के लिए नीचे दिया गया है) इन कार्डो में से 5 बिल्कुल काले है, 2 काले और लाल हैं और तीन अनेक रंगों के हैं।

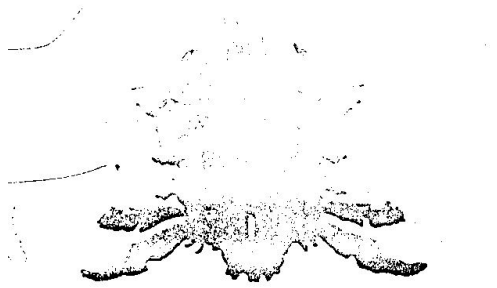

चित्र

(ब) परीक्षण विधि - जिस मनुष्य के व्यक्तित्व का परीक्षण किया जाता है, उसे ये कार्ड निश्चित समय के अन्तर के बाद एक-एक करके दिखाये जाते हैं। फिर उससे पूछा जाता है कि उसे प्रत्येक कार्ड के धब्बों में क्या दिखाई दे रहा है। परीक्षणर्थी, धब्बे में जो भी आकृतियां देखता है, उनको बताता है और परीक्षक उसके उत्तरों को सविस्तार लिखता है। एक बार दिखाये जाने के बाद कार्डो का परीक्षणर्थी को दुबारा दिखाया जाता है। इस प्रकार उससे पूछा जाता है कि धब्बों में बताई गई आकृतियों को उसने कार्डो में किन स्थानों पर देखा था।

(स) विश्लेषण - परीक्षक, परीक्षणर्थी के उत्तरों का विश्लेषण अग्रांकित चार बातों के आधार पर करता है -

(i) स्थान (Location) - इसमें यह देखा जाता है कि परीक्षणर्थी की प्रतिक्रिया पूरे धब्बे के प्रति थी, या उसके किसी एक भाग के प्रति।

(ii) निर्धारक गुण (Determining Quality) - इसमें यह देखा जाता है कि परीक्षणर्थी की प्रतिक्रिया धब्बे की बनावट के कारण थी या उसके रंग के कारण या उसमें देखी जाने वाली किसी आकृति की गति के कारण।

(iii) विषय (Content) - इसमें देखा जाता है कि परीक्षणर्थी ने धब्बों में किसकी आकृतियां देखी - व्यक्तियों की, पशुओं की, वस्तुओं की, प्राकृतिक दृश्यों की, नक्शों की या अन्य किसी की।

(iv) समय व प्रतिक्रियायें (Time & Responses) - इसमें यह देखा जाता है कि परीक्षणर्थी ने प्रत्येक धब्बे के प्रति कितने समय तक प्रतिक्रिया की, कितनी प्रतिक्रियाएं की और किस प्रकार की की।

(द) निष्कर्ष - अपने विश्लेषण के आधार पर परीक्षक निम्नलिखित प्रकार के निष्कर्ष निकालता है -

(i) यदि परीक्षणर्थी ने सम्पूर्ण धब्बों के प्रति प्रतिक्रियायें की है तो वह व्यावहारिक मनुष्य न होकर सैद्धान्तिक मनुष्य है।

(ii) यदि परीक्षणर्थी ने धब्बों के भागों के प्रति प्रतिक्रियायें की हैं, तो वह छोटी-छोटी और व्यर्थ की बातों की ओर ध्यान देने वाला मनुष्य है।

(iii) यदि परीक्षणर्थी ने धब्बों में व्यक्तियों, पशुओं आदि की गति (चलते हुए) देखी है, तो वह अन्तर्मुखी मनुष्य है।

(iv) यदि परीक्षणर्थी ने रंगों के प्रति प्रतिक्रियायें की हैं, तो उसमें संवेगों का बाहुल्य है।

परीक्षक उक्त प्रतिक्रियाओं के आधार पर परीक्षणर्थी के व्यक्तित्व के गुणों को निर्धारित करता है।

(य) उपयोगिता -इस परीक्षण द्वारा व्यक्ति की बुद्धि, सामाजिकता, अनुकूलन, अभिव्यक्तियों, संवेगात्मक सन्तुलन, व्यक्तिगत विभिन्नता आदि का पर्याप्त ज्ञान हो जाता है। अत: उसे सरलतापूर्वक व्यक्तिगत निर्देशन दिया जा सकता है। क्रो एवं क्रो (Crow & Crow. P.203) के अनुसार - ''धब्बों की व्याख्या करके परीक्षणर्थी अपने व्यक्तित्व का सम्पूर्ण चित्र प्रस्तुत कर देता है।''

(ii) प्रासंगिक अन्तर्बोध परीक्षण -Thematic Apperception Test (TAT)

(अ) परीक्षण प्रणाली - इस परीक्षण का निर्माण मोर्गन एवं मुर्रे ने 1925 में किया था। इस परीक्षण में 30 चित्रों का प्रयोग किया जाता है। ये सभी चित्र पुरुषों या स्त्रियों के हैं। इनमें से 10 चित्र पुरुषों के लिए, 10 स्त्रियों के लिए और 10 दोनों के लिए है। परीक्षण के समय लिंग के अनुसार साधारणत: 10 चित्रों का प्रयोग किया जाता है।

(ब) परीक्षण विधि - परीक्षक, परीक्षणर्थी को एक चित्र दिखाकर पूछता है - 'चित्र में अंकित व्यक्ति या व्यक्तियों के विचार और भावनायें क्या हैं? इन प्रश्नोंको पूछने के बाद परीक्षक, परीक्षणर्थी को एक एक करके 10 कार्ड दिखाता है। वह परीक्षणर्थी से प्रश्नों को ध्यान में रखकर प्रत्येक कार्ड के चित्र के सम्बन्ध में कोई कहानी बनाने को कहता है। परीक्षणर्थी कहानी सुनाता है।

(स) विश्लेषण - परीक्षणर्थी साधारणत: अपने को चित्र का कोई पात्र मान लेता है। उसके बाद वह कहानी कहकर अपने विचारों, भावनाओं, समस्याओं आदि को व्यक्त करता है। यह

कहानी स्वयं उसके जीवन की कहानी होती है। परीक्षक कहानी का विश्लेषण करके उसके व्यक्तित्व की विशेषताओं का पता लगाता है।

(द) **उपयोगिता** - इस परीक्षण द्वारा व्यक्ति की रूचियों, अभिरूचियों, प्रवृतियों, इच्छाओं, आवश्यकताओं सामाजिक और व्यक्तिगत सम्बन्धों आदि की जानकारी प्राप्त हो जाती है। इस जानकारी के आधार पर उसे व्यक्तिगत निर्देशन देने का कार्य सरल हो जाता है।

अन्य विधियाँ व परीक्षण (Other Methods & Tests) -

1- **निरीक्षण विधि (observational method)-** इस विधि में परीक्षणकर्ता विभिन्न परिस्थितियों में व्यक्ति के व्यवहार का अध्ययन करता है।
2- **आत्मकथा विधि(Autobiographical Method)-** इस विधि में परीक्षणर्थी से उसके जीवन से सम्बन्धित किसी विषय पर निबन्ध लिखने के लिए कहा जाता है।
3- **स्वतंत्र सम्पर्क विधि (Free contact Method)-** इस विधि में परीक्षणर्थी से अति घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित करके, उसके विषय में विभिन्न प्रकार की सूचनायें प्राप्त करता है।
4- **मनोविश्लेषण विधि (Psycho-Analytic Method) -** इस विधि में परीक्षणर्थी के अचेतन मन की इच्छाओं का ज्ञान प्राप्त किया जाता है।
5- **समाजमिति विधि (Sociometric Method) -** इस विधि का प्रयोग, व्यक्ति के सामाजिक गुणों का मापन करने के लिए किया जाता है।
6- **शारीरिक परीक्षण विधि (Psysical test method) -** इस विधि में विभिन्न यंत्रों से व्यक्ति की विभिन्न क्रियाओं का मापन किया जाता है। ये यंत्र हृदय, मस्तिष्क, श्वास, माँसपेशियों आदि की क्रियाओं का मापन करते हैं।
7- **बालकों का अन्तर्बोध परीक्षण (Children's Apperception Test, (CAT)**- यह परीक्षण TATके समान होता है। अन्तर केवल इतना है कि TATवयस्कों के लिए है, यह बालकों के लिए है।
8- **चित्र कहानी परीक्षण (Picture Story Test) -** इस परीक्षण में 20 चित्रों की सहायता से किशोर बालकों और बालिकाओं के व्यक्तित्व का अध्ययन किया जाता है।
9- **मौखिक प्रक्षेपण परीक्षण (Verbal Projective Test) -** इस परीक्षण में कहानी कहना, कहानी पूरी करना और इस प्रकार की अन्य मौखिक क्रियाओं द्वारा परीक्षण किया जाता है।

18.7 सारांश

यद्यपि व्यक्तित्व का परम्परागत अर्थ बाह्य पहनावे से है, परन्तु आधुनिक समय में इसका अर्थ विस्तृत रूप में लिया हुआ है। विस्तृत अर्थों में व्यक्तित्व से तात्पर्य व्यक्ति के समस्त शारीरिक, मानसिक तथा सामाजिक गुणों के उस गत्यात्मक संगठन से है जो उसका वातावरण से सामंजस्य बनाता है व्यक्तित्व की प्रकृति को स्पष्ट करने के लिए।

मन विगहण्ट तथा आलपोर्ट ने अनुसंधान किए है इसी आधार पर व्यक्तित्व उपागमों की बात कही गई है जिसमें प्रकार उपागम तथा शीलगुण उपागम प्रमुख है प्रकार उपागामों में सर्वप्रथम हिपोक्रेट्स ने चार प्रकार बताये इसके पश्चात शारीरिक गुणों के आधार पर क्रेचमर एवं शेल्डन ने चार चार प्रकार बताये। लेकिन जुंग के द्वारा मनोवैज्ञानिक गुणों के आधार पर बताये गए प्रकार अंतर्मुखी एवं

बर्हिमुखी ज्यादा प्रसिद्ध हुए। प्रकार उपागम में भी कई दोष रहे इसके पश्चात शील गुण उपागम के अन्तर्गत आलपोर्ट एवं कैटल ने व्यक्तित्व के शील गुण बताये।

जन्म से लेकर मृत्युपर्यन्त विकास के विभिन्न पड़ावों से मिलने वाले वातावरण का व्यक्तित्व के विकास पर प्रभाव पड़ता है अत: गर्भकालीन अवस्था से वृद्धावस्था तक व्यक्तित्व विकास को 9 अवस्थाओं में समझाने का प्रयास किया गया है। इसी तरह व्यक्तित्व को शारीरिक गान, वृद्धि, यौन, जन्मक्रम, अन्त:स्रात्री ग्रंथियां तथा कई सामाजिक और पारिवारिक कारक प्रभाव डालते हैं।

व्यक्तित्व मापने के लिए मनोवैज्ञानिकों ने अनेक प्रकार की विधियों का वर्णन किया है जिसमें व्यक्तित्व आविष्करिका (personality inventories)तथा प्रक्षेपण परीक्षण (projective tests) प्रमुख है।

18.8 शब्दावली

1 **Personality :** लैटिन भाषा के Persona से बना है।

2 **व्यक्तित्व :** व्यक्तित्व जीवन के व्यवहार की एक समग्र विशेषता है।

3 **शीलगुण -** शीलगुण से तात्पर्य व्यक्ति के व्यवहार का वर्णन करने वाली उन संज्ञाओं से है जो व्यवहार के संगत एवं अपेक्षाकृत स्थायी रूप को अभिव्यक्त करती है।

18.9 स्वमूल्यांकनप्रश्न

अतिलघुरात्मक प्रश्न

1- व्यक्तित्व किस अंग्रेजी शब्द का पर्याय है।

2- Personality किस शब्द से बना है।

3- व्यक्तित्व की परिभाषाओं का विश्लेषण कर किसे मनोवैज्ञानिक ने व्यक्तित्व की व्यापक परिभाषा दी।

4- क्रेचपर ने व्यक्तित्व के कितने प्रकार बताए।

5- आलपोर्ट ने शीलगुणों की कितना प्रवृत्तियां बताई।

लघुरात्मक प्रश्न

1- निम्नलिखित मनोवैज्ञानिकों द्वारा दी गई व्यक्तित्व की परिभाषा लिखिए।
अ गिलफर्ड ब वुडवर्थ स डेशील द विगतयाहण्ट य आलपोर्ट

2- शेल्डन के शरीर की रचना सिद्धान्त का संक्षेप में वर्णन कीजिए।

3- अन्र्तमुखी एवं बर्हिमुखी व्यक्तित्व के गुणों का संक्षेप में वर्णन कीजिए।

निबंधात्मक प्रश्न

1. आलपोर्ट के शीलगुण सिद्धान्त को विस्तार से व्याख्या कीजिए।

2. कैटल के शील गुण सिद्धान्त की विस्तार से व्याख्या कीजिए।

3. व्यक्तित्व विकास को प्रभावित करने वाले विभिन्न कारकों का वर्णन कीजिए।

4. विभिन्न अन्त: स्रावी ग्रंथियों का व्यक्तित्व के विकास पर क्या प्रभाव पड़ता है। वर्णन कीजिए।
5. व्यक्तित्व मापने के लिए मनोवैज्ञानिकों ने अनेक प्रकार की विधियों का वर्णन किया है जिसमें व्यक्तित्व आविष्कारिका (personality inventories)तथा प्रक्षेपण परीक्षण (projective tests) प्रमुख है।

18.10 संदर्भ ग्रंथ सूची

- Allport, H.E.; Social Psychology Boston : Hoftun, Mfflin, 1924
- Allport, G.W. : Personality; Psychological Interpretation, New York, Henary Hall, 1937
- Cattell, R.B.; Personality and motivation, New York, Harcourt, 1957
- एल. आर. शुल्का : बला मनोविज्ञान
- डॉ. एस.एस. माथुर : शिक्षा मनोविज्ञान
- डॉ. एस.पी. गुप्ता : शिक्षा मनोविज्ञान, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद
- डॉ. आर.एन. सिंह : आधुनिक मनोविज्ञान, विनोद पुस्तक मंदिर आगरा -2
- डॉ. अरूण कुमार सिंह : आधुनिक मनोविज्ञान, भारती भवन, पटना
- डॉ. पी.डी. पाठक : शिक्षा मनोविज्ञान, विनोद पुस्तक मंदिर आगरा - 2